अध्याय 7

शरीअत के नियम (1)

अल्लाह के दीन में नियमों (शरीअत) की ज़रूरत क्यों है?

नैतिक मूल्यों की निगरानी और इंसानों के बीच आपसी भेद व अन्तर से ऊपर उठने और हलाल व हराम में अतिवादी रवैयों से बचने के लिए

وَاللّٰهُ يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ عَلَيْكُمْ ۗ وَ يُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ الشَّهَوٰتِ اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ۝ يُرِيْدُ اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ ضَعِيْفًا ۝

और अल्लाह तो तुम पर तवज्जाह करना चाहता है, और जो अपनी ख़्वाहिशात के ताबे है वो ये चाहते हैं के तुम सीधे रास्ते से गुमराह हो जाओ और बहुत दूर चले जाओ। अल्लाह तो तुम्हारे बोझ को हल्का करना चाहता है, और इन्सान तो पैदा ही हुआ है कमज़ोर और नहीफ़। (4:27-28)

इंसान के व्यवहार और बर्ताव को बहतर बनाने के लिए अल्लाह की शिक्षाएं और नियम तथ्यात्मक (तथ्यों पर आधारित) हैं। अल्लाह का दीन तथ्यात्मक आदर्श और आदर्श तथ्यात्मकता की तरफ़ बुलाता है। यह एक तरफ़ इंसान को अल्लाह के ग़फ़ूर व रहीम (मआफ़ करने वाली और दया करने वाली हस्ती) होने के भरोसे वासना और लालच और आरज़ुओं व उमंगों के चरम पर पहुचंने रोकता है और दूसरी तरफ़ अल्लाह के मौजूद होने और निगराँ होने की भावना और उसकी पकड़ के डर से सभी स्वभाविक प्रवृत्तियों को कुचलने के दूसरे चरमपंथी व्यवहार से बचाता है। अल्लाह की शिक्षाएं और नियम इंसान को संयम और उदारता के रास्ते पर रखते हैं जिससे इंसान पाश्विक (हैवानी) और अलौकिक (रुहानी) दोनों तरह के अतिवाद से बचा रहता है क्योंकि इंसान न तो हैवान (पशु(द्ध है और न फ़रिशता। अल्लाह के दीन में अल्लाह के क़ानून प्रकृति के नियमों से सामंजस्य रखते हैं और यह नियम इंसानी व्यक्तित्व को मुकम्मल करते हैं और जहां तक सम्भव हो वहां तक उसकी वास्तविक प्रतिभाओं के वास्तविक विकास को सुनिश्चित करते हैं ताकि जीवन के रास्ते में इंसान की शरीरिक, बौद्धिक या अध्यात्मिक व मानसिक और नैतिक शक्तियों में से कोई भी शक्ति बेकार न जाए क्योंकि इन शक्तियों का बेकार होना ख़ुद इंसानी स्वभाव के ही विपरीत है।

क्या आपने नहीं देखा उन लोगों को के जो दावा तो करते हैं के वो ईमान लाये उस किताब पर जो आप पर उतरी और जो किताबें आपसे पहले उतरीं उन सब पर ईमान लाये और चाहते हैं ये के एक सरकश के पास अपना मुक़दमा ले जाकर फ़ैसला करायें जबकि उनको ये हुक्म दे दिया गया है कि उसको ना मानें, और शैतान तो चाहता है के उनको बहका कर दूर रस्ते से डाल दे। और जब उनसे कहा जाता है के आओ इस हुक्म की तरफ़ जो अल्लाह ने नाज़िल किया है और रसूल की तरफ़ तो आप मुनाफ़िक़ों को देखते हैं के आप से एराज़ करते और रूके जाते हैं। फ़िर कैसी जान को बनती है जब उन पर कोई मुसीबत आ पड़ती है उनके उस अमल की वजह से जो वो पहले कर चुके हैं तो आप के पास भागे आते हैं क़समें खाते हैं के हम तो भलाई ही भलाई चाहते थे, और हमारा मक़सद बाहम मवाफ़क़त था। यही हैं वो जिनके दिलों की बातें अल्लाह ख़ूब जानता है तो आप उनसे तग़ाफ़ुल किया कीजिये, और उनको नसीहत ही करते रहें, और ख़ास अन्दाज़ से बातें करें जो उनके दिलों में असर अंदाज़ हों। और हमने कोई रसूल नहीं भेजा मगर महेज़ इसलिए के अल्लाह के फ़रमान के मुताबिक़ उनकी इताअत की जाए और ये लोग जब अपने हक़ में ज़ुल्म कर बैठे थे अगर तुम्हारे पास आते और अल्लाह से माफ़ी मांगते और अल्लाह का रसूल उनके लिए बख़्शिश तलब करते तो वो अल्लाह को भी माफ़ करने वाला और बड़ा मेहरबान पाते। क़सम है आपके रब की ये लोग ईमान ना लायेंगे जब तक वो अपने तनाज़आत में आपको मुनसिफ़ ना बना लें, और जो फ़ैसला आप फ़रमा दें उससे तंगदिल ना हों बल्कि उसको ख़ुशी से मान लें। (4:60-65)

أَلَمْ تَرَ إِلَى الَّذِينَ يَزْعُمُونَ أَنَّهُمْ آمَنُوا
بِمَا أُنْزِلَ إِلَيْكَ وَمَا أُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ
يُرِيدُونَ أَنْ يَتَحَاكَمُوا إِلَى الطَّاغُوتِ وَقَدْ
أُمِرُوا أَنْ يَكْفُرُوا بِهِ ۖ وَيُرِيدُ الشَّيْطَانُ
أَنْ يُضِلَّهُمْ ضَلَالًا بَعِيدًا ﴿٦٠﴾ وَإِذَا قِيلَ
لَهُمْ تَعَالَوْا إِلَىٰ مَا أَنْزَلَ اللَّهُ وَإِلَى
الرَّسُولِ رَأَيْتَ الْمُنَافِقِينَ يَصُدُّونَ
عَنْكَ صُدُودًا ﴿٦١﴾ فَكَيْفَ إِذَا أَصَابَتْهُمْ
مُصِيبَةٌ بِمَا قَدَّمَتْ أَيْدِيهِمْ ثُمَّ
جَاءُوكَ يَحْلِفُونَ ۖ بِاللَّهِ إِنْ أَرَدْنَا إِلَّا
إِحْسَانًا وَتَوْفِيقًا ﴿٦٢﴾ أُولَٰئِكَ الَّذِينَ يَعْلَمُ
اللَّهُ مَا فِي قُلُوبِهِمْ فَأَعْرِضْ عَنْهُمْ وَ
عِظْهُمْ وَقُلْ لَهُمْ فِي أَنْفُسِهِمْ قَوْلًا
بَلِيغًا ﴿٦٣﴾ وَمَا أَرْسَلْنَا مِنْ رَسُولٍ إِلَّا
لِيُطَاعَ بِإِذْنِ اللَّهِ ۚ وَلَوْ أَنَّهُمْ إِذْ ظَلَمُوا
أَنْفُسَهُمْ جَاءُوكَ فَاسْتَغْفَرُوا اللَّهَ وَ
اسْتَغْفَرَ لَهُمُ الرَّسُولُ لَوَجَدُوا اللَّهَ تَوَّابًا
رَحِيمًا ﴿٦٤﴾ فَلَا وَرَبِّكَ لَا يُؤْمِنُونَ حَتَّىٰ
يُحَكِّمُوكَ فِيمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ ثُمَّ لَا يَجِدُوا
فِي أَنْفُسِهِمْ حَرَجًا مِمَّا قَضَيْتَ وَيُسَلِّمُوا
تَسْلِيمًا ﴿٦٥﴾

अल्लाह पर ईमान रखने वाला इंसान जो कि अल्लाह के अलीम (सब कुछ जानने वाली हस्ती) और हकीम (युक्तिपूर्वक काम करने वाली हस्ती) होने, निगराँ होने, महरबान होने और बसीर (सब कुछ देखने वाली हस्ती) होने जैसे तमाम गुणों से बाख़बर होता है, उसके दीन और शिक्षा समझता है। उसे हमेशा अल्लाह के नियमों का पालन करना चाहिए और उसके इंसाफ़ पर पूरा भरोसा रखना चाहिए क्योंकि अल्लाह पर सच्चे ईमान का मतलब ही यह है कि जो कुछ अल्लाह और उसके पैग़म्बर का आदेश हो उसे पूरा किया जाए और जिससे मना किया गया हो उससे दूर रहा जाए। इंसान का अपने अहं की बुराइयों या समाज की बुराइयों के आगे झुक जाना ईमान के विपरीत है और यह अल्लाह के साथ सम्बंध और अल्लाह पर ईमान व उसकी हिदायत को अपनाने के मामले में मुनाफ़िक़त (दोग़लापन) है। ऐसे बेईमान और धोखेबाज़ अवसरवादी हर ज़माने में और हर जगह होते हैं, और ऐसे लोग अपने निजी हित साधने में ही लगे रहते हैं और अपने सिवा किसी के लिए सच्चे नहीं होते। लेकिन फिर भी वो यह दावा करते हैं कि वो समाज में सौहार्द स्थापित करने के लिए प्रयासरत हैं और अच्छे सम्बंध बनाने के पक्ष में हैं। उनके स्वार्थीपन (ख़ुदपसन्दी) की सच्चाई खुल ही जाती है क्योंकि वो ख़ुद को धोखे में रखते हैं और सच्चाई ख़ुद उनकी नज़र से ओझल हो जाती है, और उनके धोखे व फ़रेब के कारण दूसरे लोग भी तभी तक बेख़बर रहते हैं जब तक सच्चाई खुल नहीं जाती। हालांकि ऐसे लोग जो यह सोचते हैं कि वो अल्लाह को और मोमिनों को धोखा दे रहे हैं उन्हें हमैशा इस बात का मौक़ा मिला हुआ है कि अपना व्यवहार बदलें और अगर वो अल्लाह से मआफ़ी मांगें और अल्लाह के पैग़म्बर की बात मानने का वचन दें तो वो अल्लाह तआला को हमेशा रहीम व करीम और मआफ़ करने वाला पाएंगे।

ईमान व आस्था एक, शरीअतें और इबादत के तरीक़े अलग अलग

وَ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا
بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَ مُهَيْمِنًا عَلَيْهِ
فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَ لَا تَتَّبِعْ
اَهْوَآءَهُمْ عَمَّا جَآءَكَ مِنَ الْحَقِّ ؕ لِكُلٍّ
جَعَلْنَا مِنْكُمْ شِرْعَةً وَّ مِنْهَاجًا ؕ وَ لَوْ شَآءَ
اللّٰهُ لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّ لٰكِنْ
لِّيَبْلُوَكُمْ فِيْ مَآ اٰتٰىكُمْ فَاسْتَبِقُوا

और हमने आप पर ये किताब नाज़िल की जो बज़ाते ख़ुद भी सच्ची है और इससे पहले उतरने वाली सब किताबों की तसदीक़ करती है और उनकी मुहाफ़िज़ भी है, तो उनके आपस के मामलात का इसी किताब के मवाफ़िक़ फैसला फ़रमाया कीजिये, (दीने) हक़ आपकी तरफ़ आया है इससे दूर हो कर उनकी ख़्वाहिशात के मवाफ़िक़ अमल ना कीजिये, तुम में से हर एक के लिए हमने ख़ास शरीअत और ख़ास तरीक़त बना दी है, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सब को एक ही उम्मत

الْخَيْرٰتِ ۭ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ۝

बना देता, लेकिन अल्लाह तुम को आज़माना चाहता है इस दीन में जो तुम को दिया है, तो अच्छी बातों की तरफ़ दौड़ कर आओ, तुम सबको अल्लाह की तरफ़ लौट जाना है, फ़िर वो तुमको सब कुछ बता देगा जिनमें तुम इख़्तियार करते थे। (5:48)

इस आयत में पिछली आसमानी किताबों के सिलसिले में, जो कि क़ुरआन के उतरने के ज़माने में भी मौजूद थीं, क़ुरआन के दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप से बताया गया है। मुसलमानों का हालांकि यह अक़ीदा है कि क़ुरआन अल्लाह की आख़री किताब है और इंसानों के लिए अल्लाह का अन्तिम ग्रन्थ है जिसमें पिछले सभी पैग़म्बरों की शिक्षाओं का निचोड़ है और अब हर ज़माने और स्थान के लिए हिदायत की (रास्ता दिखाने वाली) किताब केवल यही है, लेकिन मुसलमानों की मान्यता यह भी है कि "आस्था के मामले में कोई ज़ोर ज़बरदस्ती नहीं है" (2:256), और यह कि अल्लाह ने इंसानों में विविधता और अन्तर रखा है। इसलिए बहुरंगी और विविधता प्रकृति का बुनियादी नियम है और अल्लाह का दीन और उसके नियम प्रकृति के इस बुनियादी नियम के अनुकूल हैं:"हमने तुम में से हर एक (समुदाय) के लिए एक विधि और संहिता रखी है और अगर अल्लाह चाहता तो सब को एक ही शरीअत पर कर देता मगर जो आदेश उसने तुम्हें दिए हैं उनमें तुम्हारी परख करना चाहता है।'" पिछले पैग़म्बरों की शिक्षाओं पर चलने वाले तमाम लोग जो पूरी सच्ची निष्ठा के साथ एक अल्लाह पर ईमान रखते हैं और आख़िरत में अल्लाह के सामने इंसान की जवाबदेही पर विश्वास रखते हैं और अपना जीवन अल्लाह के नैतिक निर्देशों के अनुसार बिताते हैं उनका फ़ैसला अल्लाह तआला करेंगे और उनके साथ अल्लाह इंसाफ़ का मामला करेंगे। (2:62(3:113-115(5:69)। विभिन्न पैग़म्बरों को मानने वाले और अलग अलग जीवन शैलियों पर चलने वाले लोगों को चाहिए कि अच्छे (नेकी के) कामों में एक दूसरे का सहयोग करें, और इस तरह लोगों और धर्मों की विविधता निर्माणकारी कामों में मुक़ाबले और आपसी सहयोग को बढ़ावा देने का माध्यम बने (2:177(5:2(49:13)। क़ुरआन में अल्लाह के बताए नियम बहुलता को सुनिश्चित करते हैं जो इंसानी विविधता के अनुकूल है, और अगरचे मुसलमानों की यह मान्यता है कि अल्लाह की वह्यि जिसका वो अनुसरण करते हैं अल्लाह की अन्तिम किताब ही है, और यह बात इस वह्यि के उतरने के समय से ही चली आ रही है लेकिन क़ुरआन कोई एक व्यवस्था या आस्थाओं का एक ही बयान सब पर नहीं थोपता, न वह नेकी और दुनिया व आख़िरत में अल्लाह की कृपा पर किसी के अधिपत्य का दावा करता है।

وَ اَنِ احۡکُمۡ بَیۡنَہُمۡ بِمَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰہُ وَ لَا تَتَّبِعۡ اَہۡوَآءَہُمۡ وَ احۡذَرۡہُمۡ اَنۡ یَّفۡتِنُوۡکَ عَنۡۢ بَعۡضِ مَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰہُ اِلَیۡکَ ؕ فَاِنۡ تَوَلَّوۡا فَاعۡلَمۡ اَنَّمَا یُرِیۡدُ اللّٰہُ اَنۡ یُّصِیۡبَہُمۡ بِبَعۡضِ ذُنُوۡبِہِمۡ ؕ وَ اِنَّ کَثِیۡرًا مِّنَ النَّاسِ لَفٰسِقُوۡنَ ﴿۴۹﴾ اَفَحُکۡمَ الۡجَاہِلِیَّۃِ یَبۡغُوۡنَ ؕ وَ مَنۡ اَحۡسَنُ مِنَ اللّٰہِ حُکۡمًا لِّقَوۡمٍ یُّوۡقِنُوۡنَ ﴿۵۰﴾

हम ताकीद करते हैं के तुम उनमें उसके मुताबिक़ फ़ैसला करो जो तुम पर नाज़िल किया है, और उनकी ख़्वाहिशात की पैरवी ना करो और उनसे बचे रहो के वो तुम को गुमराह ना कर दें बाज़ बातों में जो अल्लाह ने तुम पर नाज़िल की हैं फ़िर अगर वो ना मानें तो जान लो के अल्लाह चाहता है के उनके गुनाहों के सबब उन पर मुसीबत नाज़िल करे, और लोगों में से बहुत से तो नाफ़रमान हैं। तो क्या वो जाहीलियत के ज़माने का हुक्म चाहते हैं, और यक़ीन रखने वालों के लिए अल्लाह से अच्छा फ़ैसला किस का होगा। (5:49-50)

अल्लाह के नियम ऊपर से आते हैं और इंसानी ज़रूरतों को पूरा करते हैं और तमाम व्यक्तिगत व सामाजिक मतभेदों से ऊपर हैं, जबकि इंसानी नियम केवल बर्चस्व वाले वर्गों के हितों और विचार धाराओं को अभिव्यक्त करते हैं जिनके पास शक्ति होती है और जो बहुसंख्या में होते हैं। आसमानी नियम तमाम जातीय वर्गों और सामाजिक व आर्थिक और राजनीतिक वर्गों, लिंगों, हर उम्र के लोगों और हर आस्था के मानने वालों का लिहाज़ करते हैं। इंसाफ़ के इन सिद्धांतों को अपनाने से व्यक्तिगत व सामूहिक स्वार्थ, भेदभाव और हित साधने की प्रवृत्तियों से समाज की हिफ़ाज़त होती है जबकि न्याय के इन आसमानी सिद्धांतों की अनदेखी करने या उनसे विचलित होने की वजह से स्वार्थवादिता, लालच, अदूरदर्शिता और अवसरवादिता के दरवाज़े खुलते हैं। नैतिक और समाजिक तकाज़ों के प्रति समर्पित न होने की वजह से समाज में धीरे धीरे गिरावट आती जाती है और आसमानी इंसाफ़ की अनदेखी करके इंसानी अहंकार का तुष्टीकरण करना समाज के लिए बर्बादी की वजह बनता है क्योंकि अल्लाह से बहतर क़ानून या न्यायिक व्यवस्था कोई भी नहीं बना सकता क्योंकि अल्लाह हर तरह के पूर्वाग्रह और मजबूरियों से बुलन्द हैं।

शासन और प्रशासन

لَقَدۡ اَنۡزَلۡنَاۤ اٰیٰتٍ مُّبَیِّنٰتٍ ؕ وَ اللّٰہُ یَہۡدِیۡ مَنۡ یَّشَآءُ اِلٰی صِرَاطٍ مُّسۡتَقِیۡمٍ ﴿۴۶﴾ وَ یَقُوۡلُوۡنَ اٰمَنَّا بِاللّٰہِ وَ بِالرَّسُوۡلِ وَ اَطَعۡنَا

हमने रौशन आयात नाज़िल की हैं, और अल्लाह जिसको चाहता है सीधे रास्ते की तरफ़ ले चलता है। और ये मुनाफ़िक़ कहते हैं के हम अल्लाह पर और रसूल पर ईमान ले आए, और हुक्म मान लिया फ़िर उसके बाद

ثُمَّ يَتَوَلّٰى فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ؕ وَ
مَاۤ اُولٰٓئِكَ بِالْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٤٧﴾ وَ اِذَا دُعُوْۤا اِلَى
اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ بَيْنَهُمْ اِذَا فَرِيْقٌ
مِّنْهُمْ مُّعْرِضُوْنَ ﴿٤٨﴾ وَ اِنْ يَّكُنْ لَّهُمُ
الْحَقُّ يَاْتُوْۤا اِلَيْهِ مُذْعِنِيْنَ ﴿٤٩﴾ اَفِيْ قُلُوْبِهِمْ
مَّرَضٌ اَمِ ارْتَابُوْۤا اَمْ يَخَافُوْنَ اَنْ يَّحِيْفَ
اللّٰهُ عَلَيْهِمْ وَ رَسُوْلُهٗ ؕ بَلْ اُولٰٓئِكَ هُمُ
الظّٰلِمُوْنَ ﴿٥٠﴾ اِنَّمَا كَانَ قَوْلَ الْمُؤْمِنِيْنَ
اِذَا دُعُوْۤا اِلَى اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ لِيَحْكُمَ
بَيْنَهُمْ اَنْ يَّقُوْلُوْا سَمِعْنَا وَ اَطَعْنَا ؕ وَ
اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ ﴿٥١﴾ وَ مَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَ
رَسُوْلَهٗ وَ يَخْشَ اللّٰهَ وَ يَتَّقْهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الْفَآئِزُوْنَ ﴿٥٢﴾

उनमें से एक फ़िर्क़ा फिर जाता है, दरअसल ये लोग ईमान ही नहीं लाये। और जब उनको अल्लाह और रसूल की तरफ़ बुलाया जाता है ताके रसूले ख़ुदा उनका फ़ैसला कर दें तो उनमें से एक फ़िर्क़ा मुंह फ़ेर लेता है। और अगर उनका हक़ हो तो रसूल की तरफ़ मुतीअ होकर चले आयें। क्या उनके दिलों में बीमारी है या वो शक में हैं या उनको डर है के अल्लाह और उसका रसूल उनके हक़ में ज़ुल्म करेंगे, नहीं तो, बल्के ये ख़ुद ही ज़ालिम हैं, मोमिनीन की ये बात है के वो जब अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ बुलाये जाते हैं ताके वो उनमें फ़ैसला करें तो कहें हमने हुक्म सुन लिया और मान लिया, और यही लोग फ़लाह पाने वाले हैं। और जो अल्लाह और रसूल की इताअत करे और अल्लाह से डरे और उसकी नाफ़रमानी से बचे, तो यही लोग फ़लाह पाने वाले हैं। (24:46-52)

जो व्यक्ति अल्लाह और उनके पैग़म्बर पर उसी शिक्षा के अनुसार ईमान रखता है जो पैग़म्बर के द्वारा भेजी गयी है, उसे अपने ईमान पर अडिग रहना चाहिए और ईमान के तक़ाज़े पूरे करना चाहिएं, और किसी भी विवाद का निपटारा अल्लाह के क़ानून और न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार करने के पैग़म्बर के अधिकार को मानने में कोई संकोच अल्लाह की सच्ची बंदगी के विपरीत है और इसकी वजह से आदमी बिखर जाएगा। नियम और अनुशासन को ईमान और अख़लाक़ (नैतिक आचरण) से अलग नहीं किया जा सकता। अतःएक सौहार्दपूर्ण समाज तभी बनता है जब सभी तत्व एक दूसरे से सहयोग करें और दुनिया में शक्ति व स्थिरता तथा फलने व फूलने के लिए और आख़िरत में हमेशा का आनन्द प्राप्त करने के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग करें कि ऐसे ही लोग सफ़ल होंगे।

❁ ❁ ❁

आम सिद्धांत

कुछ सीमित और विशेष पाबन्दियों के साथ सब कुछ जायज़ है

هُوَ الَّذِىۡ خَلَقَ لَـكُمۡ مَّا فِى الۡاَرۡضِ جَمِيۡعًا ثُمَّ اسۡتَوٰۤى اِلَى السَّمَآءِ فَسَوّٰٮهُنَّ سَبۡعَ سَمٰوٰتٍ ‌ؕ وَهُوَ بِكُلِّ شَىۡءٍ عَلِيۡمٌ ﴿۲۹﴾

वो ही तो है जिसने तुम्हारे लिए वो सब कुछ जो भी ज़मीन में है पैदा किया, फिर उसने आसमान की तरफ़ तवज्जह की तो सात आसमान बना दिये, और वो हर चीज़ को ख़ूब जानता है। (2:29)

ऊपर की आयत हालांकि पूरी सृष्टि और बहुत से आकाशीय पिण्डों के बारे में है जिन्हें समावात (आसमान) कहा गया है चाहे वो इंसान को दिखाई देते हों या न देते हों। लेकिन इसमें एक आम सिद्धांत यह बयान किया गया है कि ''ज़मीन पर जो कुछ है उसे तुम्हारे लिए पैदा किया गया है'' (और देखें 45:3)। चुनांचि, शूरू से दीन के जानकारों ने यह समझा है कि ज़मीन पर जो कुछ भी है वह इंसान के इस्तेमाल के लिए है, सिवाय इसके कि किसी चीज़ के बारे में अल्लाह की तरफ़ से स्पष्ट रूप से कोई मनाही हो। इसलिए हर चीज़ को जायज़ माना गया है जब तक किसी ख़ास चीज़ के बारे में उसके विपरीत बात साबित न हो, और सुबूत देने की ज़िम्मेदारी उसी पर आती है जो उसके मना होने का दावा करे, जबकि यायज़ मानना एक आम सिद्धांत है और उसके लिए अलग से किसी तर्क की ज़रूरत नहीं है। इस तरह किसी चीज़ के जायज़ होने के लिए सुन्नत से सुबूत मांगना या शुरू ज़माने की कोई नज़ीर मांगना इस क़ुर्आनी सिद्धांत और फ़िक़्ही तर्क के विपरीत है।

यही सिद्धांत जिसे क़ुरआन में बार बार दोहराया गया है, पिछली आसमानी शिक्षाओं में भी आम तौर से अपनाया गया था (3:93)। यह समग्र और मौलिक सिद्धांत इस्लामी नियमों (शरीअत के क़ानूनों) की निरन्तरता और उनकी सक्रियता को बनाए हुए है, कि इसके अनुसार टाइम एण्ड स्पेस के अन्तर के लिहाज़ से इसमें बदलाव आते रहने का रास्ता खुला हुआ है। किसी ख़ास ज़माने और जगह पर जो चीज़ जायज़ या वर्जित हो उसमें आम सीख यह है कि उस मामले या चीज़ की प्राकृतिक विशेषताएं क्या हैं और इंसानी ताक़तों तथा उनके विकास पर उसके क्या प्रभाव हैं। ये प्रभाव चाहे भौतिक रूप से हों और उनकी स्थिति व्यक्तिगत हो या सामाजिक, ''पाक चीज़ों को उनके लिए हलाल करते हैं और नापाक चीज़ों को उनके लिए हराम ठहराते हैं और उन पर वो बोझ उतारते हैं जो उन (के सर) पर (और गले में) पड़े हुए थे'' (7:157)।

وَسَخَّرَ لَكُمۡ مَّا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الۡاَرۡضِ جَمِيۡعًا مِّنۡهُ ؕ اِنَّ فِيۡ ذٰلِكَ لَاٰيٰتٍ لِّقَوۡمٍ يَّتَفَكَّرُوۡنَ ﴿۱۳﴾

और उसी ने वो सब जो कुछ आसमानों आर ज़मीन में है अपनी तरफ़ से तुम्हारे काम में लगा रखा है, इसमें निशानियां हैं इन लोगों के लिये जो ग़ौर करते हैं। (45:13)

यह एक और निर्देश है इस बात का कि जो कुछ भी अल्लाह ने इंसान के इस्तेमाल के लिए पैदा किया है उसको उपयोग में लाने की आम इजाज़त है, जब तक किसी चीज़ के बारे में ख़ास तौर से स्पष्ट और प्रमाणित सुबूत के आधार पर मनाही साबित न हो। इससे पहले ज़िक्र की गयी आयतों (2:29) और उसकी तफ़सीर देखें।

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ كُلُوۡا مِمَّا فِي الۡاَرۡضِ حَلٰلًا طَيِّبًا ۖ وَّلَا تَتَّبِعُوۡا خُطُوٰتِ الشَّيۡطٰنِ ؕ اِنَّهٗ لَكُمۡ عَدُوٌّ مُّبِيۡنٌ ﴿۱۶۸﴾ اِنَّمَا يَاۡمُرُكُمۡ بِالسُّوۡٓءِ وَالۡفَحۡشَآءِ وَاَنۡ تَقُوۡلُوۡا عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۶۹﴾

ऐ लोगो! तुम वो चीज़ें जो ज़मीन में तुम्हारे लिए हलाल और पाक हैं खाओ और बतो। और शैतालन के क़दमों पर मत चलो, दरहक़ीक़त वो तुम्हारा खुला दुश्मन है। वो तुम को बुरी और गंदी ही बातें सिखाता है और कहता है के अल्लाह पर ऐसी बातें कहो जो तुम जानते नहीं और न कोई सनद है। (2:168-169)

इस आयत में भी वही बात कही गयी है जो पिछली आयत में कही गयी थीःज़मीन पर जो कुछ भी उपयोगी और अच्छी चीज़ें हैं वो एक आम सिद्धांत के अनुसार जायज़ हैं, और अगर कोई चीज़ बुरी है और नुक़सानदायक है तो अल्लाह ने उसे साफ़ तौर से मना कर दिया है। किसी चीज़ के हानिकारक होने का अर्थ वास्तव में उस चीज़ का अपने आप में हानिकारक होना नहीं होता बल्कि इंसान का उसे उपयोग करना उसे लाभदायक या हानिकारक बनाता है। इसी तरह इंसान का कर्म चाहे वह अपने लिए हो या दूसरों के साथ मामला करने में हो वह फ़ायदेमन्द भी हो सकता है और नुक़सानदायक भी हो सकता है। किसी का शोषण या किसी के साथ धोखा किसी जायज़ चीज़ को वर्जित तरीक़े से और ग़लत नियत से इस्तेमाल करने से भी सम्भव है। या ऐसी आदतें जो इंसान के अपने अस्तित्व को नुक़सान पहुंचाएं या दूसरों को नुक़सान पहुंचाएं, और इसी तरह शैतान के उक्सावों पर चलना और अल्लाह की हिदायत को जो कि इंसान की क्षमताओं व योग्यताओं की हिफ़ाज़त और उन्हें बढ़ाने का साधन है, अनदेखा करना इंसान की अपनी ग़लती है। इंसान को बुराई पर उक्साने के लिए शैतान की उक्साहटें इंसान की अपनी स्वार्थपूर्ति, लालच, अदूरदर्शिता और दूसरी नकारात्मक बातों से और इंसान के अन्दर जो सकारात्मक योग्यताएं हैं उन्हें अस्थाई या स्थाई रूप से निष्क्रिय और बे असर रखने से ही इंसान के अन्दर रस्ता बनाती हैं (7:179(25:44(28:50)। अल्लाह के क़ानूनों

और वर्जित की गयी चीज़ों को केवल ज़ाहिरी चीज़ों तक सीमित कर देने के उक्सावे में आदमी को नहीं आना चाहिए (और देखें 5:93(22:37)। यह केवल इंसान का व्यवहार है जो वास्तव में व्यक्तियों और समाज को नुक़सान पहुंचाता है, लिहाज़ा इंसान को इस बात से पूरी तरह बा ख़बर रहना चाहिए और अपनी इच्छाओं के दबाव में या दूसरों के कहने में शैतान के पद चिन्हों पर चल पड़ने से बचना चाहिए।

إِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَ الدَّمَ وَ
لَحْمَ الْخِنْزِيرِ وَمَآ أُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ ۚ
فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَلَآ إِثْمَ
عَلَيْهِ ؕ إِنَّ اللّٰهَ غَفُورٌ رَّحِيمٌ ﴿١٧٣﴾

अल्लाह ने तम पर मुर्दा जानवर, .ख़ून, और सुवर का गोश्त हराम किया है और नीज़ जिस चीज़ पर अल्लाह के सिवा दूसरे का नाम पुकारा जाए हराम किया है, अलबत्ता जो नाचार हो जाए, बशर्त ये के वो नाफ़रमान ना हो, और ना हद से आगे बढ़ता हो, तो उस पर कोई गुनाह नहीं है, बिलाशुबहः अल्लाह तो है ही बड़ा माफ़ करने वाला बड़ा ही रहम वाला। (2:173)

जो चीज़ें खाने पीने के लिए मना की गयी हैं या जो काम मना हैं वो सीमित हैं और उन्हें बता दिया गया है (5:3,90-91), जबकि बाक़ी दूसरी सारी चीज़ें जो क़ुरआन या सुन्नत में मना नहीं की गयी हैं जायज़ हैं। जो चीज़ मना है वह आम तौर से इंसानी सेहत के लिए अनुचित और नुक़सानदायक है। एक अल्लाह के बजाए किसी और की उपासना और बन्दगी को भी अपनाना, या किसी ऐसी चीज़ का खाना जिस पर अल्लाह के बजाए किसी और का नाम लिया गया हो, ईमान के विपरीत है। हालांकि इस सम्बंध में एक अनिवार्य क़ुरआनी सिद्धांत दिया गया है और दूसरी बहुत सी आयतों में कई बार इस पर ज़ोर दिया गया है (देखें 2:233,286, 5:3; 6:119, 145, 152; 7:42; 16:115; 23:62), यह कि कोई व्यक्ति कोई वर्जित चीज़ मजबूरी में ज़रूरत भर इस्तेमाल करे तो उसकी अनुमति होगी (जैसे यहां भूख या प्यास की वजह से मरने से बचने के मामले में यह इजाज़त दी गयी है) इस शर्त पर कि अल्लाह की ना फ़रमानी न करे और ज़रूरत (की हद) से बाहर न निकल जाए। ज़रूरत या जन आवश्यकताओं के दबाव (''अमूम बलवा'') को फ़क़ीहों (शरियत के विधि शास्त्रियों) ने किसी वर्जित चीज़ की व्यक्ति या समाज के लिए अस्थाई रूप से अनुमति देने का एक जायज़ आधार समझा है इस शर्त के साथ कि निषेध होने का आम सिद्धांत व्यक्ति या समाज की ज़रूरत की अस्थाई स्थिति बीत जाने के बाद तुरन्त ही लागू होगा। यह एक समग्र और बुनियादी सिद्धांत है जिससे न्याय बना रहता है, लोगों की दिक़्क़त दूर होती है और इस्लामी क़ानून को विभिन्न ज़मानों में और विभिन्न स्थानों पर बदलती हुई स्थिति से निपटने के लिए लचक मिलती है।

कोई ज़बरदस्ती नहीं, क्षमता के हिसाब से ही जवाबदेही

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُحَرِّمُوْا طَيِّبٰتِ مَاۤ
اَحَلَّ اللّٰهُ لَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوْا ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا
يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ۝٨٧ وَكُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ
حَلٰلًا طَيِّبًا ۠ وَّاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِيْٓ اَنْتُمْ بِهٖ
مُؤْمِنُوْنَ ۝٨٨

मोमिनों! तुम उन पाक चीज़ों को हराम ना करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये हलाल कर दी हैं, और हद से आगे ना बढ़ो, के अल्लाह हद से आगे जाने वालों को दोस्त नहीं रखता। और उसी में से खाया करो जो अल्लाह ने तुम को हलाल और पाकीज़ा रिज़्क़ अता किया है, और अल्लाह ही से डरते रहो जिस पर तुम पूरा यक़ीन रखते हो। (5:87-88)

यह आयत इस आम सिद्धांत को बयान करती है कि जो चीज़ भी पैदा की गयी है वह इंसान के लिए "तैयब" यानी अच्छी, लाभदायक और वेध है सिवाय उसके जिसे हराम (वर्जित) कर दिया गया हो और उसका हराम होना स्पष्ट रूप से साबित हो (देखें पहले बयान हुई आयतें 2:29 और 45:13 तथा उनकी व्याख्या)। कोई इंसान अगर अल्लाह की हलाल की हुई किसी चीज़ को हराम कहता है या स्वयं को अथवा दूसरों को उससे वंचित करता है तो यह बात उतनी ही गम्भीर और नैतिक, धारणात्मक व सामाजिक लिहाज़ से उतनी ही विनाशकारी है जितनी अल्लाह की हराम की हुई कोई चीज़ अपने या दूसरों के लिए हलाल (वेध) कर लेने वाली बात (10:59(16:116)। दोनों ही तरह की बातें अल्लाह की सीमाओं का उल्लंघन और सही को ग़लत ठहरहाने का दुस्साहस हैं। आत्मनियंत्रण और संयम अच्छी बातें हैं और इन बातों का समर्थन करना चाहिए लेकिन इसे सभी लोगों के लिए मना होने का एक आम सिद्धांत नहीं बना लेना चाहिए, और किसी ऐसे मामले में कोई भ्रम नहीं रहना चाहिए। मुसलमान शरीर व आत्मा के बीच किसी खींचतान और टकराव के नज़रिए को नहीं मानते, इसके बजाए वो यह मानते हैं कि शरीर व आत्मा दोनों अल्लाह की नेअमतें (वरदान) हैं, और दोनों को संतुलित ढंग से और सामंजस्य के साथ बराबर से मज़बूत करते रहना चाहिए जिससे इंसानी योग्यताओं के बीच एक स्वस्थ और उपयोगी इन्ट्रेक्शन जारी रहे।

وَمَا لَكُمْ اَلَّا تَاْكُلُوْا مِمَّا ذُكِرَ اسْمُ اللّٰهِ
عَلَيْهِ وَقَدْ فَصَّلَ لَكُمْ مَّا حَرَّمَ عَلَيْكُمْ اِلَّا
مَا اضْطُرِرْتُمْ اِلَيْهِ ۭ وَاِنَّ كَثِيْرًا لَّيُضِلُّوْنَ
بِاَهْوَاۗىِٕهِمْ بِغَيْرِ عِلْمٍ ۭ اِنَّ رَبَّكَ هُوَ اَعْلَمُ

वो कौनसी चीज़ है जो तुम को रोकती है के वो चीज़ भी ना खाओ जिस पर अल्लाह का नाम लिया जा चुका है, जबके अल्लाह ने साफ़ साफ़ बता दिया है के कौन सी चीज़ तुम पर हराम है और वो भी सख़्त ज़रूरत के वक़्त हलाल है, और बिला शुबह बहुत से आदमी अपने ग़लत

بِالْمُعْتَدِيْنَ ﴿۱۱۹﴾ وَ ذَرُوْا ظَاهِرَ الْاِثْمِ وَ
بَاطِنَهٗ ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْسِبُوْنَ الْاِثْمَ
سَيُجْزَوْنَ بِمَا كَانُوْا يَقْتَرِفُوْنَ ﴿۱۲۰﴾

.ख्यालात पर बिला किसी सनद के गुमराह करते हैं, बेशुबह अल्लाह हद से आगे बढ़ने वालों को .खूब जानता है। और तुम ज़ाहिरी गुनाह को भी छोड़ दो और बातिनी गुनाह को भी छोड़ दो, बिला शुबह जो गुनाह कर रहे हैं उनको उनके बुरे काम किये की सज़ा जल्द मिलेगी।
(6:119-120)

इनमें से पहली आयत खानपान के नियमों से सम्बंधित है, ख़ास तौर से यह बताने के लिए कि किसी जानवर को जायज़ तरीक़े से काटने के लिए क्या ज़रूरी है, लेकिन यह आयत एक महत्वपूर्ण क़ानूनी सिद्धांत पर ज़ोर देती है कि इस्लाम में जो कुछ हराम है वह अल्लाह ने स्पष्ट रूप से बता दिया है और उन हराम की हुई चीज़ों के अलावा सब कुछ सैद्धांतिक रूप से हलाल है और इसकी कोई ज़रूरत नहीं है कि उन को नाम लेकर गिनाया जाए जैसा कि मना की गयी चीज़ों को नाम लेकर बताया गया है (देखें ऊपर लिखी आयतें 2:29; 45:113; 5:7 और उन पर व्याख्यात्मक टिप्पणियां, और आयत 7:3; व 16:116)। इसके अलावा ज़रूरत के चलते किसी वर्जित चीज़ की अस्थायी रूप से ईजाज़त होने का सिद्धांत भी है (2:173; 6:145; 16:115)। ये ज़रूरी सिद्धांत इस्लाम की न्यायिक व्यवस्था में बुनियादी महत्व रखते हैं। यदि शरीअत को सही तरह से समझना और पेश करना है और आज का कोई मुस्लिम समाज अगर उसे लागू करने और उसके निहितार्थों को समझने में गम्भीर है तो इन सिद्धांतों के महत्व और इनकी प्राथमिकता को स्वीकार करना होगा।

فَكُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ حَلٰلًا طَيِّبًا ۪ وَّ
اشْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ
تَعْبُدُوْنَ ﴿۱۱۴﴾ اِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَ
الدَّمَ وَ لَحْمَ الْخِنْزِيْرِ وَ مَاۤ اُهِلَّ لِغَيْرِ
اللّٰهِ بِهٖ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّ لَا عَادٍ
فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۱۵﴾ وَ لَا تَقُوْلُوْا لِمَا
تَصِفُ اَلْسِنَتُكُمُ الْكَذِبَ هٰذَا حَلٰلٌ وَّ هٰذَا
حَرَامٌ لِّتَفْتَرُوْا عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ ؕ اِنَّ
الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ لَا

सो जो चीज़ें अल्लाह ने तुमको हलाल और पाक दी हैं उनको खाओ, और अल्लाह की नेमतों का शुक्र करो, अगर तुम उसकी इबादत करते हो। तुम पर तो सिर्फ़ मुर्दार को हराम किया है और .खून को और सूवर के गोश्त को और उस चीज़ को जिसको अल्लाह के सिवा किसी ग़ैर के नाम कर दिया गया हो, फ़िर जो बहुत बेचैन हो, मगर लज्ज़त का .ख्वाहां ना हो और हद से आगे बढ़ने वाला ना हो, अल्लाह बड़ा ही बख़्शने वाला मेहरबानी करने वाला है। और जिन चीज़ों के बारे में तुम्हारा सिर्फ़ ज़बानी झूटा दावा है उनकी निस्बत ये ना कहा करो के ये हलाल है और ये हराम है के अल्लाह पर बोहतान बांधों, बेशक जो लोग अल्लाह पर झूट बांधते

يُفۡلِحُوۡنَ ﴿١١٦﴾ مَتَاعٌ قَلِيۡلٌ ۖ وَّ لَهُمۡ عَذَابٌ اَلِيۡمٌ ﴿١١٧﴾

हैं वो फ़लाह ना पायेंगे। ये बन्द रोज़ा ऐश है, और उनके लिये दर्दनाक अज़ाब है। (16:114-117)

इन आयतों में न केवल खाने पीने के कुछ निश्चित नियम दिए गए हैं बल्कि ज़रूरत के समय ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जाने के सिद्धांत पर भी ज़ोर दिया गया है (देखें पहले वर्णित आयत 2:173 और उसकी व्याख्या), और यह सिद्धांत कि हर चीज़ हलाल है जब तक किसी चीज के बारे में निश्चित रूप से हराम या मना होना साबित न हो (देखें पहले वर्णित आयत 5:187 और उसकी व्याख्या)।

لَاۤ اِكۡرَاهَ فِى الدِّيۡنِ ۖ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشۡدُ مِنَ الۡغَىِّ ۚ فَمَنۡ يَّكۡفُرۡ بِالطَّاغُوۡتِ وَ يُؤۡمِنۡۢ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسۡتَمۡسَكَ بِالۡعُرۡوَةِ الۡوُثۡقٰى ۚ لَا انْفِصَامَ لَهَا ؕ وَ اللّٰهُ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ﴿٢٥٦﴾

इस्लाम में कोई जब्र और क़हर नहीं। हिदायत साफ़ और ज़ाहिर है और गुमराही से अगल थलग है, तो जो बूतों को मानता ही नहीं और अल्लाह ही पर पूरा यक़ीन रखता है तो उसने ऐसी मज़बूत रस्सी हाथ में पकड़ ली है जो कभी भी टूटने वाली नहीं है। और अल्लाह तो है ही सब कुछ जानने वाला और सुनने वाला। (2:256)

इंसान की मजबूरी को एक ठोस ज़रूरत की तरह देखा जा सकता है क्योंकि दोनों ही स्थितियों में इंसान ख़ुद अपनी इच्छा अनुसार मामला निपटाने के लिए आज़ाद नहीं होता। इसलिए ऐसे मामलों में व्यक्ति के लिए न तो इनाम है और न सज़ा। जहां क़ुरआन ईमान के मामले में मजबूर किए जाने से रोकता है (10:99; 11:28; 16:106) तो वहीं इस सिद्धांत को वह अति महत्वपूर्ण मामले में पेश करता है ताकि उसे ज़ोर ज़बरदस्ती के सभी मामलों पर लागू किया जा सके, उन मामलों में भी जिनके नतीजे ज़्यादा गम्भीर न हों। ईमान के मामले में ज़बरदस्ती बिल्कुल बे-मतलब है क्योंकि अल्लाह तआला इंसानों के मामलों का फ़ैसला उनकी नियत और आज़ाद मर्ज़ी के अनुसार करेंगे, और वह वास्तविक भावनाओं व विचारों को जानते हैं। इंसानी ज़हन सही और ग़लत में अन्तर करने की योग्यता रखता है, और अल्लाह का दीन इस इंसानी ज़हन को अपनी सच्चाई साबित करने के लिए पर्याप्त सुबूत पेश करता है।

क़ुरआन के अनुसार इंसानी ज़हन ईमान और अक़ीदे सहित सभी मामलों को समझने व जांचने की क्षमता रखता है, और ज़हन जिस चीज़ को स्वीकार न करे उसके लिए कोई ज़बरदस्ती करने से कुछ नहीं मिलेगा। इंसान को अपने आप ही अपने दिल व दिमाग़ को किसी भी तरह के उस दबाव व बहलावे से मुक्त रखना है जो उसे ख़ुद अपना फ़ैसला लेने और अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करने से रोके रखने का कारण हो। जब कोई इंसान स्वयं अपनी आज़ादी और

प्रितिष्ठा को सुरक्षित रखता है तो वह इंसानी शक्ति व ऊर्जा के साधनों पर अपना पूरा नियंत्रण रखता है चाहे यह शरीरिक शक्ति व ऊर्जा हो या बौद्धिक अथवा आत्मिक, मानसिक और नैतिक, और इस तरह इंसान जीवन की परिस्थितियों में आने वाले विभिन्न बदलावों का सामना संतुलन और सामंजस्य के साथ करता है, और यह इंसान के लिए ऐसा मज़बूत सहारा है जो कभी टूटने वाला नहीं।

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ۭ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَ عَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۭ رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تَحْمِلْ عَلَيْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَي الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ وَاعْفُ عَنَّا ۪ وَاغْفِرْ لَنَا ۪ وَارْحَمْنَا ۪ اَنْتَ مَوْلٰىنَا فَانْصُرْنَا عَلَي الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ٢٨٦

अल्लाह किसी को तकलीफ़ नहीं देता मगर जितना उसकी ताक़त में है। उसको सवाब भी उसी का मिलेगा जो इरादा से किया। और उस पर अज़ाब भी उसी का होगा जो इरादा से किया। ऐ हमारे रब! हम पर दारोगीर ना फ़रमा, अगर हम भूल जायें। या चूक जायें, ऐ हमारे रब! और हम पर कोई सख़्त हुक्म न भेज, जैसे हम से पहले लोगों पर आप ने भेजा था। ऐ हमारे रब! और हम पर ऐसा बार (दुनिया या आख़िरत में) ना डाल, जो हम बर्दाश्त ना कर सकें। हम से दरगुज़र फ़रमा, और हम को बख़्श दे। हम पर रहम फ़रमा, आप हमारे कारसाज़ हैं और हमें काफ़िरों पर ग़ल्बा और नुसरत अता फ़रमा। (2:286)

इस बात को बयान करने के बाद कि इंसान और उसकी आज़ाद मर्ज़ी पर किसी भी तरह के दबाव से उस इंसान की क़ानूनी ज़िम्मेदारी कम या समाप्त हो जाती है और उन दबावों के नतीजे बेकार हो जाते हैं, क़ुरआन आगे और एक आम सिद्धांत पेश करता है कि व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी इंसान की अपनी क्षमताओं की सीमा में ही है चाहे यह शरीरिक क्षमता हो या नैतिक, व्यक्तिगत अथवा सामाजिक। इसी तरह, चूंकि कोई व्यक्ति दबाव में जो कुछ करता है तो उसके लिए वह ज़िम्मेदार नहीं होता, लिहाज़ा किसी से कोई भूल चूक हो जाए और अनचाहे कोई ख़ता हो जाए तो उसकी जवाबदेही भी उस पर नहीं होगी। अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की एक हदीस में इच्छा व इरादे की आज़ादी को प्रभावित करने वाले उन तत्वों का ज़िक्र उन कारकों के रूप में किया गया है जो व्यक्ति की जिम्मेदारी ख़त्म कर देते हैःदबाव, भूलचूक और अनचाहे ख़ता (तिबरानी की रिवायत से अलकबीर, इब्ने हंबल और इब्ने माजा ने नक़ल की है)। एक अन्य हदीस में कहा गया है कि किसी व्यक्ति के कर्मों का फ़ैसला उसकी इच्छा और नियत के अनुसार ही होगा (बुख़ारी व मुस्लिम)। इस तरह हर व्यक्ति को वही मिलेगा जो उसने कमाया। कोई व्यक्ति किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा

(6:164; 17:15; 35:18; 39:7; 53:38)।

अल्लाह का न्याय मूल रूप से इंसानी स्वभाव और व्यक्तिगत योग्यता के अनुसार है, और इंसाफ़ का पहला निशाना केवल सज़ा देना नहीं है। पिछले ज़मानों में अल्लाह ने कुछ ना-फ़रमान लोगों को उनके ऊपर कुछ अतिरिक्त ज़िम्मेदारियों का बोझ डाल कर सज़ा दी थी (4:16-161; 6:146; 16:118), इसी लिए ईमान वाले अल्लाह से यह दुअ० करते हैं कि हम पर वो भार न डालना जो पहले के लोगों पर डाले गए थे। मुहम्मद सल्ल० की शरीअत में जो कुछ जायज़ है वह अपने आप में तैयब (अच्छा) है और जो कुछ मना है वह अपने आप में एक बुरी चीज़ा या बुरा काम है, और इसलिए यह शरीअत लोगों पर से वो भार उतारती है जो उन पर लदे हुए थे (7:157)। इस तरह अल्लाह ईमान वालों की इस दुआ का जवाब देते हैं कि "ऐ अल्लाह हम पर ऐसा बोझ न डालना जैसा आपने हम से पहले के लोगों पर डाला था"(2:286)। यह इस्लामी क़ानून में एक बुनियादी बात है कि इंसानों पर वो बोझ या भार नहीं डाला जाएगा जिन्हें उठाने की उनके अन्दर क्षमता नहीं, क्योंकि अल्लाह किसी व्यक्ति को उसकी क्षमता से अधिक कष्ट नहीं देते, और "अल्लाह तुम पर किसी तरह की तंगी नहीं करना चाहते बल्कि यह चाहते हैं तुम्हें पाक करें और अपने नेअमतें तुम्हारे ऊपर पूरी कर दें ताकि तुम आभार व्यक्त करो" (5:6)।

مَنْ كَفَرَ بِاللّٰهِ مِنْۢ بَعْدِ اِيْمَانِهٖٓ اِلَّا مَنْ اُكْرِهَ وَ قَلْبُهٗ مُطْمَىِٕنٌّۢ بِالْاِيْمَانِ وَ لٰكِنْ مَّنْ شَرَحَ بِالْكُفْرِ صَدْرًا فَعَلَيْهِمْ غَضَبٌ مِّنَ اللّٰهِ ۚ وَ لَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١٠٦﴾

जो ईमान लाने के बाद भी अल्लाह से कुफ़्र करे मगर जिस पर ज़बरदस्ती की जाये बशर्त ये के उसका दिल ईमान पर मुतमईन हो लेकिन जो दिल खोल कर कुफ़्र करे तो ऐसे लोगों पर अल्लाह का ग़ज़ब होगा, और उनके लिये (बहुत) बड़ा अज़ाब होगा। (16:106)

ऐसे किसी काम के लिए जिस पर किसी को मजबूर किया गया हो उस व्यक्ति को ज़िम्मेदारी से बरी करने का ज़िक्र पहले बयान हो चुकी आयतों (2:256,286) और उनकी व्याख्या में हो चुका है। ऊपर की आयत में ऐसे व्यक्ति की निन्दा की गयी है जो जानबूझ कर अपने इरादे से अपना या दूसरों का दिल सच्चाई को जानने के बाद उसके इंकार के लिए खोलता है। जो लोग किसी पाप के लिए मजबूर किए गए हों और ज़ोर ज़बरदस्ती का मुक़ाबला वो न कर सकें उन्हें उनकी परिस्थितियों के अनुसार पूरी तरह या आंशिक रूप से मजबूर समझा जाएगा, लेकिन उसके लिए वास्तविक दोषी वो लोग होंगे जो दूसरों को सच्चाई से विमुख हो जाने के लिए मजबूर करें या उक्साएं, हालांकि वो और उनकी चाल में आने वाले लोग यह जानते हैं

कि यह ही सही रास्ता है और समझदार लोगों को उसी पर चलना चाहिए।

जनजागरण ज़रूरी है

وَ مَنۡ یُّشَاقِقِ الرَّسُوۡلَ مِنۡۢ بَعۡدِ مَا تَبَیَّنَ لَہُ الۡہُدٰی وَ یَتَّبِعۡ غَیۡرَ سَبِیۡلِ الۡمُؤۡمِنِیۡنَ نُوَلِّہٖ مَا تَوَلّٰی وَ نُصۡلِہٖ جَہَنَّمَ ؕ وَ سَآءَتۡ مَصِیۡرًا ﴿۱۱۵﴾

और जो रसूल की मुखालिफ़त करेगा जबकि उस पर अम्रे हक़ ज़ाहिर हो चुका था, और मुसलमानों का रास्ता छोड़ कर दूसरे रास्ते पर हो लिया तो हम भी उसको वो ही करने देंगे जो कुछ वो करता है, और हम उसको जहन्नुम में दाख़िल करेंगे और वो जगह जाने के लिए बहुत बुरी है। (4:115)

यह आयत न्याय के एक महत्वपूर्ण सिद्धांत को रेखांकित करती है:व्यक्ति की नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी तब शुरू होती है ''जब हिदायत (सदमार्ग) उसके सामने खुल कर आ जाए''। किसी पर अल्लाह की हिदायत और क़ानून के उल्लंघन का दोष आरोपित करने से पहले अल्लाह की हिदायत और क़ानूनों को जनता के सामने स्पष्ट रूप से लाना ज़रूरी है। क़ानूनी प्रक्रिया पर जनजागृति और शिक्षा को प्राथमिकता देना चाहिए, हालांकि यह क़ानूनी प्रक्रिया भी ज़रूरी है ताकि जनता की जानकारी में आने वाले किसी नियम के उल्लंघन को रोका जा सके। इस तरह अल्लाह के पैग़म्बर द्वारा आने वाले अल्लाह के संदेश से विचलित होना लोगों के ऐसे कर्मों और व्यवहार से साबित होगा जो मोमिनों के बर्ताव और व्यवहार से अलग या उसके विपरीत हों। अल्लाह की हिदायत जो बिना किसी भ्रम के खुल कर सामने आ जाए और फिर लोगों की एक बड़ी संख्या उसका अनुसरण करे उससे किसी का विमुख रहना एक विपरीत व्यवहार को ज़ाहिर करता है। इस तरह जो कोई भी अल्लाह की हिदायत और सामाजिक व्यवस्था से ऐसा खुला मुंह मोड़े वह अपने इस व्यवहार के लिए नैतिक और क़ानूनी रूप से ज़िम्मेदार ठहराए जाने का पात्र है। इस तरह की बुनियादी शर्तें विभिन्न स्तरों और स्थितियों में अपराध की गम्भीरता और स्वरूप के अन्तर के लिहाज़ से लागू होती हैं। कुछ उल्लंघन ऐसे होते हैं जिनके लिए विस्तार से और बार बार जनता को बताना ज़रूरी नहीं होता कि वो इतने गम्भीर नहीं होते और हल्की फुल्की सज़ा के ही होते हैं जैसे गलियों व रास्तों को गन्दा करना। फिर भी जनता को अपराधों और उनकी सज़ाओं के बारे में मौलिक जानकारियां देना और शिक्षित करना चाहिए। जब कोई नया क़ानून बने तो उसके लागू करने से पहले उसकी जानकारी सार्वजनिक करना ज़रूरी है।

दुर्भावना, कटुता और पक्षपात से मुक्त रहना

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ بِالْقِسْطِ شُهَدَآءَ لِلّٰهِ وَ لَوْ عَلٰٓى اَنْفُسِكُمْ اَوِ الْوَالِدَيْنِ وَ الْاَقْرَبِيْنَ ۚ اِنْ يَّكُنْ غَنِيًّا اَوْ فَقِيْرًا فَاللّٰهُ اَوْلٰى بِهِمَا ۫ فَلَا تَتَّبِعُوا الْهَوٰٓى اَنْ تَعْدِلُوْا ۚ وَ اِنْ تَلْوٗٓا اَوْ تُعْرِضُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿١٣٥﴾

मोमिनों! तुम इन्साफ़ पर क़ायम रहने वाले बने रहो, अल्लाह के लिए गवाही देने वाले रहो, .ख्वाह अपनी ही ज़ात पर हो या वालदैन और रिश्तेदार के मुक़ाबले में हो, अगर अमीर है या ग़रीब है तो अल्लाह तो दोनों ही से .ज्यादा मुताल्लिक़ है, सो तुम अपनी .ख्वाहीशात का इत्तेबा ना करो ऐसा ना हो तुम हक़ ही से हट जाओ, और अगर तुम कज बयानी करोगे या पहलू तही करोगे तो बिला शुबह अल्लाह तुम्हारे आमाल की पूरी पूरी .खबर रखता है। (4:135)

न्याय और न्यायप्रियता को एक सामाजिक नैतिक मर्यादा बनाया जाना ज़रूरी है। इसे केवल नियमों और उन्हें लागू करने वाले अधिकारियों की बदौलत ही स्थापित नहीं किया जा सकता। न्याय की भावना परिवारों, स्कूलों, आस पड़ोस, समुदायों, क़ौमों और संचार माध्यमों के द्वारा पैदा की जानी चाहिए ताकि हर व्यक्ति न्याय की स्थापना और अन्याय के विरोध प्रतिरोध के लिए एक सक्रिय कार्यकर्ता बन जाए। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति यदि अपने (या अपनी) जीवन साथी के साथ, बच्चे के साथ, छात्र के साथ, साझीदार के साथ या पड़ोसी के साथ अन्याय करता है तो उससे यह अपेक्षा कैसे की जा सकती है कि वह देश में एक नागरिक या किसी सरकारी अधिकारी के रूप में न्याय से काम लेगा या न्याय का पक्षधर बनेगा। न्याय और सच का साथ देना आदमी की निजी भावना बनना चाहिए तभी यह समाज में न्याय स्थापित करने में सहायक होगा। मोमिन अपने व्यवहार और बर्ताव में न्याय का रवैया अपनाता है, वह इस बात का सुबूत देता है कि उसके अन्दर अल्लाह का तक़वा (ईशभय) है, और अल्लाह के लिए वह सच की गवाही के लिए खड़ा होता है, क्योंकि मोमिन की यह भावना होती है कि अल्लाह उसे देख रहे हैं और वह समझता है कि अल्लाह के सामने तमाम इंसानों को अपनी जवाबदेही के लिए पेश होना है। किसी मालदार आदमी से उसके माल की वजह से कोई बैर नहीं रखना चाहिए न किसी ग़रीब आदमी के प्रति या उसके विरुध उसकी कमज़ोरी और ग़रीबी की वजह से कोई पूर्वाग्रह रखना चाहिए। अल्लाह तआला की नैतिक और क़ानूनी हिदायत में अल्लाह के इंसाफ़ की जो बात कही गयी वह तमाम लोगों के लिए है और उनकी हर स्थिति के लिए है। जब व्यक्तियों की शिक्षा और प्रशिक्षण इस तरह से किया जाएगा तो पूरा समाज और उसके अधिकारी व शासक प्रशासक, पुलिस कर्मी, वकील और जज वग़ैरह सब

अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में न्याय को महत्व देंगे और उन्हें ऐसा करना सरल महसूस होगा क्योंकि न्याय और सत्य को अपनाने की भावना पूरे समाज पर छाई हुई होगी, और जिन लोगों को न्याय और क़ानून को लागू करने की ज़िम्मेदारी दी गयी होगी वो अगर न्याय से हटेंगे तो उनका यह भृष्ट आचरण साफ़ तौर से अलग ही दिखाई देगा जिसकी वजह से उनकी प्रतिष्ठा और भरोसा निश्चित रूप से कम हो जाएगा।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُحِلُّوْا شَعَآئِرَ اللّٰهِ وَ لَا الشَّهْرَ الْحَرَامَ وَ لَا الْهَدْیَ وَ لَا الْقَلَآئِدَ وَ لَآ آٰمِّيْنَ الْبَيْتَ الْحَرَامَ يَبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ رِضْوَانًا ؕ وَ اِذَا حَلَلْتُمْ فَاصْطَادُوْا ؕ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ اَنْ صَدُّوْكُمْ عَنِ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اَنْ تَعْتَدُوْا ۘ وَ تَعَاوَنُوْا عَلَى الْبِرِّ وَ التَّقْوٰی ۪ وَ لَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَ الْعُدْوَانِ ۪ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝

मोमिनों! तुम अल्लाह की निशानियों की बे हुर्मती ना किया करो, ना हुर्मत वाले महीने की, ना हरम में क़ुर्बानी होने वाले जानवरों की, और ना उन जानवरों की जिन के गले में पटटे पड़े हुए हों, और उन लोगों की जो बैतुलहराम के क़स्द से जा रहे हों, और अपने रब के फ़ज्लो रज़ा के तालिब हों, और जब तुम एहराम से बाहर आ जाओ तो शिकार कर लो, और ऐसा ना होना चाहिए के तुम को किसी क़ौम से बुग्ज़ हो इस वजह से के उन्होंने तुम को मस्जिदे हराम से रोका था वो तुम्हारे लिए इसका बाअस बने के तुम हद से आगे निकल जाओ, और नेकी और तक़वे में एक दूसरे की मदद किया करो, और गुनाह और .ज्यादती में एक दूसरे की मदद ना किया करो, और गुनाह और .ज्यादती में एक दूसरे की मदद ना किया करो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह बड़ी सख़्त सज़ा देने वाला है। (5:2)

पैग़म्बर हज़रत इब्राहीम और उनके बेटे पैग़म्बर हज़रत इस्माईल ने मक्का में अल्लाह का जो पवित्र घर काबा बनाया था उसका हज (दर्शन व परिक्रमा का वार्षिक आयोजन) मोमिनों के लिए एक ख़ास समय कुछ ख़ास इबादतों के ज़रिए शान्ति व संतोष और आत्मनियंत्रण के प्रशिक्षण की एक प्रक्रिया है:“और जो व्यक्ति इन महीनों में हज की नियत कर ले तो हज (के दिनों) में न तो यौन इच्छा पर ध्यान दे, न कोई बुरी बात करे, न किसी से झगड़ा करे, और जो नेक काम तुम करोगे वह अल्लाह की जानकारी में होगा। और हज यात्रा में रस्ते का सामान साथ मे रखा करो, और सबसे अच्छा रस्ते का सामान तक़वा (अल्लाह से डरते रहने की भावना) है, लिहाज़ा ऐ अक़ल वालो मेरा डर रखो”(2:197)। यहां तक कि हज के दौरान खाने

के लिए शिकार करना भी मना है क्योंकि इस दौरान हज करने वाले इंसान से तक़ाज़ा यह है कि वह अपने आप में शान्तिपूर्ण रहे और हर तरह की हिंसा से बचे और सभी जीवों के साथ शान्ति का माहौल बनाए रखे। शान्ति के इस प्रशिक्षण की सभी अभ्यासों (हज की क्रियाओं) का लिहाज़ हर हाजी को करना होता है और इस दौरान कोई किसी से झगड़ा और तकरार नहीं कर सकता। लेकिन इस शान्तिपूर्ण माहौल के उल्लंघन को कभी भी किसी आक्रामकता या हमेशा की दुशमनी के लिए आधार नहीं बना लेना चाहिए क्योंकि दो ग़लतियां मिल कर ठीक नहीं हो जातीं, इस तरह की कोई भी उल्लंघन वाली हरकत जब रुक जाए तो इंसानी सम्बंधों को पहले जैसा सामान्य हो जाना चाहिए और विश्व व्यापी बन्धुत्व का रिशता बने रहना चाहिए। न्याय तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक इंसान को स्वयं पर नियंत्रण रखने का प्रशिक्षण न दिया जाएगा, और वक़्ती बात या क्षणिक उत्तेजना को हमेशा के लिए ग़ज़बनाक व्यवहार में बदलने से रोका नहीं जाएगा। मुसलमानों को हर हालत में और सभी लोगों के साथ कड़ाई से न्याय पर जमे रहने की जो शिक्षा दी गयी है, उन लोगों के साथ भी न्याय की सीख जो उन्हें अल्लाह के घर के दर्शन और वहां जा कर इबादत करने से रोकते हैं और एक मौलिक कर्म को पूरा करने से वंचित रखना चाहते हैं। उन्हें जीव भर अपने सम्बंध ाों में इस शिक्षा को बरतना चाहिए और हमेशा शान्ति व न्याय की रक्षा के लिए उन्हें खड़े होना चाहिए। मुसलमानों के सौहार्द व सद्भावना को उनके ख़िलाफ़ और अधिक हिंसा व लड़ाई के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, बल्कि उसके बजाए मुसलमानों की इस शान्तिप्रियता और सौहार्द की भावना से आपसी सहयोग को बढ़ावा मिलना चाहिए ताकि अल्लाह के तक़्वा से जो नेकी और सच्चाई पैदा होती है और बनी रहती है उसमें और वृ‌ि हो और उसकी बरकत से सब को फ़ायदा मिले। जैसा कि पहले कहा गया है शान्ति व न्याय व्यक्तियों के दिल व दिमाग़ की गहराई में उतरा हुआ होना चाहिए, ताकि वह उनके व्यवहार में दिखे और जिन लोगों को देश के अन्दर तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में न्याय को स्थापित करने की ज़िम्मेदारी दी जाए उनके बर्ताव में यह न्याय रचा हुआ हो।

إِنَّآ أَنزَلْنَآ إِلَيْكَ ٱلْكِتَٰبَ بِٱلْحَقِّ لِتَحْكُمَ
بَيْنَ ٱلنَّاسِ بِمَآ أَرَىٰكَ ٱللَّهُ ۚ وَلَا تَكُن
لِّلْخَآئِنِينَ خَصِيمًا ﴿١٠٥﴾ وَٱسْتَغْفِرِ ٱللَّهَ ۖ إِنَّ
ٱللَّهَ كَانَ غَفُورًا رَّحِيمًا ﴿١٠٦﴾ وَلَا تُجَٰدِلْ عَنِ
ٱلَّذِينَ يَخْتَانُونَ أَنفُسَهُمْ ۚ إِنَّ ٱللَّهَ لَا
يُحِبُّ مَن كَانَ خَوَّانًا أَثِيمًا ﴿١٠٧﴾ يَسْتَخْفُونَ

बेशक हमने आपके पास ये नविश्ता भेजा है वाक़े के मवाफ़िक़ ताके आप उन लोगों के दरमियान इसके मवाफ़िक़ फ़ैसला करें जो के अल्लाह ने आपको बता दिया है, और आप उन ख़्यानत करने वालों की तरफ़दारी की बात ना कीजिये। और आप मग़फ़िरत तलब करें, बिला शुबह अल्लाह मग़फ़िरत करने वाला है बड़ा रहम वाला है। और आप उन की तरफ़ से कोई जवाब देही ना किया करें जो अपनी ही ज़ात से ख़्यानत करते हैं,

مِنَ النَّاسِ وَلَا يَسْتَخْفُوْنَ مِنَ اللّٰهِ وَهُوَ
مَعَهُمْ اِذْ يُبَيِّتُوْنَ مَا لَا يَرْضٰى مِنَ
الْقَوْلِ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ بِمَا يَعْمَلُوْنَ مُحِيْطًا ﴿۱۰۸﴾
هٰۤاَنْتُمْ هٰۤؤُلَآءِ جٰدَلْتُمْ عَنْهُمْ فِى الْحَيٰوةِ
الدُّنْيَا ۟ فَمَنْ يُّجَادِلُ اللّٰهَ عَنْهُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ اَمْ مَّنْ يَّكُوْنُ عَلَيْهِمْ وَكِيْلًا ﴿۱۰۹﴾ وَ
مَنْ يَّعْمَلْ سُوْٓءًا اَوْ يَظْلِمْ نَفْسَهٗ ثُمَّ
يَسْتَغْفِرِ اللّٰهَ يَجِدِ اللّٰهَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿۱۱۰﴾ وَ
مَنْ يَّكْسِبْ اِثْمًا فَاِنَّمَا يَكْسِبُهٗ عَلٰى
نَفْسِهٖ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿۱۱۱﴾ وَمَنْ
يَّكْسِبْ خَطِيْٓئَةً اَوْ اِثْمًا ثُمَّ يَرْمِ بِهٖ
بَرِيْٓئًا فَقَدِ احْتَمَلَ بُهْتَانًا وَّ اِثْمًا
مُّبِيْنًا ﴿۱۱۲﴾ وَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ وَ
رَحْمَتُهٗ لَهَمَّتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ اَنْ
يُّضِلُّوْكَ ؕ وَمَا يُضِلُّوْنَ اِلَّاۤ اَنْفُسَهُمْ وَمَا
يَضُرُّوْنَكَ مِنْ شَیْءٍ ؕ وَاَنْزَلَ اللّٰهُ عَلَيْكَ
الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَكَ مَا لَمْ تَكُنْ
تَعْلَمُ ؕ وَكَانَ فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكَ عَظِيْمًا ﴿۱۱۳﴾
لَا خَيْرَ فِىْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰىهُمْ اِلَّا مَنْ
اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍۭ
بَيْنَ النَّاسِ ؕ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ ابْتِغَآءَ
مَرْضَاتِ اللّٰهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا
عَظِيْمًا ﴿۱۱۴﴾

बिला शुबह अल्लाह उसको क़तई पसंद नहीं फ़रमाता जो बड़ा ख़्यानत करने वाला बड़ा गुनाह करने वाला हो। जो लोग आदमियों से डर कर अपने गुनाह छुपाते हैं लेकिन अल्लाह से नहीं शर्माते हालांके वो उस वक़्त उनके पास होता है, जब वो मर्ज़ी-ए-इलाही के ख़िलाफ़ गुफ़्तगू के मुताल्लिक़ तदबीरें करते हैं, और अल्लाह उनके सारे आमाल अपने आहाते में पूरे तौर पर लिये हुए है। हां तुम ऐसे हो के तुमने दुनियावी ज़िन्दगी में तो उनकी तरफ़ से जवाबदेही की बातें कर लीं सो अल्लाह के सामने क़यामत के दिन उनकी तरफ़ से कौन जवाबदेही करेगा या वो कौन होगा जो उनके काम बनाए। और जो कोई बुराई करे या अपने ऊपर ज़ुल्म करे फिर वो अल्लाह से माफ़ी चाहे तो वो अल्लाह को बड़ी मग़फ़िरत वाला और बड़ी रहमत वाला पाएगा। और जो कोई गुनाह का काम करता है तो वो बस उसकी ही ज़ात पर उसका असर पहुंचता है, और अल्लाह बड़ा ही जानने वाला और बड़ी हिकमतों वाला है। और जो कोई छोटा गुनाह करे या बड़ा गुनाह और फ़िर उसकी तोहमत किसी बेगुनाह पर लगा दे सो उसने बड़ा भारी बोहतान और सरीह गुनाह अपने ऊपर लादा। और अगर आप पर अल्लाह का फज्ल और रहमत ना हो तो उन लोगों में से एक गिरोह ने तो आप को ग़लती में डाल देने का इरादा कर लिया था और वो ग़लती में नहीं डास सकते मगर सिर्फ़ अपनी जानों को और आपको वो ज़र्रा भर नुक़सान नहीं पहुंचा सकते, और अल्लाह ने आप पर किताब और इल्म की बातें नाज़िल फ़रमाई हैं और आपको वो बातें बतलाई हैं, जो आप ना जानते थे, और आप पर अल्लाह का बड़ा फ़ज़्ल है। आम लोगों की अक्सर सरगोशियों में ख़ैर नहीं होती, मगर जो ख़ैरात की, किसी नेक काम की या लोगों में बाहम इस्लाम की तरग़ीब देता है, और जो ये काम करेगा महज़ अल्लाह

की रज़ा के लिये सो हम बहुत जल्द उसको उन कामों
का बड़ा सिल अता फ़रमायेंगे। (4:105-114)

(ये पैग़म्बर मुहम्मद साहब सल्ल० को सम्बोधित करके कही गयी ऐसी असरदार आयतें हैं जिनमें इंसाफ़ के साथ फैसले करने का निर्देश दिया गया है और आप से यह कहा गया है कि आप उन लोगों के बचाव में कभी न आएं जो बे ईमान हैं और अपने दोषों का आरोप दूसरे निर्दोषों पर थोपने की कोशिश करते हैं। अल्लाह के पैग़म्बर एक इंसान थे और आप से फ़ैसला कराते हुए कुछ भृष्ट लोग अपने झूट और फ़रेब से आप को धोखा देने में सफल हो सकते थे, क्योंकि आप को अपने विवेक से फ़ैसला करना होता था और आप बयानों की विवेचना के बाद फ़ैसला लेते थे। एक हदीस में पैग़म्बर साहब ने बहुत साफ़ तौर से इस सच्चाई को बयान किया है और मुक़दमें लाने वालों पर ज़ोर दिया है कि अपने मुक़दमे मेरे सामने पेश करते समय अल्लाह से डरा करें और सच्ची बात बताया करें क्योंकि उनमें से कुछ लोग ज़्यादा बतौलबाज़ हो सकते हैं और उनकी ग़लत बयानी की वजह से फ़ैसला ग़लत तौर पर उनके पक्ष में हो सकता है। लेकिन अगर कोई ऐसा करेगा तो उसे आख़िरत में इसकी सज़ा मिलेगी, जबकि फ़ैसला करने वाले को दोषी नहीं माना जाएगा अगर फ़ैसला करने वाले ने मुक़दमे को समझने में अपनी पूरी कोशिश की होगी और अपनी समझ से न्यायपूर्ण फ़ैसला दिया होगा (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, नसई और इब्ने माजा)।

इब्ने इस्हाक़ और इब्ने कसीर के अनुसार उपरोक्त आयतें चोरी की एक घटना के बाद उतरी थीं, जब एक चोर ने यह समझ कर कि किसी ने उसको चोरी करते हुए देख लिया है, चुराई हुई ढाल किसी दूसरे व्यक्ति के घर में फैंक दी थी। फिर उसने अपने क़बीले में जा कर यह कहा कि उसके ऊपर चोरी का आरोप ग़लत है, उसने चोरी नहीं की है और चुराई गयी ढाल एक दूसरे आदमी के घर से बरामद हुई है। उसने पैग़म्बर साहब से यह भी अनुरोध किया कि उसके निर्दोष होने की घोषणा कर दें, हालांकि एक गवाह ने उसे चोरी करते हुए देखा था। पैग़म्बर साहब ने ऐसे ठोस साक्ष्यों के आधार पर जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती थी उसके निर्दोष होने का फ़रमान सुना दिया। ऊपर की दस आयतें रिक०र्ड को ठीक करने के लिए और इस साज़िश को बे-नक़ाब करने के लिए उतरीं जो सच्चाई को छुपाने और एक निर्दोष पर आरोप मढ़ने के लिए रची गयी थी और जिसके नतीजे में असिल दोषी ग़लती से बरी हो गया था। यह निर्दोष आदमी कौन साहब थे इस बारे में अलग अलग रिवायतें हैं, एक रिवायत में उनके यहूदी होने का ज़िक्र है, जबकि दोषी और उसके साथ सच्चाई को छुपाने की कोशिश करने वाले उसके क़बीले के लोग मुसलमान थे (तफ़सीर इब्ने कसीर, आयत 4:105-114)।

इंसाफ़ किसी के पक्ष में और किसी के ख़िलाफ़ होता है चाहे व्यक्ति हो, क़बीला हो, नस्ल, लिंग, वर्ग, समुदाय, सम्प्रदाय हो, कोई अपना हो या पराया हो। एक मशहूर हदीस है जिसमें पैग़म्बर साहब ने फ़रमाया कि न्याय में पक्षपात करने से समाज तबाह हो जाता है, अगर मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा भी चोरी करेगी तो उसका भी हाथ काटा जाएगा (वह सज़ा मिलेगी जो क़ुरआन में बताई गयी है) (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, नसई और इब्ने माजा)। जज का काम मुक़दमे को ठीक से समझने की कोशिश करना और सत्य व न्याय के साथ फ़ैसला करना है। तथ्यों को छुपाने और सुबूतों को मिटाने की किसी भी साज़िश की ज़िम्मेदारी जज पर नहीं आती है। बल्कि धोखा देने वाला ख़ुद अपने आप को नुक़सान पहुंचाता है और इस दुनिया में उसका मानसिक और नैतिक नुक़सान होता है और आख़िरत में तो वह पूरी तरह और सदा सदैव के लिए घाटे में होगा "लेकिन जो व्यक्ति कोई दोष या पाप तो ख़ुद करे लेकिन उसका आरोप किसी निर्दोष पर लगाए तो उसने बोहतान और खुले गुनाह का बोझ अपने सर पर रखा" (4:112-113)।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُوْنُوْا قَوّٰمِيْنَ لِلّٰهِ شُهَدَآءَ بِالْقِسْطِ ۡ وَلَا يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ عَلٰٓى اَلَّا تَعْدِلُوْا ؕ اِعْدِلُوْا ۟ هُوَ اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ۡ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا تَعْمَلُوْنَ ۝

मोमिनों! तुम अल्लाह के लिए पूरी पाबंदी से इन्साफ़ पर क़ायम रहने वाले गवाह रहो, और किसी .ख़ास क़ौम से अदावत तुमको इन्साफ़ से ना रोक दे, इन्साफ़ तो किया ही करो, क्योंकि ये इन्साफ़ तक़वा से बहुत क़रीब है, अल्लाह ही से डरा करो, बिला शुबह अल्लाह तुम्हारे सब आमाल से बा.ख़बर है। (5:8)

जैसा कि 4:135 में इससे पहले निर्देश दिया जा चुका है, न्याय की गवाही देने वाले को अपनी कुल निजी भावनाओं और इच्छाओं से ऊपर उठ कर सत्य की गवाही देना चाहिए। पिछली आयत में न्याय के लिए अपनी जान की और अपने परिवार की मुहब्बत को भी त्याग देने को कहा गया था, और इस आयत में ऐसी दुशमनी के मामलों का हवाला दिया गया है जिसके चलते अल्लाह का तक़वा रखने वाले इंसान को न्याय का साथ नहीं छोड़ना चाहिए, उसे हर हाल में अल्लाह से डरना चाहिए और अल्लाह के लिए न्याय की और सत्य की गवाही देने हर हाल में खड़ा होना चाहिए। न्याय पर जमना और न्याय की बात कहना अल्लाह के तक़वा से जुड़ी बात है जो कि मोमिन के ईमान का मूल तत्व है। इसी सूरत की एक पिछली आयत (5:2) में इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि ऐसे लोगों की दुशमनी जो मोमिनों को पवित्र काबा के दर्शन और वहां इबादत करने से रोकें, मोमिनों को अन्याय पर न उभारे। अगर ऐसे गम्भीर मामले में यह आदेश है तो इससे कम दर्जे के मामले में क्या हुक्म होगा! अल्लाह जो कि इंसाफ़

का हुक्म देते हैं, उनका तक़वा किसी भी दोस्ती और दुशमनी से ऊपर होना चाहिए, क्योंकि ''अल्लाह तआला हर उस बात से बाख़बर हैं जो कुछ तुम करते हो''। इस तरह ईमान, नैतिकता और वफ़ादारी एक साथ चलते हैं, और एक दूसरे को सहारा देते हैं।

दिक़्क़तों और कठिनाइयों से बचना और उनको दूर करना

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُ بِالْعَدْلِ وَ الْاِحْسَانِ وَ اِيْتَآئِ ذِى الْقُرْبٰى وَ يَنْهٰى عَنِ الْفَحْشَآءِ وَ الْمُنْكَرِ وَ الْبَغْىِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ۝٩٠

बिला शुबह अल्लाह तआला इन्साफ़ (1), नेकी (2), अपने क़रीबी रिश्तेदारों को देने का हुक्म देता है, और बेहयाई, बड़े गुनाहों, और सरकशी के काम से रोकता है, अल्लाह तुम को नसीहत करता है, इसलिये के तुम नसीहत क़ुबूल करो। (16:90)

यह और एक और आयत है जिसमें इस्लामी शरीअत के मक़सद और उसकी बुनियादी धारणाओं को समेट दिया गया है। अल्लाह के आदेशों को इन तीन धारणाओं में समझा जा सकता है:न्याय की स्थापना, परोपकार, और उन मर्यादाओं को अपने विस्तृत परिवार में बरतना ताकि परिवार को तरक़्क़ी मिले और परिवार वालों का कल्याण हो, और परिवारों के सुधरने व उनके कल्याण से पूरे समाज की प्रगति और कल्याण हो। अद्ल (परम न्याय) एक व्यापक प्रक्रिया है और यह सम्बंधों के सीमित दायरों से शुरू होती है:परिवार के व्यक्तियों के बीच, साथ में काम करने वालों के साथ, कारोबारी पार्टनरों के साथ, पड़ोसियों और मुहल्ले वालों के साथ, इसके बाद राष्ट्रों और सरकारों के बीच और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों व समस्याओं के दायरे तक पहुंचती है। जो व्यक्ति अपने परिजनों के साथ हाकिमों जैसा रवैया अपनाता है वह सरकार और जनता के बीच या विभिन्न देशों और सरकारों के बीच न्याय पर नहीं जम सकता। चूंकि परिवार समाज की बुनियादी यूनिट है इसलिए अद्ल व अहसान, न्याय और प्रेम व हमदर्दी का मामला सबसे पहले परिवार के व्यक्तियों के बीच होना चाहिए, ताकि परिवार और उसके सदस्यों के बीच सम्बंध पूरे समाज के लिए एक उदाहरण बन सकें (25:74), फिर एक समाज से दूसरे समाज और समाजों व क़ौमों के बीच मामलों में यह उदाहरण सामने हों। इसके विपरीत, जो बात नैतिकता व शराफ़त और अक़लमन्दी से हटी हुई हो वह मना है, और इसी तरह एक दूसरे के विरुध ज़ुल्म व ज़्यादती, शोषण, उत्पीड़न या अन्याय करना मना है।

इस्लामी क़ानून (शरीअत) के ये लक्ष्य और बुनियादी धारणाएं न केवल क़ानून के जानकारों और वकीलों के फ़ायदे के लिए लीगल डाक्यूमेण्ट्स या अदालती कारगुज़ारियों में बताए जाना चाहिएं, बल्कि सभी मोमिनों की यह ज़िम्मेदारी है कि वो इन्हें पढ़ा करें, इनका अध्यन करें और

अपने व्यवहार में इन शिक्षाओं को बरतें। इस तरह मुस्लिम अवाम या अवाम का एक बड़ा वर्ग मानव अधिकारों और न्याय के सिद्धांतों के बारे में एक क़ानूनी नज़ीर पेश करेगा जिससे एक लोकसंस्कृति विक्सित होगी और एक मज़बूत जनमत बनेगा जो इस बात को सामान्यतःजानता और समझता है कि एक क़ानूनी निज़ाम बने रहना चाहिए। यह बात भी सामने लाई जाना चाहिए कि क़ानून और नैतिकता में हालांकि न्याय की असिल हैसियत है लेकिन फिर भी व्यक्ति को चाहिए कि वह ठोस और नितांत न्याय से आगे बढ़ कर अहसान का रवैया अपनाएं, दूसरों से महरबानी व मुरव्वत का बर्ताव करें, क्षमा से काम लिया करें और बहतर से बहतर आदर्श पर रहने की पूरी कोशिश किया करें (2:109,178,195,237; 3:159; 4:86; 5:13; 7:199; 16:125; 17:23,53; 23:96; 24:22; 29:46; 35:32; 39:18; 42:40; 44:34; 64:13)। इस तरह ईमान, नैतिकता और क़ानून व्यक्ति व समाज के कल्याण में एक दूसरे के साथ मिल कर काम करते हैं और एक दूसरे को मज़बूती देते हैं। शरीअत के क़ानून नैतिकता की हिफ़ाज़त करते हैं, लेकिन ये केवल वो बुनियादी सिद्धांत देते हैं जिनसे समाज की हिफ़ाज़त और हितों की रक्षा सुनिश्चत होती है, जबकि व्यक्तिगत नैतिकता की कोई हद नहीं है, कोई इंसान जितना ज़्यादा ऊंची नैतिकता वाला बनना चाहे बन सकता है।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا قُمْتُمْ اِلَى الصَّلٰوةِ
فَاغْسِلُوْا وُجُوْهَكُمْ وَ اَيْدِيَكُمْ اِلَى الْمَرَافِقِ
وَ امْسَحُوْا بِرُءُوْسِكُمْ وَ اَرْجُلَكُمْ اِلَى
الْكَعْبَيْنِ ؕ وَ اِنْ كُنْتُمْ جُنُبًا فَاطَّهَّرُوْا ؕ وَ
اِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰٓى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ
اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ
النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا
طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَ اَيْدِيْكُمْ
مِّنْهُ ؕ مَا يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيَجْعَلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ
حَرَجٍ وَّ لٰكِنْ يُّرِيْدُ لِيُطَهِّرَكُمْ وَ لِيُتِمَّ
نِعْمَتَهٗ عَلَيْكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝٦

मोमिनों! जब तुम नमाज़ को खड़े होने लगो तो अपने चेहरों (1) को धोया करो और अपने दोनों हाथों (2) को भी कोहनियों समेत धोया करो, और अपने सरों (3) पर हाथ फ़ेर लिया करो, और अपने पैरों (4) को टख्नों समेत धो लिया करो, और अगर तुम जनाबत की हालत में हो तो सारा बदन ग़ुस्ल करके पाक कर लो और अगर तुम बीमार (1) हो, या सफ़र (2) में हो, या कोई इस्तंजे (3) से आया हो या तुम अपनी बीवियों (4) से हमबिस्तर हुए हो, मगर पानी ना मिले, तो (इन चारों सूरतों में) तुम पाक ज़मीन से तयम्मुम कर लिया करो, यानी अपने चेहरे को और दोनों हाथों पर अपना हाथ फ़ेर लिया करो इस ज़मीन पर से, अल्लाह ये नहीं चाहता के तुम पर कोई तंगी करे, लेकिन वो ये ज़रूर चाहता है के वो तुम को पाको साफ़ रखे, और ये चाहता है के वो तुम पर अपना ईनाम कर दे ताके तुम शुक्र अदा करो। (5:6)

अल्लाह के नियम चाहे वो इबादत के लिए ही क्यों न हों इंसान को दिक़्क़त और कठिनाइयों में डालने के लिए नहीं हैः“अल्लाह तुम पर किसी तरह की तंगी नहीं करना चाहता बल्कि यह चाहता है कि तुम्हें पाक करे और अपनी नेअमतें (वरदान) तुम पर पूरी करदे ताकि तुम शुक्र करने वाले बनो।” इस्लाम शरीर और आत्मा के बीच टकराव और खींचतान को नहीं मानता और इस विचार को स्वीकार नहीं करता है कि आत्मा के विकास के लिए शरीर को कष्ट देना ज़रूरी है। शरीरिक और आत्मिक दोनों शक्तियां अल्लाह ने पैदा की हैं और उन्हें एक दूसरे के साथ काम पर लगाया है, ये दोनों शक्तियां एक दूसरे से मिल कर काम करती हैं और एक दूसरे की पूर्ति करती हैं और इंसानी अस्तित्व में एक दूसर से समन्वयिक रहती हैं। इसी तरह, अल्लाह के नियम कठिनाइयों को दूर करने के लिए हैं, कठिनाइयों और दिक़्क़तों में डालने के लिए नहीं हैं।

जिस तरह बीमारी और सफ़र की दिक़्क़तों को नमाज़ व रोज़े के नियमों में सामने रखा गया है उसी तरह व्यक्तियों के बीच मामलों के लिए जो क़ानून दिए गए हैं वो भी जीवन को सरल बनाने के लिए हैं और जीवन की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए हैं। जब कभी भी कुछ ख़ास परिस्थितियों में शरीअत का क़ानून लागू करने से कुछ दिक़्क़तें खड़ी हो रही हों तो अल्लाह का यह आम सिद्धांत कि “अल्लाह तुम्हें तंगी में डालना नहीं चाहते” (5:6; और 22:78), और “अल्लाह किसी पर उसकी क्षमता से अधिक भार नहीं डालते” (2:286, और 233; 6:152; 7:42; 23:62) लागू होगा ताकि लोगों की मुश्किल को कम किया जाए या उनकी ज़रूरत को पूरा किया जाए। और ऐसे किसी मामले में शरीअत के आम उद्देश्यों और सिद्धांतों को बनाए रखने के लिए किसी क़ानूनी नियम को उस समय तक के लिए लम्बित रखा जाएगा जबतक कि स्थिति बदल नहीं जाए और लम्बित क़ानूनी नियमों को लागू करना मुमकिन न हो जाए। इसके अलावा, इस्लामी शरीअत शरीरिक और नैतिक हिफ़ाज़त के लिए है और व्यक्ति व समाज की बहतरी के लिए है, केवल सज़ा और जुर्माना लगाने के लिए नहीं है। शरीअत के नियम सभी मैदानों में उन नैतिक मूल्यों को सुरक्षित करने के लिए हैं जो घर, मस्जिद, स्कूल और समाज में सिखाए जाते हैः“तुम्हें पाक करने के लिए और अपनी नेअमतें तुम पर पूरी करने के लिए ताकि तुम शुक्र करने वाले बनो।”

وَ جَاهِدُوْا فِي اللّٰهِ حَقَّ جِهَادِهٖ ۭ هُوَ اجْتَبٰىكُمْ وَمَا جَعَلَ عَلَيْكُمْ فِي الدِّيْنِ مِنْ حَرَجٍ ۭ مِلَّةَ اَبِيْكُمْ اِبْرٰهِيْمَ ۭ هُوَ سَمّٰىكُمُ الْمُسْلِمِيْنَ ڏ مِنْ قَبْلُ وَفِيْ هٰذَا

और अल्लाह की राह में जिहाद करो, जैसा के जिहाद का हक़ है, उसने तुम को चुन लिया है, और तुम पर दीन की कोई तंगी नहीं की, अपने बाप इब्राहीम के दीन पर क़ायम रहो, उसी ने तुम्हारा नाम मुसलमान रखा, पहले भी और इस किताब में भी, ताके रसूल तुम्हारे बारे में

لِيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ شَهِيْدًا عَلَيْكُمْ وَ تَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ ۖ فَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتُوا الزَّكٰوةَ وَاعْتَصِمُوْا بِاللّٰهِ ؕ هُوَ مَوْلٰىكُمْ ۚ فَنِعْمَ الْمَوْلٰى وَ نِعْمَ النَّصِيْرُ ۝

गवाह रहे, और तुम लोगों के बारे में गवाह रहो, तो तुम लोग नमाज़ पाबंदी से पढ़ा करो, और ज़कात अदा किया करो, और अल्लाह की रस्सी को मज़बूत पकड़े रहो, वही तुम्हारा कारसाज़ है तो कैसा ही अच्छा कारसाज़, और कैसा ही अच्छा मददगार। (22:78)

इन आयतों में भी इस आम क़ानूनी सिद्धांत पर ज़ोर दिया गया है कि दीन के मामले में लोगों पर कोई मुशक़्क़त नहीं रखी गयी है (देखें पहले वर्णित आत 5:6 और उसकी व्याख्या), चुनांचि क़ानूनी प्रयासों का मक़सद लोगों के जीवन से कठिनाइयों और दबाव को दूर करना है। ये आयतें इस बात को भी उजागर करती हैं कि इस्लाम मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के द्वारा प्रस्तुत किया गया कोई नया दीन (धर्म) नहीं है बल्कि दिल और ज़बान से अल्लाह की बन्दगी को स्वीकार करने का आग्रह है जो आप से पहले के पैग़म्बर भी लोगों से करते रहे हैं जिनमें हज़रत इब्राहीम व इस्माईल, इस्हाक़, याक़ूब और अलअसबात (याक़ूब के वंशज) भी शामिल हैं (2:128,131,133,136(3:52(5:44(6:71(40:66, और देखें सभी पैग़म्बरों का एक ही संदेशःअल्लाह की बन्दगी (अध्याय 4, अक़ीदा 3 अल्लाह का दीन)। मुसलमानों को इस बात के लिए अल्लाह का शुक्र करना चाहिए कि अल्लाह ने उन्हें अपना दीन बन्दों तक पहुंचाने और सभी लोगों के सामने सच्चाई की गवाही देने की ज़िम्मेदारी दी है। यह एक ज़िम्मेदारी है, केवल कोई सम्मान या उपाधि ही नहीं है जिस पर गर्व किया जाए, और वो तभी संतुष्ट हो सकते हैं जब वो अपनी ज़िम्मेदारी पूरी करें और अपनी करनी व कथनी से इसका नमूना प्रस्तुत करें, अल्लाह के दीन की बरकतों का अभिदर्शन बनें और अद्ल व अहसान (न्याय व उपकार) तथा इंसानी जीवन से कठिनाइयों व दिक़्क़तों के दूर करने के लिए ज़रूरी सिद्धांतों को अपनाएं।

वो जो लोग रसूल नबी उम्मी की पैरवी करते हैं जिनके औसाफ़ वो अपने हां तौरात और इंजील में लिखे हुए पाते हैं, वो नेकी का हुक्म करते हैं, और बुरे काम से रोकते हैं, पाक चीज़ों को उनके लिए हलाल करते हैं, नापाक चीज़ें उन पर हराम करते हैं और उन पर जो बोझ और तौक़ हैं उनको उतारते हैं तो जो लोग उन पर ईमान ले आते हैं और उनकी हिमायत करते हैं और उनकी मदद करते हैं, और उस नूर की पैरवी करते हैं जो

اتَّبَعُوا النُّورَ الَّذِيْٓ اُنْزِلَ مَعَهٗٓ ۙ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُوْنَ

उनके साथ नाज़िल किया गया वो ही लोग कामयाब हैं। (7:157)

इस आयत में पिछली आसमानी किताबों पर ईमान रखने वाले लोगों को जिनके पास अपनी किताबों तौरात व इंजील में आख़री पैग़म्बर मुहम्मद साहब के आगमन के हवाले मौजूद थे (ख़ास तौर से डेट्रोनूमीः18:15,18(गोस्पेल अ०फ़ ज०न 14:16), मुहम्मद सल्ल० के पैग़ाम की तरफ़ बुलाने के अलावा मुहम्मद साहब के पैग़ाम की मौलिक भूमिका को रेखांकित किया गया है जिसमें इस्लामी शरीअत के उद्देश्य और मौलिक धारणाएं भी शामिल हैं। शरीअत का मक़सद मअरूफ़ अर्थात भले और अच्छे कामों व बातों को जारी करना और मुनकिरात अर्थात बुरे और ग़लत कामों व बातों की रोकथाम करना है। इस्लामी शरीअत जीवन के लिए अच्छी चीज़ों को जायज़ करती है और बुरी व नापाक चीज़ों को मना करती है। यह इंसानी ज़हन और समान्य बुि) को सम्बोधित करती है और इसमें कोई भ्रम व रहस्यात्मकता नहीं है। जो कुछ जायज़ या नाजायज़ किया गया है वह सम्बंधित मामले की प्रकृति के अनुरूप उसके अच्छे या बुरे होने के आधार पर है, और केवल रोक लगाने व प्रतिबन्धित करने के लिए नहीं है (जैसा कि पिछली शरीअतों में कुछ मामलों में किया गया था, जैसे 4:160(6:146)। यह शरीअत व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन पर से बोझ और कण्ठल हटाने का माध्यम हैं (देखें पहले वर्णित आयत 5:6 और उसकी व्याख्या, तथा 22:78)।

शरीअत के ये लक्ष्य और बुनियादी धारणाएं उन क़ानूनी सिद्धांतों को अपनाने के लिए एक आदर्श हैं जो इंसानी दिमाग़ ने अभी तक निकाले हैं, और जो वर्तमान या भविष्य में बनाए जा सकते हैं। जो चीज़ भी इन लक्ष्यों को पूरा करती है और इन बुनियादी कल्पनाओं के अनुरूप है उसे शरई क़ानूनों की व्याख्या में इस सावधानी और चेतावनी के साथ अस्थाई रूप से जोड़ा जा सकता है कि ये इज़ाफ़े इंसानी हैं, अस्थाई हैं और संशोधित या रद किये जा सकते हैं। शरीअत क़ानूनी नियमों का कोई सीलबन्द संकलन नहीं है बल्कि न्याय के खुले और प्रगतिशील सिद्धांत हैं और एक लगातार विक्सित होते रहने वाला क़ानूनी निज़ाम है। अपनी व्यापकता, लचक, लगातार विकासशीलता, सक्रियता और इंसानी उपज व सामाजिक बदलाव के साथ मिल कर चलने की बदौलत इस्लाम धार्मिक क़ानून में एक नए और अन्तिम दौर की घोषणा करता है, इस तरह कि लोगों पर से वो बोझ और ''तौक़'' (कण्ठल) उतारता है जो पहले से उन पर लदे हुए थे, आसमानी हिदायत को इंसानी अक़्ल के साथ सहक्रिया (इन्ट्रेक्शन) कराता है और इस तरह आसमानी सिद्धांतों व क़ानूनी व्यवस्था को लगातार फलने फूलने का अवसर देता है तब तक जब तक दुनिया में इंसानी अक़्ल तरक़्क़ी करती रहेगी।

कम से कम और केवल ज़रुरत की हद में क़ानूनों का प्रावधान

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَسْـَٔلُوْا عَنْ اَشْيَآءَ اِنْ تُبْدَ لَكُمْ تَسُؤْكُمْ ۚ وَاِنْ تَسْـَٔلُوْا عَنْهَا حِيْنَ يُنَزَّلُ الْقُرْاٰنُ تُبْدَ لَكُمْ ؕ عَفَا اللّٰهُ عَنْهَا ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿١٠١﴾ قَدْ سَاَلَهَا قَوْمٌ مِّنْ قَبْلِكُمْ ثُمَّ اَصْبَحُوْا بِهَا كٰفِرِيْنَ ﴿١٠٢﴾

मोमिनों! ऐसी बातें ना पूछा करो के अगर तुम पर वो ज़ाहिर कर दी जायें तो तुम को बुरी मालूम हों, और अगर तुम नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त दरयाफ़्त करोगे तो तुम पर ज़ाहिर कर दी जायेंगी, अल्लाह ने गुज़िश्ता सवालात माफ़ कर दिये। और अल्लाह तो बड़ा ही बख़्शने वाला और हिल्म वाला है। ऐसी ही बातें तुम से पहले लोग भी पूछ चुके हैं, फ़िर वो उन बातों से मुन्किर हो गए। (5:101-102)

क़ानून के बन्धन उसी हद तक होना चाहिएं जहां तक क़ानूनी पाबन्दियों की ज़रूरत हो क्योंकि लोगों को सैद्धांतिक रूप से ख़ुद अपनी नैतिक ज़िम्मेदारियों और व्यक्तिगत विवेक पर छोड़ देना चाहिए। इसके अलावा यह कि क़ुरआन एक स्थाई मार्गदर्शक ग्रन्थ है, और इंसानी विविधता व सामाजिक बदलावों के साथ सामंजस्य व समन्वय बनाए रखने के लिए क़ानूनी लचक ज़रूरी है। कठोर और निश्चित व्याख्याएं और बे-लचक क़ानून इच्छा की आज़ादी और अलग अलग विवेक के प्राकृतिक इंसानी व्यवहार से टकराते हैं, ऐसे क़ानून और नियम व्यक्ति व समाज को अपंग करके रख देंगे और उनकी सृजनात्मक प्रतिभाओं को कुचल देंगे।

चुनांचि, यह आयत इस ग़लत विचार का खण्डन करती है कि शरीअत एक निरंकुशतावादी और कठोर हाकिमाना क़ानून है और यह कि हर इंसानी ख़राबी को क़ानून के द्वारा ही सुधारा जाएगा, और इस्लाम का सुधारकारी ढंग यही है। शरीअत ने जो कुछ तय कर दिया है और अनिवार्य या निषेध होने के जो आदेश जारी किए हैं वो बहुत सीमित हैं, जबकि इजाज़त का दायरा बहुत व्यापक है और इंसानी अक़ल के लिए मामलात तय करने की पर्याप्त गुंजाइश रखी गयी है। उपरोक्त आयत की व्याख्या में इब्ने कसीर (मृ 774 हिजरी/1372 ई) ने पैग़म्बर साहब की एक प्रमाणित हदीस नक़ल की है कि “अल्लाह ने फराइज़ (अनिवार्य कर्तव्य) तय किए हैं जिनकी अनदेखी न करो और व्यवहार की सीमाएं निर्धारित कर दी हैं उनसे ना निकलो और जो बातें हराम कर दी हैं उनको न करो। मैं कुछ बातों में मौन रहता हूं यह तुम्हारे ऊपर दया की वजह से है मेरे भूल जाने से नहीं है, इसलिए उनके बारे में हरगिज़ सवाल न करो” (दारक़ुतनी की रिवायत)। दारक़ुतनी से ही इब्ने कसीर ने एक और हदीस भी नक़ल की है:“सबसे बड़ी ग़लती जो इंसान करता है वह यह है कि ऐसी बात के बारे में सवाल करे जो हराम न हो लेकिन उसके सवाल के जवाब में वह हराम हो गयी हो”। उपरोक्त आयत के संदर्भ

में ही पैग़म्बर साहब ने मोमिनों को यह सिखाया है कि जिस चीज़ के बारे में कोई नियम मौजूद न हो उसके बारे में सवाल न किया करो ताकि आगे किसी और पाबन्दी से बचे रहो, और बताया कि इस तरह के सवाल पिछले पैग़म्बरों की क़ौमों के विनाश का ख़ास कारण बने हैं (मुस्लिम, इब्ने हंबल, नसई और इब्ने माजा)।

यह शरीअत का बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धांत है जिस पर मुहम्मद रशीद रज़ा मिस्री ने क़ुरआन की आयत 2:67-71 के संदर्भ में ज़ोर दिया है। रशीद रज़ा ने मुहम्मद अब्दुहू की ''तफ़सीरुल मनार''का सारांश लिखा है और उसमें यह लिखा है कि आदमी को ऐसे कल्पनात्मक मामलों के बारे में अनावशयक पूछताछ से बचना चाहिए जिनकी वजह से क़ानून और ज़्यादा जटिल हो जाए और क़ानूनी व्याख्याओं का अंबार लग जाए और फिर उन पर अमलदरामद मुश्किल हो जाए। प्राथमिक इस्लामी युग (''क़र्न-ए-अव्वल'') के मुसलमानों ने इसी के अनुसार अमल किया और उन्होंने अल्लाह के रास्ते पर चलने को बहुत बोझल नहीं बनाया, क्योंकि अल्लाह ने ख़ुद ही दीन को आसान और सादा रखा है जो स्पष्ट भी है और इंसानी स्वभाव के लिए उचित भी है। इसके विपरीत बाद के फ़क़ीहों ने अपनी बुि) और तर्कसि) के मुताबिक और अपने चिन्तन मनन से बहुत से नियम इसमें जोड़ दिए जो कभी कभी अनावश्यक भी थे और फिर बाद की सदियों में इन अतिरिक्त नियमों में दो गुणा, चार गुणा बढ़ोतरी होती रही और इस तरह शरीअत लोगों के ऊपर एक बोझ बन गयी। आसमानी शिक्षाएं और सिद्धांत जो सदा के लिए हैं और पूरी तरह व्यापक व समग्र हैं उनमें इंसानी अक़्ल की बदलाव योग्य और अनावश्यक व्याख्याएं मिल गयीं जिनके कारण पढ़ने वालों को अधिकतर मामलों में इन दोनों तरह के सिद्धांतों में फ़र्क़ करना मुश्किल हो गया। इसके बजाए कि क़ुरआन के उस बहुमूल्य क़ानूनी सिद्धांत को अपनाया जाता जिसका इशारा ऊपर दिया गया है और क़ुरान व सुन्नत से मिलने वाले क़ानूनों पर निर्भर रहा जाता जो हर जगह और हर ज़माने की इंसानी ज़रूरतों को पूरा करते हैं और उनके ऐतिहासिक परिदृश्य और शैक्षिक सीमाओं के दायरे में अतिरिक्त व्याख्याओं को समझा जाता, हम अपने फ़िक़्ही विरसे की मोटाई से ही ख़ुश होते रहते हैं और यह समझते हैं कि पूर्व में जो सराहनीय अक़्ली प्रयास होते रहे हैं वही आज की पूरी तरह बदली हुई परिस्थितियों में भी हमारी विभिन्न समस्याओं को हल कर सकते हैं। हालांकि इस्लाम की न्यायिक व्यवस्था और उसके स्वभाव को समझने तथा आज के समाजों की ज़रूरत और अनुकूलता के लिहाज़ से उसे विक्सित करने के लिए यह समझना ज़रूरी है कि अल्लाह के शाश्वत और आम सिद्धांत क्या हैं।

आप कह दीजिये के ये तो बतलाओ के अल्लाह ने जो तुम्हारे लिये रिज़्क़ दिया था तो तुमने उसमें से बाज़ को	قُلْ اَرَءَيْتُمْ مَّآ اَنْزَلَ اللّٰهُ لَكُمْ مِّنْ رِّزْقٍ فَجَعَلْتُمْ مِّنْهُ حَرَامًا وَّ حَلٰلًا ؕ قُلْ آٰللّٰهُ

اَذِنَ لَكُمْ اَمْ عَلَى اللّٰهِ تَفْتَرُوْنَ ﴿۵۹﴾ وَ مَا
ظَنُّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ
يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى
النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَشْكُرُوْنَ ﴿۶۰﴾

हराम क़रार दिया और बाज़ को हलाल किया, आप उन से पूछिये के क्या अल्लाह ने इसका तुम को हुक्म दिया है या तुम अल्लाह पर इफ़्तरा करते हो। और क्या गुमान है क़यामत के बारे में उन लोगों का जो अल्लाह पर इफ़्तरा करते हैं, बिला शुबह अल्लाह का लोगों पर बड़ा फ़ज़्ल है लेकिन उसमें अक्सर नाक़द्रे हैं। (10:59-60)

देखें इससे पहले गुज़र चुकी आयतें 5:87-88 और उनकी व्याख्या

व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ اتَّبَعَتْهُمْ ذُرِّيَّتُهُمْ
بِاِيْمَانٍ اَلْحَقْنَا بِهِمْ ذُرِّيَّتَهُمْ وَ مَآ
اَلَتْنٰهُمْ مِّنْ عَمَلِهِمْ مِّنْ شَيْءٍ ؕ كُلُّ
امْرِئٍۢ بِمَا كَسَبَ رَهِيْنٌ ﴿۲۱﴾

और जो ईमान लाये और उनकी औलाद ने ईमान में उनकी पैरवी की, हम उनकी औलाद को उनके साथ मिला देंगे और उनके आमाल में कोई कमी नहीं करेंगे, हर शख़्स अपने आमाल में फंसा होगा। (52:21)

यह आयत हर इंसान की यक्तिगत ज़िम्मेदारी पर ज़ोर देती है (और देखें 74:38 और 6:94,164(19:95(35:18(39:7(53:48-40)। मां बाप और बच्चों का फ़ैसला अलग अलग उनकी व्यक्तिगत जवाबदेही के आधार पर और उनके कर्मों और कारकर्दगी के हिसाब से होगा, लेकिन जो बच्चे अल्लाह का तक़वा रखते होंगे और अख़्लाक़ व ईमान पर चलने वाले होंगे उनके कर्मों का बदला उनके माता पिता को भी मिलेगा और माता-पिता को उनके कर्मों का पूरा फल दिए जाने के साथ साथ इनाम के रुप में उनके बच्चों को भी उनके साथ रखा जाएगा। लेकिन फिर भी नेक मातापिता अपने बच्चों को उनकी अपनी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही से नहीं बचा सकेंगे।

اَمْ لَمْ يُنَبَّاْ بِمَا فِيْ صُحُفِ مُوْسٰى ﴿۳۶﴾ وَ
اِبْرٰهِيْمَ الَّذِيْ وَفّٰۤى ﴿۳۷﴾ اَلَّا تَزِرُ وَازِرَةٌ
وِّزْرَ اُخْرٰى ﴿۳۸﴾ وَ اَنْ لَّيْسَ لِلْاِنْسَانِ اِلَّا
مَا سَعٰى ﴿۳۹﴾ وَ اَنَّ سَعْيَهٗ سَوْفَ يُرٰى ﴿۴۰﴾ ثُمَّ

क्या उसको ख़बर नहीं है जो मूसा के सहीफ़ों में हैं। और नीज़ इब्राहीम के जिन्होंने (हक़े इताअत और हक़े रिसालत दोनों को) पूरा किया। वो ये के कोई दूसरे का बोझ नहीं उठायेगा। और ये के इन्सान को उतना ही मिलता है जितनी के वो कोशिश करता है। और बहुत जल्द उसकी

कोशिश को देखा जायेगा। फ़िर उसको पूरा पूरा बदला दिया जाएगा। (53:36-41)

يُجْزٰىهُ الْجَزَآءَ الْاَوْفٰى ﴿٤١﴾

यहां भी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी का ज़िक्र है जो आख़िरत में अल्लाह के फ़ैसले के आधार पर होगी और जिसके लिए कोई सौदेबाज़ी काम न आएगी और न क़ुबूल की जाएगी (देखें पहले वर्णित आयत 2:286 और उसकी व्याख्या)।

राज्य की शक्ति व अधिकार और और शक्ति का उपयोग

हमने रसूलों को खुली निशानियां देकर भेजा, और उनके साथ किताब नाज़िल की, और तराज़ू ताके लोग इन्साफ़ पर क़ायम रहें, और हमने लोहा पैदा किया, उसमें हैबत रखी और लोगों के लिये फ़ायदे भी हैं और इसलिये भी के अल्लाह जांच सके के कौन अल्लाह की और उसके रसूल की बिन देखे मदद करता है, अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला ज़बरदस्त है। (57:25)

لَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنٰتِ وَ اَنْزَلْنَا مَعَهُمُ الْكِتٰبَ وَالْمِيْزَانَ لِيَقُوْمَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ ۚ وَ اَنْزَلْنَا الْحَدِيْدَ فِيْهِ بَاْسٌ شَدِيْدٌ وَّ مَنَافِعُ لِلنَّاسِ وَ لِيَعْلَمَ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗ وَ رُسُلَهٗ بِالْغَيْبِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ قَوِيٌّ عَزِيْزٌ ﴿٢٥﴾

अल्लाह की हिदायत जो कि उस की तरफ़ से उतरी किताबों में दी गयी है, सही और ग़लत की परखने का मानक देती है। इस हिदायत को सीखने और उस पर अमल करने से आदमी में निर्णय शक्ति पैदा होती है और अल्लाह के रसूल की सुन्नत (आदर्श तरीक़ा) इसके लिए मार्गदर्शन करता है और इंसान अपनी अक़्ल को इसके लिए इस्तेमाल करता है। इंसाफ़ को स्थापित करने के लिए इंसान को अपनी अक़्ल व हिक्मत (युक्ति) का इस्तेमाल अल्लाह की वह्यि की रोशनी में करना चाहिए (2:129,151,231(3:48,81,164(4:54,113(5:110), क्योंकि केवल अक़्ल पर निर्भर रहने से या वह्यि के शब्दों को इंसान की सामाजिक और बौद्धिक परिस्थिति से अलग करके शून्य में लागू करने से इंसाफ़ कभी स्थापित नहीं हो सकता। शासकों और जनता में जो लोग क़ानून को समझते और लागू करते हैं वो इंसानी तत्व का प्रतिनिधित्व करते हैं, उन्हें इंसाफ़ को समझने और इंसाफ़ के अनुसार व्यवहार करने की शिक्षा और प्रिशिक्षण दिया जाना चाहिए। इसके अलावा राजनीतिक सत्ता जिसे लोकशासन को व्यवस्थित करने के लिए भौतिक शक्ति प्राप्त होती है क़ानून पर अमलदरामद कराने के लिए ज़रूरी है जो सामाजिक और बौद्धिक प्रयासों से बनता है, और लोहा इस अनिवार्य भौतिक शक्ति का प्रतीक है। लोहा जंगों के अलावा भी आम जीवन में बहुत से फ़ायदे प्राप्त करने का

साधन है, जैसे कि उद्योगिक विकास से साबित है कि इंसान ने लोहे के खोज की और इंसानी जीवन के विभिन्न व अनेक पहलुओं के लिए इसका इस्तेमाल करना सीखा। हालांकि इस तकनीकी विकास में इंसान और मशीन के बीच संतुलन को नहीं बनाए रखा गया जिसकी वजह से लोहे, उद्योग और तकनीक के फ़ायदे दिक़्क़तों और दुखों (जैसे शरीरिक व सामाजिक बीमारियां और प्राकृतिक वातावरण का विनाश आदि) के साथ गडमड हो गए। जबकि अल्लाह की हिदायत इंसान को इस लायक़ बनाती है कि वह इंसानी और भौतिक विकास के बीच संतुलन बना कर रख सके और फिर इस के लिए नैतिक एवं क़ानूनी नियम भी देती है।

❁ ❁ ❁

इंसान की प्रतिष्ठा

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ ۙ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ ۚ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَ يُؤْمِنْ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ۗ لَا انْفِصَامَ لَهَا ؕ وَ اللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٥٦﴾

इस्लाम में कोई जब्र और क़हर नहीं। हिदायत साफ़ और ज़ाहिर है और गुमराही से अगल थलग है, तो जो बूतों को मानता ही नहीं और अल्लाह ही पर पूरा यक़ीन रखता है तो उसने ऐसी मज़बूत रस्सी हाथ में पकड़ ली है जो कभी भी टूटने वाली नहीं है। और अल्लाह तो है ही सब कुछ जानने वाला और सुनने वाला। (2:256)

इस आयत में क़ुरआन अक़ीदे की आज़ादी के अधिकार को सुरक्षित करता है, और इसके साथ जो चीज़ अनिवार्य रूप से जूड़ी हुई है वह है अक़ीदे का आज़ादी के साथ इज़हार या अभिव्यक्ति की आज़ादी, और अक़ीदा रखने वालों का आपस में आज़ादी के साथ मिलना जुलना चाहे यह अस्थाई रूप से हो या अक़ीदे की हिफ़ाज़त और समर्थन के लिए स्थाई रूप से संगठित होने के रूप में हो। ये अधिकार न्याय को बनाए रखने और अन्याय के ख़िलाफ़ खड़े होने के लिए, और क़ानून व्यवस्था की पाबन्दी को संतुलित रखने के लिए जनता के अनिवार्य अधिकार हैं। क़ुरआन जिन बातों को धार्मिक आस्थाओं से सम्बंधित अधिकार के रूप में बयान करता है वो उन सभी अधिकारों पर लागू होती हैं जो किसी भी ऐसी बात से सम्बंधित हों जिन पर इंसान विश्वास रखता हो या उसका आम नज़रिया हो। इन अधिकारों की रक्षा ज़रूरी है और व्यवहारिक रूप से संगठित ढंग से इनका बचाव करना ज़रूरी है, और इन अधिकारों की निगरानी मूल रूप से जनता को और जन संस्थाओं को और अदालतों को करना चाहिए ताकि आधुनिक राज्य को प्राप्त अत्यधिक अधिकारों के मुक़ाबले पर उनका बचाव हो सके जो कि इंसानी और तकनीकी संसाधनों से लेस होते है। किसी अक़ीदे को जब तक अपनी इच्छा और इरादे से स्वीकार न किया जाए तब तक अक़ीदा वास्तव में अपना अस्तित्व ही नहीं रखता और न बाक़ी रह सकता है। अल्लाह का तक़वा अगर इंसान के दिल व दिमाग़ में उसकी अपनी आज़ाद मर्ज़ी और पूरी निष्ठा के साथ गहराई से पेवस्त न हो तो उसके नैतिक और व्यवहारिक नतीजे नहीं निकल सकते। ज़ोर ज़बरदस्ती और दबाव से कोई अक़ीदा झूटा ही रहेगा और इस दुनिया में उससे कुछ हासिल नहीं होगा, और न अल्लाह के यहां वह क़ुबूल होगा और न आख़िरत में उसका बदला मिलेगा। इसी तरह किसी भी क़ानूनी कर्तव्य को पूरा करने के लिए इंसान की रज़ामन्दी ज़रूरी है और ज़ोरज़बरदस्ती इंसान के बोल या राज़ी होने की बात को बे-मतलब कर देती है (देखें आम सिद्धांत के अन्तर्गत इस अध्याय में कही गयी बातें)।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِذَا تَدَايَنْتُمْ بِدَيْنٍ
اِلٰۤى اَجَلٍ مُّسَمًّى فَاكْتُبُوْهُ ؕ وَ لْيَكْتُبْ
بَّيْنَكُمْ كَاتِبٌۢ بِالْعَدْلِ ۪ وَ لَا يَاْبَ
كَاتِبٌ اَنْ يَّكْتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ
فَلْيَكْتُبْ ۚ وَ لْيُمْلِلِ الَّذِيْ عَلَيْهِ الْحَقُّ وَ
لْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ وَ لَا يَبْخَسْ مِنْهُ شَيْـًٔا ؕ
فَاِنْ كَانَ الَّذِيْ عَلَيْهِ الْحَقُّ سَفِيْهًا اَوْ
ضَعِيْفًا اَوْ لَا يَسْتَطِيْعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ
فَلْيُمْلِلْ وَلِيُّهٗ بِالْعَدْلِ ؕ وَ اسْتَشْهِدُوْا
شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا
رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّ امْرَاَتٰنِ مِمَّنْ تَرْضَوْنَ
مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰىهُمَا فَتُذَكِّرَ
اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰى ؕ وَ لَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ
اِذَا مَا دُعُوْا ؕ وَ لَا تَسْـَٔمُوْۤا اَنْ تَكْتُبُوْهُ
صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا اِلٰۤى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ
عِنْدَ اللّٰهِ وَ اَقْوَمُ لِلشَّهَادَةِ وَ اَدْنٰۤى اَلَّا
تَرْتَابُوْۤا اِلَّاۤ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً
تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ
اَلَّا تَكْتُبُوْهَا ؕ وَ اَشْهِدُوْۤا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۪ وَ
لَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّ لَا شَهِيْدٌ ؕ۬ وَ اِنْ تَفْعَلُوْا
فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَ
يُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ وَ اللّٰهُ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمٌ ۲۸۲
وَ اِنْ كُنْتُمْ عَلٰى سَفَرٍ وَّ لَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا
فَرِهٰنٌ مَّقْبُوْضَةٌ ؕ فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ

ऐ मोमिनों! जब तुम उधार का मामला एक मुक़र्ररा मेआद के लिए करने लगो तो इसको लिख लिया करो और तुम्हारे दरमियान लिखने वाला इन्साफ़ के साथ लिखे और लिखने वाला लिखने से इन्कार ना करे जिस तरह अल्लाह ने उसको लिखना सिखाया है उसको चाहिये कि लिख दिया करे। और वो श.ख्स लिखवा दे जिसके ज़िम्मे वो हक़ वाजिब हो। और अल्लाह से डरता रहे जो उसका परवरदिगार है। और बताने में ज़र्रा बराबर भी कमी ना करे। फिर जिसके ज़िम्मे हक़ वाजिब है वो अगर .ख़फ़ीफ़ुलअक़्ल या ज़ईफ़ुलबदन या .ख़ुद लिखाने की क़ुदरत नहीं रखता तो उसका कारकून ठीक ठीक लिखा दे। और अपने ही मर्दों में से दो गवाह भी कर लिया करो। और अगर दो मर्द गवाह ना मिलें तो एक मर्द और दो औरतें काफ़ी हैं। ये गवाह वो हों जो तुम पसंद करते हो। ताकि उन दो औरतों में से कोई एक भूल जाए, तो उनमें से एक दूसरी को याद दिला दे। और गवाह भी इन्कार ना किया करें जब वो गवाह बनने के लिए बुलाये जाया करें। और तुम इसके लिखने से उकताया ना करो .ख़्वाह छोटा हो या बड़ा हो। अल्लाह के नज़दीक ये लिख लेना इन्साफ़ का .ज़्यादा क़ायम रखने वाला है और शहादत का .ज़्यादा दुरूस्त रखने वाला है और .ज़्यादा सज़ावार है इसका के तुम शुबह में ना पड़ो। मगर ये के कोई सौदा दस्तबदस्त हो। जिसको बाहम लेते देते हो तो फिर तुम पर कोई इल्ज़ाम नहीं अगर तुम उसको न लिखो। और जब तुम .ख़रीदो फ़रो.ख़्त किया करो तो गवाह ज़रूर कर लिया करो। ना किसी लिखने वाले को तकलीफ़ दी जाए, और ना ही किसी गवाह को और अगर तुम ऐसा करोगे तो उसमें तुम को गुनाह होगा। और अल्लाह से डरते रहो। और अल्लाह तुम को यही तालीम देता है। और अल्लाह तो हर चीज़ को .ख़ूब जानने वाला है। (2:282)

بَعْضًا فَلْيُؤَدِّ الَّذِى اؤْتُمِنَ اَمَانَتَهٗ وَ
لْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ وَلَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ وَ
مَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗٓ اٰثِمٌ قَلْبُهٗ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿٢٨٣﴾ ع

और अगर तुम सफ़र में हो और कोई कातिब ना मिले तो रहन की चीज़ें क़ब्ज़े में दे दो। अगर एक दूसरे का ऐतबार करता हो तो जिसका ऐतबार कर लिया है उसको चाहिये के दूसरे का हक़ पूरा पूरा अदा कर दे और अल्लाह से डरता रहे जो उसका परवरदिगार है। और शहादत को मत छुपया करो जो शहादत को छुपाएगा उसका दिल गुनहगार होगा। और अल्लाह तुम्हारे सारे आमाल को खूब जानता ही है। (2:283)

ऊपर लिखी आयत (2:282) जो कि क़ुरआन में सबसे लम्बी आयत है, अनिवार्य मानव अधिकारों और आम कर्तव्यों को बयान करती है, साथ ही क़र्ज़ के लेनदेन के सम्बंध में नियम देती है। यह एक सामूहिक ज़िम्मेदारी और सामाजिक कर्तव्य है कि जिस किसी को भौतिक संसाधन या निजी साधन उपलब्ध हों वह उनसे प्राप्त होने वाले अपने फ़ायदों में से उन लोगों को भी हिस्सा दे जो इसके ज़रूरतमंद हों। चुनांचि जो लोग दूसरों को क़र्ज़ दे सकते हैं उन्हें यह करना चाहिए अलबत्ता उन्हें इस बात का अधिकार है कि वो इसके लिए ज़रूरी ज़मानत तलब कर सकते हैं, जो लोग दस्तावेज़ लिख सकते हों उन्हें चाहिए कि जब ज़रूरत पड़े तो वो अपनी इस योग्यता को इस्तेमाल करके क़र्ज़ लेने वाले की मदद करें, जो लोग गवाह बन सकते हों वो गवाह बने और ज़रूरत के वक़्त ठीक ठीक गवाही दें असिल बात में कोई कमी या बढ़ोतरी के बग़ैर (2:282,283)। इसके अलावा, कोई हुनर जैसे लिखने पढ़ने की योग्यता एक सामाजिक ज़रूरत होती है, यह केवल किसी की व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं है। इसलिए आम शिक्षा में सरकार द्वारा हुनर का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और जनसेवाओं में इस हुनर से लाभान्वित होने की व्यवस्था होनी चाहिए। मुस्लिम समाज एक सभ्य समाज होता है जो क़ानूनी कर्तव्यों को गम्भीरता से लेता है, और इस सम्बंध में लिखित रिकार्ड रखना एक ज़रूरी बात है।

कुछ ख़ास मामलों में गवाही की ज़रूरत होती है। एक मर्द की गवाही के विकल्प के रूप में दो महिलाओं की गवाही लेना किसी भी तरह औरत के नैतिक या बौद्धिक रूप से हीन होने का इशारा नहीं है बल्कि इस ऐतिहासिक और सामाजिक सच्चाई को उजागर करता है कि एक औरत कारोबारी मामलों और उनकी क़ानूनी ज़रूरत पर कम ध्यान रखती है इसलिए अपनी दी हुई गवाही को ज़हन में रखने में उसका ध्यान कम हो सकता है और भूल चूक की सम्भावना ज़्यादा है और गवाही के रूप में उसे बयान करने में कमी या ज़्यादती हो सकती है। माहवारी और प्रसव की प्राकृतिक तकलीफ़ों का भी हर मामले में ध्यान रखना ज़रूरी है, लेकिन औरत

के मौलिक इंसानी अधिकारों और उसके कर्तव्यों की अनदेखी नहीं की जा सकती। यह आयत इस नियम को केवल क़र्ज़ के लेनदेन में औरत की गवाही तक सीमित करती है, यह औरत के मामले में कोई आम सिद्धांत नहीं है। किसी महिला की गवाही पुरूष की गवाही के बराबर ही है और कुछ मामलों में अगर उसे अपने अवलोकन को बयान करने में ज़्यादा समर्थ और विश्वसनीय पाया जाए तो उसकी गवाही किसी पुरूष की गवाही के मुक़ाबले ज़्यादा महत्वपूर्ण मानी जाएगी जैसा कि मशहूर फक़ीह (शरीअत के जानकार) इब्नुल क़य्यिम (मृ० 751 हिजरी/1350 ई०) ने अपनी किताब अलतुरूक़ुल हाकिमियह में लिखा है। लेकिन अगर कोई औरत कारोबारी मामलों की पूरी जानकारी रखती हो (जैसे कोई ख़ास योग्यता वाली कारोबारी महिला, कोई महिला अकाउण्टेंट या वकील) तो दो औरतों की गवाही की ज़रूरत का यह आधार कि "ताकि अगर वह भूल जाए तो दूसरी उसे याद दिला दे", नहीं रहेगा, और इसलिए ज़रूरत अपना कारण (आधार) न रखती होगी और उसे पूरा करना ज़रूरी न होगा। कई फ़क़ीहों ने जिनमें अलतिबरी, अलतहावी और इब्नुलहज़म व अबू हनीफ़ा शामिल हैं, कहा है कि औरत जज बनने की पात्र है। तब यह कैसे सोचा जा सकता है कि शरीअत एक आम सिद्धांत के रूप में एक औरत की गवाही को मर्द की गवाही के मुक़ाबले आधी गवाही मानती है?

अगर हर गवाह पर अपना अवलोकन बयान करने का अधिकार और बयान करने की ज़िम्मेदारी लागू होती है तो उसे किसी भी सम्भावित ख़तरे से बचाना और सुरक्षा देना भी ज़रूरी है। यह अधिकार एक आम सिद्धांत के रूप में भाषण अथवा लेख या किसी और माध्यम से किसी भी विचार के व्यक्त करने पर भी लागू होता है जो एक ज़िम्मेदारी या कर्तव्य भी हो सकता है। आस्था रखने का अधिकार उसे व्यक्त करने और उसे बरतने के लिए एकजुट होने के अधिकार के बग़ैर बेमतलब है। किसी को भी अपनी आस्थाओं या विचारों की अभिव्यक्ति की वजह से शासकों या दूसरे लोगों के द्वारा कोई नुक़सान नहीं पहुंचना चाहिए।

وَمَنْ يُّشَاقِقِ الرَّسُوْلَ مِنْۢ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُ الْهُدٰى وَيَتَّبِعْ غَيْرَ سَبِيْلِ الْمُؤْمِنِيْنَ نُوَلِّهٖ مَا تَوَلّٰى وَنُصْلِهٖ جَهَنَّمَ ۭ وَسَآءَتْ مَصِيْرًا ۝١١٥

और जो रसूल की मुखालिफ़त करेगा जबकि उस पर अम्रे हक़ ज़ाहिर हो चुका था, और मुसलमानों का रास्ता छोड़ कर दूसरे रास्ते पर हो लिया तो हम भी उसको वो ही करने देंगे जो कुछ वो करता है, और हम उसको जहन्नुम में दाख़िल करेंगे और वो जगह जाने के लिए बहुत बुरी है। (4:115)

नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी शिक्षा और जानकारी प्राप्त करने के अधिकार के साथ जुड़ी होना चाहिए ताकि आदमी यह जान सके कि क्या चीज़ नैतिक या क़ानूनी रूप से मान्य है और

क्या चीज़ मान्य नहीं है और दुनिया में क़ानूनी रूप से या आख़िरत में सज़ा का कारण है। अल्लाह का इंसाफ़ इस बात को नहीं मानता कि हर व्यक्ति को नैतिक और क़ानूनी नियम ख़ुद ही जानना होंगे, न यह उन क़ानूनों को सरसरी रूप से केवल बता देने को पर्याप्त समझता है, इसके बजाए वह यह मांग करता है कि क़ानूनों को लोगों की जानकारी में इस तरह से लाया जाए कि उनके लिए स्पष्ट और समझ में आने वाले हों, और सामाजिक रूप से व्यवहार में ला कर उन्हें मज़बूत और प्रचारित किया जाए। इस तरह किसी व्यक्ति के द्वारा क़ानून का उल्लंघन इंसानी अक़ल और जनव्यवहार के विपरीत होगा। कई आयतों में 'अल्लाह की हिदायत को ध्यान में लाने' पर ज़ोर दिया गया है और इसे दुनिया व आख़िरत में इंसान की जवाबदेही की शर्त के रूप में पेश किया गया है (47:25,32)। शिक्षा और जानकारी को एक इस्लामी समाज में मानव अधिकार और ज़िम्मेदारी के रूप में बरता जाता है। घर या परिवार पहली जगह है जहां बच्चों को सबसे पहले चरण पर शिक्षा और जानकारी मिलती है। इसके बाद वो लोग जिन्हें जनता के द्वारा जनता में से ही शासन और प्रशासन के अधिकार दिए जाते हैं (''उली अलअम्र'') (4:59) जनता को अर्थात बच्चों व बड़ों सब को ज्ञान प्राप्त कराने के अधिकार से लाभान्वित होने और कर्तव्यों को पूरा करने योग्य बनाने के ज़िम्मेदार होते हैं। अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल० की एक हदीस हमें बताती है कि ज्ञान प्राप्त करना हर मुसलमान मर्द या औरत पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) है (रिवायत अब्दुल बर और अलबेहिक़ी, अलतिबरी), और यह शासकों की ज़िम्मेदारी है कि व्यक्तियों को अपने कर्तव्य पूरा करने और अपनी निहित प्रतिभाओं को विक्सित करने के योग्य बनाएं और देखें इब्ने हज़म (मृ 456 हिजरी/1053 ई) का उदाहरण, अलअहकाम, जिल्द 5, बाब 31, पेज 113-114, क़ाहिरा से प्रकाशित।,

يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ
مَسْجِدٍ وَّ كُلُوْا وَ اشْرَبُوْا وَ لَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ
لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ۝۳۱ قُلْ مَنْ حَرَّمَ
زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ وَ الطَّيِّبٰتِ
مِنَ الرِّزْقِ ؕ قُلْ هِيَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فِي
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا خَالِصَةً يَّوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ
كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝۳۲
قُلْ اِنَّمَا حَرَّمَ رَبِّيَ الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ
مِنْهَا وَ مَا بَطَنَ وَ الْاِثْمَ وَ الْبَغْيَ بِغَيْرِ

ऐ औलादे आदम! तुम अपना लिबास पहने लिया करो जब भी तुम (नमाज़ के लिए) मस्जिद जाया करो, और ख़ूब खाओ और पियो, और हद से आगे मत निकला, बिला शुबह अल्लाह हद से आगे निकलने वालों को महबूब नहीं रखता। आप फ़रमा दीजिये के अल्लाह का लिबास जो उसने अपने बन्दों के लिए बनाया है और खाने पीने की हलाल और पाक चीज़ों को किस ने हराम किया है, आप ये भी फ़रमा दीजिये के ये चीज़ें मोमिनीन के लिए हैं इस दुनिया की ज़िन्दगी में, ख़ालिस हैं उनके लिए क़यामत के रोज़ हम इसी तरह तमाम आयात समझने वाली के लिए साफ़ साफ़ बयान कर देते हैं।

الْحَقِّ وَ اَنْ تُشْرِكُوْا بِاللّٰهِ مَا لَمْ يُنَزِّلْ بِهٖ
سُلْطٰنًا وَّ اَنْ تَقُوْلُوْا عَلَى اللّٰهِ مَا لَا
تَعْلَمُوْنَ ۝٣٣

आप फ़रमा दीजिये के अलबत्ता मेरे रब ने फहश बातों को सिर्फ़ हराम किया है, उनमें एलानिया हैं वो भी और जो पोशीदा हैं वो भी, और हर गुनाह को और नाहक़ ज़ुल्म करने को और इस बात को के तुम अल्लाह के साथ ऐसी चीज़ को शरीक करो जिसकी सनद उसने नहीं उतारी और इस बात को के एसी बात अल्लाह के ज़िम्मे लगा दो जिसकी सनदर तुम ना रखो।

(7:31-33)

इंसान को न केवल अपनी ज़रूरतें और आवश्यकताएं पूरी करने का अधिकार है बल्कि साफ़ सुथरा जीवन बिताने और साज सज्जा के साथ रहने का भी अधिकार है। इंसानों के पास अक़्ल व सूझबूझ होती है और उनकी अपनी पसन्द या नापसन्द होती है और उन्हें इस बात का अवसर मिलना चाहिए कि वो अपनी योग्यताओं व क्षमताओं को काम में लाएं और केवल अपने अस्तित्व को बनाए रखने के सीमित दायरे में ही न जिएं। अल्लाह का दीन उन इंसानी योग्यताओं और क्षमताओं को अक़्ली और क़ानूनी तरीक़े से पूरा करने का रास्ता दिखाने के लिए आया है, क्योंकि हर व्यक्ति अपनी क्षमताओं को विक्सित करने का अधिकार और ज़िम्मेदारी रखता है, और जिन लोगों को जनता ने अपने बीच से चुन कर अधिकार और शासन शक्ति दी हो (यानि उली उलअम्र) उनकी ज़िम्मेदारी है कि व्यक्तियों को अपनी योग्यताओं और प्रतिभाओं को उभारने का अवसर दें। उपरोक्त आयत दीन के सम्बंध में इस आम ग़लत धारणा का खण्डन करती है कि प्रकृति ने इंसान पर प्रतिबंध लगाए हैं और इंसानी व्यवहार को दबाया है। अल्लाह की हिदायत तो संतुलित और न्यायपूर्ण है और उसका मक़सद तमाम जायज़ इंसानी उमंगों को रास्ता दिखाना है। अल्लाह तआला ने इंसानी जीवन का सौन्दर्य बढ़ाने और उसे सुखी व आनन्दपूर्ण बनाने के लिए जो कुछ भी उपलब्ध कराया है वह अल्लाह के बन्दों के लिए इस दुनिया में जायज़ और क़ानूनी है, और आख़िरत में तो इस सुख और आनन्द को प्राप्त करने के हक़दार केवल ईमान वाले ही होंगे। अल्लाह ने केवल उन्ही चीज़ों को मना किया है जो व्यक्ति या समाज को शरीरिक, बौद्धिक, नैतिक या आत्मिक रूप से नुक़सान पहुंचाती हैं, क्योंकि इन विभिन्न मैदानों में इंसान ख़ुद अपने गुणों को नुक़सान पहुंचा सकता है। अल्लाह को छोड़ कर दूसरों को ख़ुदाई का स्थान देने का मतलब इंसान की बौद्धिक और अध्यात्मिक कारकर्दगी का दुरूपयोग है और यह चीज़ व्यक्ति और समाज की स्थिरता, संतुलन और योग्यता को नुक़सान पहुंचाती है।

الَّذِينَ يَتَّبِعُونَ الرَّسُولَ النَّبِيَّ الْأُمِّيَّ
الَّذِي يَجِدُونَهُ مَكْتُوبًا عِنْدَهُمْ فِي
التَّوْرَاةِ وَالْإِنْجِيلِ يَأْمُرُهُمْ بِالْمَعْرُوفِ
وَيَنْهَاهُمْ عَنِ الْمُنْكَرِ وَيُحِلُّ لَهُمُ الطَّيِّبَاتِ
وَيُحَرِّمُ عَلَيْهِمُ الْخَبَائِثَ وَيَضَعُ عَنْهُمْ
إِصْرَهُمْ وَالْأَغْلَالَ الَّتِي كَانَتْ عَلَيْهِمْ ۚ
فَالَّذِينَ آمَنُوا بِهِ وَعَزَّرُوهُ وَنَصَرُوهُ وَ
اتَّبَعُوا النُّورَ الَّذِي أُنْزِلَ مَعَهُ ۙ أُولَٰئِكَ هُمُ
الْمُفْلِحُونَ ﴿١٥٧﴾

वो जो लोग रसूल नबी उम्मी की पैरवी करते हैं जिनके औसाफ़ वो अपने हां तौरात और इंजील में लिखे हुए पाते हैं, वो नेकी का हुक्म करते हैं, और बुरे काम से रोकते हैं, पाक चीज़ों को उनके लिए हलाल करते हैं, नापाक चीज़ें उन पर हराम करते हैं और उन पर जो बोझ और तौक़ हैं उनको उतारते हैं तो जो लोग उन पर ईमान ले आते हैं और उनकी हिमायत करते हैं और उनकी मदद करते हैं, और उस नूर की पैरवी करते हैं जो उनके साथ नाज़िल किया गया वो ही लोग कामयाब हैं। (7:157)

चूंकि अल्लाह का दीन अच्छी चीज़ों को जायज़ ठहराता है जो कि शरीरिक और नैतिक रूप से लाभदायक हैं और बुरी चीज़ों को जो कि शरीरिक और नैतिक रूप से ग़लत और नुक़सानदायक हैं, वर्जित करता है, इसलिए इंसान का यह हक़ है कि वह जीवन की इन अच्छी चीज़ों से फ़ायदा उठाए। यह इस्लामी शासकों पर लाज़िम है कि वो काम करने की योग्यता रखने वाले लोगों को काम के उचित अवसर देकर और उन्हें उनके काम का उचित मुआवज़ा देकर उनके लिए इन मुफ़ीद चीज़ों की उपलब्धता को सुनिश्चित करें, या जो लोग काम करने के योग्य नहीं हैं उन्हें अस्थाई या स्थाई रूप से सामाजिक सहायता के द्वारा इन मुफ़ीद चीज़ों से फ़ायदा उठाने का अवसर दें। बुरी और नुक़सानदायक चीज़ें जिन्हें अल्लाह ने वर्जित कर दिया है उनमें न केवल शराब और सुअर का मास शामिल हैं बल्कि खानेपीने की अपौष्टिक और हानिकारक चीज़ें भी शामिल हैं जिन्हें कोई इंसान इसलिए इस्तेमाल करता है कि वह पौष्टिक चीज़ों के इस्तेमाल की क्षमता नहीं रखता या अपनी बुरी आदतों की वजह से इन नुक़सानदायक चीज़ों का इस्तेमाल करता है। अच्छे और उपयोगी काम करने पर ज़ोर देने की बात शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार पर भी लागू होती है, यानि शिक्षण संस्थाओं और मास मीडिया के द्वारा बच्चों और बड़ों सबको यह शिक्षा देना कि उनके लिए शरीरिक, बौद्धिक और नैतिक रूप से क्या अच्छा और उपयोगी है और क्या बुरा व नुक़सानदायक है। जो लोग ग़लत हरकतें करते हैं उनके ऊपर सज़ा और जुर्माना लगाने से पहले या सज़ा और ज़ुर्माना लगाने के साथ साथ जनता को अल्लाह की हिदायत से अवगत कराना चाहिए और यह बताना चाहिए कि यह हिदायत व्यक्ति और समाज के लिए शरीरिक और नैतिक रूप से क्यों अच्छी और बहतर है (4:115)। अच्छे और सही कामों पर लोगों को चलाने के लिए और बुरे व ग़लत कामों

से उन्हें रोकने के लिए शिक्षा और सामाजिक सुधार ज़रूरी है। अल्लाह की हिदायत इंसान को उन पर लदे हुए भार और बन्धनों से मुक्ति दिलाती है, चाहे यह उन पर उनकी अज्ञानता, अदूरदर्शिता और आडम्बरों की वजह से लदे हों या एक दूसरे को भटकाने और शोषण करने के चलते उन पर थोपे गए हों। जो लोग हिदायत के इस संदेश पर विश्वास रखते हैं और इसका समर्थन करते हैं उन्हें इन सारे इंसानी अधिकारों और कर्तव्यों को सुनिश्चित करना चाहिए जो जीवन के हर मामले में इस मार्गदर्शक संदेश ने स्पष्ट किए हैं, और पूरे समाज के लिए, और जहां तक हो सके पूरे विश्व के लिए इस सम्पूर्ण न्याय की व्यवस्था करनी चाहिए, और इसके लिए उन्हें जीवन के सभी जायज़ साधनों व आवश्यकताओं और साज सज्जा की अच्छी चीज़ों को शरीअत के मार्गदर्शन में और उसके उद्देश्यों के अनुसार विक्सित करना, वितरित करना और दूसरी अच्छी चीज़ों से उनका आदान प्रदान करके उन्हें उपलब्ध कराना चाहिए।

إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْإِحْسَانِ وَ
إِيتَاءِ ذِي الْقُرْبَىٰ وَيَنْهَىٰ عَنِ الْفَحْشَاءِ
وَالْمُنكَرِ وَالْبَغْيِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَذَكَّرُونَ ۝٩٠

बिला शुबह अल्लाह तआला इन्साफ़ (1), नेकी (2), अपने क़रीबी रिश्तेदारों को देने का हुक्म देता है, और बेहयाई, बड़े गुनाहों, और सरकशी के काम से रोकता है, अल्लाह तुम को नसीहत करता है, इसलिये के तुम नसीहत क़ुबूल करो। (16:90)

इंसाफ़ एक समग्र और सर्वागीण प्रक्रिया है अर्थात यह हर पहलू से और हर मामले में हर एक पर लागू होने वाली बात है और शासकों व शासितों पर भी बराबर से लागू होता है (देखें अगला भाग शासक और शासित का सम्बंध में इस आयत की व्याख्या)। व्यक्तियों के अपने अधिकार होते हैं जो उन्हें मिलना चाहिएं, और इसी के साथ उन्हें अपनी ज़िम्मेदारियां और कर्तव्य भी पूरे करना चाहिएं। शासकों की ज़िम्मेदारी यह है कि वो क़ानून और उस पर अमल के द्वारा व्यक्तियों के अधिकारों की हिफ़ाज़त करें, साथ ही उनका अपना यह हक़ है कि वो हर व्यक्ति के कर्तव्यों की पूर्ति को सुनिश्चित करें, क़ानून व्यवस्था को बनाए रखें और जनता का समर्थन व सहयोग प्राप्त करें। शासकों और शासितों दोनों को आपसी अधिकारों और ज़िम्मेदारियों का लिहाज़ करना ज़रूरी है। लेकिन जनता के अधिकारों की रक्षा करने में और उन अधिकारों को दिलाने में शासकों को बर्चस्व प्राप्त होता है। इसलिए ऐसी स्थिति में जब जनहित के लिए कुछ ऐसे उपाय करने ज़रूरी हों जो व्यक्तिगत हितों से टकराते हों सार्वजनिक सम्पत्तियों या व्यवस्था और शान्ति या जन स्वास्थ्य या जनता के आर्थिक व वित्तीय स्थिरता को व्यक्तिगत हितों पर प्राथमिकता प्राप्त होती है । दूसरी तरफ़ शासकों के कर्तव्य और जिम्मेदारियां उनके अधिकारों से बढ़ कर हैं और इन कर्तव्यों के निर्वाहन में कोताही को व्यक्तिगत

स्तर पर क़ानून के उल्लंघन के बराबर नहीं लिया जा सकता क्योंकि शासकीय अधिकारी तो पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैसे यु) बन्दियों के अधिकारों का लिहाज़ हर हाल में रखा जाएगा भले ही उनमें से हर एक ने जनता की सुरक्षा को नुक़सान पहुंचाया हो।

जनता और शासकों के बीच इंसाफ़ से आगे बढ़ कर "अहसान" (उपकार) और महरबानी का मामला करने का निर्देश देना चाहिए अगर इससे दोषियों के ग़लत व्यवहार को सुधारा जा सकता हो। परिवार के प्रति वफ़ादारी और उसकी सेवा पर ख़ास ध्यान देना चाहिए कि ये अधिकारों व कर्तव्यों की शिक्षा और उस पर अमल करने तथा दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने का पहला सामाजिक दायरा है। इसके अलावा यह एक इंसानी ज़रूरत है कि अनैतिक बातों व कामों और ज़ुल्म व ज़्यादतियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए और ऐसे कुछ मामलों में सज़ा का भी प्रावधान किया जाए ताकि नैतिकता और इंसाफ़ की हिफ़ाज़त हो और उनको बढ़ावा मिले। इंसाफ़ के नाम पर इंसान की क्षमताओं और योग्यताओं को विक्सित करने या उन्हें नष्ट करने वाले अच्छे और बुरे अवसरों को बराबरी की नज़र से नहीं देखा जा सकता क्योंकि अगर कोई दूसरों को नुक़सान पहुंचाना चाहे तो यह नुक़सान व्यक्तिगत हो या सामाजिक, इंसाफ़ की आत्मा के विपरीत है।

وَ لَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ السَّمْعَ وَ الْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْـُٔوْلًا ۝٣٦

और तू उस बात के पीछे ना पड़ा कर जिसको तू जानता ना हो, कान, आंख, और दिल हर शख़्स से इन के बारे में पूछा जायेगा। (17:36)

इंसानी इन्द्रियों से काम लेना और इन इन्द्रियों की हिफ़ाज़त करना और उन्हें बढ़ाना एक इंसानी अधिकार है। हालांकि यह अधिकार भी दूसरे किसी भी अधिकार की तरह इस ज़िम्मेदारी के साथ जुड़ा हुआ है कि उनका कोई ग़लत इस्तेमाल न हो। अपनी इन्द्रियों का इस्तेमाल दूसरों के निजी दायरों में हस्तक्षेप करने के लिए करना या सरकारी राज़ जानने के लिए करना सख़्त मना है। अपनी इन्द्रियों का इस्तेमाल दूसरों के व्यक्तिगत अधिकारों या पूरे समाज के सामूहिक अधिकारों की क़ीमत पर नहीं किया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को पूरी आज़ादी दूसरे व्यक्तियों और सामूहिक रूप से पूरे समाज की आज़ादी के ख़िलाफ़ है और यह चीज़ स्वयं व्यक्ति के नैतिक आचरण के लिए नुक़सानदायक है। बिना जांच और पुष्टि किए अफ़वाहें फैलाना जिससे व्यक्तियों या समाज को नुक़सान पहुंचता है, या जासूसी करना और टोह लेने के लिए घर की निजता का हनन करना और एकान्त में हस्तक्षेप करना नैतिक और क़ानूनी रूप से मना है (24:27-29; 49:6-8,12)।

وَ لَقَدْ كَرَّمْنَا بَنِيْٓ اٰدَمَ وَ حَمَلْنٰهُمْ فِي الْبَرِّ وَ الْبَحْرِ وَ رَزَقْنٰهُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ وَ فَضَّلْنٰهُمْ عَلٰى كَثِيْرٍ مِّمَّنْ خَلَقْنَا تَفْضِيْلًا ﴿٧٠﴾

और हमने बनी आदम को इज़्ज़त बख़्शी और उनको ख़ुश्की और तरी में सवारी अता की, और पाकीज़ा रोज़ी इनायत की, और अपनी मख़्लूक़ात में से बोहतों पर उनको फ़ज़ीलत दी। (17:70)

अल्लाह ने इंसान को सही और ग़लत में फ़र्क़ करने की योग्यता दी है और उसे सही व ग़लत में से जो चाहे चुनने की आज़ादी दी है (90:10(91:7-9)। इंसान थल या जल मार्गों से या हवा में यात्रा करके एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए अपनी शरीरिक और बौद्धिक शक्तियों को काम में ला सकता है (2:29(45:12-13)। यह व्यक्तियों, समाज और शासकों की ज़िम्मेदारी है कि वो बहुमुखी इंसानी प्रतिभाओं को बढ़ाने के लिए इंसानी शक्तियों की हिफ़ाज़त करें और उन्हें विक्सित करें। इंसान को विश्व्यापी पहुंच के योग्य बनाया गया है और रोज़गार कमाने या ज्ञान को बढ़ाने के लिए और दूसरे लोगों से मिलने व उनके साथ सम्बंध बनाने तथा आर्थिक सहयोग को बढ़ाने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाने की योग्यता प्रदान की गयी है।

स्वास्थवर्धक और पौष्टिक चीज़ों से अपनी रोज़ी प्राप्त करना एक इंसानी अधिकार है जिनका पूरे विश्व में समुचित व न्यायपूर्वक ढंग से वितरण और आदान प्रदान हो। रोज़ी व रोज़गार की यह उपब्धता काम करने के जायज़ अवसरों से सुनिश्चित होना चाहिए और इसके लिए ऐसे क़ानूनों का प्रावधान होना चाहिए जो कारोबारी दुनिया और लेबर मार्कीट में न्याय को सुनिश्चित करते हों और शोषण व धोखेबाज़ी से बचाते हों। जब तक व्यक्तिगत और सार्वजनिक ज़िम्मेदारी की समझ लोगों को नहीं दी जाएगी तब तक इंसानी प्रतिष्ठा को बहाल नहीं रखा जा सकता, और इंसानी कर्तव्यों का पूरा किया जाना मानव अधिकारों की मांगों के साथ ही जुड़ा हुआ है। क़ुरआन जिस मानवीय प्रतिष्ठा की बात करता है वह अधिकारों और ज़िम्मेदारियों पर आधारित है। यह इंसान की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा की बात है अर्थात शरीरिक रूप से भी, बौद्धिक रूप से भी और आत्मिक व नैतिक रूप से भी। यह एक विश्वव्यापी संदेश है क्योंकि आदम की संतान अर्थात मानवजाति के लिए यह बात कही गयी है किसी भी भेदभाव के बिना हर लिंग, जाति व समुदाय के और हर आस्था व धर्म के लोगों के लिए और चाहे वो शक्तिशाली लोग हों या निर्धन और निर्बल लोग। यह अल्लाह का बयान है जो कि सभी इंसानों का जनक है और वह किसी से कोई बैर या किसी के लिए पक्षपात नहीं रखता, और अल्लाह के तक़वा से इस फ़रमान पर अमल होता है जिसकी जड़ें किसी भी इंसानी दर्शन, राष्ट्रीय क़ानून या अन्तर्राष्ट्रीय प्रस्ताव से कहीं ज़्यादा गहरी हैं और जिसका दायरा उनसे कहीं अधिक

व्यापक है।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ
بُيُوْتِكُمْ حَتّٰى تَسْتَاْنِسُوْا وَ تُسَلِّمُوْا عَلٰۤى
اَهْلِهَا ؕ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَذَكَّرُوْنَ ﴿۲۷﴾ فَاِنْ لَّمْ تَجِدُوْا فِيْهَاۤ اَحَدًا
فَلَا تَدْخُلُوْهَا حَتّٰى يُؤْذَنَ لَكُمْ ۚ وَ اِنْ
قِيْلَ لَكُمُ ارْجِعُوْا فَارْجِعُوْا هُوَ اَزْكٰى لَكُمْ ؕ
وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿۲۸﴾ لَيْسَ
عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا غَيْرَ
مَسْكُوْنَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ يَعْلَمُ مَا
تُبْدُوْنَ وَ مَا تَكْتُمُوْنَ ﴿۲۹﴾

मोमिनों! तुम अपने घर के सिवा दूसरे घरों में मत दाख़िल हो जब तक के इजाज़त ना लो, और घर वालों को सलाम ना करो यही तुम्हारे लिये बेहतर है, ताके तुम समझो। फ़िर अगर तुम उन घरों में किसी को मौजूद ना पाओ, तो उसमें मत दाख़िल हो जब तक तुम को इजाज़त ना दी जाए, अगर तुम से कहा जाए लौट जाओ तो लौट जया करो, ये तुम्हारे लिये बड़ी पाकीज़ा बात है, और अल्लाह तो जानता है जो तुम करते हो। इसमें तुम्हारे लिये कोई हर्ज नहीं है के तुम किसी ग़ैर आबाद घर में दाख़िल हो जाओ और उसमें तुम्हारा सामान हो, और अल्लाह जानता है जो तुम ज़ाहिर करते हो और जो तुम छुपाते हो। (24:27-29)

इंसानी अधिकार आदमी के घर और निजता की रक्षा करते हैं, ठीक उसी तरह जिस तरह आदमी के अस्तित्व की रक्षा करते हैं। उपरोक्त आयतों में उस ज़माने के अरबों को और बाक़ी तमाम लोगों को घरों के सम्मान और उनमें प्रवेश करने के संस्कारों की शिक्षा दी गयी है। कोई भी आदमी किसी दूसरे के घर में तब तक दाख़िल नहीं हो सकता जब तक अनुमति न लेले और यह न समझ ले कि वहां उसका स्वागत है। और अनुमति भी शालीन ढंग से मांगना चाहिए (49:4-5) इस तरह के प्रतिबन्ध घर वालों की निजता की रक्षा करते हैं और आने वाले के व्यक्तित्व व चरित्र की रक्षा करते हैं जिसे दूसरी आयतों में यह सीख दी गयी है कि यह जानने की जिज्ञासा न करे कि अन्दर क्या हो रहा है, कोई टोह न लगाए, ग़ीबत (पीठ पीछे बुराई) न करे और अटकलबाज़ी न करे (49:6-12)। लांछन लगाना और झूटे आरोप लगाना नैतिक और क़ानूनी रूप से वर्जित है और किसी के सम्मान एवं प्रतिष्ठा पर आघात करने को एक बड़ा अपराध माना गया है और इस पर कड़ी सज़ा की चेतावनी है (24:11-21, 23-24)। क़ुरआन जहां एक तरफ़ आपस में मिलने मिलाने को एक सामाजिक ज़रूरत मानता है और मोमिनों के बीच इस मेलजोल को बढ़ावा देने की शिक्षा देता है वहीं साथ ही साथ यह घरों के सम्मान और निजता के अधिकारों की रक्षा की भी सीख देता है। आगन्तुक को न केवल यह कि घर में प्रवेश करने के लिए अनुमति लेना चाहिए बल्कि उसे यह भी अंदाज़ा लगा लेना चाहिए कि वह जिन से मिलने आया है वो इस समय मिलने के मूड में हैं भी या नहीं, और

फिर मुलाक़ात व बातचीत से पहले ही एक दूसरे से सलाम व दुआ होना चाहिए। हां, सार्वजनिक स्थानों पर जैसे कारोबार की जगह, सरकारी कार्यालय, सरकारी संस्थाएं, स्कूल, म्यूजियम और होटल आदि पर यह नियम लागू नहीं होता।

وَ اِنْ طَآىِٕفَتٰنِ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ اقْتَتَلُوْا
فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا ۚ فَاِنْۢ بَغَتْ اِحْدٰىهُمَا
عَلَى الْاُخْرٰى فَقَاتِلُوا الَّتِيْ تَبْغِيْ حَتّٰى
تَفِيْٓءَ اِلٰٓى اَمْرِ اللّٰهِ ۚ فَاِنْ فَآءَتْ
فَاَصْلِحُوْا بَيْنَهُمَا بِالْعَدْلِ وَ اَقْسِطُوْا ؕ
اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ۝۹

अगर मोमिनों की दो जमातें आपस में लड़ पड़ें, तो उनमें सुलह करा दो, फ़िर अगर एक जमात दूसरे पर ज़्यादती करे तो ज़्यादती करने वालों से लड़ो, यहां तक के वो अल्लाह के हुक्म की तरफ़ रूजू करें, फ़िर अगर वो रूजू करें तो उन दोनों में इन्साफ़ के साथ सुलह करा दो, और इन्साफ़ से काम करो, बेशक अल्लाह इन्साफ़ करने वालों को पसंद करता हैं। (49:9)

इंसाफ़ एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है और अल्लाह का एक अनिवार्य आदेश है जिस पर अमल करना सभी मोमिनों, मर्दों व औरतों के लिए ज़रुरी है। जब किसी के साथ कोई अन्याय हो रहा हो और उसके मानव अधिकारों का हनन हो रहा हो तो लोगों को चुपचाप तमाशा नहीं देखना चाहिए। उन्हें अन्याय करने वाले और मानव अधिकारों का हनन करने वाले को रोकने के लिए हर तरह का राजनीतिक दबाव बनाना चाहिए और क़ानूनी उपाय करना चाहिएं। अगर यह सभी प्रयास पीड़ित को न्याय दिलाने में विफल हो जाएं और अत्याचारी और अधिक उत्पीड़न पर ऊतारू हो तो पीड़ित को आत्मरक्षा करने और आक्रामकता का प्रतिरोध करने का हक़ है और दूसरे मोमिनों की यह ज़िम्मेदारी है कि वो पीड़ित की सहायता व समर्थन करें। यह आयत न्याय और मानव अधिकारों की रक्षा के लिए आम चिन्ता को एक अनिवार्य सिद्धांत के रूप में पेश करती है।

لَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنٰتِ وَ اَنْزَلْنَا
مَعَهُمُ الْكِتٰبَ وَالْمِيْزَانَ لِيَقُوْمَ النَّاسُ
بِالْقِسْطِ ۚ وَ اَنْزَلْنَا الْحَدِيْدَ فِيْهِ بَاْسٌ
شَدِيْدٌ وَّ مَنَافِعُ لِلنَّاسِ وَ لِيَعْلَمَ اللّٰهُ
مَنْ يَّنْصُرُهٗ وَ رُسُلَهٗ بِالْغَيْبِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
قَوِيٌّ عَزِيْزٌ ۝۲۵

हमने रसूलों को खुली निशानियां देकर भेजा, और उनके साथ किताब नाज़िल की, और तराज़ू ताके लोग इन्साफ़ पर क़ायम रहें, और हमने लोहा पैदा किया, उसमें हैबत रखी और लोगों के लिये फ़ायदे भी हैं और इसलिये भी के अल्लाह जांच सके के कौन अल्लाह की और उसके रसूल की बिन देखे मदद करता है, अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला ज़बरदस्त है। (57:25)

यह आयत और इसकी व्याख्या ''आम सिद्धांत'' शीर्षक के अन्तर्गत इससे पहले लिखी जा चुकी है लेकिन यहां इसे इसलिए दोहराया जा रहा है कि इंसानी प्रतिष्ठा के संदर्भ में इसकी उपयोगिता बहुत स्पष्ट है। अल्लाह की उतारी हुई किताबों और अल्लाह के पैग़म्बरों के द्वारा बन्दों को दिया गया संदेश उन्हें सही और ग़लत को समझने का सटीक पैमाना देता है और एक दूसरे को बरतने और इस बर्ताव में संतुलित और सटीक फ़ैसले करने के लिए आदर्श देता है। अल्लाह का तक़वा और नैतिक मर्यादाएं इंसानी अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के लिए ठोस आधार उपलब्ध कराती हैं लेकिन अल्लाह के संदेश की व्याख्या और उसको व्यवहार में लाने के लिए लोगों को अक़ल व बोध की भी ज़रूरत है और यह अक़ल व बोध अर्थात हिक्मत (युक्ति) अल्लाह के पैग़म्बरों और उनके बाद उनके उत्तराधिकारियों (उलिलअम्र) के व्यवहार से ज़ाहिर होती है। इसके अलावा, अधिकारों से लाभान्वित होने और ज़िम्मेदारियों को अदा करने के लिए एक शक्ति भी मौजूद होना चाहिए और यह शक्ति शासन और शासकों के पास सशस्त्र बलों के रूप में मौजूद होती है और इसकी तरफ़ इशारा ''हदीद'' (लोहा) शब्द से किया गया है। लेकिन लोहे के और भी बहुत से फ़ायदे हैं और ये फ़ायदे इंसानी सभ्यता के लम्बे इतिहास से साबित हैं। रक्षा और सभ्यात्मक विकास में खनिजों और ऊर्जा की नेअमतों (ईशवर के वरदानों) के इस्तेमाल से संतुलन स्थापित रखना चाहिए, और यह संतुलन भौतिक विकास में भी बनाए रखना चाहिए।

❁ ❁ ❁

शासकों और शासितों के बीच सम्बंध

وَ لَا تَاْكُلُوْۤا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَ تُدْلُوْا بِهَاۤ اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَ اَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝

और एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो और ना उसको हाकिमों के पास पहुँचाओ के नाजायज़ तौर पर लोगों के माल का कोई हिस्सा खा जाओ, और तुम को इल्म भी हो। (2:188)

शासकों और जनता के बाच सम्बंधों में भृष्टाचार एक गम्भीर समस्या है, और यह भृष्टाचार दोनों ओर से हो सकता हैःएक तरफ़ शासितों यानि जनता का व्यवहार भृष्टाचार पर आधारित और शासकों व अधिकारियों को भृष्ट बनाने वाला हो सकता है और दूसरी तरफ़ स्वयं शासकों और अधिकारियों का व्यवहार भृष्टाचार पर आधारित हो सकता है। ये दोनों व्यवहार आम तौर से बराबर से या एक दूसरे के साथ पनपते हैं, लेकिन कभी कभी कोई पक्ष शुरूआत करता है और दूसरे को भृष्टाचार पर आधारित मामला करने के लिए राज़ी करता है। उपरोक्त आयत जनता अर्थात शासितों को सम्बोधित करती है जो एक दूसरे को उसके अधिकारों से वंचित करने के लिए घूस देकर काम निकालते हैं। पैग़म्बर साहब की एक हदीस में ऐसे व्यक्ति की निन्दा की गयी है जो घसू देता है, घूस स्वीकार करता है और जो उन दोनों के बीच मध्यस्थ बनता है (इब्ने हंबल)। यही नियम जनता के अधिकारों और सार्वजनिक सम्पत्तियों को हड़पने के मामले में भी लागू होता है। ईमानदारी एक सामाजिक मर्यादा है जिस पर पूरे समाज को बने रहना चाहिए लेकिन बेईमानी वाली कोई एक बात भी समाज में भृष्टाचार या बेईमानी फेलने का कारण बन सकती है। जिन लोगों के पास अधिकार होते हैं, चाहे राजनीतिक अधिकार हों, प्रशासनिक अधिकार हों, न्यायिक अधिकार हों या किसी और तरह के अधिकार हों, उन्हें घूस स्वीकार करने के किसी भी लालच और उक्सावे को रद कर देना चाहिए और ऐसे किसी भी प्रयास को असफ़ल बना देना चाहिए। लेकिन समाज में ईमानदारी बनाए रखने की ज़्यादा ज़िम्मेदारी जनता पर ही है और उन्ही की यह ज़िम्मेदारी है कि अधिकारियों और शासकों को भृष्टाचार में लिप्त होने से रोकने के लिए उन पर नज़र रखें। तथापि, इसके बावजूद यह सच्चाई है कि किसी ख़ास समय और स्थान पर ईमानदार लोग कंगाल होते हैं और बेईमान लोग भरे पुरे होते हैं।

وَ لْتَكُنْ مِّنْكُمْ اُمَّةٌ يَّدْعُوْنَ اِلَى الْخَيْرِ وَ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ يَنْهَوْنَ عَنِ

और तुम में एक जमात होनी ज़रूरी है जो .ख़ैर की तरफ़ बुलाया करे और नेक काम करने को कहा करे और बुरे

ٱلْمُنكَرِ ۚ وَأُو۟لَٰٓئِكَ هُمُ ٱلْمُفْلِحُونَ ۝١٠٤

कामों से रोका करे, और यही लोग पूरे कामयाब हैं। (3:104)

यह ऐसे संगठनों और संस्थाओं को विक्सित करने की एक प्रेरणा है जो उन कामों को अंजाम दें जो पूरे मुस्लिम समाज की ज़िम्मेदारी हैं (3:110), जैसे सभी लोगों को अच्छी बातों और अच्छे कामों की तरफ़ बुलाना और ऐसे काम करने का निर्देश देना जिन्हें सभी लोग अच्छा समझते हैं (मअरूफ़), और ऐसे कामों से रोकना जिन्हें लोग ख़ुद अपनी अक़्ल से ही ग़लत और बुरा समझते हैं (मुनकर)। ये संगठन और संस्थाएं सरकारी भी हो सकती हैं और ग़ैर सरकारी भी, और जनता व सरकार दोनों की भागीदारी से चलने वाली भी हो सकती हैं, स्थानीय भी हो सकती हैं और राष्ट्रीय स्तर की भी हो सकती हैं। राजनीतिक दल, व्यवसायिक यूनियनें या सामाजिक संगठन इन वर्गों के प्रतिनिधि हो सकते हैं। उनके अतिरिक्त शिक्षण संस्थाएं और मास मीडिया निर्माणकारी कामों को बढ़ावा देने और विस्तृत करने का प्रभावी माध्यम हैं। इन वर्गों और साधनों के माध्यम से पूरी जनता को आवाज़ उठाने और अपने विचारों को व्यक्त करने का प्रशिक्षण मिलता है। नैतिक बिगाड़ और गिरावट के बारे में सामाजिक उदासीनता के भयंकर नतीजों के संदर्भ में क़ुरआन बार बार कड़ी चेतावनी देता है चाहे यह नैतिक गिरावट ऊपर से आए या नीचे से (8:25(11:13)। जैसा कि अल्लाह के पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की एक हदीस में जहाज़ का उदाहरण दिया गया है कि यात्रियों से भरे किसी जहाज़ में अगर कोई मूर्ख इंसान पानी लेने के लिए छेद करने लगे और बाक़ी लोग उसे इससे रोकें नहीं तो सब के सब डूब जाएंगे (बुख़ारी, इब्ने हंबल, तिरमिज़ी)।

كُنتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ تَأْمُرُونَ بِٱلْمَعْرُوفِ وَتَنْهَوْنَ عَنِ ٱلْمُنكَرِ وَتُؤْمِنُونَ بِٱللَّهِ ۗ وَلَوْ ءَامَنَ أَهْلُ ٱلْكِتَٰبِ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُم ۚ مِّنْهُمُ ٱلْمُؤْمِنُونَ وَأَكْثَرُهُمُ ٱلْفَٰسِقُونَ ۝١١٠

तुम बेहतरीन जमात हो जो अवामुन्नास की ख़िदमत के लिए निकली है, तुम नेकी के लिए कहते हो और बदी से रोकते हो, और अल्लाह पर ईमान लाए हो, और अगर अहले किताब ईमान ले आते तो उनके लिए बेहतर होता, उनमें से बाज़ तो मुसलमान हैं, और अक्सर उनमें काफ़िर हैं। (3:110)

अल्लाह ने अपने संदेश, जिन्हें लाने वाले संदेशवाहकों (पैग़म्बरों) ने कड़ी महनत की और बहुत कष्ट झेले, केवल इस लिए नहीं भेजे कि लोग सिर्फ़ सच्चाई को मान लें कि सृष्टि का जनक केवल एक अल्लाह है, और व्यवहार की दुनिया में इस बात से उनका कोई लेना देना न हो। यह तो अल्लाह के अस्तित्व को इस तरह से मानना हुआ जैसे किसी सितारे, ग्रह या आकाशगंगाओं के होने को स्वीकार कर लिया जाए। ऐसी अव्यवहारिक घोषणा और स्वीकृति

से इंसान को कोई फ़ायदा नहीं होता और निश्चित रूप से अल्लाह को इसकी ज़रूरत नहीं है। अल्लाह की हिदायत का मक़सद यह है कि अल्लाह का तक़्वा (अल्लाह की मुहब्बत और अल्लाह का भय) इंसान के मन मस्तिष्क पर गहराई के साथ अपना प्रभाव रखे और यह प्रभाव व्यक्तियों से समाज तक फैल जाएं। अल्लाह का तक़्वा नैतिक आचरण को गहरा और व्यापक करे, और नेक कामों का आदेश देने व बुरे कामों से रोकने के लिए इंसान को चौकस करे। वरना बिगाड़ और गिरावट की शुरूआत होगी जो हालांकि शुरू में सीमित होगी लेकिन यदि शुरू में ही उसे न रोका जाए तो फिर फैलता जाएगा और समाज के बड़े हिस्से को प्रभावित करेगा (8:125(11:13)। यह अल्लाह के सभी निर्देशों का मक़सद है, और अल्लाह के किसी भी पैग़म्बर पर ईमान रखने वाले लोगों से यह आग्रह किया गया है कि वो इन संयुक्त आधारों पर मुसलमानों के साथ सम्बंध बनाएं। हालांकि इन मानने वालों में से अधिकतर लोगों ने घमण्ड में रहना पसन्द किया और भौतिक हितों के पीछे ही लगे रहे। क़ुरआन ने उनके बारे में कहा है कि उनमें से कुछ लोग ही आस्था के प्रति सच्चे हैं हालांकि वो अपनी आस्थाओं पर ही हैं और इस्लाम की तरफ़ कभी नहीं आते। दूसरों के बारे में फ़ैसला करने में ईमानदारी और सही व्यवहार की शिक्षा के अतिरिक्त, इस आयत में नैतिक कामों के लिए साझा आधार को रेखांकित किया गया है जिस पर मुसलमान दूसरों से मिल सकते हैं ताकि समाज में एक नैतिक निगरानी की व्यवस्था स्थापित हो और यह नैतिक मामला सभी मैदानों में हो, विशेष रूप से शासकों और जनता के बीच सम्बंधों में।

فَبِمَا رَحْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ لِنْتَ لَهُمْ ۚ وَ لَوْ كُنْتَ فَظًّا غَلِيْظَ الْقَلْبِ لَا نْفَضُّوْا مِنْ حَوْلِكَ ۖ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَ اسْتَغْفِرْ لَهُمْ وَ شَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ﴿١٥٩﴾

उसके बाद अल्लाह ही की रहमत से आप उनके साथ नर्म रहे, और अगर आप तुंदखू सख़्त तबीयत होते तो ये सब आपके पास से मुनतशिर हो जाते, सो आप उनको माफ़ कर दीजिये, और उनके लिये असतग़फ़ार कर दीजिये, और उनसे ख़ास ख़ास बातों में मशवरह लेते रहा कीजिये, फ़िर जब आप राय पुख़्ता कर लें तो अल्लाह ही पर एतमाद कीजिये, बिला शुबह अल्लाह एतमाद करने वालों से मोहब्बत करता है। (3:159)

इस आयत में नैतृत्व के एक अनिवार्य गुण को रेखांकित किया गया है और वह यह कि नैतृत्व के अन्दर यह गुण होना चाहिए कि वह इंसानी व्यवहार, व्यक्तिगत झुकाव, कमज़ोरियों और सीमाओं को समझ सके और लोगों के साथ अक़लमन्दी, हमदर्दी और मआफ़ी का व्यवहार रखे। नैतृत्व को किसी भी व्यक्ति से कोई मामला करते समय उसकी सकारात्मक प्रतिभाओं और सम्भावनाओं को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए, केवल उस ख़ास समय पर उसकी स्थिति

को ही नहीं देखना चाहिए। इसके अलावा, रहबर (नेता) उन सभी लोगों का प्रतिनिधि होता है जो उसके पीछे चलते हैं, और किसी व्यक्ति को इस तरह नहीं बरतना चाहिए जैसे कि यह बर्ताव दो लोगों के बीच केवल सम्बंधों का एक हिस्सा हो। एक रहबर को इस बारे में हमेशा सावधान और संवेदनशील रहना चाहिए कि उसके कथन और व्यवहार का किसी पर क्या प्रभाव पड़ेगा। जब कोई अनुयायी सीमाओं का उल्लंघन करे और कुछ ग़लत कर बैठे तो सरदार को उसे न केवल मआफ़ कर देना चाहिए बल्कि उसके लिए अल्लाह से दुआ भी करना चाहिए कि अल्लाह भी उसकी ग़लती मआफ़ कर दें। इसी से यह ज़ाहिर होगा कि सरदार ने उसे वास्तव में मआफ़ कर दिया है।

आम रुचि के मामलों में या कभी कभी कुछ विशेष महत्व वाले निजी मामलों में फ़ैसला लेने में सलाह लेना सरदार और अनुयायियों के बीच सम्बंधों के लिए ज़रूरी है। और यदि यह चीज़ ख़ुद अल्लाह के पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और उनके अनुयायियों के बीच सम्बंधों में अपेक्षित है तो फिर शासकों और जनता के बीच सम्बंधों में तो इससे भी पहले ज़रूरी होगी (42:38)। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने यु) जैसे आम मामलों में भी इस सलाह व मशौरे की क्रिया को हमेशा अपनाया यहां तक कि ऐसे निजी मामलों में भी जिनसे आम लोग प्रभावित हो रहे थे (जैसे अपनी पत्नि आयशा रज़ि पर लांछन लगाए जाने के मामले में, देखें आयत 24:11-25), मशौरा किया। अतः, पब्लिक प०लिसी बनाने में और महत्वपूर्ण फ़ैसले लेने में जनता की भागीदारी जनता का एक मूलभूत अधिकार है जो हर एक को मिलना चाहिए, चाहे उसके अन्दर कितनी ही कमियां रही हों। पैग़म्बर साहब से कहा गया कि आप उन लोगों को मआफ़ कर दिया करें जिन्होंने कोई दोष किया हो और उन्हें मशौरे में शामिल करें उन मामलों में जिनमें उनके मशौरों की ज़रूरत हो। इंसान कभी बे ख़ता नहीं हो सकता और ख़ताकार (दोषी) को उसके अधिकार मिलना चाहिएं और आम मामलों में उसकी भागीदारी होना चाहिए और उसे कभी अलग थलग नहीं कर देना चाहिए, क्योंकि समाज के साथ व्यक्तियों की सहक्रिया (इन्टरेक्शन) से सभी को अपने सुधार का मौक़ा मिलता है। साथ ही यह बात भी है कि सार्जनिक मामलों में इस तरह सामूहिक निर्णय लेने से अराजकता पैदा नहीं होती। सरदार का निर्णय आम राय से अलग या उसके समानान्तर या उसके बराबर नहीं होता बल्कि वह सब की सलाह से किसी निर्णय पर पहुंचता है, जैसा कि कई प्राचीन मुफ़स्सिरों ने यह बिन्दु उजागर किया है (उदारण के रूप में देखें इब्ने कसीर के द्वारा दी गयी मिसालें, ख़ास तौर से यह कि पैग़म्बर साहब सल्ल० ने बद्र की लड़ाई के समय सहाबियों से मशौरा किया, खाई की लड़ाई के समय सहाबियों से मशौरा किया और हज़रत सलमान फ़ारसी की सलाह को अपनाया, और अपनी धर्मपत्नि आयशा रज़ि पर लांछन के मामले में मशौरा किया)।

जनता द्वरारा सत्ता व अधिकार पाने वाले शासक और उनका शासन

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰۤى
اَهْلِهَا ۙ وَ اِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ
تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ
بِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًۢا بَصِيْرًا ﴿۵۸﴾ يٰۤاَيُّهَا
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَ اَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ
وَ اُولِي الْاَمْرِ مِنْكُمْ ۚ فَاِنْ تَنَازَعْتُمْ فِيْ
شَيْءٍ فَرُدُّوْهُ اِلَى اللّٰهِ وَ الرَّسُوْلِ اِنْ
كُنْتُمْ تُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ
ذٰلِكَ خَيْرٌ وَّ اَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ﴿۵۹﴾

बेशक अल्लाह तुम को हुक्म देता है के हक़दारों को उनका हक़ अदा कर दिया करो, और जब तुम फ़ैसला करो लोगों के दरमियान तो इन्साफ़ से फ़ैसला किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम को बहुत ही अच्छी बात की नसीहत करता है, बेशक अल्लाह तो .ख़ूब सुनने वाला और .ख़ूब देखने वाला है। मोमिनों! तुम अल्लाह का कहा मानो, रसूल का कहा मानो, तुम में जो हाकिम हो उनका कहा मानो, अगर तुम में बाहम कोई नज़्आ हो तो तुम उसको अल्लाह और रसूल के हवाले कर दो, अगर तुम अल्लाह पर और यौमे आख़िरत पर यक़ीन रखते हो, ये सब उमूर बेहतर हैं, और उनका अंजाम भी .ख़ुश्तर ही है। (4:58-59)

जनता और उसके मामलों पर अधिकार प्राप्त होना उन लोगों की एक ज़िम्मेदारी होती है जिन्हें जनता ख़ुद अपने बीच से इन अधिकारों को देने के लिए चुनती है, क्योंकि उनका कर्तव्य इंसाफ़ के साथ मामलों को अंजाम देना होता है। एक मुस्लिम समाज के लिए सर्वोत्तम क़ानून अल्लाह का क़ानून है जो क़ुरआन में दिया गया है और प्रमाणित हदीसों (सुन्नत) से मिलता है। क़ुरआन व सुन्नत के नियमों को किसी भी दूसरे सामाजिक और क़ानूनी नियमों पर बरतरी प्राप्त होती है इसके बावजूद कि (ईमान वाले) शासकों का सम्मान और उनके साथ वफ़ादारी को क़ुरआन व सुन्नत ने अनिवार्य किया है और इसका बहुत कड़ाई से आदेश दिया है। बिना किसी संकोच के निःशर्त आज्ञापालन तो अल्लाह के क़ानून के लिए ही है, इसके बाद शासकों या सरदारों के अनुपालन का मामला आता है जिनके फ़ैसलों को तभी माना जाएगा जब वो अल्लाह की नैतिक एवं क़ानूनी शिक्षाओं के अनुसार होंगे और इंसानी ज़रूरत को पूरा करने वाले होंगे। आज्ञापालन का आदेश सबसे पहले आयत 59 में केवल अल्लाह के आज्ञापालन के लिए आया है जिससे अल्लाह की हाकमियत सबसे ऊपर और सबसे पहले और निःशर्त होने का साफ़ संकेत मिलता है, फिर अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के आज्ञापालन का हुक्म है और साथ में ''उलिल अम्र'' के आज्ञापान का आदेश दिया गया है।

अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की प्रमाणित हदीसें भी वह्यि का दर्जा रखती हैं जो अल्लाह के क़ानून का अभिन्न अंग हैं और जिन पर अमल ज़रूरी है। अलबत्ता,

अल्लाह के रसूल के वो कथन और कर्म जो उनकी मानवीय भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करते हैं जैसे यु) के मैदान में लड़ाई के ढंग अपनाना, और ऐसे ही दूसरे संसारिक मामलों में पैग़म्बर साहब सल्ल० के निर्देश जिनमें अल्लाह के पैग़म्बर ने अपने विवेक से काम लिया हो, उनको मानना उस समय आप के साथ लड़ने वाले सहाबियों के लिए एक सेनापति के आदेश के रूप में मानना तो ज़रूरी था लेकिन उन्हें एक मुस्तक़िल क़ानून नहीं समझा जा सकता (उदाहरण के रूप में देखें आयत 3:159 पर इब्ने कसीर और क़ुरतुबी की व्याख्या)। जिन सरदारों ने अल्लाह के रसूल की मृत्यू के बाद मुसमलानों के अमीर के रूप में अल्लाह के रसूल का उत्तराधिकारी बन कर काम किया उन्हें जनता ने ही अपने बीच से चुना था और अधिकार हस्तांतरित किए थे, जैसा कि आयत 59 में ज़ोर देकर कहा गया है। आम लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जब किसी को अपना अगुवा चुनें तो उनका अधिकार और ज़िम्मेदारी यह है भी कि नीतियां बनाने और अन्य महत्वपूर्ण मामलों में भी वो भागीदार हों (3:159(42:38) और अपने अगुवाओं पर नज़र रखें और यह देखते रहें कि अल्लाह के क़ानूनी और नैतिक नियमों के अनुसार वो किस हद तक अमल कर रहे हैं।

जिन लोगों को आम लोग अधिकार और सत्ता देते हैं वो जब अपनी ज़िम्मेदारियां अंजाम देते हैं तो उनके बीच मतभेद भी होता है क्योंकि वो किसी एक व्यक्ति के प्रतिनिधि नहीं होते बल्कि एक संस्थागत सामूहिक नैतृत्व की ज़िम्मेदारी निभाते हैं, जैसा कि आयत 59 में बहुवचन के उपयोग से भी इशारा मिलता है। इसके अतिरिक्त, नैतृत्व के बीच मतभेद भी हो सकता है और दूसरी तरफ़ स्वयं जनता के बीच भी मतभेद होता है। इसलिए इन मतभेदों को एक ऐसी संस्था के समक्ष लाया जाए जो सलाहकार और न्यायिक हैसियत से अल्लाह के क़ानूनों की व्याख्या करने का उच्चतर अधिकार रखती हो:''यह (तुम सब के फ़ायदे के लिए) बहुत अच्छी बात है और इसका अंजाम भी अच्छा है''। मशहूर फ़क़ीह इब्ने तीमिया ने उपरोक्त आयतों को ''शासकों और शासितों से सम्बंधित आयतें'' लिखा है, क्योंकि यह आयतें साफ़ तौर से दोनों के आपसी अधिकारों और ज़िम्मेदारियों को बयान करती हैं।

وَ اِذَا جَآءَهُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ اَوِ الْخَوْفِ اَذَاعُوْا بِهٖ ؕ وَ لَوْ رَدُّوْهُ اِلَى الرَّسُوْلِ وَ اِلٰۤى اُولِى الْاَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْۢبِطُوْنَهٗ مِنْهُمْ ؕ وَ لَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ رَحْمَتُهٗ لَاتَّبَعْتُمُ الشَّيْطٰنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝۸۳

और जब उनको किसी बात की ख़बर मिलती है ख़्वाह अमन की बात हो या ख़ौफ़ की बात हो तो वो उसको मशहूर कर देते हैं, और अगर वो रसूल और अपने सरदारों के पास उस ख़बर को पहुंचाते तो तहक़ीक़ कुनिंदा तो उस ख़बर की तहक़ीक़ कर ही लिया करते और अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़्ल और रहमत ना होती तो तुम सब के सब शैतान के ताबे हो जाते, मगर

थोड़े से ताबे ना होते। (4:83)

यह हर व्यक्ति की ज़िम्मेदारी है कि ऐसी ख़बरों के बिना छानबीन और जांच के फैलाने से बचे जिनसे लोगों की सुरक्षा ख़तरे में पड़ती हो। जब जनता में से कोई इस तरह के संवेदनशील मामलों को उन लोगों तक पहुंचाए जिन्हें उन्होंने अपने मामलों का ज़िम्मेदार बनाया है (अर्थात उलिलअम्र) तो उनकी यह ज़िम्मेदारी है कि लोगों को सही जानकारी दें ताकि सूचित रहने के लोगों के अधिकार को पूरा किया जाए, या उनकी मांग पर उन्हें सूचित किया जाए आवश्यक सावधानियां बरतते हुए। हर मामले में अदालतों को हमेशा यह सुनिश्चित करना चाहिए कि सूचना प्राप्त करने के जनता के अधिकार और अपेक्षित जानकारी को सावधानीपूर्ण व सीमित ढंग से जारी करने के सरकार के अधिकार में संतुलन बना रहे। यह आयत यह बताती है कि जब कोई व्यक्ति जो जन सुरक्षा से सम्बंधित किसी मामले की जांच चाहता हो तो सम्बंधित अधिकारी को सीधे इसकी सूचना दे ताकि वह जानकारी उसे प्राप्त हो, और इस तरह अधिकारियों की इस ज़िम्मेदारी पर ज़ोर दिया गया है कि वो सही सही जानकारियां प्राप्त करने के जन अधिकार को पूरा करें। इसी तरह, उस मजबूरी का सुबूत देने की ज़िम्मेदारी भी अधिकारियों पर ही आती है जिसके चलते वो किसी जानकारी को राज्य की बहतरी और जनहित में रोक कर रखें। इस तरह, यह क़ुरआनी आयत इस आधुनिक और प्रगतिवादी रूजहान का समर्थन करती है जिसके तहत सूचना के अधिकार को जनता का मौलिक अधिकार माना गया है।

मर्दो व औरतों की समान सामाजिक ज़िम्मेदारी

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَ الْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ يَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَ يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَ يُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝

मोमिन मद्र, और मोमिन औरतें, आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं, अच्छे काम करने को कहते हैं, और बुरे कामों से मना करते हैं, नमाज़ पाबंदी से पढ़ते हैं, और ज़कात देते हैं, और अल्लाह और रसूल की इताअत करते हैं, उन्हीं पर अल्लाह जल्द रहम करेगा, बिलाशुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त और बड़ी हिकमतों वाला है। (9:71)

यह आयत एक अनिवार्य सामाजिक व क़ानूनी सिद्धांत को बयान करती है कि मर्द और औरतें एक दूसरे के प्रति बराबर की ज़िम्मेदारी रखते हैं, और यह कि ''अम्र बिल मअरूफ़'' और ''नही अनिल मुनकर''(अच्छी बातों व कामों पर ज़ोर और बुरी बातों व कामों से रोकना),

इबादत के माध्यम से अल्लाह से अपने सम्बंध को बनाए रखने तथा उसकी हिदायत पर चलने, ज़कात के द्वारा सामाजिक एकता व सौहार्द को बनाए रखने और सामूहिक रूप से अल्लाह व रसूल की शिक्षाओं पर चलने की ज़िम्मेदारी दोनों की है। महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों लिंगों के लिए बहुवचन पुलिंग और बहुवचन स्त्रीलिंग को अलग अलग एक ही तरह से बयान किया गया है और महिलाओं के अधिकारों व ज़िम्मेदारियों में किसी भी तरह का भ्रम नहीं है यह कि मर्दों के बराबर ही हैं और मर्दों से अलग हैं। अतः पॉलिसी मेकिंग में और आम समस्याओं से सम्बंधित महत्वपूर्ण मामलों में भी जनता की सामाजिक और राजनीतिक ज़िम्मेदारियों में महिलाएं पुरूषों के साथ शरीक हैं। और जब वो किसी सामाजिक और राजनीतिक पद की ज़िम्मेदारी अंजाम देने के योग्य हों तो वो उसमें भाग लेने की पात्र हैं। इस्लाम के फ़िक़्ही ज़ख़ीरे (विधि शास्त्र के भण्डार) में अलतिबरी और इब्ने हज़्म का यह चिंतन मौजूद है कि औरत जज बन सकती है अगर वह इस पद के तक़ाज़े पूरे करती हो (देखें इब्ने रुश्द की हिदायतुल मुजतहिद, जिल्द 2, इब्ने हज़्म की अलमुहल्ला, जिल्द 10 ''जज के पद के लिए लवाज़िम'', और देखें अल्हुक्म जिल्द 3 :बहुवचन पुलिंग के साथ बहुवचन स्त्रीलिंग का ज़िक्र आने पर चर्चा)। इस आयत से यह ज़ाहिर होता है कि क़ुरआन ने अल्लाह के इंसाफ़ की महानता और उसकी सर्वोच्चता को बयान किया है, और क़ुरआन के उतरने के समय अरब में या और कहीं भी इंसानों की जो सामाजिक और क़ानूनी सोच थी उसको प्रतिबिम्बित नहीं किया है।

जनमत और सार्वजनिक कामों के मार्गदर्शन में सरकार की नैतिक ज़िम्मेदारी

اَلَّذِیۡنَ اِنۡ مَّکَّنّٰہُمۡ فِی الۡاَرۡضِ اَقَامُوا الصَّلٰوۃَ وَ اٰتَوُا الزَّکٰوۃَ وَ اَمَرُوۡا بِالۡمَعۡرُوۡفِ وَ نَہَوۡا عَنِ الۡمُنۡکَرِ ؕ وَ لِلّٰہِ عَاقِبَۃُ الۡاُمُوۡرِ ﴿۴۱﴾

ये वो लोग हैं के अगर हम उनको हुकूमत दें मुल्क में तो वो नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें और नेक काम करने का हुक्म दें और बुरे कामों से मना करें, और सब कामों का अंजाम अल्लाह ही के इख़्तियार में है। (22:41)

चूंकि सदाचारिता (अच्छे कर्म व आचरण) और न्याय का प्रचार और बुराइयों व अन्याय का विरोध व प्रतिरोध इस्लाम और उसके अनुयायियों के संदेश का निचोड़ है इसलिए अपने में से जिन लोगों को वो किसी भी जगह अधिकार और शक्तियां हस्तांतरित करते हैं तो यह काम यानि अच्छाई व न्याय को बढ़ावा देना और बुराई व अन्याय की रोकथाम करना उनका एक अनिवार्य कर्म बन जाता है। ऐसे व्यक्तियों को अल्लाह के दीन में सिखाए गए नैतिक मर्यादाओं

और न्याय के सिद्धांतों को अपने आधीन क्षेत्रों में लागू करने के लिए अपना अधिकार इस्तेमाल करना चाहिए और पूरी दुनिया में नैतिकता, न्याय और शान्ति का समर्थन करना चाहिए। यह तभी होगा जब सच्चाई और इंसाफ़ का व्यवहार अपने बीच में भी किया जाएगा और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मुसलमान ख़ुद अपने और सारी मानवता के लिए एक निर्माणकारी शक्ति बनेंगे (3:110), और अल्लाह के पैग़म्बर उन पर इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने के गवाह बनेंगे जबकि मुसलमान ख़ुद इस मामले में तमाम इंसानों के लिए गवाह बनेंगे (22:78)। यह सभी ईमान वाले मर्दों व औरतों की विश्वव्यापी जिम्मेदारी है, लेकिन इसको पूरा करने का काम और इसमें सहयोग वही लोग करेंगे जिनके पास शासन की शक्ति होगी।

पब्लिक पॉलिसी बनाने में जनता की भागीदारी (सलाह व मशौरा)

فَبِمَا رَحْمَةٍ مِّنَ اللّٰهِ لِنْتَ لَهُمْ ۚ وَ لَوْ كُنْتَ فَظًّا غَلِيْظَ الْقَلْبِ لَا نْفَضُّوْا مِنْ حَوْلِكَ ۖ فَاعْفُ عَنْهُمْ وَ اسْتَغْفِرْ لَهُمْ وَ شَاوِرْهُمْ فِي الْاَمْرِ ۚ فَاِذَا عَزَمْتَ فَتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَوَكِّلِيْنَ ﴿١٥٩﴾

उसके बाद अल्लाह ही की रहमत से आप उनके साथ नर्म रहे, और अगर आप तुंदखू सख़्त तबीयत होते तो ये सब आपके पास से मुनतशिर हो जाते, सो आप उनको माफ़ कर दीजिये, और उनके लिये असतग़फ़ार कर दीजिये, और उनसे ख़ास ख़ास बातों में मशवरह लेते रहा कीजिये, फ़िर जब आप राय पुख़्ता कर लें तो अल्लाह ही पर एतमाद कीजिये, बिला शुबह अल्लाह एतमाद करने वालों से मोहब्बत करता है। (3:159)

وَالَّذِيْنَ اسْتَجَابُوْا لِرَبِّهِمْ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ ۖ وَ اَمْرُهُمْ شُوْرٰى بَيْنَهُمْ ۖ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ﴿٣٨﴾

और जो अपने रब का फ़रमान क़ुबूल करते हैं, और नमाज़ की पाबंदी करते हैं और उनका हर काम आपस के मशवरे से होता है और जो कुछ हमने उनको दिया है उसमें से खर्च करते हैं। (42:38)

यहां हम नीतियां बनाने और जनरुचि के मामलों को तय करने में जनता को भागीदार बनाने का निर्देश देखते हैं, और यह कि सामाजिक ज़रूरतों के लिए व्यक्तियों की प्रतिबद्धता इस्लामी समाज की बुनियादी विशेषताएं हैं, और इसके साथ साथ अल्लाह की पुकार पर चले आना और नमाज़ की व्यवस्था बनाना। ऐसे समाज के लिए ''शूरा'' (सलाहकारिता) अपने व्यापक परिप्रेक्ष्य और अनिवार्य नतीजों के साथ एक ज़रूरी बात है और इसकी शुरूआत परिवार में कुंबे के स्तर से होती है। पति-पत्नि को घर के मामले आपसी रज़ामन्दी और सलाह

मशौरे से चलाना चाहिएं (2:232), और घर के छोटे व्यक्तियों यानि बच्चों को उनके मातापिता नैतिकता और सच्चाई व सद्कर्म की शिक्षा दें (31:17)। इसी तरह, ज़रूरतमंद व्यक्तियों पर और सामूहिक ज़रुरतों पर ख़र्च करने की ज़िम्मेदारी भी घर और पड़ोस से शुरू होती है (2:83,177,180,215(4:8,36,135(6:152(16:90(17:26,30-38)। अच्छे आचरण और न्याय जैसे नैतिक संस्कार सीखने और उन पर अमल करने के लिए परिवार एक प्राथमिक समाज होता है, और फिर परिवार से ही ये मर्यादाएं पूरे समाज में फैलती हैं (25:74)। जब तक लोग स्वयं और निचले स्तर पर आपस में सलाह मशौरा करने और सामूहिक फ़ैसला लेने की आदत वाले न बनेंगे, इस मौलिक अवधारणा को ऊंचे स्तर पर शासकों के द्वारा व्यवहार में लाने की उम्मीद नहीं की जा सकती।

❁ ❁ ❁

सामाजिक व आर्थिक न्याय

ज़रूरतमंदों को देना और उन पर ख़र्च करना

ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۛ فِيْهِ ۛ هُدًى
لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝٢ الَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِالْغَيْبِ وَ
يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۝٣

ये हिदायत देने वाली है, .ख़ुदा से डरने वालों को। जो यक़ीन रखते हैं पोशीना चीज़ों का और क़ायम रखते हैं नमाज़ को और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से .ख़र्च करते हैं। (2:2-3)

अल्लाह का तक़वा रखने वाला व्यक्ति केवल अपनी इन्द्रियों से प्राप्त होने वाली जानकारियों तक सीमित रहने से बचता है, और नतीजे निकालने की बौद्धिक योग्यता, अनुमान और अन्तःदृष्टि को नज़रअंदाज़ नहीं करता है। वह केवल एक अल्लाह की इबादत करता (या करती) है जिसके वजूद को वह अपनी इन इंसानी शक्तियों से पहचानता (पहचानती) है। केवल अल्लाह की इबादत करना और अल्लाह के लिए नमाज़ पढ़ना कल्पनात्मक और व्यवहारिक रूप से अल्लाह से जुड़े होने का इज़हार है। इसके बाद अगली आयत में उन लोगों पर ख़र्च करने को कहा गया है जो ज़रूरतमंद हैं और उन कामों पर ख़र्च करने के लिए जो समाज के लिए ज़रूरी हैं। इससे इस्लाम में ''इन्फ़ाक़'' (अल्लाह की राह में ख़र्च) और ''ख़ैरात''का महत्व मालूम होता है। अल्लाह का तक़वा रखने वाला कोई व्यक्ति अपने माल में से वंचित लोगों को देने का पाबन्द है, और यह देना (इन्फ़ाक़) भौतिक रूप में भी हो सकता है यानि दौलत के रूप में या खाने और कपड़े के रूप में, या शरीरिक सहायता, शिक्षा व दूसरी सेवाओं के माध्यम से भी हो सकता है क्योंकि अल्लाह का तक़वा स्वार्थपूर्ति और अहंकार को कुचलने और दूसरों का ध्यान करने से और उनके साथ हमदर्दी व सहयोग से साबित होता है। अल्लाह के तक़वा की ये बुनियादी बातें इस्लामी अक़ीदे में सामाजिक कामों के महत्व को उजागर करती हैं, और इस बात को कड़ाई से रद करती हैं कि ''तक़द्दुस'' (पवित्रता) केवल नमाज़ और रोज़े से ही ज़ाहिर होती है। सही अर्थों में अल्लाह की इबादत उतनी ही गहराई, व्यापकता और समग्रता के साथ होना चाहिए जितना इंसान का दिल अल्लाह के तक़वा से आबाद है, और सभी मामलों में अल्लाह की हिदायत के अनुसरण से ही इसका मतलब समझा जाना चाहिए। अल्लाह को ख़ुद को ज़ाहिर करने और अपनी इबादत कराने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि अपनी मख़लूक़ इंसानी प्रजाति के फ़ायदे के लिए अल्लाह यह चाहते हैं कि इंसान अपने रब को पहचाने और उसकी इबादत करे, अच्छे कामों को बढ़ावा दे और ज़रूरतमंद व्यक्तियों की मदद करे ताकि

समाज का भला हो।

وَ اَنۡفِقُوۡا فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ وَ لَا تُلۡقُوۡا بِاَیۡدِیۡکُمۡ اِلَی التَّہۡلُکَۃِ ۚۖۛ وَ اَحۡسِنُوۡا ۚۛ اِنَّ اللّٰہَ یُحِبُّ الۡمُحۡسِنِیۡنَ ﴿۱۹۵﴾

और अल्लाह की राह में .खर्च किया करो, और अपने आपको अपने हाथों हलाकत में ना डालो, और नेकी किया करो, बिलाशुबह अल्लाह नेकी करने वालों को अपना महबूब रखता है। (2:195)

यह एक और क़ुरआनी आयत है जो ज़रूरतमंद व्यक्तियों को देने और समाज के कल्याण के कामों में ख़र्च करने के सिद्धांत पर ज़ोर देती है। यह आयत लोगों को ख़बरदार करती है कि इस ज़िम्मेदारी को पूरा करने में उनकी असफ़लता और अदूरदर्शिता स्वयं अपने आप को एक सामूहिक नुक़सान और सामाजिक आत्महत्या में डालने का कारण बनेगी। दूसरे लोगों और सामूहिक रूप से पूरे समाज के प्रति आदमी की इस ज़िम्मेदारी पर क़ुरआन की कई आयतों में ज़ोर दिया गया है, और अल्लाह के रसूल सल्ल्लाहो अलैहि वसल्लम की कई हदीसों में मुसलमानों की सामूहिक सक्रियता को एक शरीर की सक्रियता के समान बताया गया है (रिवायतःमुस्लिम, इब्ने हंबल), और किसी बिल्डिंग के विभिन्न भागों के एक दूसरे पर निर्भर होने का उदाहरण दिया गया है (बुख़ारी, इब्ने हंबल और तिरमिज़ी)।

مَثَلُ الَّذِیۡنَ یُنۡفِقُوۡنَ اَمۡوَالَہُمۡ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ کَمَثَلِ حَبَّۃٍ اَنۡۢبَتَتۡ سَبۡعَ سَنَابِلَ فِیۡ کُلِّ سُنۡۢبُلَۃٍ مِّائَۃُ حَبَّۃٍ ؕ وَ اللّٰہُ یُضٰعِفُ لِمَنۡ یَّشَآءُ ؕ وَ اللّٰہُ وَاسِعٌ عَلِیۡمٌ ﴿۲۶۱﴾ اَلَّذِیۡنَ یُنۡفِقُوۡنَ اَمۡوَالَہُمۡ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ ثُمَّ لَا یُتۡبِعُوۡنَ مَاۤ اَنۡفَقُوۡا مَنًّا وَّ لَاۤ اَذًی ۙ لَّہُمۡ اَجۡرُہُمۡ عِنۡدَ رَبِّہِمۡ ۚ وَ لَا خَوۡفٌ عَلَیۡہِمۡ وَ لَا ہُمۡ یَحۡزَنُوۡنَ ﴿۲۶۲﴾ قَوۡلٌ مَّعۡرُوۡفٌ وَّ مَغۡفِرَۃٌ خَیۡرٌ مِّنۡ صَدَقَۃٍ یَّتۡبَعُہَاۤ اَذًی ؕ وَ اللّٰہُ غَنِیٌّ حَلِیۡمٌ ﴿۲۶۳﴾ یٰۤاَیُّہَا الَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تُبۡطِلُوۡا صَدَقٰتِکُمۡ بِالۡمَنِّ وَ الۡاَذٰی ۙ

जो अपना माल अल्लाह की राह में खर्च करते हैं। उनके माल की मिसाल उस दाने की सी है जिससे सात बालें उगीं और हर बाल के अन्दर सौ सौ दाने हों, और अल्लाह जिसे चाहता है.ज्यादा कर देता है। और अल्लाह बड़ी वुसअत वाला और जानने वाला है। जो लोग अपना माल अल्लाह की राह में खर्च करते हैं फिर खर्च करने के बाद ना तो एहसान जतलाते हैं और ना तकलीफ़ पहुंचाते हैं उनका सिला तो उनके रब के हां है ही, और क़यामत के दिन उनको ना तो कोई खौफ़ होगा और ना वो ग़मगीन होंगे। मुनासिब बात कह देना और दरगुज़र कर देना ऐसी .खैरात से बेहतर है जिसके बाद आज़ार पहुंचाया जाए और अल्लाह ग़नी है हिलम वाला है। ऐ मोमिनों! अपने सदक़ातो .खैरात को एहसान जता कर और ईज़ा देकर बर्बाद ना करो जिस तरह वो जो लोगों को दिखावे के लिए ही अपना माल खर्च करता है। और अल्लाह पर

और रोज़े आख़िरत पर यक़ीन नहीं रखता। उस माल की मिसाल उस चट्टान की मानिंद है जिस पर थोड़ी सी मिटटी पड़ी हो और उस पर ज़ोर का मेंह बरस कर उसे साफ़ कर डाले। इसी तरह रियाकार अपने आमाल का ज़रा सा हिस्सा भी हासिल नहीं करेंगे। और अल्लाह नाशुक्रों को हिदायत ही नहीं दिया करता। और जो अल्लाह की रज़ा और ख़ुशनूदी के लिए और .ख़ुलूसे दिल से अपना माल .ख़र्च करते हैं, उनकी मिसाल एक बाग़ की मानिंद है जो ऊँची जगह पर वाक़े हो जब उस पर मेंह पड़े तो दुगना फल लाये। और अगर मेंह ना भी पड़े तो .ख़ैर फूवार ही सही। और अल्लाह तुम्हारे कामों को तो .ख़ूब देख रहा है ही। क्या तुम में कोई ये पसंद करता है कि उसका खजूरों और अंगूरों का बाग़ हो जिसमें नहरें बह रही हों और उस में उसके लिए हर क़िस्म के मेवे मौजूद हों और उसे बुढ़ापा आ पड़े और उसके नन्हे नन्हे बच्चे हों तो नागहां उस बाग़ पर आग का भरा हुआ बगूला चले और वो जल कर राख का ढेर हो जाए। इस तरह अल्लाह तुम से अपनी आयात खोल खोल कर बयान करता है ताकि तुम सोचो और समझो। मोमिनों! जो पाकीज़ा और उम्दा माल कमाते हो और जो चीज़ें हम तुम्हारे लिए ज़मीन से निकालते हैं उनमें से खर्च करो। और बुरी और नापाक चीज़ें देने का क़स्द ना करना के अगर वो चीज़े तुम को दी जायें तो बजुज़ इसके के लेते वक़्त आंखें बन्द कर लो उनको कभी न लो, और जान लो के अल्लाह परवाह नहीं करता। और वो तो है ही हर क़िस्म की तारीफ़ और सना का हक़दार और सज़ावार। (देखो!) शैतान (का कहा ना मानना वो) तुम को तंगदस्ती का खौफ़ दिलाता है और बे हयाई के काम करने को कहता है। और अल्लाह तुम से अपनी बख़्शिश और रहमत का वादा करता है, और अल्लाह ही बड़ी वुसअत वाला और .ख़ूब जानने वाला है। वो जिसको

كَالَّذِىْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ وَ لَا
يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ
صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ
فَتَرَكَهٗ صَلْدًا ؕ لَا يَقْدِرُوْنَ عَلٰى شَىْءٍ
مِّمَّا كَسَبُوْا ؕ وَ اللّٰهُ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ
الْكٰفِرِيْنَ (٢٦٤) وَ مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ
اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَ تَثْبِيْتًا
مِّنْ اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍۭ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا
وَابِلٌ فَاٰتَتْ اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ
يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ
بَصِيْرٌ (٢٦٥) اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ
جَنَّةٌ مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّ اَعْنَابٍ تَجْرِىْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ
وَ اَصَابَهُ الْكِبَرُ وَ لَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَآءُ ۖ
فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ؕ
كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ
تَتَفَكَّرُوْنَ (٢٦٦) يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَنْفِقُوْا
مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَ مِمَّآ اَخْرَجْنَا
لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۖ وَ لَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ
مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ وَ لَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّآ اَنْ
تُغْمِضُوْا فِيْهِ ؕ وَ اعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ غَنِىٌّ
حَمِيْدٌ (٢٦٧) اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ الْفَقْرَ وَ
يَاْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَآءِ ۚ وَ اللّٰهُ يَعِدُكُمْ
مَّغْفِرَةً مِّنْهُ وَ فَضْلًا ؕ وَ اللّٰهُ وَاسِعٌ

عَلِيْمٌ ۝٢٦٨ يُّؤْتِى الْحِكْمَةَ مَنْ يَّشَآءُ ۚ وَمَنْ
يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِىَ خَيْرًا كَثِيْرًا ۗ وَمَا
يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ۝٢٦٩ وَمَآ اَنْفَقْتُمْ
مِّنْ نَّفَقَةٍ اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ
اللّٰهَ يَعْلَمُهٗ ۗ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ۝٢٧٠
اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِىَ ۚ وَاِنْ
تُخْفُوْهَا وَتُؤْتُوْهَا الْفُقَرَآءَ فَهُوَ خَيْرٌ
لَّكُمْ ۗ وَيُكَفِّرُ عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ ۗ وَاللّٰهُ
بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ۝٢٧١ لَيْسَ عَلَيْكَ
هُدٰىهُمْ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ ۗ وَ
مَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَلِاَنْفُسِكُمْ ۗ وَمَا
تُنْفِقُوْنَ اِلَّا ابْتِغَآءَ وَجْهِ اللّٰهِ ۗ وَمَا
تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ يُّوَفَّ اِلَيْكُمْ وَاَنْتُمْ لَا
تُظْلَمُوْنَ ۝٢٧٢ لِلْفُقَرَآءِ الَّذِيْنَ اُحْصِرُوْا فِىْ
سَبِيْلِ اللّٰهِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ ضَرْبًا فِى
الْاَرْضِ ۡ يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ اَغْنِيَآءَ
مِنَ التَّعَفُّفِ ۚ تَعْرِفُهُمْ بِسِيْمٰهُمْ ۚ لَا
يَسْـَٔلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ۗ وَمَا تُنْفِقُوْا
مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ۝٢٧٣ اَلَّذِيْنَ
يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ سِرًّا وَّ
عَلَانِيَةً فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا
خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٢٧٤

चाहता है हिकमतों से नवाज़ता है, और जिस को हिकमत अता हुई बिला शुबह बड़ी नेमत मिली उसको। और नसीहत तो वही क़ुबूल करते हैं जो अक़्ल वाले हैं। और जो तुम अल्लाह की राह में ख़र्च करो या कोई मन्नत मानो तो अल्लाह उसको ख़ूब जानता है। और ज़ालिमों का कोई मदद करने वाला न हो। अगर तुम ख़ैरात ज़ाहिर करके दो तो वो भी खूब है। और अगर पोशीदा करके दो हाजतमंद को तो ये तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहरत है और इस तरह देना तुम्हारे गुनाहों को भी दूर कर देगा। और अल्लाह तो तुम्हारे सारे कामों से ख़ूब बाख़बर हैं। (ऐ नबी (स.अ.स.)!) उनकी हिदायत के लिए आप ज़िम्मेदार नहीं बल्के अल्लाह जिसको चाहता है हिदायत देता है (और मोमिनों!) तुम जो माल ख़र्च करोगे तो उसका फ़ायदा तुम्ही को होगा। और तुम जो ख़र्च करोगे अल्लाह ही की रज़ा हासिल करने के लिए करोगे और जो माल तुम ख़र्च करोगे। वो तुम को पूरा पूरा दे दिया जाएगा और तुम्हारा कोई नुक़सान न होगा। और जो तुम ख़र्च करोगे तो ये हक़ उन हाजतमंदों का है जो अल्लाह की राह में रूके हुए है। और मुल्क में किसी तरफ़ जाने की सकत नहीं रखते (और मांगने से आर है) नावाक़िफ़ लोग उनको ना मांगने के सबब ग़नी ख़्याल करते हैं। और तुम उनको क़्याफ़े से साफ़ पहचान लो के हाजतमंद हैं, लोगों से लिपट कर नहीं मांगते। और तुम जो माल (उन पर) ख़र्च करोगे। बिलाशुबह अल्लाह तआला उसको ख़ूब जानता है। जो अपना माल रात और दिन और पोशीदा और ज़ाहिर अल्लाह की राह में ख़र्च करते रहते हैं। उनका सिला उनके रब के पास है, और उनको क़यामत के दिन न तो कोई ख़ौफ़ ही होगा और ना कोई ग़म। (2:261-274)

ये आयतें 'इन्फ़ाक़' यानि ज़रूरतमंदों व्यक्तियों पर या सामूहिक रूप से पूरे समाज की

ज़रूरतों के लिए ख़र्च करने के सिद्धांतों को विस्तार से बयान करती हैं, और इससे सम्बंधित महत्पूर्ण धारणाओं और नैतिक व्यवहार की शिक्षा देती हैं। ये इन्फ़ाक़ न केवल सीधे तौर पर खाने पीने की ज़रूरतों के लिए होना चाहिए बल्कि काम करने के ज़रूरी प्रशिक्षण या उचित पूंजी और उपकरण व औज़ार उपलब्ध कराने के लिए भी होना चाहिए ताकि ज़रूरतमंद के लिए कारोबार और आमदनी के अवसर पैदा हों। इन्फ़ाक़ का यह काम चाहे ख़ाने पीने की ज़रूरतें पूरी करने के लिए हो या इससे भी आगे बढ़ कर पैदावारी क्षमता पैदा करने और उसे बढ़ाने के लिए हो, पूरे समाज तक पहुंचता है और इससे इंसानी और भौतिक संसाधन विक्सित होते हैं, इस तरह आर्थिक अवसर बढ़ते हैं और इस तरह से बढ़ते हैं "जैसे एक दाना जिससे सात बालियां उगें और हर बाली में सो सो दाने हों"। इन्फ़ाक़ यानि सदक़ा और ख़ैरात के लाभकारी नतीजे पूरे समाज को प्राप्त होते हैं, लेकिन इसका नैतिक मूल भी बहुत ज़रूरी है जिससे इंसानी विकास की हिफ़ाज़त होती है जो सामाजिक और आर्थिक विकास को जारी रखने के लिए ज़रूरी है। अतः, इन्फ़ाक़ दिखावे की एक प्रक्रिया नहीं होनी चाहिए जिससे देने वाले की दानशीलता का दिखावा हो और लेने वाले को शर्मिन्दगी की पीड़ा झेलना पड़े (2:262-266), क्योंकि एक तरफ़ अहंकार और दूसरी तरफ़ अपमान की भावना से इस पूरी प्रक्रिया के नैतिक प्रभाव और निरन्तरता को नुक़सान पहुंचता है।

क़ुरआन की इस मिसाल से यह बात समझ में आती है कि इस तरह के ग़लत बर्ताव से वह ज़मीन ख़राब हो जाएगी जिसमें सदक़ा व खैरात के बीज डाले गए हों और इस वजह से वहां फल आने की उम्मीद नहीं की जा सकती, जबकि एक उचित नैतिकतापूर्ण कार्यशैली से सम्भावित नतीजे बरामद होंगे या दूसरे पहलुओं से और भी ज़्यादा फ़ायदे प्राप्त होंगे। अलबत्ता, बिना छुपाए इन्फ़ाक़ करने को मना नहीं किया गया है, ख़ास तौर से तब जबकि यह सामाजिक ज़रूरत के लिए किया जा रहा हो (2:271)। लोगों के सामने यानि दिखा कर ख़र्च करने का फ़ायदा यह है कि इससे दूसरों को प्रेरणा मिलती है और एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर देने का जज़्बा पैदा होता है। सामान्य स्थितियों में सदक़ा और ख़ैरात को एक सामाजिक मूल्य बन जाना चाहिए जो आने वाली पीढ़ियों में स्थानान्तरित होता रहे लेकिन अगर उसकी नैतिक जड़ें सूख जाएं यानि नैतिक आधारों को अनदेखा कर दिया जाए जिससे जीवन बना रहता है तो यह निरन्तरता जारी नहीं रहेगी और समय बीतने के साथ साथ उनका फ़ायदा कमज़ोर बुज़ुर्गों व बच्चों को प्राप्त नहीं होगा। जब कोई व्यक्ति अपनी कोई चीज़ सदक़ा करे तो उसकी पहली शर्त यह है कि यह चीज़ और उस पर अधिकार जायज़ तरीक़े से और ईमादारी के साथ प्राप्त किया गया हो (2:267-269)। किसी व्यक्ति या समाज को नुक़सान पहुंचा कर दौलत हासिल करना और फिर इस दौलत में से कुछ व्यक्तियों को देना या सामाजिक कल्याण के काम में ख़र्च करना एक बेमतलब और बेनतीजा बात है। इन्फ़ाक़ और सदक़ा हलाल, जायज़ और ईमानदारी

की आमदनी से होना ज़रूरी है, और एक अक़लमन्द आदमी को ज़रूरतंद व्यक्तियों या समाज के कल्याण के लिए खर्च करने के वास्ते नाजायज़ तरीक़े से कमाने के उक्सावे और हुज्जतबाज़ी से बचना चाहिए। यह शैतान है जो लोगों को यह समझाने की कोशिश करता है कि इन्फ़ाक़ और ख़ैरात से ख़ुद उनको नुक़सान पहुंचेगा और उनका माल कम हो जाएगा, और उन्हें ऐसे काम करने पर उक्साता है जो अनुचित हों और बेशर्मी के हों। जो व्यक्ति अक़ल रख़ता हो और चिंतन से काम लेता हो वह यह समझ सकता है कि कमाने और ख़र्च करने के काम को व्यक्तियों और समाज की नैतिक और आर्थिक प्रगति से अलग नहीं किया जा सकता। नाजायज़ तरीक़े से कमाने और दिखावे के लिए ख़र्च करने में इंसान जो उपाय करता है उससे वह ख़ुद को और दूसरे इंसानों को धोखा दे सकता है, लेकिन अल्लाह को धोखा नहीं दे सकता (2:270)।

इस आयत (2:272) के अनुसार ज़रूरतमंद व्यक्तियों को देने का काम केवल मुसलमानों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उन सभी लोगों की मदद करना चाहिए जो ज़रूरतमंद हों। यह आयत जिसमें पैग़म्बर साहब और मदीना के मुसलमानों को सम्बोधित किया गया है, ग़ैर-मुस्लिम ज़रूरतमंदों को सदक़ा व ख़ैरात के दायरे से बाहर नहीं करती, क्योंकि जिस चीज़ का लिहाज़ करना ज़रूरी है वह ज़रूरत है ना कि ईमान (देखें इस आयत के सम्बंध में अलतिबरी, इब्ने कसीर, अलराज़ी, अलक़ुरतुबी और दूसरे मुफ़स्सिरों की तफ़सीरें, तथा वो हदीसें जो इन लोगों ने नक़ल की हैं)। इसी तरह एक ग़ैर-मुस्लिम की इंसानी ज़रूरत उसके ज़रूरतमंद होने की वजह से पूरी की जानी चाहिए और उसके बदले में उसे इस्लाम क़ुबूल करने के लिए मजबूर नहीं करना चाहिए (देखें ख़ास तौर से अलराज़ी की तफ़सीर)। यह रिवायत नक़ल की गयी है कि अमीरुलमोमिनीन ख़लीफ़ा उमर रज़ि ने एक ज़ूरूरतमंद बुज़ूर्ग यहूदी को ज़कात के माल में से मुस्तक़िल सहायता राशि जारी करने का फ़ैसला लिया था, और हज़रत ख़ालिद बिन वलीद ने हीरा में मुसलमानों के राजकोष को ग़ैर मुस्लिम ज़रूरतमंदों के लिए इस्तेमाल करना मंज़ूर किया था, जैसा कि अबु यूसुफ़ ने अपनी किताबुल खराज में ज़िक्र किया है। शरीअत में मानव अधिकारों और सामाजिक व आर्थिक न्याय का एक मौलिक सिद्धांत यह है कि सभी इंसानों के अधिकार बराबर हैं जो उन्हें इंसान और आदम की संतान होने के आधार पर दिए जाएंगे, चाहे उनकी आस्था, धर्म, समुदाय और नस्ल या लिंग कुछ भी हो (17:70)।

किसी व्यक्ति के लिए ज़मीन पर चलने फिरने और रोज़गार प्राप्त करने से अक्षमता, प्रतिबंध या हदबंदी का मतलब यह है कि वह ज़रूरतमंद आदमी है। जिन लोगों को उनके दीन व ईमान की वजह से दुनिया में आज़ादी के साथ घूमने फिरने या एक जगह से दूसरी जगह जाने से रोक दिया जाए वो उन लोगों की तरह हैं जो इन्फ़ाक़ के पात्र बनते हैं, लेकिन केवल वो लोग ही अकेले पात्र नहीं हैं। वो तमाम लोग जो शरीरिक अपंगता की वजह से या उत्पीड़न व अत्याचार

की वजह से रोज़गार की तलाश में ज़मीन पर चल फिर नहीं सकते वो मानव अधिकारों के मौलिक तत्वों और इंसानी प्रतिष्ठा से वंचित हैं जो कि अल्लाह ने आदम की सभी संतान को दी है, जैसा कि क़ुरआन में कहा गयाः''और हमने बनी आदम को इज़्ज़त दी और उनको जंगल व दरिया में सवारी दी और पाकीज़ा रोज़ी अता की और अपनी बहुत सी मख़लूक़ात पर प्रतिष्ठा दी''(17:70)। रोज़गार के लिए काम करना ज़रूरी है, और काम के व्यापक अवसर प्राप्त करने और इंसान होने के विश्वव्यापी चरित्र को पूरा करने के लिए चलत फिरत और आने जाने की आज़ादी ज़रूरी है।

इन्फ़ाक़ और ज़कात को इस तरह से व्यवस्थित भी किया जा सकता है कि साल में एक या अधिक बार निर्धारित समय पर निकाल दिया जाए, लेकिन व्यक्तिगत और सामाजिक ज़रूरतों को देखते हुए यह ख़र्च समय समय पर भी हो सकता है और दिन रात ख़र्च करते रहना भी हो सकता है (2:274), इसे क़ानून बनाकर निश्चित भी किया जा सकता है और लोगों के विवेक पर भी छोड़ा जा सकता है। अतःमौलिक अधिकारों और ज़िम्मेदारियों को तो क़ानून के द्वारा निर्धारित कर दिया गया है और ख़ास तौर से जक़ात फ़र्ज़ करके उसकी अदायगी का पाबन्द कर दिया गया है, लेकिन इसके अलावा इन्फ़ाक़ और सदक़ात के लिए व्यक्तिगत रूप से हमेशा अवसर मिला हुआ है और इस काम में लोग अपनी क्षमता के अनुसार एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हिस्सा ले सकते हैं (3:133-134; 57:21)।

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ۚ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٩٢﴾

तुम कभी कभी कोई नेकी हासिल न कर सकोगे जब तक तुम अल्लाह की राह में अपनी अज़ीज़ तरीन चीज़ ना खर्च करो और जो भी तुम .ख़र्च करोगे अल्लाह उसको जानता है। (3:92)

दूसरों को देने या उन पर ख़र्च करने से सम्बंधित यह आयत इस काम के मनोवैज्ञानिक और क़ानूनी आधारों को उजागर करती है जो समाज के लिए ज़रूरी हैं। अहसान और ईसार के लिए एक लगातार जारी रहने वाला आत्मसुधार का प्रशिक्षण ज़रूरी है ताकि आदमी दूसरों पर न केवल वह चीज़ ख़र्च करे जो उसके पास बची रह गयी हो बल्कि वह चीज़ भी जो उसे अपने लिए पसन्द हो और उसकी अपनी ज़रूरत हो (2:177) अगर दूसरों को उस चीज़ की ज़्यादा ज़रूरत हो। क्योंकि केवल वही चीज़ देना जो आदमी आसानी से दे सकता है या जिसे अपने पास से निकाल देना ही चाहता हो इससे अहसान और ईसार की भावना पैदा नहीं होगी। इस उत्तम आदर्श पर पहुंचने के लिए यह ज़रूरी है कि हर व्यक्ति स्वार्थ और अपने माल व सामान से अत्यधिक लगाव को त्यागने का आदी हो जाए और दूसरों पर वह ख़र्च करे जिसे

वह अपने लिए पसन्द करता है और जिसे अपने पास रखना चाहता है, "और जो अ०त्मस्वार्थ की लालसा से बच गए तो ऐसे ही लोग कल्याण को पहुंचने वाले हैं" (59:9)।

وَ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ رِئَآءَ النَّاسِ وَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَ لَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ وَ مَنْ يَّكُنِ الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا فَسَآءَ قَرِيْنًا ۝٣٨

और जो लोग अपना माल लोगों के दिखाने के लिए खर्च करते हैं, और ना अल्लाह पर ईमान लाते हैं और ना ही आख़िरत के दिन पर (तो ये शैतान के साथी हैं) और जिनका साथी शैतान है तो बुरा साथी है। (4:38)

धन दौलत का दिखावा करना और इन्फ़ाक़ व सदक़े पर अहसान जताना और ज़रूरतमंद के आत्मसम्मान को चोट पहुंचाना इस पर पिछली आयत (2:263) में चेताया गया था, क्योंकि यह बुरी भावनाएं और रवैया सदक़ा और इन्फ़ाक़ के मक़सद को प्रभावित करते हैं और उसका फ़ायदा जारी रहने से रोक देते हैं, और इससे लागों की नैतिकता और सामाजिक व आर्थिक न्याय को नुक़सान पहुंचता है। जो व्यक्ति केवल अपनी छवि बनाने में लगा रहता है और अल्लाह का सच्चा तक़वा नहीं रखता या अपनी उस सामाजिक ज़िम्मेदारी को महसूस नहीं करता जिसकी जवाबदेही आख़िरत में उसे अल्लाह के सामने करनी होगी, उसने मानो शैतान से दोस्ती को चुन लिया और उसकी प्रेरणाओं पर चलने वाला बन गया। पहले लिखी गयी आयत में क़ुरआन हर इंसान को सावधान करता है कि "शैतान (का कहा न मानना वह) तुम्हें तंगदस्ती का भय दिलाता है और बेशर्मी के काम करने को कहता है" (2:268), तो जो इंसान शैतान को अपना दोस्त बना ले तो यह कितनी मूर्खता और दुर्भाग्य की बात होगी।

قُلْ لِّعِبَادِيَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَ يُنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ سِرًّا وَّ عَلَانِيَةً مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيْهِ وَ لَا خِلٰلٌ ۝٣١

(ऐ नबी (स.अ.स.) तुम मेरे मोमिन बन्दों से कह दो के वो नमाज़ पाबंदी से पढ़ते रहें और हमारे दिये हुए रिज़्क़ में से .ख़र्च करते रहें (.ख्वाह) दरपर्दा या ज़ाहिर उस दिन के आने से पहले के उसमें ना आमाल का सौदा होगा और ना कोई दोस्त काम आएगा। (14:31)

इन्फ़ाक़ की आदत पैदा करने और इसे एक परम्परा बना लेने, और खुले व छुपे ख़र्च करने का यह एक और क़ुरआनी निर्देश है। यहां इसे नमाज़ पर क़ायम रहने के आदेश के साथ साथ बयान किया गया है और यह जताया गया है कि नमाज़ और इन्फ़ाक़ दोनों ही अल्लाह की इबादत के रूप हैं और दूसरों के साथ भलाई करना अल्लाह की इबादत से अलग मामला नहीं है और नमाज़ व इन्फ़ाक़ दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं (देखें सलात और ज़कात के आपसी

सम्बंध के लिए क़ुरआन की आयतें जैसे 2:43,83,110,177,277; 4:162; 5:12,55; 9:5,11,18,71; 19:31,55; 21:73; 22:41,78; 24:37,56; 27:3; 31:4; 33:33; 58:13; 73:20; 98:5)। एक और जगह पर, दिखावे के लिए या अटपटे ढंग से नमाज़ अदा करने को अनाथ को झिड़कने और ग़रीब को खाना खिलाने में कोई रुचि न होने की बात के साथ ज़िक्र किया गया है, और इस तरह अल्लाह और अल्लाह के बन्दों के साथ सम्बंध रखने में इंसान की ख़राबी को उसके ईमान की ख़राबी माना गया है (107:1-7)

وَاللّٰهُ فَضَّلَ بَعْضَكُمْ عَلٰى بَعْضٍ فِى
الرِّزْقِ ۚ فَمَا الَّذِيْنَ فُضِّلُوْا بِرَآدِّىْ
رِزْقِهِمْ عَلٰى مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُمْ فَهُمْ
فِيْهِ سَوَآءٌ ۭ اَفَبِنِعْمَةِ اللّٰهِ يَجْحَدُوْنَ ﴿٧١﴾

और अल्लाह ने तुम को रिज़्क़ में बाज़ को बाज़ पर फ़ज़ीलत दी है तो जिनको फ़ज़ीलत बख़्शी है, वो अपना रिज़्क़ अपने ममलूकों को इस तरह देने वाले नहीं हैं के सब उसमें बराबर हो जायें, क्या लोग फ़िर भी अल्लाह की नेमतों से इन्कार करते हैं। (16:71)

इस आयत में इन्फ़ाक़ के सिद्धांत को बहुत स्पष्ट और दो टूक अंदाज़ में पेश किया गया है। जिन लोगों पर अल्लाह ने अपना "फ़ज़्ल" (कृपा) किया है और जिन्हें "रिज़्क़" (अपनी देन) के साधन ज़्यादा दिए हैं लेकिन वो अल्लाह के इस फ़ज़्ल में से दूसरे ज़रूरतमंदों को देने से कंजूसी करते हैं वो वास्तव में अपने रब और दाता के नाशुक्रे हैं। आयत में हालांकि अपने ग़ुलामों को देने का ज़िक्र किया गया है लेकिन यह बात उन सभी लोगों के लिए है जो अपनी ज़रूरतों के लिए दूसरों की मदद और सहारे के ज़रूरतमंद होते हैं। जिन लोगों को अल्लाह का फ़ज़्ल मिला हुआ है उन्हें अपने रब की शुक्रगुज़ारी (आभर) के रूप में अपने कर्मचारियों के वेतन देने में बड़प्पन और उदारता से काम लेना चाहिए। जो लोग ग़ुलाम हों उनके बारे में पैग़म्बर साहब की एक हदीस हमें बताती है कि वो हमारे भाई हैं जिन्हें अल्लाह ने हमारे आध ीन कर दिया है और उन्हें भी वही खिलाना चाहिए जो हम खाते हैं और वही पहनाना चाहिए जो हम पहनते हैं। उन पर उनकी क्षमता से अधिक भार नहीं डालना चाहिए, और कोई ज़्यादा कठिन काम हो तो उसमें उनकी मदद करना चाहिए (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, तिरमिज़ी)। जो लोग अस्थाई रूप से या स्थाई रूप से काम करने में अक्षम हों उनकी मदद पूरे समाज को करना चाहिए, उस सार्वजनिक कोष से उनकी सहायता होना चाहिए जिसका बड़ा हिस्सा उन लोगों से प्राप्त होता है जिनके पास पर्याप्त साधन हैं, क्योंकि पूरे समाज का कल्याण उसके सभी व्यक्तियों की आर्थिक और सामाजिक ज़रूरतों को पूरा करने पर निर्भर है। एक और आयत में निजी सम्पत्ति के सामाजिक पहलू पर और ज़्यादा स्पष्ट अंदाज़ में ज़ोर दिया गया है (57:7)। व्यक्ति समाज और समाज की अर्थ व्यवस्था का आधार है, लेकिन व्यक्ति और समाज

के कल्याण के बीच एक उचित और बहतरीन संतुलन बनाए जाने की ज़रूरत है।

إِنَّا بَلَوْنٰهُمْ كَمَا بَلَوْنَآ أَصْحٰبَ الْجَنَّةِ ۚ إِذْ
أَقْسَمُوا لَيَصْرِمُنَّهَا مُصْبِحِينَ ﴿١٧﴾ وَ لَا
يَسْتَثْنُونَ ﴿١٨﴾ فَطَافَ عَلَيْهَا طَآئِفٌ مِّنْ
رَّبِّكَ وَ هُمْ نَآئِمُونَ ﴿١٩﴾ فَأَصْبَحَتْ
كَالصَّرِيمِ ﴿٢٠﴾ فَتَنَادَوْا مُصْبِحِينَ ﴿٢١﴾ أَنِ
اغْدُوا عَلٰى حَرْثِكُمْ إِنْ كُنْتُمْ
صٰرِمِينَ ﴿٢٢﴾ فَانْطَلَقُوا وَهُمْ
يَتَخَافَتُونَ ﴿٢٣﴾ أَنْ لَّا يَدْخُلَنَّهَا الْيَوْمَ
عَلَيْكُمْ مِّسْكِينٌ ﴿٢٤﴾ وَّ غَدَوْا عَلٰى حَرْدٍ
قٰدِرِينَ ﴿٢٥﴾ فَلَمَّا رَأَوْهَا قَالُوٓا إِنَّا
لَضَآلُّونَ ﴿٢٦﴾ بَلْ نَحْنُ مَحْرُومُونَ ﴿٢٧﴾ قَالَ
أَوْسَطُهُمْ أَلَمْ أَقُلْ لَّكُمْ لَوْ لَا
تُسَبِّحُونَ ﴿٢٨﴾ قَالُوا سُبْحٰنَ رَبِّنَآ إِنَّا كُنَّا
ظٰلِمِينَ ﴿٢٩﴾ فَأَقْبَلَ بَعْضُهُمْ عَلٰى بَعْضٍ
يَّتَلَاوَمُونَ ﴿٣٠﴾ قَالُوا يٰوَيْلَنَآ إِنَّا كُنَّا
طٰغِينَ ﴿٣١﴾ قَالُوا يٰوَيْلَنَآ إِنَّا كُنَّا طٰغِينَ ﴿٣١﴾
عَسٰى رَبُّنَآ أَنْ يُّبْدِلَنَا خَيْرًا مِّنْهَآ إِنَّآ إِلٰى
رَبِّنَا رٰغِبُونَ ﴿٣٢﴾ كَذٰلِكَ الْعَذَابُ ۭ
وَلَعَذَابُ الْاٰخِرَةِ أَكْبَرُ ۘ لَوْ كَانُوا
يَعْلَمُونَ ﴿٣٣﴾

हमने उन लोगों की आज़ामईश कर रखी है, जैसा हमने बाग़ वालों की आज़माईश की थी, जब उन्होंने क़सम खाई के हम सुबह होते ही इस बाग़ के फल तोड़ लेंगे। और इंशाअल्लाह ना कहा। तो तुम्हारे रब की तरफ़ से उस बाग़ पर एक फ़िरने वाला फ़िर गया और वो सो रहे थे। तो वो सुबह ऐसा हो गया जैसे कटी हुई खेती। जब सुबह हुई तो वो एक दूसरे को पुकारने लगे। अगर तुम को काटना है तो तुम अपने खेत पर सुबह सवेरे ही पहुंच जाओ। तो वो चल पड़े और आपस में आहिस्ता आहिस्ता कहते जाते थे। के आज यहां तुम्हारे पास कोई फ़क़ीर ना आने पाये। और चले अपने को उसके ना दने पर क़ादिर समझ कर। फ़िर जब बाग़ को देखा (तो वीरान) कहने लगे के हम रास्त भूल गए हैं। (नहीं बल्के हम बदनसीब हैं। एक उनमें जो अच्छा था वो बोला मैंने तुम से नहीं कहा था के तुम तसबीह क्यों नहीं करते। तो सब कहने लगे के हमार रब तो पाक है, बिला शुबह हम ही कुसूरवार थे। फ़िर तो वो एक दूसरे को दुबदू बुरा कहने लगे। कहने लगे, हाय शामते आमाल! हम ही हद से आगे बढ़ गए थे। उम्मीद है के हमारा रब इसके बदल में हमको इससे बेहतर बाग़ देगा, हम अपने रब की तरफ़ मुतवज्जह होते हैं। (देखो) अज़ाब यूं होता है, और आख़िरत का अज़ाब तो इससे कहीं ज़्यादा सख़्त होता है, काश! ये जानते हाते। (68:17-23)

ज़रूरतमंद लोगों को देने या उनको अपने रिज़्क़ और साधनों में शरीक करने की सीख शुरू से ही अल्लाह की तरफ़ से लगातार आते रहने वाले पैग़ामों में दी जाती रही है (2:83(6:14)। अल्लाह इंसान को केवल अपनी इबादत की तरफ़ बुलाते हैं और अगर अल्लाह के पैग़ाम को

ठीक से समझा जाए तो अल्लाह की हिदायत इंसान को स्वार्थीपन और लालच से बचा लेती है, और उन्हें दूसरों के प्रति संवेदनशील बनाती है और सामूहिक रुप से इंसानियत की तरफ़ ले जाती है। उपरोक्त आयतों में बाग़ के मालिकों ने अल्लाह को भुला देने की वजह से ज़रूरतमंदों की सहायता से ख़ुद को रोके रखने का इरादा किया था:''उन्होंने क़स्में खा खा कर कहा कि सुबह होते ही हम इसके फल तोड़ लेंगे, और इन शा अल्लाह नहीं कहा, तो वो एक दूसरे से यह काना फूसी करते हुए चले कि 'आज किसी भिखारी को मत आने देना'।'' उनकी लालच ने उन्हें अल्लाह की तरफ़ से भूल में डाल दिया और ज़रूरतमंदों को अपनी फ़सल में से हिस्सा देने से बचे रहने पर उक्साया, वह इस बात को भूल गए कि अल्लाह की क़ुदरत उनकी योजनाओं और उनकी ताक़त से ऊपर है। केवल ग़रीब और ज़रूरतमंद ही अपना हिस्सा लेने से वंचित नहीं रह गए बल्कि ख़ुद बाग़ के मालिकों के हाथ भी कुछ न आया, जब उन्होंने देखा कि ''बाग़ तो ऐसा हो गया जैसे कटी हुई खेती'', और यह कि ''उनकी क़िस्मत तो मारी गयी''। इस घटना की सीख पूरी तरह स्पष्ट है कि जिन लोगों को अल्लाह ने दिया है वो उसमें से उन लोगों पर ख़र्च करें जो वंचित हैं। इसमें अमीरों और ग़रीबों की परीक्षा है, और अल्लाह की हिदायत सबके लिए न्याय का सामान रखती है।

हर एक को अपना रोज़गार स्वंय कमाने के लिए मेहनत व मुशक़्क़त करना चाहिए, और जो लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी भी अवसर से वंचित हैं चाहे सामयिक रूप से या स्थाई रूप से उनकी सहायता उन लोगों के करना चाहिए जिन्हें अल्लाह की देन मिली हुई है।

व्यक्ति की कमाई में पूरे समाज की भागीदारी और सहयोग होता है, और ज़रूरतमंद को देने से ख़रीदारी क्षमता बढ़ती है और अर्थव्यवस्था को गति मिलती है। यह आपसी फ़ायदे का एक चक्रव्यूह है जो इंसानों के आपसी सहयोग और सौहार्द से पूरा घूमता है, जबकि स्वार्थ और लालच से नैतिकता और ईमान ख़राब होता है और समाज में टकराव व अन्तर्विरोध पैदा होता है और गिरावट आती है, और इसके नतीजे में इस दुनिया में इंसानों का जीवन दुशवार होता है और आख़िरत में यह 'अज़ाब' (यातना) का कारण होगी। अल्बत्ता, आत्मसुधार हमेशा सम्भव है और जब तक इंसान दुनिया में जीवित है उसे तौबा करने और अपने कर्म को ठीक करने का अवसर मिला हुआ है:''उम्मीद है कि हमारा पालनहार इसके बदले में हमें इसे बहतर बाग़ प्रदान करे, (सो अब) हम अपने पालनहार की तरफ़ ध्यान करते हैं''।

وَ اَمَّا مَنْ اُوْتِیَ كِتٰبَهٗ بِشِمَالِهٖ ۙ فَيَقُوْلُ يٰلَيْتَنِيْ لَمْ اُوْتَ كِتٰبِيَهْ ۚ وَ لَمْ اَدْرِ مَا

और जिसको आमाल नामा बायें हाथ में दिया जायेगा तो वो कहेगा, काश! मुझको मेरा आमालनामा ना दिया जाता। और मुझे मालूम ना होता के मेरा हिसाब क्या

حِسَابِيَهْ ﴿٢٦﴾ يَٰلَيْتَهَا كَانَتِ الْقَاضِيَةَ ﴿٢٧﴾ مَآ
أَغْنَىٰ عَنِّي مَالِيَهْ ﴿٢٨﴾ هَلَكَ عَنِّي
سُلْطَانِيَهْ ﴿٢٩﴾ خُذُوهُ فَغُلُّوهُ ﴿٣٠﴾ ثُمَّ الْجَحِيمَ
صَلُّوهُ ﴿٣١﴾ ثُمَّ فِي سِلْسِلَةٍ ذَرْعُهَا سَبْعُونَ
ذِرَاعًا فَاسْلُكُوهُ ﴿٣٢﴾ إِنَّهُ كَانَ لَا يُؤْمِنُ
بِاللَّهِ الْعَظِيمِ ﴿٣٣﴾ وَلَا يَحُضُّ عَلَىٰ طَعَامِ
الْمِسْكِينِ ﴿٣٤﴾ فَلَيْسَ لَهُ الْيَوْمَ هَاهُنَا
حَمِيمٌ ﴿٣٥﴾

है। काश मौत मेरा काम तमाम कर चुकी होती। मेरा माल मेरे किसी काम ना आया। हाय मेरी सल्तनत खाक में मिल गई। हुक्म होगा उसको पकड़ लो, और तौक़ पहना दो। फ़िर उसकी दोज़ख में दाख़िल कर दो। फ़िर उसको एक ज़ंजीर से जकड़ दो, जिसकी पैमाईश सत्तरगज़ हो। ये ना तो अल्लाह जल्लेशानाहू, पर ईमान लाता था। और ना पीप के सिवा कोई खाना है। उस खाने को सिवाये गुनहगारों के और कोई नहीं खायेगा।
(69:25-37)

उपरोक्त आयतें बहुत स्पष्ट तरीक़े से उन दौलतमंदों की स्थिति को बयान करती हैं जो ज़रूरतमंदों पर ख़र्च नहीं करते और उनको अपने माल में से हिस्सा नहीं देते। उनके हाथ में माल भी होता है और अधिकार भी, और जो कुछ भी उनको मिला हुआ है उसकी जवाबदेही उनको आख़िरत में करना है। उनके ग़लत व्यवहार और सच्चाई के रास्ते से विचलित होने को जताने के लिए उनके पूरे जीवन के कर्मों का सारा रिक०र्ड उनके बाएं हाथ में दिया जाएगा, और इस रिक०र्ड की सटीकता को देख कर वो दंग रह जाएंगे। वो अपने कर्मों का इंकार नहीं कर सकेंगे और कोई बहाना नहीं बना सकेंगे, बल्कि ये कामना करेंगे कि काश उनकी मौत के साथ उनका हमेशा के लिए ख़ात्मा हो गया होता। उनकी भयंकर पीड़ाएं उनके क़ुर (इंकार) का नतीजा होंगी, यानि अल्लाह और अल्लाह की हिदायत का इंकार और ज़रूरतमंदों की मदद और भूखों को खिलाने से उनके बचने का ख़ुमियाज़ा होंगी। अपने इन कुकर्मों के बदले में उन कुकर्मियों को आख़िरत में कोई मदद और सहारा नहीं मिलेगा, और उनका खाना केवल झाड़ झंकार और कूड़ा क्रिकेट होगा, ऐसा खाना ''जिसे पापियों के अलावा कोई नहीं खाएगा''। ज़रूरतंदों को देने और उन पर ख़र्च करने से बचने के वर्तमान और भावी परिणाम कितने भयानक हैं, और इस कुकर्म की वजह से इस दुनिया में व्यक्तिगत और सामाजिक लिहाज़ से मिलने वाले कष्ट कितने भयानक हैं और आख़िरत में कितनी कठोर होंगे! क़ुरआन तरह तरह से इस बात पर ज़ोर देता है कि दूसरों का ध्यान रखना, उनकी सहायता करना और मिलजुल कर रहना अल्लाह का ख़ास पैग़ाम है और इंसानों की जवाबदेही का केन्द्रीय विषय है।

وَيُطْعِمُونَ الطَّعَامَ عَلَىٰ حُبِّهِ مِسْكِينًا وَ
يَتِيمًا وَأَسِيرًا ﴿٨﴾ إِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ اللَّهِ

और उसकी मौहब्बत में फ़क़ीरों, यतीमों और क़ैदियों को खाना खिलाते हैं। हम तुम को खाना .ख़ालिस अल्लाह के

لَا نُرِيْدُ مِنْكُمْ جَزَآءً وَّلَا شُكُوْرًا ⑨

लिये खिलाते हैं, हम तुम से ना कोई बदला चाहते हैं और ना शुक्रिया। (76:8-9)

इस आयत में ज़रूरतमंदों और यतीमों के साथ क़ैदियों का ज़िक्र भी किया गया है कि ये भी सहायता के पात्र हैं। क़ैदियों का यह हवाला बहुत महत्वपूर्ण है ख़ास तौर से तब जब हम ज़हन में इस बात को रखें कि अभी हाल हाल तक इन ज़रूरतमंदों की अनदेखी होती रही है। आयत में खाने का ज़िक्र वास्तव में बन्दियों की सभी इंसानी आवश्यकताओं और अधिकारों के लिए एक उदाहरण के रूप में है, यह बन्दी चाहे अपने देश की जेलों में हों या जंग में गिरतार हो कर दूसरे देश की क़ैद में चले गए हों। पहले यह आदेश उन यु) बन्दियों पर लागू होता था जिन्हें ग़ुलाम बना लिया गया हो, और जो कोई उनमें किसी की निगरानी में होता हो उसका यह कर्तव्य था कि वह उसे वही खिलाए जो ख़ुद खाता है और वही पहनाए जो ख़ुद पहनता है, और उससे उसकी क्षमता से अधिक काम न ले, और अगर कभी ऐसी स्थिति आए तो उस काम में उसकी सहायता करे, जैसा कि पैग़म्बर सल्ल० ने शिक्षा दी है (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी और इब्ने माजा)। एक और आयत यह बताती है कि जब कोई दुशमन मुसलमानों से शरण मांगे तो उसे यह शरण दी जाएगी (9:6), और हर शरणार्थी की एक यात्री की तरह सुरक्षा और सहायता की जाएगी (9:60)। ऐसे व्यक्ति को स्वदेस लोट जाने का अधिकार होगा जब भी वह जाना चाहे (9:6)।

كَلَّا بَلْ لَّا تُكْرِمُوْنَ الْيَتِيْمَ ⑰ وَ لَا تَحٰٓضُّوْنَ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ⑱ وَ تَاْكُلُوْنَ التُّرَاثَ اَكْلًا لَّمًّا ⑲ وَّ تُحِبُّوْنَ الْمَالَ حُبًّا جَمًّا ⑳

यूं नहीं बल्के तुम लोग यतीम की .ख़ातिर नहीं करते। और मिसकीन को खाना खिलाने की तरग़ीब नहीं देते। और मीरास का सारा माल समेट कर खा जाते हो। और माल से बहुत .ज्यादा मोहब्बत करते हो। (89:17-20)

ये आयतें क़ुरआन उतरने के समय मक्का के समाज की, या वहां के कुछ धनवानों की, एक बदसूरत तसवीर दिखाती हैं। अनाथ और वंचित जैसे कमज़ोर लोगों को नज़रअंदाज़ किया जाता था, और माल व दौलत का लालच चाहे वह किसी भी तरह प्राप्त हो, सब पर सवार था। अल्लाह का पैग़ाम कमज़ोरों के समर्थन और हर एक के लिए न्याय को सुनिश्चित करने के लिए आया और इसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया कि एक अल्लाह की इबादत और जीवन के सभी क्षेत्रों में न्याय की स्थापना और दूसरों की मदद का मामला एक दूसरे का अभिन्न अंग हैं। दूसरों के माल पर क़ब्ज़ा करके या उनका अधिकार छीन कर माल प्राप्त नहीं किया जा

सकता, और माल को बेकार कामों में नहीं उड़ाया जाना चाहिए और ज़रूरतमंद व्यक्तियों की या समाज की ज़रूरतों की अनदेखी नहीं करना चाहिए। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि ख़ुद पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० जिन्हें अल्लाह ने अपना पैग़म्बर बनाया, एक अनाथ थे और कोई धनवान व्यक्ति नहीं थे (93:6-8)।

मगर वो घाटी पर से होकर ना गुज़रा। और तुम क्या समझे के घाटी क्या चीज़ है। वो किसी की गर्दन का छुड़ाना है। या भूक के दिन खाना खिलाना। किसी रिश्तेदार यतीम को। या फ़क़ीर ख़ाकसार को। फ़िर वो उनमें शामिल हुआ जो ईमान लाये, और उन्होंने एक दूसरे को सब्र की नसीहतें कीं और एक दूसरे पर शफ़क़त करने की वसीयत करते रहे। यही लोग दाहिने वाले हैं। और जो लोग हमारी आयात को नहीं मानते हैं वो लोग बायें वाले हैं। उन पर आग मुहीत होगी जिसको बन्द कर दिया जायेगा। (90:11-20)

فَلَا اقْتَحَمَ الْعَقَبَةَ ۝١١ وَ مَآ اَدْرٰىكَ مَا
الْعَقَبَةُ ۝١٢ فَكُّ رَقَبَةٍ ۝١٣ اَوْ اِطْعٰمٌ فِيْ
يَوْمٍ ذِيْ مَسْغَبَةٍ ۝١٤ يَّتِيْمًا ذَا مَقْرَبَةٍ ۝١٥
اَوْ مِسْكِيْنًا ذَا مَتْرَبَةٍ ۝١٦ ثُمَّ كَانَ مِنَ
الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ تَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ وَ تَوَاصَوْا
بِالْمَرْحَمَةِ ۝١٧ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ الْمَيْمَنَةِ ۝١٨ وَ
الَّذِيْنَ كَفَرُوْا بِاٰيٰتِنَا هُمْ اَصْحٰبُ
الْمَشْئَمَةِ ۝١٩ عَلَيْهِمْ نَارٌ مُّؤْصَدَةٌ ۝٢٠

ऊपर की आयत में स्वार्थीपन और लालच से बचने के प्रयास को एक घाटी से निकलने के समान बताया गया है। इस घाटी से वही गुज़र सकता है जो दौलत बटोरने और जमा करने की लालच से छुटकारा पा सके और अपना माल क़ैदियों को छुड़ाने, भूखों को खिलाने और ज़रूरतमंदों की मदद करने में लगाए चाहे ये ज़रूरतमंद उसके रिश्तेदार हों या ग़ैर। जो दूसरों के सहायक, समर्थक और हमदर्द बनते हैं वो सही रास्ते पर चलते हैं वह रास्ता जो दुनिया और समाज को न्याय और शान्ति की तरफ़ ले जाता है और जिस पर चलने का इनाम आख़िरत में मिलेगा, इसके विपरीत जो लोग अहंकार में पड़े रहेंगे और भौतिक आनन्दों में मगन रहेंगे और ग़लत रास्ते को चुनेंगे वो आख़िरकार अपनी लालच के घेरे में आ जाएंगे और इस दुनिया में अपनी विनाशकारी इच्छाओं के बन्दी बन जाएंगे और आख़िरत में आग का अज़ाब झेलेंगे जो उन्हें चारों ओर से घेर लेगी।

तो तुम भी यतीम पर सख़्ती ना करना। और सवाल करने वाले को झिड़की ना देना। और अपने परवरदिगार की नेमतों का बयान करते रहना। (93:9-11)

فَاَمَّا الْيَتِيْمَ فَلَا تَقْهَرْ ۝٩ وَ اَمَّا السَّآئِلَ
فَلَا تَنْهَرْ ۝١٠ وَ اَمَّا بِنِعْمَةِ رَبِّكَ فَحَدِّثْ ۝١١

पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ख़ुद भी अनाथ थेः“भला उसने तुम को यतीम पाकर जगह नहीं दी, और धनवान भी नहीं थेः“और ग़रीब पाया तो ग़नी (मालदार) कर दिया”(9:6,8)। ऐसी ही एक सूरत जिसमें मुहम्मद सल्ल० के बचपन की स्थिति दर्शायी गयी है, मुहम्मद सल्ल० और उनके सभी अनुयायियों को इस बात से मना करती है कि यतीम के साथ ज़्यादती की जाए, या किसी मांगने वाले को, जो भौतिक, नैतिक या और किसी प्रकार की सहायता का सवाल करता हो, झिड़क दिया जाए। यदि कोई व्यक्ति किसी ज़रूरतमंद की मदद नहीं कर सकता, तो उसे बहुत ही विनम्रता से क्षमा मांग लेनी चाहिए क्योंकि किसी मदद मांगने वाले की भावनाओं को ठेस पहुंचाने से उस व्यक्ति पर भी उसके बुरे प्रभाव पड़ते हैं और जिससे मदद मांगी जा रही है और वह उदासीनता और अहंकार व्यक्त कर रहा है उस पर भी और पूरे समाज पर भी उसके ग़लत प्रभाव पड़ते हैं। यहां तक कि जब कोई व्यक्ति किसी की मदद करे तो उसे अपने इस अच्छे काम को उस व्यक्ति का अपमान करके व्यर्थ नहीं करना चाहिए जिसकी उसने मदद की है (2:262-264), क्योंकि हर व्यक्ति का सम्मान और प्रतिष्ठा सभी इंसानों का सम्मान और प्रतिष्ठा के समान है और उसकी हिफ़ाज़त ज़रूरी है। जब कोई व्यक्ति अल्लाह की तरफ़ से मिली हुई बख़्शिश में से किसी ज़रूरतमंद को कुछ देता है तो मानो वह अल्लाह की कृपा पर धन्यवाद बोलता है, चाहे यह कृपा उसे भौतिक रूप में प्राप्त हो, बौद्धिक रूप में हो या नैतिक रूप से मिली हुई हो और इस कृपा से वह दूसरों को फ़ायदा पहुंचाता हो। सामाजिक न्याय और सौहार्द इस्लाम के संदेश का एक स्थाई और तुरन्त लक्ष्य है।

बेशक इन्सान सरकश हो जाता है। इसलिये के अपने आपको बेनियाज़ .ख़्याल करने लगता है। (96:6-7)	كَلَّآ إِنَّ الْإِنسَانَ لَيَطْغَىٰٓ ۝ أَن رَّءَاهُ اسْتَغْنَىٰٓ ۝

एक अल्लाह पर ईमान से व्यक्तिगत और सामाजिक संतुलन स्थापित होता है। अल्लाह ने अपना दीन इंसानों के फ़ायदे के लिए भेजा है और इस संतुलन को स्थापित करने में अल्लाह तआला इंसानों का मार्गदर्शन और सहायता करते हैं। स्वार्थीपन और अहंकार न केवल अनैतिक बात है बल्कि इससे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। लोगों को अपने बीच समानता और बराबरी का भाव रखना चाहिए और अच्छे व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन के लिए अपने बीच आपसी सूझबूझ और सहयोग को बढ़ावा देना चाहिए। स्वयं को ही सब कुछ समझ लेने का भ्रम व्यक्तिगत और सामाजिक संतुलन को तबाह कर देता है, और एक अल्लाह पर ईमान व जवाबदेही का विश्वास इस संतुलन को स्थापित रखता है और लोगों को अहंकार व हीनभावना से बचाता है।

اِنَّ الْاِنْسَانَ لِرَبِّهٖ لَكَنُوْدٌ ۝ وَ اِنَّهٗ عَلٰى ذٰلِكَ لَشَهِيْدٌ ۝ وَ اِنَّهٗ لِحُبِّ الْخَيْرِ لَشَدِيْدٌ ۝

बेशक इन्सान अपने रब का बड़ा नाशुक्रा है। और वो ख़ुद भी इससे वाक़िफ़ है। और वो माल की मोहब्बत में बहुत सख़्त है। (100:6-8)

क़ुरआन इंसानों की शक्तियों को बयान करता है (17:70; 95:4; 96:5), और उनकी कमज़ोरियों को भी चिन्हित करता है (4:28; 14:34; 16:4; 17:11,100; 18:54; 21:37; 22:66; 33:72; 36:77; 43:15; 70:19; 80:17)। कुछ लोग अल्लाह की मदद की ज़रूरत तब महसूस करते हैं जब वह किसी कठिनाई में फंस जाते हैं लेकिन जब वो उससे निकल आते है तो अल्लाह को भूल जाते हैं, जबकि कुछ दूसरे लोग ऐसे हैं जिन्हें अगर मुसीबत पहुंचती है तो वो और अधिक निराश और अल्लाह से बेपरवाह हो जाते हैं (10:12; 11:9-11; 17:11,67-69,83; 39:8,49; 41:49-51; 42:48; 89:15)। उपरोक्त आयतों में अपने रब के नाशुक्रगुज़ार (कृतध्न) होने, और कभी कभी दूसरे इंसानों के नाशुक्रगुज़ार होने की इंसानी कमज़ोरी का हवाला दिया गया है, और धन व रसूख़ रखने की इंसान की लालसा का हवाला दिया गया है। इस्लाम एक सम्पूर्ण सुधार के द्वारा सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करना चाहता है। सम्पूर्ण सुधार यानी इंसान के दिल व दिमाग़ का सुधार और सामाजिक व आर्थिक ढांचे और सम्बंधों का सुधार। अल्लाह पर ईमान और अल्लाह के सामने इंसानों की जवाबदेही का विश्वास मनोवैज्ञानिक और सामाजिक संतुलन के लिए एक ठोस आधार उपलब्ध करता है क्योंकि इससे घमण्ड और अहंकार समाप्त हो जाता है।

وَيْلٌ لِّكُلِّ هُمَزَةٍ لُّمَزَةِ ۝ الَّذِیْ جَمَعَ مَالًا وَّ عَدَّدَهٗ ۝ الَّذِیْ جَمَعَ مَالًا وَّ عَدَّدَهٗ ۝ كَلَّا لَيُنْۢبَذَنَّ فِي الْحُطَمَةِ ۝ وَمَاۤ اَدْرٰىكَ مَا الْحُطَمَةُ ۝ نَارُ اللّٰهِ الْمُوْقَدَةُ ۝ الَّتِیْ تَطَّلِعُ عَلَى الْاَفْـِٕدَةِ ۝ اِنَّهَا عَلَيْهِمْ مُّؤْصَدَةٌ ۝ فِیْ عَمَدٍ مُّمَدَّدَةٍ ۝

जो लोगों के सामने और पसे पुश्त ऐब बयान करता है उसके लिये बहुत ख़राबी है। जो माल जमा करता और गिन गिन कर रखता है। वो ख़्याल करता है के उसका माल हमेशा उसके पास रहेगा। हरगिज़ नहीं वो ज़रूर ऐसी आग में डाला जायेगा जो रौंद के रख दे। और तुम क्या जानते हो रोंदने वाली क्या है। वो अल्लाह की भड़काई हुई आग है। जो दिलों तक पहुंच कर लिपटेगी। बेशक वो उन पर बन्द कर दी जायेगी। (यानी आग के) लम्बे लम्बे सतूनों में। (104:1-9)

ये वो आयतें हैं जिनका मक़सद ही यह है कि इंसानी दिल व दिमाग़ को धन इकट्ठा करके रखने की लालसा से बचाया जाए। धन इकट्ठा करने की लालसा एक नैतिक बीमारी है जो इस दुनिया में हमेशा ऐश का जीवन जीने की इच्छा से पैदा होती है, और यह भ्रम भी इस वासना

को बढ़ाता है कि धन दौलत से सदा का सुख प्राप्त होता है। चुनांचि आदमी इसमें से किसी को कुछ देना नहीं चाहता, दूसरे ज़रूरतमंदों पर ख़र्च नहीं करता, उनकी मदद नहीं करता और उन्हें इसमें शरीक नहीं करता क्योंकि उसे लगता है कि कुछ भी ख़र्च करने से उसकी दौलत घटेगी और उसने इस दुनिया में हमेशा सुखी और सुरक्षित रहने की जो कल्पना कर रखी है उसके हिसाब से उसकी स्थिरता में कमी आएगी। इस तरह आदमी इस दुनिया में ख़ुद अपने सुखों को सीमित कर लेता है क्योंकि वह लोगों से अलग थलग रहता है और अपनी दौलत के घेरे में रहता है और दूसरों के सम्बंध में उसकी केवल यही कोशिश होती है कि वह उनके दोष ढूंढता रहे और उनमें कमियां निकालता रहे ताकि वह स्वंय को संतुष्ट रखे कि बस वही सही रास्ते पर चल रहा है और जो कुछ उसे मिला हुआ है यह उसका अधिकार है। ऐसा आदमी वास्तव में ग़रीब होता है और इस दुनिया में दुर्भाग्यपूर्ण जीवन बिताता है क्योंकि उसका धन उसे कभी संतुष्ट नहीं होने देता और उसे उसकी लालच और भौतिक वासना के घेरे में बन्द कर देता है। आख़िरत में यह दौलत उसे उसके ग़लत विचारों और ग़लत कर्मों के नतीजे भुगतने से नहीं बचा सकेगी, और अल्लाह का अज़ाब उसे घेर लेगा, जिस तरह दुनिया में उसकी दौलत उसे हर तरफ़ से घेरे हुए है।

اَرَءَيْتَ الَّذِىْ يُكَذِّبُ بِالدِّيْنِ ۝١ فَذٰلِكَ الَّذِىْ يَدُعُّ الْيَتِيْمَ ۝٢ وَلَا يَحُضُّ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ ۝٣ فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّيْنَ ۝٤ الَّذِيْنَ هُمْ عَنْ صَلَاتِهِمْ سَاهُوْنَ ۝٥ الَّذِيْنَ هُمْ يُرَآءُوْنَ ۝٦ وَ يَمْنَعُوْنَ الْمَاعُوْنَ ۝٧

क्या तुमने उस श़ख्स को नहीं देखा जो रोज़े जज़ा का इन्कार करता है। तो ये वही है जो यतीम को धक्के देता है। और फ़क़ीर को खाना खिलाने की तरग़ीब नहीं देता। तो ऐसे नमाज़ियों के लिये ख़राबी है। जो अपनी न मज़ा की तरफ़ से ग़ाफ़िल रहते हैं। और ऐसे हैं के (लोगों को) दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ते हैं। और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें मांगने पर भी नहीं देते (यानी आरज़ी तौर पर) (107:1-7)

इन आयतों में यतीम को धुत्कारने और ज़रूरतमंद को खाना खिलाने की प्रेरणा न देने को अल्लाह पर और अल्लाह के इंसाफ़ पर ईमान के विपरीत बताया गया है। ऐसा आदमी यदि ईमान का दावा भी करे और नमाज़ भी पढ़े तो वास्तव में उसका यह अमल लोगों को दिखाने के लिए है। यदि वह उन लोगों की मदद नहीं करता जो मदद के ज़रूरतमंद हैं तो वास्तव में नमाज़ और अल्लाह की इबादत से वह बहुत दूर है कि नमाज़ की वास्तविकता तो यह है कि अल्लाह के लिए पढ़ी जाए। यह आयतें इस बात पर ज़ोर देती हैं कि सामाजिक व आर्थिक न्याय अल्लाह के पैग़ाम में मौलिक महत्व रखता है। अल्लाह को इस बात की ज़रूरत नहीं है कि इंसान ज़बान और अक़ल से अल्लाह को माने, इंसानों के लिए अल्लाह का पैग़ाम ख़ुद

इंसानों के फ़ायदे के लिए है और इस पैग़ाम पर ईमान इंसानों के आपसी सम्बंधों में दिखाई देना चाहिए। जिन लोगों को अल्लाह का फ़ज़ल मिला हुआ है और जो उससे वंचित हैं उनके बीच सम्बंधों में दिखाई देना चाहिए कि अल्लाह दोनों को एक दूसरे के ज़रिए से जांचते हैं और यह देखते हैं कि वो एक दूसरे के अधिकारों और एक दूसरे के प्रति ज़िम्मेदारियों का निर्वाहन किस तरह करते हैं।

اَلَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ الرِّبٰوا لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا
كَمَا يَقُوْمُ الَّذِيْ يَتَخَبَّطُهُ الشَّيْطٰنُ مِنَ
الْمَسِّ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْۤا اِنَّمَا الْبَيْعُ
مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَ اَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَ حَرَّمَ
الرِّبٰوا ؕ فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ
فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ وَ اَمْرُهٗۤ اِلَى اللّٰهِ ؕ
وَ مَنْ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ
فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿۲۷۵﴾ يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَ يُرْبِي
الصَّدَقٰتِ ؕ وَ اللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ
اَثِيْمٍ ﴿۲۷۶﴾

जो सूद खाते हैं तो वो क़ब्रों से ऐसे उठेंगे जैसे किसी को जिन्न ने लिपट कर दीवाना बना दिया हो ये इसलिए के वो कहते थे कि सौदा बेचना भी तो वैसा ही है जैसे सूद लेना। हालांकि सौदे को अल्लाह ने हलाल किया है और सूद को हराम, तो जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से नसीहत पहुंची और वो सूद लेने से बाज़ आ गया तो जो पहले हो चुका वो उसी का रहा और उसका मामला अल्लाह के सुपर्द, और जो फिर लेने लगा तो ये लोग दोज़ख़ी हो गए। वो हमेशा ही दोज़ख़ में जलते ही रहेंगे। अल्लाह सूद को बेबर्कत कर देता है। और खैरात की बर्कत को बढ़ा देता है। और अल्लाह किसी नाशुक्रे बदकार को दोस्त नहीं रखता। (2:275-276)

''रिबा'' यानी ब्याज मना है क्योंकि यह माल रखने वालों के द्वारा माल न रखने वालों के शोषण का एक माध्यम है। यह एक निश्चित रूप से और लगातार बढ़ते रहने वाला मुनाफ़ा है जो बिना किसी मेहनत और ख़तरे के, ब्याज लेने वाले को मिलता रहता है, जबकि ब्याज देने वाला मजबूर होता है कि मूल राशि पर यह अतिरिक्त मुनाफ़ा शुरू से ही और लगातार निर्धारित समय पर देता रहे चाहे हालात कुछ भी हों, क्योंकि क़र्ज़ लेने वाला ज़रूरत के लिए क़र्ज़ लेने पर मजबूर होता है। इस्लाम मुनाफ़ा कमाने के विरुध नहीं है यदि वह जायज़ तरीक़े से किसी कारोबार में कमाया जाए इस शर्त के साथ कि यदि माल देने वाला और माल लेने वाला दोनों ही सम्भावित मुनाफ़े में भी भागीदार हों और किसी घाटे की स्थिति में भी दोनों ही इस घाटे में शरीक हों। इस तरह जो लोग किसी मामले में साझीदार हों तो दोनों के अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के बीच बराबर का संतुलन रखा गया है।

शोषण अर्थात ब्याज के समर्थक लोग तर्क देते हैं कि मुनाफ़ा कमाना और ब्याज वसूलना

दोनों एक ही बातें हैं, इसलिए ब्याज को भी जायज़ होना चाहिए। यह स्वार्थपूर्ण और लालची रवैया इस्लाम के सामाजिक व आर्थिक न्याय के विपरीत है। इस्लाम लेनदेने के न्यायपूर्ण और संतुलित सिद्धांत पर लाभ कमाने का उत्साहवर्धन करता है जिसमें सभी पक्ष बिना किसी भौतिक या नैतिक दबाव के अपनी इच्छा से मुनाफ़ा और नुक़सान में भागीदार होने का समझौता करते हैं। मुनाफ़ा और नुक़सान में साझीदारी के सिद्धांत पर कई तरह से और कई तरीक़ों से मामले तय किए जा सकते हैं।

न्याय से आगे बढ़ कर व्यक्तिगत रूप से दानशीलता का मामला करना इस्लाम में और भी ज़्यादा प्रिय है और इस पर बहुत ज़्यादा बदले का वायदा है। ज़रूरतमंद व्यक्तियों को देना, और समाज की सामूहिक ज़रूरतों में ख़र्च करना जनसुरक्षा के लिए भौतिक और नैतिक रूप से फ़ायदेमंद होता है। इससे सामूहिक रूप से समाज की भौतिक ज़रूरतें पूरी होती हैं और इस सामाजिक सौहार्द और सहयोग से लेने वालों को भी और देने वालों को भी तथा पूरे समाज को भौतिक और नैतिक फ़ायदे प्राप्त होते हैं। चुनांचि अल्लाह सदक़ात (पुणदान) को कई गुना और कई तरह से बढ़ाते चले जाते हैं, जबकि शोषण और ब्याज की कमाई लालच और जलन व ईर्ष्या के कारण सुकड़ कर रह जाती है क्योंकि इससे उत्पादक प्रक्रिया रूक जाती है और समाज अन्दर से टूट फूट का शिकार हो जाता है।

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَ ذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰٓوا اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝۲۷۸ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ ۚ وَ اِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ لَا تَظْلِمُوْنَ وَ لَا تُظْلَمُوْنَ ۝۲۷۹ وَ اِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ؕ وَ اَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝۲۸۰ وَ اتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ۗ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَ هُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ۝۲۸۱

ऐ मोमिनों! अल्लाह से डरते रहो और जो कुछ सूद का बाक़ी है उसको छोड़ दो अगर तुम वाक़ई अल्लाह पर यक़ीन कामिल रखते हो। फिर अगर तुम इस पर अमल ना करोगे तो सुन लो अल्लाह की और रसूल की तरफ़ से एलाने जंग है अगर तुम तौबा कर लो तो तुम को असल अम्वाल मिल जाऐंगे। ना तुम किसी पर ज़ुल्म करोगे और ना तुम पर कोई ज़ुल्म करेगा। और अगर तंगदस्त हो तो मोहलत देने का हुक्म है आसूदगी के आने तक, और ये बात के माफ़ ही कर दो तो तुम्हारे लिये.ज्यादा बेहतर है, अगर तुम जानते हो (के ये सवाब का काम है)। और उस दिन से डरते रहो जिस दिन तुम सबको अल्लाह ही की तरफ़ लौट कर जाना और उसके सामने पेश होना है फ़िर हर शख़्स को उसके अमल का पूरा पूरा बदला मिलेगा, और उन पर कोई ज़ुलम ना होगा। (2:278-281)

ब्याज के लेनदेन में एक इंसान दूसरे इंसान का शोषण करता है, और बिना मेहनत और रिस्क के लाभ कमाता रहता है। अतःब्याज आधारित लेनदेन पर पाबन्दी वास्तव में इस आम सिद्धांत को अमल में लाना है जिसके अन्तर्गत ग़लत तरीक़े से दूसरे के माल पर क़ब्ज़ा करना और किसी का भी किसी भी तरह से शोषण करना मना है (4:29)। अलबत्ता नाजायज़ तरीक़े से कमाई करने की ये मनाही जिन मामलों में लागू की जाए उनकी विवेचना शरीअत और फ़िक़्ह के स्पष्ट सिद्धांतों और नज़ीरों के हिसाब से होना चाहिए।

समान अवसर

قُلِ اللّٰهُمَّ مٰلِكَ الْمُلْكِ تُؤْتِي الْمُلْكَ مَنْ تَشَآءُ وَ تَنْزِعُ الْمُلْكَ مِمَّنْ تَشَآءُ ۫ وَ تُعِزُّ مَنْ تَشَآءُ وَ تُذِلُّ مَنْ تَشَآءُ ؕ بِيَدِكَ الْخَيْرُ ؕ اِنَّكَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٢٦ تُوْلِجُ الَّيْلَ فِي النَّهَارِ وَ تُوْلِجُ النَّهَارَ فِي الَّيْلِ ۫ وَ تُخْرِجُ الْحَيَّ مِنَ الْمَيِّتِ وَ تُخْرِجُ الْمَيِّتَ مِنَ الْحَيِّ ۫ وَ تَرْزُقُ مَنْ تَشَآءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ۝٢٧

कहो कि ऐ ख़ुदा! ऐ बादशाही के मालिक तू जिसको चाहे बादशाही बख़्शे और जिससे चाहे बादशाही छीन ले, और जिसको चाहे इज़्ज़त दे और जिसे चाहे ज़लील करे, हर तरह की भलाई तेरे ही हाथ है, और बेशक तू हर चीज़ पर क़ादिर है। तू ही रात को दिन में दाख़िल करता और तू ही दिन को रात में दाख़िल करता है और तू ही बेजान से जानदार पैदा करता है, और तू ही जानदार से बेजान पैदा करता है, और तू ही जिसको चाहता है बेशुमार रिज़्क़ बख़्शता है। (3:26-27)

हर 24 घण्टों में रात धीरे धीरे और धीमी गति से दिन को अपनी पकड़ में लेती जाती है और इसी तरह दिन रात को धीरे धीरे और धीमी गति से अपनी आग़ोश में ले लेता है और यह सिलसिला आगे पीछे लगातार चलता रहता है, अलबत्ता, अलग अलग मौसमों में उनकी लम्बाई घटती और बढ़ती रहती है और यह सब कुछ एक लगे-बंधे प्राकृतिक नियम के अन्तर्गत होता है (36:40)। ठीक ऐसे ही जैसे कोई जीवित प्राणि मृत हो जाता है और उपजाऊ पौष्टिक तत्वों से जो कि अपने आप में कोई जीवित प्राणि नहीं हैं जीवित प्राणि पैदा होता है, जैसे ज़मीन से पेड़ पौधों का पैदा होना, और पशुओं व इंसानों में खाद्द पदार्थों का वीर्य में बदलना, और यह सब कुछ निर्धारित क़ानूनों के अन्तर्गत होता है। सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों का हस्तांतरण और रिज़्क़ व आर्थिक शक्ति की प्राप्ति भी भौतिक और जैविक नियमों की तरह, उन निर्धारित सामाजिक क़ानुनों की पाबन्द है जो हमने खोजे हैं और जिनसे हम लाभान्वित होते हैं।

अल्लाह की देन बे-हिसाब है लेकिन सृष्टि में मौजूद अल्लाह की बख़्शिशों को ठीक से समझना और जानना और उनसे फ़ायदा उठाना इंसानों की ज़िम्मेदारी है और उन बख़्शिशों को तथा उनके फ़ायदों को सभी इंसानों के बीच न्याय के साथ वितरित भी होना चाहिए। यह इंसानों की ज़िम्मेदारी है कि वो सामाजिक बदलाव के नियम देखें और समझें और सामाजिक व आर्थिक न्याय व विकास के लिए इन नियमों को पूरी बुद्धिमता के साथ उपयोग करें।

निजी सम्पत्ति जनहित के विपरीत इस्तेमाल नहीं हो सकती

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَاءَ أَمْوَالَكُمُ الَّتِي جَعَلَ اللَّهُ لَكُمْ قِيَامًا وَارْزُقُوهُمْ فِيهَا وَاكْسُوهُمْ وَقُولُوا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوفًا ۝

और तुम बेवक़ूफ़ों को अपने वो माल ना दिया करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये मायए ज़िन्दगी बनाया है, और उन मालों में उनको खिलाते रहो, पहनाते रहो, और उनसे अच्छी अच्छी बातें किया करो। (4:5)

यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि सम्बोधितों के लिए बहुवचन का उपयोग किया गया है यानि ''तुम लोग'' और यह सम्बोधन इस अर्थ में हुआ है कि तुम्हारे पास बे-अक़ल लोगों (जो अपने मामले ठीक से नहीं चला सकते और माल को इस्तेमाल में लाने के बजाए उसे नष्ट कर सकते हैं) का माल है जो कि वित्त साधन है। यहां 'तुम लोग' से अभिप्राय पूरा समाज है जिसे अल्लाह ने अपने द्वारा जुटाए गए संसाधनों को उपयोग व उपभोग में लाने का अधिकार दिया है (देखें 24:33(57:8)। समाज का प्रतिनिधित्व वो लोग करते हैं जिन्हें इस माल का निगरां बनाया गया हो। उन्हें, और परोक्ष रूप से पूरे समाज को, यह सावधान किया जा रहा है कि बे-अक़ल लोगों की जो सम्पत्ति है उन्हें उनके हाथ में न दो जब तक वह ठीक न हो जाएं। इस प्रावध ाान का मक़सद धन को नष्ट होने से बचाना है और ईमानदार व योग्य लोगों द्वारा इसमें वृ‍ि को सुनिश्चित बनाना है और इस तरह यह आदेश उन लोगों के हित में है जो माल के मालिक तो हैं लेकिन दिमाग़ी तौर से उसे संभालने और बढ़ाने के योग्य नहीं हैं, यह बात समाज के सामूहिक हित में भी है क्योंकि किसी एक व्यक्ति के माल की बर्बादी परिणाम के रूप में पूरे समाज के माल की बर्बादी है। यदि सम्बोधित वो लोग हैं जो वास्तव में सम्पत्तियों का प्रबंधन करते हैं तब ये इन सम्पत्तियों से उनका सम्बंध अपंग व्यक्तियों के प्रतिनिधि के तौर पर होने के साथ साथ समाज के सामूहिक हित का आंशिक प्रतिनिधित्व करने वालों के रुप में भी है। इस स्थिति में अपने आधीन माल के सम्बंध में उनकी ज़िम्मेदारी पर यहां ज़ोर दिया गया है।

इस तरह यह आयत निजी सम्पत्ति के मामले में सामाजिक हित को उजागर करती है, क्योंकि किसी भी व्यक्तिगत भूल या माल को संभाल कर रखने की योग्यता न होने का बुरा

प्रभाव समाज के सामूहिक हित पर पड़ेगा। शरीअत निजी सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार करती है, उसकी सुरक्षा करती है और उसका उत्साहवर्धन करती है लेकिन व्यक्तिगत अधिकार को पूरी छूट नहीं देती कि कोई व्यक्ति अपने हितों और अपने माल को ख़ुद ही नष्ट करे। अतःशरीअत ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करती है ताकि दोनों तरफ़ एक संतुलन बना रहे जिसका तक़ाज़ा यह है कि व्यक्तिगत अधिकारों को अस्थाई या अपवाद रूप में रोका जा सकता है। शरीअत न तो पूरी तरह वयक्तिवाद की तरफ़ झुकाव रखती है और न पूरी तरह सामूहिकतावाद की तरफ़। यह मौलिक रूप से व्यक्तिगत अधिकारों और संतुलन को सामाजिक हितों की सुरक्षा के साथ साथ सुरक्षित करती है। सभी मानव अधिकारों और कर्तव्यों की, व्यक्तिगत हों या सामाजिक, निशानदेही हालांकि क़ुरआन व सुन्नत में कर दी गयी है लेकिन उनको विस्तार से तय करना और स्पष्ट तरीक़े से निर्धारित और लागू करना हर ज़माने के ईमान वालों का काम है कि अपने समय और स्थितियों के हिसाब से उन्हें समझें। यह काम क़ुरआन व सुन्नत और प्राथमिक काल से लगातार चले आ रहे तरीक़ों से पूरी तरह अलग या विपरीत नहीं हो सकता, न किसी एक व्यक्ति के कहने पर होगा, बल्कि क़ुरआन व सुन्नत में दिए गए नियमों के अनुसार सामूहिक चिंतन और निर्णयों से, ख़ास तौर से सलाहकार समिति के द्वारा, होगा, जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ الْاَحْبَارِ وَ الرُّهْبَانِ لَيَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ النَّاسِ بِالْبَاطِلِ وَ يَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ؕ وَ الَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَ الْفِضَّةَ وَ لَا يُنْفِقُوْنَهَا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۙ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ۙ﴿۳۴﴾ يَّوْمَ يُحْمٰى عَلَيْهَا فِيْ نَارِ جَهَنَّمَ فَتُكْوٰى بِهَا جِبَاهُهُمْ وَ جُنُوْبُهُمْ وَ ظُهُوْرُهُمْ ؕ هٰذَا مَا كَنَزْتُمْ لِاَنْفُسِكُمْ فَذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَكْنِزُوْنَ ﴿۳۵﴾

ऐ मोमिनों! यहूद के अक्सर उल्मा और मशायख़, लोगों का माल नाजायज़ तौर पर खाते हैं और अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं, और जो लोग सोना चांदी जमा कर रहे हैं, और अल्लाह की राह में ख़र्च नहीं करते तो उनको एक बड़े दर्दनाक अज़ाब की ख़बर सुना दीजिये। जो उस रोज़ वाक़े होगा के उनको दोज़ख की आग में तपाया जाएगा फ़िर उनकी पेशानियों, उनकी करवटों को और उन की पुश्तों को दाग़ दिया जाएगा, ये वो है के जिसका तुमने अपने वास्ते जमा करके रखा था, सो अब अपने जमा करने का मज़ा चखो। (9:34-35)

क़ुरआन दूसरों के माल पर अनाधिकृत रूप से क़ब्ज़ा करने को मना करता है (4:29) चाहे यह क़ब्ज़ा करने वाला कोई भी हो और उसका उद्देश्य कुछ भी हो। ऊपर की आयत में क़ुरआन ख़ास तौर से “अहबार” और “रहबान”(यानि बनी इस्राईल के पण्डित व ज्ञानी) का ज़िक्र

करता है जो दूसरों का माल हड़पने में लिप्त होते थे और सोना चांदी जमा करके रखते थे लेकिन अपने धार्मिक पदों की प्रतिष्ठा में छुपे रहते थे, या यह दावा करते थे कि यह माल वो इबादत घरों की ज़रूरतों के लिए जमा करते हैं। शरीअत ने धर्म और पूजा स्थलों की और जो लोग उनसे सम्बंधित होते हैं उनकी पवित्रता बनाए रखने और रक्षा करने का आदेश दिया है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि धर्म और धार्मिकता के इस तरह दुरुपयोग पर नैतिक और क़ानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाए जाएंगे। अल्लाह के रास्ते में ख़र्च करने के लिए निकाला गया माल ज़रूरी है कि जायज़ तरीक़े से ही कमाया गया हो (2:276), और सोना व चांदी जमा करना जो माल के सर्कुलेशन को जाम कर देता है और अर्थ व्यवस्था व समाज को इससे कोई फ़ायदा नहीं होता उसे सुरक्षित और व्यवस्थित करने की ज़रूरत है। यह आयत न केवल आलिमों और मशाइख़ के नैतिक आचरण को व्यक्तिगत लालच या अपने पद की प्रतिष्ठा के ग़लत इस्तेमाल से बचाती है बल्कि सामाजिक न्याय का एक आम सिद्धांत तय करती है कि दौलत को जमा करके रखना और कुछ हाथों में ही उसका घूमता रहना ग़लत है। जो लोग ध ार्मिक मामलों से सम्बंध रखते हैं और फिर इस तरह के काम करते हैं जो उनकी प्रतिष्ठा के भी विपरीत है और सामाजिक व आर्थिक न्याय के भी विपरीत है, उन्हें एक कड़े अज़ाब से डराया गया है। यह बात उन सभी अन्य लोगों पर भी लागू होती है जो दूसरों के माल को हड़पते हैं, या माल जमा करके रखते हैं।

اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ وَ اَنْفِقُوْا مِمَّا جَعَلَكُمْ مُّسْتَخْلَفِيْنَ فِيْهِ ؕ فَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مِنْكُمْ وَ اَنْفَقُوْا لَهُمْ اَجْرٌ كَبِيْرٌ ۝

तुम सब अल्लाह पर और उसके रसूल पर ईमान लाओ, उस माल में से ख़र्च किया करो जिस में उसने तुम को दूसरों का ख़लीफ़ा बनाया है तो जो तुम में से ईमान लायें और माल ख़र्च करें, उनके लिये बड़ा सवाब है। (57:7)

अल्लाह ने पूरी सृष्टि में और विशेष रूप से इस धरती पर बेगिनती संसाधन जुटाए हैं जो इंसानों और अन्य सभी जीवों के लिए पर्याप्त हैं। ऊपर की आयत का यही अर्थ है और यह बात दूसरी कई आयतों में भी कही गयी है जैसे "और धरती पर कोई चलने फिरने वाला नहीं मगर उसका अन्न अल्लाह के ज़िम्मे है वह जहां रहता है उसे भी जानता है और जहां सोंपा जाता है उसे भी, यह सब कुछ एक रोशन किताब में (लिखा हुआ) है" (11:6; और देखें 29:60; 51:22)। इंसानों को अपनी प्रतिभाओं को भरपूर तरीक़े से विक्सित करने की ज़िम्मेदारी दी गयी है और साथ ही साथ उन प्राकृतिक संसाधनों को विक्सित करने और उन्हें न्यायपूर्वक ढंग से वितरित करने का अधिकार दिया गया है (11:61), और देखें 16:14;

17:12, 66; 28:73; 30:46; 35:12; 45:12; 67:15)। इस्लामी समाज और इस्लामी वित्त व्यवस्था व क़ानून में व्यक्तिगत सम्पत्ति को मौलिक महत्व प्राप्त है, लेकिन सामाजिक पहलू का ध्यान रखना भी ज़रूरी है, चूंकि हर व्यक्ति जो कुछ भी माल कमाता है तो माल कमाने की इस प्रक्रिया में दूसरे व्यक्तियों और कुल समाज का सहयोग व सहक्रिया शामिल होती है। क़ुरआन माल के मालिकों को यह याद दिलाता है कि वो माल के मुतवल्ली (ट्रस्टी) हैं माल का मालिक तो अल्लाह है और उसी ने तुम्हें इसमें से कुछ पर अधिकार दिया है। सभी संसाधन अल्लाह ने अपने जीवों के लिए जुटाए हैं और लोगों को इस बात में परखा जाता है कि वो अपनी प्रतिभाओं से काम लेकर उन संसाधनों को कितना और किस तरह विक्सित और वितरित करते हैं (11:16; 62:10; 67:15)। हर व्यक्ति को अपनी ज़रूरत से बचा हुआ माल दूसरे ज़रूरतमंदों या समाज की सामूहिक ज़रूरतों पर ख़र्च करने को कहा गया है। इस तरह इस्लाम सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करता है और इंसानी समाज में आपसी सौहार्द को बढ़ावा देता है। यह व्यक्ति और उसकी गतिविधियों को इंसानी और भौतिक विकास का आधार ठहराता है।

जो माल अल्लाह ने अपने रसूल को देहातों में दिलवाया है, वो अल्लाह का है और उसके रसूल का, और रसूल के रिश्तेदारों, और यतीमों, हाजतमंदों और मुसाफ़िरों का है, ताके जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में ना फ़िरता रहे, और जो चीज़ रसूल तुम को दें वो ले लो, और जिससे मना करें उससे बाज़ रहो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह सख़्त अज़ाब देने वाला है। और ग़रीब वतन छोड़ने वालों का हक़ है जो अपने घरों और मालों से जुदा कर दिये गए हैं, वो अल्लाह के फ़ज़्ल और उसकी रज़ा के तालिब हैं, और ख़ुदा और उसके रसूल मददगार हैं, और यही लोग बच्चे ईमानदार हैं। और उन लोगों के लिये भी जो मुजाज्रीन से पहले मदीना में मुक़ीम और ईमान मे मुस्तक़िल रहे, और जो लोग हिज्रत करके उनके पास आते हैं उनसे मोहब्बत करते हैं और जो कुछ उनको मिला उससे अपने दिल में कुछ ख़्वाहिश और ख़लिश नहीं पाते और उनको अपनी जानों से मुक़द्दम रखते हैं ख़्वाह उनको फ़ाक़ा हो और जो शख़्स हिर्से नफ़्स से बचा लिया गया हो तो ऐसे ही

مَآ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ مِنْ اَهْلِ الْقُرٰى
فَلِلّٰهِ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِى الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى
وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ كَیْ لَا يَكُوْنَ
دُوْلَةًۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ ؕ وَ مَاۤ اٰتٰىكُمُ
الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۚ وَ مَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ
فَانْتَهُوْا ۚ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ
الْعِقَابِ ۘ لِلْفُقَرَآءِ الْمُهٰجِرِيْنَ الَّذِيْنَ
اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَ اَمْوَالِهِمْ يَبْتَغُوْنَ
فَضْلًا مِّنَ اللّٰهِ وَ رِضْوَانًا وَّ يَنْصُرُوْنَ اللّٰهَ وَ
رَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ هُمُ الصّٰدِقُوْنَ ۚ وَ
الَّذِيْنَ تَبَوَّؤُ الدَّارَ وَ الْاِيْمَانَ مِنْ قَبْلِهِمْ
يُحِبُّوْنَ مَنْ هَاجَرَ اِلَيْهِمْ وَ لَا يَجِدُوْنَ
فِیْ صُدُوْرِهِمْ حَاجَةً مِّمَّاۤ اُوْتُوْا وَ
يُؤْثِرُوْنَ عَلٰۤى اَنْفُسِهِمْ وَ لَوْ كَانَ بِهِمْ

خَصَاصَةٌ ۚ وَمَنْ يُوقَ شُحَّ نَفْسِهِ فَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُفْلِحُونَ ۝ وَالَّذِينَ جَاءُوا مِنْ بَعْدِهِمْ يَقُولُونَ رَبَّنَا اغْفِرْ لَنَا وَلِإِخْوَانِنَا الَّذِينَ سَبَقُونَا بِالْإِيمَانِ وَلَا تَجْعَلْ فِي قُلُوبِنَا غِلًّا لِلَّذِينَ آمَنُوا رَبَّنَا إِنَّكَ رَءُوفٌ رَحِيمٌ ۝

लोग मुराद पाने वाले हैं। और उनके लिये भी जो इन मुहाज्रीन के बादआए, और दुआ करते हैं के ऐ हमारे परवरदिगार हमको माफ़ फ़रमा, और हमारे भाईयों को जो हमसे पहले ईमान लाये हैं और मोमिनीन की तरफ़ से हमारे दिलों में कीना ना पैदा होने दे ऐ हमारे परवरदिगार! तू तो बड़ा शफ़्क़त करने वाला रहम वाला है। (59:7-10)

इस्लाम जिस तरह सामाजिक व आर्थिक न्याय के लिए माल कमाने और ख़र्च करने के सिद्धांत तय करता है इसी तरह यह ''माल-ए-ग़नीमत'' (जंग में हाथ लगने वाला शत्रु का माल) की भी अनदेखी नहीं करता और बताता है कि इस माल का बटवारा किस तरह करना है। यु) में हाथ लगने वाले माल-ए-ग़नीमत को सैनिकों (लड़ाई में शामिल लोगों) की निजी कमाई नहीं माना गया है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो लगातार होने वाली लड़ाइयों में प्राप्त होने वाला माल-ए-ग़नीमत बार बार उन लोगों को ही मिलता रहता, इस तरह लड़ने वाले (सैनिक या लड़ाका) लोग मालदार वर्ग बन जाते, जबकि वो वास्तव में अल्लाह की ख़ातिर लड़ते हैं और पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसलिए मुसलमान मुजाहिदों को दुशमनों से पहली गम्भीर लड़ाई में जब माल-ए-ग़नीमत हाथ लगा तो क़ुरआन ने बता दिया कि यह माल-ए-ग़नीमत राज्य के सरकारी कोष में जमा किया जाएगा और व्यक्तियों या क़बीलों की सम्पत्ति नहीं बनेगा और यह अल्लाह के क़ानून और रसूल के दिशा निर्देश के अन्तर्गत होगा (8:91)। ऊपर की आयत पूरे समाज के अधिकार को बयान करती है कि जो माल अल्लाह ने अपने पैग़म्बर को बस्ती वालों से दिलवाया है, वह सब से पहले अल्लाह का है, और इस्लाम की क़ानूनी शब्दावली में पूरे समाज के हक़ को अल्लाह का हक़ कहा जाता है, यह जताने के लिए कि उसकी स्थिति वक़्फ़ सम्पत्ति की है और इसकी मिल्कियत हस्तांतरित नहीं की जा सकती। पैग़म्बर सल्ल० अपने जीवन में मुसलमानों के 'अमीर' (सरदार) थे और आप के बाद जायज़ इस्लामी शासन का यह हक़ था कि माल-ए-ग़नीमत को मुजाहिदों के घर वालों, यतीमों, ज़रूरतमंदों और यात्रियों को बांटे ''ताकि माल केवल मालदारों के बीच ही न घूमता रहे''।

क़ुरआन ने बार बार और महत्व के साथ उन लोगों की भौतिक और नैतिक मदद करने पर ज़ोर दिया है जो अपने वतन के बाहर किसी और जगह जा कर रहते हैं। यानी परदेसी या मुसाफ़िर। इस तरह हर स्थान पर इंसान के समान अधिकारों और समानता पर ज़ोर दिया गया है।

इसके अलावा उपरोक्त आयतें बहुत स्पष्ट रूप से यह बताती हैं कि पूरा समाज और उसके

सभी ज़रूरतमंद व्यक्ति इस माल-ए-ग़नीमत में हक़दार है, जब तक भी वो वास्तव में इसके ज़रूरतमंद हैं। क़ुरआन के अवतरित होने के ज़माने में यह बात उन लोगों के लिए थी जो मक्का में अपने घरों और सम्पत्तियों से निकाल दिए गए थे और जिन्होंने मदीना में उन्हें शरण दी थी यानि मदीना के 'अंसार'। ऐसे जन अधिकार और सामाजिक फ़ायदे पूरे समाज और उसके सभी तत्वों को और आने वाली नस्लों को पहुंचते हैं चाहे ये माल-ए-ग़नीमत किसी ख़ास अवसर पर किसी ख़ास वर्ग ने ही प्राप्त किए हों। इस तरह ये माल-ए-ग़नीमत उन सभी लोगों तक पहुंचते हैं जो बाद में आने वाले हैं। ये आयतें ''जन अधिकारों'' की कल्पना पर देती हैं और इसी तरह जनता के ख़ज़ाने (सार्वजनिक कोष), सम्पत्ति और धन की कल्पना देती हैं, और ये कल्पना इस्लामी राज्य के बिल्कुल प्रारम्भिक युग में ही बहुत स्पष्ट ढंग से मिलती है, और ये सिद्धांत सामाजिक व आर्थिक न्याय के लिए ज़रूरी है।

समान अवसर के लिए उन लोगों की विशेष सहायता ज़रूरी है जो अपनी परिस्थितियों की कुछ मजबूरियों के चलते वंचित हों, वरना उन लोगों को बाद में मिलने वाले समान अवसरों से वो फ़ायदा नहीं मिलेगा जो उन लोगों को पहले मिल चुका है जो पहले से अच्छी स्थिति में रहे हैं। यह सिद्धांत जिसे हमारे युग में अब ''एफ़रमेटिव एक्शन'' (सकारात्मक कार्रवाई) का सिद्धांत कहा जाता है पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने उस समय अपनाया जब आप ने हिजरत (मदीना पलायन) के तीसरे साल बनू नज़ीर से हुई लड़ाई में प्राप्त होने वाले माल ए ग़नीमत को मुहाजिरों में वितरित किया जिन्हें मक्का में अपने घर और जायदादें छोड़ कर आना पड़ा था, और मदीना के अंसार को इस्लाम के लिए उनकी क़ुर्बानी और समर्थन के बावजूद इस माल-ए-ग़नीमत से कुछ नहीं दिया, क्योंकि वो लोग अपने घरों में और अपनी जायदादों के साथ थे। इस बंटवारे में आप सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने मदीना के ग़रीब मुसलमानों को उनकी ग़रीबी की वजह से शामिल किया था (देखें इब्ने कसीर, अलबिदाया वल निहाया, बैरूत, 1987, जिल्द 4, पेज 77)।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۗ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ۝

मोमिनों! एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो, अलबत्ता आपस की रज़ामंदी से तिजारत का लेनदेन है कोई फ़ायदा हो जाए तो जायज़ है, और आपस में एक दूसरे को हलाक़ ना किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम पर बड़ा ही मेहरबान है। (4:29)

इन आयतों में सम्बोधितों के लिए बहुवचन का उपयोग करके ''अमवाल'' (माल का बहुवचन) को ''तुम्हारे अमवाल'' कहा गया है और इस तरह सामूहिक आर्थिक हितों को बताने

के लिए पूरे समाज के हितों का हवाला है, हालांकि हर व्यक्ति का माल स्वयं उसकी निजी सम्पत्ति होता है। पूरे समाज का सामूहिक हित इस बात से ख़तरे में पड़ता है कि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के माल पर छल कपट करके या किसी और तरह से नाजायज़ क़ब्ज़ा करने का प्रयास करे। सामाजिक व आर्थिक न्याय के लिए दौलत कमाने के लिए भी सिद्धांत ज़रूरी हैं केवल ख़र्च करने के लिए नहीं। ज़रूरतमंदों पर या समाज की आवश्यकताओं के लिए ख़र्च करना उसी माल से जायज़ है जो जायज़ तरीक़े से कमाया गया हो (देखें पहले उल्लेख की गयी आयत 2:267 और उसकी व्याख्या)। नाजायज़ कमाई या दूसरों के माल को ग़लत तरीक़े से हड़प लेने का मतलब हर उस माल से है जो किसी भी जगह और किसी भी युग में अनुचित तरीक़े से और बेईमानी से प्राप्त किया गया हो, यह नैतिक व आर्थिक रूप से विनाशकारी होता है। किसी भी जायज़ कमाई का आधार सम्बंधित पक्षों की आपसी सहमति पर है जो कि जायज़ सिद्धांतों के अन्तर्गत हो, जिस में दोनों को ही फ़ायदा मिलता हो। धोखा धड़ी, शोषण या और किसी भी तरह से माल हड़पना, जिसमें मेहनत करने वालों के साथ अन्याय भी शामिल है, कुछ व्यक्तियों के लिए भी नुक़सानदायक होगा और पूरे समाज के लिए भी और नतीजे के रूप में समाज की अर्थ व्यवस्था के लिए भी, क्योंकि अर्थ व्यवस्था तब तक स्थाई रूप से और बढ़ती हुई गति के साथ स्थिर नहीं रह सकती जब तक सभी मामले ठीक न हों और समाज की नैतिक निगरानी न हो।

ज़कातःसामाजिक कल्याण के लिए एक ज़रूरी निवेश

إِنَّمَا الصَّدَقٰتُ لِلْفُقَرَآءِ وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ الْعٰمِلِيْنَ عَلَيْهَا وَ الْمُؤَلَّفَةِ قُلُوْبُهُمْ وَ فِي الرِّقَابِ وَ الْغٰرِمِيْنَ وَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ؕ فَرِيْضَةً مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ۝

सदक़ात तो हक़ है ग़रीबों का, मोहताजों का, और कारकुनाने सदक़ात का, और जिन दिलजुई मंज़ूर है, ग़ुलामों की गर्दन छुड़ाने में, क़र्ज़दारों के क़र्ज़े में, और जिहाद में, और मुसाफ़िरीन में, ये हुक्म अल्लाह ही की तरफ़ से है, और अल्लाह तो .ख़ूब जानने वाला और बड़ी हिकमत वाला है। (9:60)

ग़रीबों, कमज़ोरों और जनहित के लिए ख़र्च करने से सामाजिक व आर्थिक न्याय की पूर्ति होती है और यह सामाजिक न्याय के लिए एक मदद होती है, लेकिन न्याय का आधार केवल यह नहीं है। शरीअत ने कमाने और ख़र्च करने की सीख देने के लिए क़ानूनी सिद्धांत दिए हैं, जैसे यह कि धोखा धड़ी, जालसाज़ी और शोषण व उत्पीड़न के द्वारा माल कमाने की मनाही, और ऐश व इशरत में माल को गंवाने या ज़रूरत से अधिक ख़र्च करने की मनाही, जो कि

समाज और व्यक्तियों के लिए, तथा अर्थ व्यवस्था और नैतिकता के लिए नुक़सान का कारण हो (''इसराफ़'' व ''तबज़ीर'' की मनाही के लिए देखें 11:116; 17:16; 21:13; 23:43,64; 34:34; 43:23; 56:45; 16:14; 7:31; 17:26-27; 25:67; नुक़सानदायक कामों के लिए देखें 4:29; 5:90-91; 6:151; 7:32,80; 16:90; 17:31-38)। जिस तरह व्यक्तिगत और सामाजिक फ़ायदों के लिए कमाने और खर्च करने के काम को सही दिशा दिखाना इस्लाम में सामाजिक व आर्थिक विकास का आधार है, इसी तरह सदक़ा व ख़ैरात का निर्देश न्याय की प्रक्रिया को पूरा करने और सहारा देने का माध्यम है। यह फ़र्क़ को घटाने का एक साधन है, और दोषों व त्रुटियों के सुधार की एक व्यवस्था है।

इसके अलावा, और इससे ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यक्तियों को ''इन्फ़ाक'' .(अल्लाह के लिए ख़र्च करने) पर उभारा जाए और आपसी प्रतिस्पर्धा की प्रेरणा दी जाए। यह चीज़ सामाजिक विकास में व्यक्ति और समाज दोनों के लिए बहुत उपयोगी है। यह अनिवार्य ज़कात और ऐच्छिक सदक़े (पुण दान) ही हैं जो माल को पाक करते हैं और व्यक्ति का ''तज़किया'' (नैतिक प्रिशक्षण) करते हैं और नैतिकता को बढ़ावा देते हैं। ऊपर की आयत में उन वर्गों का उल्लेख किया गया है जो इन सामाजिक खर्च़ को प्राप्त करने के पात्र हैं। जो लोग अपना रोज़गार कमाने से स्थाई रूप से अक्षम हैं जैसे बूढ़े बुज़ुर्ग और बीमार या अपंग लोग, तथा वो लोग जो अपना रोज़गार कमाने से अस्थाई रूप से अक्षम हैं जैसे बच्चे और बीमार लोग या वो लोग जो व्यक्तिगत रूप से या एक सामूहिक आर्थिक संकट से जुझ रहे हों, उन लोगों में सबसे ऊपर हैं जिन्हें सदक़ा और ख़ैरात का अर्थात सामाजिक सहायता का पात्र माना गया है।

क़ुरआन अस्थाई ज़रूरतमंदों और स्थाई ज़रूरतमंदों में अन्तर करता है। फ़क़ीर (स्थाई रूप से ग़रीब) और मिसकीन (ज़रूतमंद), क़र्ज़दार (''ग़ारिमीन'') और मुसाफ़िर (''इब्नुस्सबील''), लेकिन हर एक को लोगों की सहायता का पात्र बताया गया है। यह अन्तर इस बात पर ज़ोर देता है कि इस्लाम लोगों के लिए इस बात को पसन्द नहीं करता कि वो स्थाई रूप से सामाजिक सहायता पर गुज़ारा करें। अगर कुछ समय के बाद वो स्वयं कोई काम करने में सक्षम हो जाएं और वर्तमान स्थिति बदल जाए तो ऐसे लोगों को इस्लाम ताकीद करता है कि वो निर्माणकारी कामों के द्वारा अपना रोज़गार स्वयं कमाना शुरू करें जितनी जल्दी वो ऐसा कर सकते हैं करें। यह बहुत महत्वपूर्ण बात है कि इस्लाम ने प्राचीन काल से चली आ रही ग़ुलामी (दास व्यवस्था) को समाप्त करने के लिए अनेक उपाय किए क्योंकि इंसानों को ग़ुलाम बना कर रखना इस्लाम के सिद्धांतों के विपरीत है और यह इस्लाम से पहले की एक परम्परा है जो उस समय भी प्रचलित थी। इस्लाम ने ग़ुलामों की हैसियत ऊपर उठाने के लिए और उनकी स्थिति बदलने के लिए विभिन्न निर्माणकारी तरीक़े अपनाए। उन्हीं में से एक तरीक़ा यह था

कि ग़ुलामों को आज़ाद कराने के लिए भी सामाजिक सहायता और सरकारी कोष से मदद निर्धारित की गयी।

इन पात्रों के अलावा सामाजिक सहायता का पात्र उन वर्गों और व्यक्तियों को भी बनाया गया जो आर्थिक दबाव में हों और उनकी ज़िम्मेदारियां उनकी क्षमता से अधिक हों, और उनकी तुरन्त आवश्यकता को पूरा करने के लिए या रोज़गार शुरू करने में उनकी मदद के लिए सामाजिक सहायता ज़रूरी हो, या किसी के पुनर्वास की व्यवस्था करना हो या रोज़गार का प्रशिक्षण देना हो। किसी ऐसे व्यक्ति की सामाजिक सहायता भी बहुत महत्वपूर्ण है जिसने अपना देस छोड़ दिया हो और आर्थिक या राजनीतिक कठिनाइयों के चलते स्वदेस लोटना उसके लिए कठिन हो। इससे यह बात सामने आती है कि इस्लाम सारी दुनिया को एक समझता है और दुनिया के किसी भी भूभाग में रहने बसने वाले को हर इंसान का अधिकार समझता है, क्योंकि वो सारे इंसानों को अल्लाह का कुंबा ठहराता है। इस तरह की सामाजिक सहायता के फ़ण्ड को एक आज़ाद प्रबंधन वाली संस्था के अन्तर्गत रखना बिल्कुल प्राकृतिक है और इसी लिए इस संस्था के कर्मचारियों का वेतन और उसके अन्य ख़र्चे भी इसी फ़ण्ड से देने का सिद्धांत दिया गया है। कोई अन्य ऐसी ज़रूरत जो बाद में सामने आए लेकिन इन मदों में इन न आती हो उसे "फ़ी सबीलिल्लाह अल्लाह" (अल्लाह के रास्ते में) दी जाने वाली सहायता के अन्तर्गत लाया जा सकता है कि यह मद उन सभी ख़र्चों पर लागू होती है जो सामाजिक व आर्थिक न्याय के लिए विभिन्न स्थितियों में समाज के विकास के लिए ज़रूरी हों। भौतिक विकास और सार्वजनिक मामलों पर जैसे रास्तों व सड़कों, पुलों, रेलवे, भवनों, डेम आदि के निर्माण और सींचाई वग़ैरह के काम ज़कात व सदक़ात के अलावद दूसरे टेक्सों से किए जाने चाहिएं क्योंकि ज़कात व सदक़ात तुरन्त और वक़्ती इंसानी ज़रूरतों के लिए हैं। इसके अलावा सामाजिक सहायता के सभी सरकारी उपाय ऐच्छिक अनुदान का अवसर देते हैं जिनमें व्यक्तिगत रूप से या मिलजुल कर सामूहिक रूप से सहयोग किया जा सकता है, या कुछ ऐसे ज़रूरी तक़ाज़े सामने आ जाएं जो शासकों की तरफ़ से किसी सार्वजनिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए किए जाएं तो उनमें भी सहयोग करना मालदारों के लिए ज़रूरी है।

خُذْ مِنْ اَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً تُطَهِّرُهُمْ وَ تُزَكِّيْهِمْ بِهَا وَصَلِّ عَلَيْهِمْ ؕ اِنَّ صَلٰوتَكَ سَكَنٌ لَّهُمْ ؕ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿۱۰۳﴾

आप उनके माल में से ज़कात क़ुबूल करें, उसके ज़रिये से आप उनको पाक साफ़ करेंगे, और उन के हक़ में दुआए .ख़ैर भी करें, के आपकी दुआ उनके लिये मौजिबे सुख और चैन है, और अल्लाह तो सुनने वाला और .ख़ूब जानने वाला है। (9:103)

ज़कात जो कि सामाजिक व आर्थिक न्याय के इस्लामी सिद्धांतों को पूरा करती है उसको जमा करना और बांटना इस्लामी शासकों की ज़िम्मेदारी है जिन्हें लोग अपने बीच से चुनते हैं और इस्लामी क़ानून को लागू करने का ज़िम्मेदार बनाते हैं "उलिल अमरि मिनकुम" (4:59)। शासकों और जनता के बीच आपसी सम्बंध समाज के आम हित के लिए ज़रूरी है। ज़कात अदा करने वालों के लिए अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्लल्हो अलैहि वसल्लम की दुआएं उनके लिए संतोष का कारण थीं वहीं इस्लामी शासकों की ज़िम्मेदारी, जो राजनीतिक नैतृत्व में पैग़म्बर साहब सल्ल० के उत्तराधिकारी होते हैं, जनता में, जिनमें ज़कात देने वाले भी शामिल हैं, विभिन्न तरीक़ों से अध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों को विक्सित करना है जैसे प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था करके, पब्लिक मीडिया प्रोग्रामों के माध्म से, इबादत गाहों में, धार्मिक शिक्षा और तक़रीरों व ख़ुत्बों के माध्यम से। लेकिन सामाजिक कल्याण और सौहार्द के लिए अपनी इच्छा से सहयोग करने, व्यक्तिगत रुप से पेशाश करने और ज़्यदादा से ज़्यादा कोशिश करने का अवसर हमेशा मिला रहना चाहिए। इस्लाम का सामाजिक न्याय ऊपर से थोपा नहीं जाता है बल्कि सभी लोगों के सहयोग और आन्तरिक भावना से विक्सित होता है और बना रहता है, और इन्फ़ाक़, सदक़ा व ख़ैरात के ऐच्छिक कामों से जारी रहता है और समाज में गहरी जड़ें रखने वाली परम्परा बन जाता है।

وَالَّذِيْنَ فِيْٓ اَمْوَالِهِمْ حَقٌّ مَّعْلُوْمٌ ۝٢٤ۙ
لِّلسَّاۗىِٕلِ وَالْمَحْرُوْمِ ۝٢٥ۙ

और जिन के माल में हिस्सा मुक़र्रर है। (यानी) मांगने वाले का, और ना मांगने वाले का। (70:24-25)

यहां क़ुरआन ज़रूरतमंद लोगों के हक़ की बात कर रहा है कि वो इस हक़ को प्राप्त करें और जो लोग ज़रूरतमंदों की मदद करने की स्थिति में हैं उनकी यह ज़िम्मेदारी बताता है कि वो इस ज़रूरी काम को अंजाम दें। अनुदान देना कोई ऐच्छिक मामला नहीं है बल्कि आदमी जो कुछ कमाता है उसमें हमेशा एक सामाजिक पहलू और सामाजिक सहयोग का तत्व शामिल होता है, जिसका तक़ाज़ा यह है कि माल ख़र्च करने में सामाजिक आवश्यकता या सामाजिक कल्याण का भी ध्यान रखा जाए। अल्लाह तआला मोमिनों के ईमान और अक़ीदे से और अल्लाह के संदेश के क़ानूनी और नैतिक नियमों से सामाजिक व आर्थिक न्याय स्थापित करते हैं। किसी के ज़रूरतमंद होने की जानकारी चाहे उसकी तरफ़ से मदद के अनुरोध से हो या किसी तरह खोजबीन से किसी के ज़रूतमंद होने का पता चले, उसकी मदद करना उन लोगों के लिए ज़रुरी है जो मदद करने की स्थिति में हैं, चाहे यह अपनी इच्छा से हो या क़ानूनी रूप से बाध्य हो कर हो। अलबत्ता, क़ानूनी प्रावधानों के अलावा व्यक्तिगत रूप से अपनी ख़ुद की भावना से और अच्छे कामों में एक दूसरे से मुक़ाबला करने की प्रेरणा से इसे व्यवहार में लाना चाहिए। ज़कात तो क़ानूनी रूप से अनिवार्य है, जबकि इस अनिवार्य इन्फ़ाक़ के अलावा अपनी

इच्छा और विवेक से अपना माल, अपनी प्रतिभा, ज्ञान, ऊर्जा और अन्य साधनों को दूसरे ज़रूरतमंद लोगों पर ख़र्च करने का निर्देश क़ुरआन में बार बार दिया गया है और इस पर असीमित बदले का वायदा किया गया है।

लास विलास में पड़े रहना और बेकार ख़र्च करना

فَلَوْلَا كَانَ مِنَ الْقُرُوْنِ مِنْ قَبْلِكُمْ أُولُوْا
بَقِيَّةٍ يَّنْهَوْنَ عَنِ الْفَسَادِ فِي الْأَرْضِ إِلَّا
قَلِيْلًا مِّمَّنْ أَنْجَيْنَا مِنْهُمْ ۚ وَاتَّبَعَ الَّذِيْنَ
ظَلَمُوْا مَا أُتْرِفُوْا فِيْهِ وَكَانُوْا مُجْرِمِيْنَ ﴿١١٦﴾
وَمَا كَانَ رَبُّكَ لِيُهْلِكَ الْقُرٰى بِظُلْمٍ وَّ
أَهْلُهَا مُصْلِحُوْنَ ﴿١١٧﴾

तो जो उम्मतें तुम से पहले गुज़र चुकी हैं उनमें से ऐसे होशमंद क्यों ना हुए जो मुल्क में .ख़राबी करने से रोकते बजुज़ उन थोड़े से आदमियों के जिनको हमने उनमें से बचा लिया था, और जो ज़ालिम थे वो उन ही बातों के पीछे लगे रहे, जिनमें ऐशो आराम था, और वो जराएम के आदी थे। और तेरा रब ऐसा ना था के बस्तियों को कुफ़्र के सबब हलाक कर देता, जबके उनके रहने वाले इस्लाह में लगे होंगे। (11:116-117)

सामाजिक न्याय और विकास को बनाए रखने के लिए नेक व सदाचारी लोगों की यह ज़िम्मेदारी है कि जब कहीं कोई ग़लत बात देखें तो उसके विरुद्ध आवाज़ उठाएं, और बुरी व नुक़सानदायक बातों से रोकने और अच्छे व नेक काम करने की प्रेरणा देने में एक दूसरे की मदद करें (3:104-110)। ऐसा समाज और ऐसी सभ्यता समाप्त हो जाती है और विकास तो दूर स्वंय अपने अस्तित्व के लिए ज़रूरी तत्वों को भी खो बैठती है जिसके व्यक्ति समाज के प्रति अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी का अहसास न करें। किसी सामाज में बुराई की प्रवृत्ति रखने वाले लोगों का होना एक स्वभाविक बात है, लेकिन यदि बुराइयों का विरोध करने वाले लोग मौजूद हों तो पूरा समाज एक दूसरे का सुधार करता रहता है और इसके चलते बुरे लोगों की वजह से समाज तबाह नहीं होता है। बुराई की प्रवृत्ति वाले लोग भी इंसान ही होते हैं और उन्हें समाज से बाहर नहीं किया जा सकता, लेकिन उनकी बुराई से समाज को सुरक्षित रखने के लिए उनका प्रतिरोध और उनकी रोकथाम जहां तक सम्भव हो करते रहना ज़रूरी है।

وَإِذَآ أَرَدْنَآ أَنْ نُّهْلِكَ قَرْيَةً أَمَرْنَا
مُتْرَفِيْهَا فَفَسَقُوْا فِيْهَا فَحَقَّ عَلَيْهَا الْقَوْلُ
فَدَمَّرْنٰهَا تَدْمِيْرًا ﴿١٦﴾

और जब हम किसी बस्ती को हलाक करने का इरादा करते हैं तो वहां के आसूदा हाल लोगों को मामूर कर देते हैं तो वो वहां नाफ़रमानी करते हैं फ़िर उन पर इतमामे हुज्जत हो जाता है, फ़िर हम उनको हलाक कर डालते हैं। (17:16)

मौज मस्ती में पड़ने और संसारिक आनन्दों का आदी बन जाने से व्यक्तियों का नैतिक आचरण ख़राब हो जाता है, और फिर सामूहिक रूप से पूरा समाज विनाश के रास्ते पर चल पड़ता है, क्योंकि इसके कारण दौलतमंदों और दौलत से वंचित लोगों के बीच मनोवैज्ञानिक अन्तर बहुत गहरा हो जाता है और सामाजिक दूरी बहुत बढ़ जाती है। इससे वंचितों और ग़रीबों के दिल में अमीरों और धनवानों के लिए बैर पैदा होता है जबकि धनवानों में घमण्ड और ग़रीबों के प्रति उदासीनता बढ़ती जाती है और उनके दुखों से वो बे परवाह और बेदर्द बने रहते हैं, और उनका घमण्ड ग़रीबों को ऊपर उठाने के लिए सामाजिक बदलाव की प्रक्रिया के विरोध पर उन्हें आमादा करता है और वो यथा स्थिति को बनाए रखना चाहते हैं। जो लोग बुरी तरह संसारिक आनन्दों और लास विलास में मगन हो जाते हैं उनके अन्दर से सामाज सुधार के लिए काम करने की बौद्धिक और व्यवहारिक सक्रियता निकल जाती है। वो घमण्ड़ी, इच्छाओं के ग़ुलाम, प्रतिक्रियावादी, यथा स्थिति को बनाए रखने के लिए कट्टर और बहतरी के लिए होने वाले बदलाव के कड़े विरोधी बन जाते हैं। हद से बढ़ी हुई अय्याशी में लिप्त लोग मौज मस्ती में अपनी दौलत ख़र्च करते हैं और इस तरह वो भौतिक और मानवीय संसाधनों के विकास और उनके समुचित वितरण की ज़िम्मेदारी से विचलित हो जाते हैं। क़ुरआन उन लोगों को सम्बोधित करता है और सचेत करता है कि वो अपनी मानसिकता और व्यवहार को बदलें जो कि उनके लिए भी व्यवहारिक रूप से नुक़सानदायक है और आख़िरकार पूरे समाज के लिए विनाशकारी है। ऐसे लोग अपनी दौलत के कारण प्राकृतिक रूप से सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव व रसूख़ रखने वाले होते हैं और उनका सही रास्ते से विचलित होना भौतिक और नैतिक रूप से बहुत ही नुक़सान दायक हो सकता है। यही कारण है कि लास विलास में मगन रहने और अनर्थ कामों में माल ख़र्च करने से क़ुरआन में बार बार मना किया गया है (और देखें 11:16; 21:13; 23:23,64; 34:34; 43:23; 56:45)। यह व्यवहार एक निश्चित अवधि के बाद व्यक्ति और समाज व सभ्यता के लिए विनाशकारी बन जाता है जैसा कि इतिहास के पन्ने गवाही देते हैं। ऐसे गम्भीर नतीजों से बचने के लिए इस विनाशकारी चलन के विपरीत क़ुरआन ग़लत जगह, आवश्यकता से अधिक और अनुचित तरीक़े से दौलत ख़र्च करने की भावना को शुरु में ही दबाता है, और जायज़ कामों के लिए भी संयम के साथ ख़र्च करने की सीख देता है (6:141; 7:31; 17:26-27; 25:67)।

وَ كَمْ قَصَمْنَا مِنْ قَرْيَةٍ كَانَتْ ظَالِمَةً وَّ اَنْشَاْنَا بَعْدَهَا قَوْمًا اٰخَرِيْنَ ﴿١١﴾ فَلَمَّآ اَحَسُّوْا بَاْسَنَآ اِذَا هُمْ مِّنْهَا يَرْكُضُوْنَ ﴿١٢﴾

और हम ने कितनी बस्तियां ग़ारत कर दीं जहां के रहने वाले ज़ालिम थे और उनके बाद दूसरी क़ौम पैदा कर दी। सो जब उन ज़ालिमों ने हमारा अज़ाब अता देखा, तो उस बस्ती से भागना शुरू कर दिया। मत भागो, और

لَا تَرْكُضُوْا وَ ارْجِعُوْٓا اِلٰى مَآ اُتْرِفْتُمْ فِيْهِ وَ مَسٰكِنِكُمْ لَعَلَّكُمْ تُسْـَٔلُوْنَ ۝ قَالُوْا يٰوَيْلَنَآ اِنَّا كُنَّا ظٰلِمِيْنَ ۝

अपने सामाने ऐश की तरफ़ और अपने घरों की तरफ़ लौट जाओ, शायद तुम से कोई सवाल करे। उन्होंने कहा, हाय हमारी कम्बख़्ती, वाक़ई हम ही ज़ालिम थे। (21:11-14)

ऐश व अययाशी में पड़ने का अंजाम इस दुनिया में व्यक्ति और समाज का सत्यानास है और आख़िरत की भी बर्बादी है, और इस व्यवहार से आदमी समाज से कट कर रह जाता है और अल्लाह से भी दूर हो जाता है (देखें आयत 17:16 और उसकी व्याख्या)।

فَاَرْسَلْنَا فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ اَنِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ ؕ اَفَلَا تَتَّقُوْنَ ۝ وَ قَالَ الْمَلَاُ مِنْ قَوْمِهِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَ كَذَّبُوْا بِلِقَآءِ الْاٰخِرَةِ وَ اَتْرَفْنٰهُمْ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۙ مَا هٰذَآ اِلَّا بَشَرٌ مِّثْلُكُمْ ۙ يَاْكُلُ مِمَّا تَاْكُلُوْنَ مِنْهُ وَ يَشْرَبُ مِمَّا تَشْرَبُوْنَ ۝ وَ لَئِنْ اَطَعْتُمْ بَشَرًا مِّثْلَكُمْ اِنَّكُمْ اِذًا لَّخٰسِرُوْنَ ۝

फ़िर हमने उन्हीं में से एक रसूल भेजा, जिसने उनसे कहा, तुम अल्लह की इबादत किया करो, उसके सिवा तुम्हारा कोई माबूद नहीं, तो क्या तुम डरते नहीं हो। और उनकी क़ौम में से जो सरदार थे जिन्होंने कुफ़्र किया था, और आख़िरत के आने को झूट जाना था, और दुनिया की ज़िन्दगी में हम ने उनको ऐश दिया था कहने लगे के ये तुम ही जैसा आदमी है जो तुम खाते हो वो ही वो खाता है, और जो तुम पीते हो वो ही वो पीता है। और अगर तुम ने अपने जैसे आदमी की बात मान ली तो तुम फ़िर घाटे ही में रहोगे। (23:32-34)

ये आयतें इस बात को दर्शाती हैं कि इस दुनिया के भोग विलास में लिप्त रहने से इंसान की व्यक्तिगत और सामाजिक सक्रियता थम जाती है और जो लोग सुख सुविधा में जीते रहना चाहते हैं वो उस स्थिति में किसी भी बदलाव के विरोधी बन जाते हैं जिसमें वो सुख भोग रहे होते हैं। वो अपनी विरोधपूर्ण व्यवहार के लिए हर प्रकार का तर्क और हुज्जतबाज़ी करने का प्रयास करते हैं और यह कहने से भी नहीं चूकते कि अल्लाह के पैग़म्बर उनके ही समान एक इंसान थे और उन्हें कोई अलौकिक शक्ति प्राप्त नहीं थी (6:8-9(17:90-96(23:24(25:21(41:14(43:60), और यह कि यह पैग़म्बर और उनका अनुसरण करने वाले लोग न तो दौलतमंद हैं और न उनकी कोई सामाजिक हैसियत है (11:27-31, 91-93(25:7-11,20(34:34-35(43:31-32)। क़ुरआन बार बार इस बात पर ज़ोर देता है कि अल्लाह के हर पैग़म्बर एक इंसान ही होते हैं और उन्ही लोगों में से होते हैं जिनके सुधार के लिए उन्हें भेजा गया है, और यदि वह उनमें से ही नहीं होंगे तो वह उनसे बातचीत करने और उन्हें अल्लाह का संदेश देने के योग्य ही नहीं होंगे।

इसके अलावा, अल्लाह के पैग़म्बर को उनकी नैतिक प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता के लिहाज़ से देखा जाना चाहिए, और उनके संदेश के उपयोगिता और महत्व को समझना चाहिए, उन्हें धन-दौलत, प्रताप या राजनीतिक शक्ति के लिहाज़ से नहीं देखना चाहिए। उनका तो संदेश ही स्वयं अपने आप में अपने महत्व और पैग़म्बर की सच्चाई को साबित करने के लिए पर्याप्त है। अल्लाह पर ईमान और आख़िरत में इंसानों की जवाबदेही पर विश्वास बिल्कुल एक अक़्ल में आने वाली तार्किक बात है। लेकिन जो लोग मौज मस्ती में पड़े होते हैं और वर्तमान स्थिति से लाभान्वित हो रहे होते हैं वो बदलाव और जवाबदेही से डरते हैं और अपने वर्तमान में मगन रहते हैं, ख़ास तौर से तब जब कि अल्लाह के दीन और पैग़ाम में निहित अल्लाह के न्याय की चोट उनकी अनुचित सामाजिक व आर्थिक समृ) पर पड़ती है। इस अहंकार और समाज व नैतिकता से दूरी को रोकने के लिए इस्लाम भोग विलास और बेकार ख़र्च करने का विरोध करता है चाहे यह बेकार ख़र्च जायज़ तरीक़े से कमाई गयी दौलत से ही किया जा रहा हो और जिस काम में ख़र्च किया जा रहा हो वह मूल रूप से और सैद्धांतिक रूप से वर्जित न हो। जायज़ चीज़ों या धन दौलत का दुरूपयोग भी ग़ैर क़ानूनी और नाजायज़ दौलत के उपयोग के नैतिक व सामाजिक नुक़सान से कम हानिकारक नहीं है।

क़ारून मूसा की क़ौम में से था, फ़िर वो उनसे अकड़ने लगा, और हमने उसको इतने .ख़ज़ाने दिये थे के उन की कुंजियां एक ताक़तवर जमात को भी उठाना मुश्किल, जब उससे इसकी क़ौम ने कहा इत्राओ मत क्योंके अल्लाह इत्राने वालों को पसंद नहीं करता। और जो कुछ अल्लाह ने तुम को अता किया है उससे आख़िरत का घर हासिल करो, और दुनिया में से अपना हिस्सा ना भूल, और जैसे अल्लाह ने तुम से भलाई की है, वैसी ही तुम भी भलाई करो, और मुल्क में फ़साद ना करते फ़िरो, क्योंके अल्लाह फ़साद करने वालों को पसंद नहीं रखता। क़ारून बोला, के ये माल तो मेरे इल्म की बदौलत है, क्या वो नहीं जानता के अल्लाह ने उससे पहले बहुत सी उम्मतें जो उससे क़ुव्वत और माल में यादा थीं, हलाक कर डाली हैं और गुनाहगारों से उनके गुनाहों के बारे में सवाल नहीं किया जाएगा? फ़िर (एक रोज़) क़ारून अपनी क़ौम के सामने बड़ी शान से निकला, जो लोग दुनिया की ज़िन्दगी के तालिब थे उन्होंने कहा ऐ काश

اِنَّ قَارُوْنَ كَانَ مِنْ قَوْمِ مُوْسٰى فَبَغٰى
عَلَيْهِمْ ۠ وَ اٰتَيْنٰهُ مِنَ الْكُنُوْزِ مَاۤ اِنَّ
مَفَاتِحَهٗ لَتَنُوْٓاُ بِالْعُصْبَةِ اُولِى الْقُوَّةِ ۗ
اِذْ قَالَ لَهٗ قَوْمُهٗ لَا تَفْرَحْ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ
الْفَرِحِيْنَ ۝ وَ ابْتَغِ فِيْمَاۤ اٰتٰىكَ اللّٰهُ
الدَّارَ الْاٰخِرَةَ وَ لَا تَنْسَ نَصِيْبَكَ مِنَ
الدُّنْيَا وَ اَحْسِنْ كَمَاۤ اَحْسَنَ اللّٰهُ اِلَيْكَ وَ
لَا تَبْغِ الْفَسَادَ فِي الْاَرْضِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ
الْمُفْسِدِيْنَ ۝ قَالَ اِنَّمَاۤ اُوْتِيْتُهٗ عَلٰى
عِلْمٍ عِنْدِيْ ؕ اَوَ لَمْ يَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ قَدْ
اَهْلَكَ مِنْ قَبْلِهٖ مِنَ الْقُرُوْنِ مَنْ هُوَ
اَشَدُّ مِنْهُ قُوَّةً وَّ اَكْثَرُ جَمْعًا ؕ وَ لَا
يُسْئَلُ عَنْ ذُنُوْبِهِمُ الْمُجْرِمُوْنَ ۝

فَخَرَجَ عَلٰى قَوْمِهٖ فِيْ زِيْنَتِهٖ ؕ قَالَ الَّذِيْنَ
يُرِيْدُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا يٰلَيْتَ لَنَا مِثْلَ
مَاۤ اُوْتِيَ قَارُوْنُ ۙ اِنَّهٗ لَذُوْ حَظٍّ عَظِيْمٍ ﴿۷۹﴾
وَ قَالَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْعِلْمَ وَيْلَكُمْ ثَوَابُ
اللّٰهِ خَيْرٌ لِّمَنْ اٰمَنَ وَ عَمِلَ صَالِحًا ۚ وَ لَا
يُلَقّٰىهَاۤ اِلَّا الصّٰبِرُوْنَ ﴿۸۰﴾ فَخَسَفْنَا بِهٖ وَ
بِدَارِهِ الْاَرْضَ ۫ فَمَا كَانَ لَهٗ مِنْ فِئَةٍ
يَّنْصُرُوْنَهٗ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ۗ وَ مَا كَانَ مِنَ
الْمُنْتَصِرِيْنَ ﴿۸۱﴾ وَ اَصْبَحَ الَّذِيْنَ تَمَنَّوْا
مَكَانَهٗ بِالْاَمْسِ يَقُوْلُوْنَ وَيْكَاَنَّ اللّٰهَ
يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ وَ
يَقْدِرُ ۚ لَوْ لَاۤ اَنْ مَّنَّ اللّٰهُ عَلَيْنَا لَخَسَفَ
بِنَا ؕ وَيْكَاَنَّهٗ لَا يُفْلِحُ الْكٰفِرُوْنَ ﴿۸۲﴾ تِلْكَ
الدَّارُ الْاٰخِرَةُ نَجْعَلُهَا لِلَّذِيْنَ لَا يُرِيْدُوْنَ
عُلُوًّا فِي الْاَرْضِ وَ لَا فَسَادًا ؕ وَ الْعَاقِبَةُ
لِلْمُتَّقِيْنَ ﴿۸۳﴾

हमारे लिये भी वैसा ही होता, जैसा के क़ारून को दिया गया है, वो बड़ा ही नसीब वाला है। और जिन लोगों को इल्म दिया गया था, वो कहने लगे, तुम पर अफ़सोस है अल्लाह का सवाब बेहतर है उसके लिये जो ईमान लाया और नेक काम किया, और ये सिर्फ़ सब्र करने वालों ही को मिलेगा। फ़िर हमने क़ारून और उसके घर वालों को ज़मीन में धंसा दिया, फ़िर अल्लाह के सिवा उसकी कोई ऐसी जमात ना थी जो उसकी मदद करती और उसको अल्लाह के अज़ाब से बचाती। और वो कल जो उसके मर्तबे की तमन्ना करते थे, आज सुबह को कहने लगे, हाय शामत अल्लाह ही अपने बन्दों में से जिसके लिये चाहता है रिज़्क़ फ़राख़ कर देता है, और जिसके लिये चाहता है तंग कर देता है, अगर अल्लाह हम पर एहसान ना करता तो हमें भी धंसा देता, हाय अफ़सोस! काफ़िर लोग निजात नहीं पायेंगे। वो जो आख़िरत का घर है, हमने उसे उन लोगों के लिये तैयार कर रखा है जो मुल्क में ज़ुल्म और फ़साद का इरादा नहीं रखते और (अच्छा) अंजाम तो सिर्फ़ अल्लाह से डरने वालों के लिये है।
(28:76-83)

यह एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो अपनी दौलत और लास विलास में इतना मस्त था कि अल्लाह के फ़ज़ल (कृपा) का ही इंकारी बन गया और आख़िरत को भुला बैठा, और इस बात को कि उसे फ़ैसले के दिन अपने घमण्ड और धन दौलत की जवाबदेही करना होगी। वह हज़रत मूसा की क़ौम का सदस्य था लेकिन उसने अल्लाह की हिदायत से फ़ायदा नहीं उठाया जो उसे अल्लाह के पैग़म्बर ने पहुंचाई। और पैग़म्बर की क़ौम से होना अल्लाह की हिदायत के इस इंकारी और अहंकारी को अल्लाह के अज़ाब (यातना) से नहीं बचा सका। इस क़िस्से से यह बात सामने आती है कि भोग विलास का जीवन दूसरे लोगों में जो मालदार नहीं होते, जलन पैदा करता है जबकि कुछ लोग होते हैं जो जानते हैं कि सच्चाई पर जमे रहने और हर हाल में नेकी व सदाचार पर बने रहने का मूल्य क्या है! इससे यह भी ज़ाहिर होता है कि आख़िरत में अल्लाह के यहां मिलने वाला बदला उस सुख व आनन्द से कहीं बढ़कर है जो इस

अस्थाई दुनिया के छोटे से जीवन में किसी को मिला होता है और उससे इंसान आम तौर से अदूरदर्शी और अवज्ञाकारी बन जाता है।

क़ुरआन में इस व्यक्ति का नाम "क़ारून" है जबकि ओल्ड टेस्टामेण्ट में 'कोरह' (ज्ञवतीं) नाम के व्यक्ति का उल्लेख है (गअप)। लेकिन ये दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हैं यह बात सि) नहीं की जा सकती और न ऐसा करना ज़रूरी ही है, क्योंकि "ज़ुलक़रनैन" के क़िस्से में नैतिक संदेश देना ही उस क़िस्से का मक़सद है, चाहे उस व्यक्ति की ऐतिहासिक नज़ीर कोई भी हो। यह क़िस्सा इस नैतिक संदेश पर पूरा होता है कि ज़मीन पर अकड़ कर चलना उत्पात मचाने और बुराइयां फैलाने से कम निन्दनीय नहीं है, और यह कि अच्छा अंजाम चाहे वह देर सवेर इस दुनिया में ही सामने आए या आख़िरत में सामने आए वह अल्लाह से डरने वालों के लिए ही है। अल्लाह पर ईमान और जवाबदेही का विश्वास उन्हें शक्ति व अधिकार प्राप्त होने की स्थिति में अहंकार की भावना और बेबस व शक्तिहीन होने की स्थिति में हीन भावना से बचाता है।

وَمَآ اَرْسَلْنَا فِىْ قَرْيَةٍ مِّنْ نَّذِيْرٍ اِلَّا قَالَ
مُتْرَفُوْهَآ ۙ اِنَّا بِمَآ اُرْسِلْتُمْ بِهٖ كٰفِرُوْنَ ﴿٣٤﴾
وَقَالُوْا نَحْنُ اَكْثَرُ اَمْوَالًا وَّ اَوْلَادًا ۙ وَّمَا
نَحْنُ بِمُعَذَّبِيْنَ ﴿٣٥﴾

और हमने किसी बस्ती में कोई डराने वाला नहीं भेजा मगर वहां के ख़ुशहाल लोगों ने यही कहा के जो चीज़ तुमको देकर भेजा गया है हम उसको मानते ही नहीं। और ये भी कहा, के बहुत सा माल और औलाद रखते हैं, और हम को कभी अज़ाब नहीं होगा।

(34:34-35)

सुखी सम्पन्न और अपने आप में मगन रहने वालों की मानसिकता और रवैया का यह एक और प्रसंग है। उनकी सारी सोच और गतिविधियां अपनी दौलत, अपने क़बीले और अपनी सामाजिक शक्ति बढ़ाने पर ही केन्द्रित रहती है और वो किसी उचित बात और निःस्वार्थ व्यवहार के लिए तैयार नहीं होते। ऊपर की आयत यह बताती है कि ऐसे लोगों की बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक आत्मप्रियता एक खुली सच्चाई है, और यह स्पष्ट करती है कि इस्लाम ने कमाने और ख़र्च करने के लिए मार्गदर्शन क्यों दिया है कि इसका मक़सद व्यक्ति के व्यवहार और समाज मे नैतिकता व न्याय की रक्षा करना है। जायज़ माध्यमों से बहुत अधिक धन कमाना इस्लाम में क़ानूनी और आर्थिक दृष्टि से स्वीकृत है लेकिन इस शर्त के साथ कि व्यक्तिगत और सामाजिक ज़रूरतों के लिए उचित तरीक़े से ख़र्च करने में संतुलन रखा जाए और धन इकट्ठा करके रखने या उसे बेकार कामों में उड़ाने से बचा जाए।

وَكَذٰلِكَ مَآ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ فِيْ قَرْيَةٍ
مِّنْ نَّذِيْرٍ اِلَّا قَالَ مُتْرَفُوْهَآ ۙ اِنَّا وَجَدْنَآ
اٰبَآءَنَا عَلٰٓى اُمَّةٍ وَّ اِنَّا عَلٰٓى اٰثٰرِهِمْ
مُّقْتَدُوْنَ ﴿٢٣﴾

और इसी तरह हमने आपसे पहले किसी बस्ती में कोई पैग़म्बर नहीं भेजा, मगर वहां के ख़ुशहाल लोगों ने कहा के हमने अपने बाप दादा को एक तरीक़ा पर पाया है, और हम क़दम ब क़दम उनके पीछे चलते हैं। (43:23)

इस दुनिया के भोग विलास में लिप्त लोग प्रतिक्रियावादी होते हैं और अहंकारी होते हैं। उनके नज़दीक सही और ग़लत का मानक केवल यह होता है कि पूर्वजों के ज़माने से क्या चला आ रहा है। उन्हें व्यक्तिगत रूप से संतोष केवल राहत व आराम और ऐश का जीवन बिताने से ही मिलता है, वो अपने जीवन के तौर तरीक़ों की समीक्षा नहीं करते, आत्मअवलोकन नहीं करते। ऐश का जीवन बिताते रहने की इच्छा उनकी अक़्ल, नैतिकता और सामाजिक भावनाओं को शून्य कर देती है और उन्हें निर्माणकारी रवैया अपनाने और किसी भी सुधार प्रक्रिया को शुरू करने या उसका समर्थन करने से रोके रखती है। उनके दिल व दिमाग़ की गहराइयों में उन्हें अनुचित रूप से प्राप्त विशेष सुविधाओं के जारी रहने का विश्वास बना होता है, इसलिए वो ऐसे किसी भी बदलाव का विरोध करते हैं जो उनकी स्थिति और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए ख़तरा बन सकता हो। आदमी को न केवल यह कि जायज़ तरीक़े से और किसी का शोषण किए बिना या छल और कपट या उत्पीड़न के बग़ैर कमाना चाहिए बल्कि उसे अपनी दौलत व्यक्तिगत और सामाजिक विकास व कल्याण के लिए भी ख़र्च करना चाहिए और यह इन्फ़ाक़ (ख़र्च) हर रूप में हो, शरीरिक भी, बौद्धिक भी, और आत्मिक व नैतिक भी।

अनर्थ ख़र्च करने की मनाही

وَاٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَالْمِسْكِيْنَ وَابْنَ
السَّبِيْلِ وَلَا تُبَذِّرْ تَبْذِيْرًا ﴿٢٦﴾ اِنَّ
الْمُبَذِّرِيْنَ كَانُوْٓا اِخْوَانَ الشَّيٰطِيْنِ ۭ وَ
كَانَ الشَّيْطٰنُ لِرَبِّهٖ كَفُوْرًا ﴿٢٧﴾

और रिश्तेदारों, मोहताजों और मुसाफ़िरों को उनका हक़ अदा किया करो, और फ़ुज़ूल ख़र्ची ना किया करो। बेशक फ़ुज़ूल खर्च करने वाले शैतान के भाई हैं और शैतान अपने रब का बड़ा ना शुक्रा है। (17:26-27)

अलतिबरी की तफ़सीर के अनुसार ''तबज़ीर'' (फ़ुज़ूल ख़र्ची यानि बेकार के ख़र्चे) का अर्थ है ग़लत या अनुचित उद्देश्यों के लिए ख़र्च करना, चाहे वो जायज़ ही हों। ''इस्राफ़'' के साथ ख़र्च करने में माल की अधिक मात्रा बग़ैर फ़ायदे के ख़र्च होती है और माल व्यर्थ होता है।

फ़ुज़ूल ख़र्ची जैसे मौज मस्ती में उड़ाना और दूसरे बेमतलब कामों में ख़र्च करना, नैतिक और सामाजिक ख़राबियों का कारण बनती है क्योंकि ख़र्च करना एक निजी शौक़ बन जाता है और बाक़ी सभी लोगों के सामाजिक व आर्थिक हित अनदेखे हो जाते हैं या उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता। यहां तक कि ख़ुद फ़ुजूल ख़र्ची करने वाले व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों का संतुलन भी बना नहीं रहता जिससे उसकी बहुमुखी इंसानी ज़रूरतों की ठीक से पूर्ति हो और वर्तमान व भविष्य दोनों का लिहाज़ हो। अल्लाह की बख़्शी हुई चीज़ों को फ़ुज़ूल ख़र्ची में उड़ाना जिससे व्यक्ति या समाज को कोई वास्तविक फ़ायदा न हो, अल्लाह की नेअमतों को व्यर्थ करना है और नेअमतें देने वाले रब की ना शुक्री है। चूंकि शैतान अल्लाह का नाशुक्रा है इसलिए फ़ुज़ूल ख़र्च आदमी भी शैतान की पार्टी का अंग बन जाता है या नाशुक्रे लोगों की जमात में शामिल हो जाता है। ''तबज़ीर'' (फ़ुज़ूल ख़र्ची) की इतनी कड़ी निन्दा से इस बात का संदेश मिलता है कि इस्लाम का सामाजिक और आर्थिक न्याय कमाने व ख़र्च करने के उचित साधन और ढंग से शुरू होता है ताकि व्यक्ति और समाज के अस्थाई और स्थाई हितों में संतुलन बना रहे। इस आधार को ठीक करने के बाद ज़कात और सदक़ा इस्लाम की न्याय प्रक्रिया को पूरा करने का माध्यम बनते हैं।

وَ الَّذِيْنَ اِذَآ اَنْفَقُوْا لَمْ يُسْرِفُوْا وَ لَمْ يَقْتُرُوْا وَ كَانَ بَيْنَ ذٰلِكَ قَوَامًا ۝

और वो जब ख़र्च करते हैं तो ना फ़िज़ूल ख़र्ची करते हैं और ना तंगी करते हैं, और उनक ख़र्च एतदाल से होता है। (25:67)

यह ख़र्च करने में अपेक्षित संयम और संतुलन की एक और सीख है, कि न तो ख़र्च करने में कंजूसी से काम लिया जाए और न ज़रूरत से ज़्यादा और अनावश्यक उड़ाया जाए बल्कि इन दोनों अतिवादों के बीच में रहा जाए। देखें इससे पहले ज़िक्र की गयी आयतें और उनकी व्याख्या (17:26-27,29)।

मुस्लिम समाज और शासन में ग़ैर मुस्लिमों की स्थिति

अल्लाह ने इंसान को अशरफ़ुल मख़लूक़ात (सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ जीव) बनाया है और इंसानी नस्ल को बाक़ी सभी जीवों और प्राणियों पर प्रतिष्ठा दी है चाहे किसी इंसान ने कहीं पर भी जन्म लिया हो और इंसानों में आपस में कितना ही अन्तर हो। सभी इंसानों को चाहे उनका मूल, नस्ल, रंग, भाषा, धर्म और देश कुछ भी हो बराबर की क्षमता और बराबर के गुण दिए गए हैं कि उन सब का जन्म एक ही इंसानी जोड़े से हुआ है, यानि आदम व हव्वा (एडम एण्ड ईव)। क़ुरआन में समस्त इंसानों के लिए ''बनी आदम'' (आदम की संतान) का शब्द 8

बार इस्तेमाल किया गया है (7:26-27,31,35,172; 17:70; 19:58; 36:60, और "इंसान" शब्द का इस्तेमाल 65 से अधिक आयतों में हुआ है (4:28; 10:12; 11:9; 12:5; 16:4; 17:11, 13-14,100; 18:54; 21:37; 29:8; 31:14; 33:72; 53:39-41; 55:3; 70:19-22; 75:14-15, 36; 76:1-2; 80:24-30; 82:6-8; 84:6; 56:5-11; 95:4-6; 96:2-8; 100:6-8; 103:2-3) और "अलनास" शब्द 230 से अधिक आयतों में उपयोग हुआ है (जैसे 2:21-22, 44,124,143,164-65,188,200-201,204-207213,215,264; 3:4,14, 110, 134, 140, 187; 4:1,37-38,53,58,79,114,133,161,165,174; 5:32; 6:91,122; 7:85-158; 8:47; 9:34; 10:11,19,21-23,99; 11:5,8,118-119; 16:44,61; 17:89,106; 22:1-2,5,8,11,40,65, 73-76, 78; 24:35; 26:183; 29:2-3,43; 30:30,39,41,58; 31:18,20, 33; 34:28; 35:15,28,45; 39:27,41; 40:57; 42:42; 49:13; 57:25; 83:2-6; 114:1-6)। कई जगहों पर क़ुरआन विशेष रूप से ईमान लाने वालों को सम्बोधित करता है जो आसमानी वह्यि और पैग़म्बर साहब की शिक्षा पर ईमान लाते हैं।

सभी इंसानी गुण जैसे भौतिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक, मानसिक व नैतिक सभी इंसानों को दिए गए हैं, और सभी इंसानों पर उनका सम्मान करना अनिवार्य है और आपसी विविधता के बावजूद इंसानों को एक दूसरे से सम्बंध बनाने ज़रूरी हैं। पैग़म्बर साहब ने जब एक यहूदी का जनाज़ा आते हुए देखा तो आप खड़े हो गए, और जब आप के साथियों (सहाबियों) ने पूछा कि आप ने ऐसा क्यों किया तो आप ने जवाब दिया कि क्या वो इंसान नहीं हैं (बुख़ारी)।

मुस्लिम देशों के शासकों की यह ज़िम्मेदारी है कि वो शासन के आधीन रहने वाले सभी इंसानों के अन्दर इंसानी गुणों को यथा सम्भव विक्सित करें। आयत 17:70 में इंसानों पर अल्लाह के कुछ इनामों का ज़िक्र है जिनकी हिफ़ाज़त करना और उन्हें बढ़ाना ज़रूरी है, जैसे आवागमन, यातायात और संचार के सभी साधनों से पूरी दुनिया में चलत फिरत और आपसी सम्बंधों को बनाना, जीवन को विक्सित करने वाली अच्छी चीज़ें बनाने के लिए आर्थिक संसाधनों को इस्तेमाल करना और इस तरह से काम में लाना कि वो न तो व्यर्थ हों और न प्रदूषण का कारण बनें, और वो सभी चीज़ें और संसाधन विक्सित करना जिनसे इंसानी समाज सभ्य बने और इंसानी सभ्यता प्रगति करे, जो दूसरे सभी जीवों के जगत से बिल्कुल अलग हो। ग़ैर मुस्लिम भी इस इंसानी समाज का ही हिस्सा हैं जिसे अल्लाह ने प्रतिष्ठा दी है, उनके इंसानी गुण भी सम्मान के लायक़ हैं और मुस्लिम समाज व मुस्लिम शासन में उनका सम्मान व आदर किया जाता है। सामाजिक व आर्थिक न्याय की स्थापना में सुरक्षा, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, काम और रोज़गार के अवसर तथा विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी स्कीमें सभी इंसानों के लिए उपलब्ध होना भी शामिल है जो मुस्लिम शासन के आधीन और ज़िम्मेदारी में रहते हों। समाज

में हर व्यक्ति को एक दूसरे से मिलना जुलना है, लेनदेन बातचीत और काम करना हैं, पड़ोस में रहने के लिहाज़ से, साथ में काम करने के लिहाज़ से, नगर या देश का वसी होने के रूप में वग़ैरह वग़ैरह।

इंसानी विविधता और बदलाव

وَلَوْ شَآءَ رَبُّكَ لَجَعَلَ النَّاسَ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّلَا يَزَالُوْنَ مُخْتَلِفِيْنَ ﴿١١٨﴾ اِلَّا مَنْ رَّحِمَ رَبُّكَ ۭ وَلِذٰلِكَ خَلَقَهُمْ ۭ وَتَمَّتْ كَلِمَةُ رَبِّكَ لَاَمْلَئَنَّ جَهَنَّمَ مِنَ الْجِنَّةِ وَالنَّاسِ اَجْمَعِيْنَ ﴿١١٩﴾

और तुम्हारा रब चाहता तो तमाम लोगों को एक ही जमात कर देता, और वो तो हमेशा इख़्तिलाफ़ करते रहेंगे। मगर जिन पर तुम्हारा रब रहम करे, और इसीलिये उसने उनको पैदा किया है, और तुम्हारे रब का क़ौल पूरा हो गया, के मैं दोज़ख को जिनों और इनसानों सबे से भर दूंगा। (11:118-119)

इंसानी प्रजाति वास्तव में एक ही नस्ल और ब्रादरी है लेकिन इंसानी समाज अलग अलग और विविध प्रकार के लोगों से मिल कर बना है जिस पर क़ुरआन में बार बार ज़ोर दिया गया है। ऊपर की आयतों में विविधता और विभिन्नता की जो अवधारणा स्पष्ट रूप से दी गयी है उसे क़ुरआन में 20 से अधिक बार बयान किया गया है (2:213; 5:48; 6:42,108; 7:38; 10:19; 13:30; 16:63,92-93; 23:44; 29:18; 35:24,42; 40:5; 41:25; 42:8; 43:22-23,33; 45:17,28; 46:18)। विभिन्नता और विविधता एक इंसानी स्वभाव है और क़ुरआन यह बात बार बार ज़ोर देकर कहता है कि इंसानों के आपसी मतभेदों का फ़ैसला अल्लाह तआला आख़िरत में करेंगे (2:113,153; 3:55; 5:48; 6:164; 10:91,93; 16:33-39,92,124; 22:69; 32:25; 39:3,46)। अल्लाह ने इंसानों को जो गुण और योग्यताएं दी हैं उनमें इंसान की अक़्ल और इच्छा की आज़ादी सबसे बड़ी विशेषताएं हैं, और इसी की वजह से उनमें हमेशा मतभेद होता रहता है जबकि उनमें जन्मजात रूप से और बनावट के लिहाज़ से शरीरिक, मानसिक, बौद्धिक अन्तर होता है जो अनुवांशिक रूप से भी चला आता है और माहोल व भोगोलिक तत्वों की वजह से भी होता है। इंसानों का पूरे विश्व में फैल जाना भी, जोकि पिछली आयत 17:70 के अनुसार एक विशेष इंसानी गुण है, इंसानी विविधता को जन्म देने का एक अन्य कारण है। इसके अतिरिक्त, एक ही तरह के इंसानों में किसी विशेष युग और विशेष जगह की वजह से भी लगातार बदलाव आता रहता है (2:155; 3:140,186; 5:148; 6:165; 8:53; 13:11; 18:7; 21:35; 76:2; 89:15-16)।

इस तरह के बहु आयामी अन्तरों और लगातार आते रहने वाले बदलावों के चलते इस्लाम

के पैग़ाम पर सभी इंसानों का सहमत हो जाना, और दूसरे ऐसे मामलों में पूर्ण सहमति हो जाना जो इंसान अपनी अक़्ल से तय करते हैं, सम्भव नहीं है क्योंकि यह अलग अलग तरह की सोच और मर्ज़ी की आज़ादी रखने वाले इंसानी स्वभाव के विपरीत है:''कह दो कि (ऐ लोगो) यह क़ुरआन तुम्हारे रब की तरफ़ से सत्य है तो जो चाहे ईमान लाए और जो चाहे काफ़िर रहे'' (18:29)। इंसानों के बीच मतभेदों का होना एक स्वभाविक तथ्य है, और जो लोग अल्लाह की कृपा और सीख से फ़ायदा उठाते हैं वो अपने मतभेदों को सूझबूझ से सफ़लतापूर्वक हल कर सकते हैं। इंसानों को उनके गुणों और विशेष योग्यताओं के साथ इस दुनिया में लगातार होते रहने वाली जांच व परख के लिए पैदा किया गया है कि वो इन चुनौतियों को किस तरह हल करते हैं। विभिन्न प्रकार के इंसानों के बीच आपसी सहयोग और सह अस्तित्व पर क़ुरआन में ज़ोर दिया गया है, और इसमें कोई शक नहीं होना चाहिए क्योंकि ईमान व अक़ीदे या दूसरे मामलों में सभी इंसानों के समान होने की सोच इंसानों के बीच प्राकृतिक व स्वभाविक विविधता के विपरीत है। मुसलमानों को दूसरों के साथ बर्ताव में इस सच्चाई को सामने रखना होगा और नैतिक मूल्यों के समान आधारों, सकारात्मक चर्चाओं और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए इसे व्यवहार में लाना होगा।

आस्था के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं

لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ ۙ قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ ۚ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ۗ لَا انْفِصَامَ لَهَا ۗ وَ اللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٥٦﴾

इस्लाम में कोई जब्र और क़हर नहीं। हिदायत साफ़ और ज़ाहिर है और गुमराही से अगल थलग है, तो जो बूतों को मानता ही नहीं और अल्लाह ही पर पूरा यक़ीन रखता है तो उसने ऐसी मज़बूत रस्सी हाथ में पकड़ ली है जो कभी भी टूटने वाली नहीं है। और अल्लाह तो है ही सब कुछ जानने वाला और सुनने वाला। (2:256)

अक़ीदे (आस्था) की आज़ादी के इस सिद्धांत को क़ुरआन में कई जगह दोहराया गया है। उदाहरण के लिए:''और अगर तुम्हारा रब चाहता तो जितने लोग ज़मीन पर हैं सब के सब ईमान ले आते तो क्या तुम लोगों पर ज़बरदस्ती करना चाहते हो कि वो मोमिन हो जाएं'' (10:99), ''उन्हों ने कहा कि ऐ मेरी क़ौम तुम क्या सोचते हो कि अगर मैं अपने रब की तरफ़ से (खुली) तार्किक बात रखता हूं और रब ने मुझे अपनी रहमत से नवाज़ा है जिससे तुम अन्धे रखे गए हो तो क्या हम इसके लिए तुम्हें मजबूर करेंगे जबकि तुम्हें वह अप्रिय हो'' (11:28), ''और तुम उन पर किसी भी तरह से ज़बरदस्ती करने वाले नहीं हो, (ऐ पैग़म्बर) तुम

नसीहत करने वाले ही हो, तुम उन पर दारोग़ा नहीं हो'''(88:21-22)। किसी व्यक्ति को किसी काम पर किसी भी तरह मजबूर करने से उस काम के प्रति उस व्यक्ति की नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी नहीं रहती, चाहे वह अच्छा काम हो या बुरा। लिहाज़ा किसी इंसान पर इस्लाम को ज़बरदस्ती थोपने से ना तो उस व्यक्ति को अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त होगी और ना उसे मजबूर करने वाले को ही कोई बदला मिलेगा ।

इस आयत (2:256) के उतरने का परिप्रेक्ष्य यह बताया गया है कि इस्लाम से पहले मदीना के कुछ लोग जिन के बच्चे यहूदियों के यहां पल रहे थे और अपनी 'नज़र' (प्रतिज्ञा) पूरी करने के लिए उन्होंने इन बच्चों को यहूदी बनाने का निश्चय कर लिया था, इस्लाम में आने के बाद यह इच्छा रखते थे कि इन बच्चों को वापस लेलें और मुसलमान बना दें, इस पर यह आयत उतरी कि ज़बरदस्ती करना सही नहीं है। एक और रिवायत में यह क़िस्सा बयान हुआ है कि मदीना के एक आदमी के दो बेटों को शाम (सीरिया) के व्यापारियों ने ईसाई बनने पर राज़ी कर लिया था। उनके मातापिता इन बच्चों को ज़बरदस्ती वापस लाना चाहते थे, लेकिन पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने उन्हें अपनी मर्ज़ी से फ़ैसला करने का हक़ दिया, और तब यह आयत उतरी और पैग़म्बर साहब के फ़ैसले का अनुमोदन अल्लाह की तरफ़ से हुआ। क़ुरआन के मशहूर व्याख्याकार और भाषाविद अलज़मख़शरी ने इस आयत की व्याख्या में लिखा है:''अल्लाह ने अक़ीदे के मामले में ज़बरदस्ती और दबाव की अनुमति नहीं दी है, बल्कि व्यक्ति को रज़ामन्दी से दीन अपनाने के लायक़ बनाया है।'' उन्होंने इस महत्वपूर्ण सिद्धांत के उदाहरण में आयत 10:99 भी नक़ल की है।

इस सिद्धांत पर प्रभावी तरीक़े से अमल करने के लिए मुस्लिम फ़क़ीहों (शरीअत के विशेषज्ञों) ने यह चर्चा की है कि किसी मुसलमान पति का अपनी पत्नि को इस्लाम क़ुबूल करने के लिए कहना क्या जब्र या दबाव की श्रेणी में आएगा। हनफ़ी फ़क़ीहों का मानना यह है कि इसकी इजाज़त है इस शर्त के साथ कि इसमें कोई दबाव शामिल न हो, शाफ़ई फ़क़ीहों ने यह माना है कि यह भी एक तरह का दबाव है (अब्दुल करीम ज़ैदान, अहकामुल ज़िम्मियीन फ़ी दारिलइस्लाम, बग़दाद यूनिवर्सिटी, पेज 629)। इब्नुल क़य्यिम ने यह विचार व्यक्ति किया है कि एक मुसलमान पति अपनी ईसाई या यहूदी पत्नि को शराब पीने से मना नहीं कर सकता क्योंकि यह उसके अपने धर्म में वर्जित नहीं है, लेकिन स्वयं उसे यह चाहिए कि वह शराब या नशे में लिप्त न हो (इब्नुल क़य्यिम, अहकामुल ज़िम्मा, बैरूत:1961, 2, पेज 439)। इसीलिए अधिकतर फ़क़ीहों ने यहूदियों और ईसाइयों को शराब पीने पर वह सज़ा देने से अलग रखा है जो कि मुसलमान पर लागू होती है। इमाम मालिक की फ़िक़्ह पर चलने वाले फ़क़ीहों की राय दूसरों से अलग है, और वो कहते हैं कि मुस्लिम शासन में रहने वाला ग़ैर मुस्लिम (ज़िम्मी) जिस पर ज़िना का आरोप हो उस पर मुक़दमा उसके अपने धार्मिक क़ानून के अनुसार ही

चलाया जाएगा (ज़ैदान, अहकामुल ज़िम्मियीन वल मुस्तानीन, बैरूत, पेज 251-152)।

मुसलमान यह दावा तो नहीं कर सकते कि उनका इतिहास मुसलमानों में इस शरई सिद्धांत पर हमेशा अमल किए जाने का गवाह है, क्योंकि समय समय पर विचलित होने की इंसानी कमज़ोरी सामने आती रही है, लेकिन यह उल्लंघन मुसलमानों के लम्बे इतिहास में कभी भी एक सामान्य स्थिति नहीं बनी न कोई सामान्य सिद्धांत बना, जैसा कि ग़ैर मुस्लिम इतिहासकारों और क़ानून विशेषज्ञों ने लिखा है। गुस्ताफ वोन गुरूनेबाम `(नेजंअम टवदे तनदमइंनउ) ने यह माना है कि "मध्य युग में ग़ैर मज़हब वालों पर जब्र व सितम पश्चिम के मुक़ाबले, जहां यहूदियों को छोड़ कर अन्य धार्मिक अल्पसंख्यक न होने के बराबर थे, पूरब में कम था।" यह बात सही है कि कुछ एक शासकों ने, ना कि सामहूकि रूप से मुस्लिम शासन के शासकों ने, ग़ैर मुस्लिम समुदायों या उनके कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को नुक़सान पहुंचाया है, लेकिन इस तरह की घटनाएं उन शासकों की भोग विलासिता और राजनीतिक निरंकुशता के युग में हुई हैं जब "मुसलमान स्वयं भी निरंकुश शासकों के उत्पीड़न और मनमानी का निशाना बने हुए थे" (डमकपअंस पेसंउए बीपबंहवरू 1946)। माजिद खदूरी ने इतिहास में मुसमलानों और ग़ैर-मुस्लिमों के सम्बंधों का यह मंज़र दर्शाया है:"अगर कभी किसी युग में असहिष्णुता की कोई भावना हुई है तो यह उत्पीड़न वाली निरंकुश सरकारों के ज़ोर पकड़ने का संकेत था जिसमें मुस्लिम जनता ने भी ग़ैर मुस्लिम जनता से कम उत्पीड़न नहीं झेले। कभी कभी जन आक्रोश की दिशा ग़ैर मुस्लिमों की ओर भी रही होगी लेकिन जन आक्रोश जनता के असंतोष और उन पर अन्यायी शासकों के मुसल्लत होने का संकेत है जिनके शासन में न तो मुसलमानों को शान्ति व समृ) मिली और न ज़िम्मी शान्ति से रह सके। अगर कुछ ख़लीफ़ा और गवर्नर ज़ालिम और निर्दयी गुज़रे तो दूसरे शरीफ़ और दयालू भी थे। ज़ालिम सरकारों के युग में ज़िम्मियों को भी उत्पीड़न और हिंसा का निशाना बनाया गया होगा लेकिन इन सरकारों में ख़ुद मुसलमानों की स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी। तथापि, मुस्लिम सरकारों के आधीन ज़िम्मियों के साथ सामान्य व्यवहार का अनुमान केवल कुछ निरंकुश शासकों और कुछ व्यक्तियों के हाथों ज़िम्मियों के उत्पीड़न से ही नहीं लगाया जाना चाहिए बल्कि इस बात से भी लगाया जाना चाहिए कि शरीअत के क़ानून में उदारता व सहिष्णुता के क्या सिद्धांत दिए गए हैं और हर युग में व हर पीढ़ी के मुसलमानों में आम तौर से ग़ैर मुस्लिमों (ज़िम्मियों) के प्रति क्या भावना रही है और उनके साथ आम तौर से मुसलमानों का व्यवहार कैसा रहा है, तथा इसका अनुमान इससे भी लगाना चाहिए कि अधिकांश जनता को जो समृ) और सुरक्षा प्राप्त थी उसकी तुलना में ज़बरदस्ती और हिंसा की घटनाओं का अनुपात क्या है?" (War and Peace in the Law of Islam, Baltimore: 1955, चच़ 200-201)।

पूर्व में आ चुकी इस्लामी शिक्षाओं के अनुयायियों (अहले किताब, विशेष रूप से यहूदी व ईसाई समुदाय) को उन आसमानी शिक्षाओं पर अमल करने की प्रेरणा

سَمّٰعُوْنَ لِلْكَذِبِ اَكّٰلُوْنَ لِلسُّحْتِ ؕ فَاِنْ
جَآءُوْكَ فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ اَوْ اَعْرِضْ
عَنْهُمْ ۚ وَ اِنْ تُعْرِضْ عَنْهُمْ فَلَنْ
يَّضُرُّوْكَ شَيْـًٔا ؕ وَ اِنْ حَكَمْتَ فَاحْكُمْ
بَيْنَهُمْ بِالْقِسْطِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ
الْمُقْسِطِيْنَ ﴿٤٢﴾ وَ كَيْفَ يُحَكِّمُوْنَكَ وَ
عِنْدَهُمُ التَّوْرٰىةُ فِيْهَا حُكْمُ اللّٰهِ ثُمَّ
يَتَوَلَّوْنَ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ؕ وَ مَاۤ اُولٰٓئِكَ
بِالْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٤٣﴾ اِنَّاۤ اَنْزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيْهَا
هُدًى وَّ نُوْرٌ ۚ يَحْكُمُ بِهَا النَّبِيُّوْنَ الَّذِيْنَ
اَسْلَمُوْا لِلَّذِيْنَ هَادُوْا وَ الرَّبّٰنِيُّوْنَ وَ
الْاَحْبَارُ بِمَا اسْتُحْفِظُوْا مِنْ كِتٰبِ اللّٰهِ وَ
كَانُوْا عَلَيْهِ شُهَدَآءَ ۚ فَلَا تَخْشَوُا النَّاسَ وَ
اخْشَوْنِ وَ لَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِيْ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ وَ
مَنْ لَّمْ يَحْكُمْ بِمَاۤ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الْكٰفِرُوْنَ ﴿٤٤﴾ وَ كَتَبْنَا عَلَيْهِمْ فِيْهَاۤ اَنَّ
النَّفْسَ بِالنَّفْسِ ۙ وَ الْعَيْنَ بِالْعَيْنِ وَ
الْاَنْفَ بِالْاَنْفِ وَ الْاُذُنَ بِالْاُذُنِ وَ
السِّنَّ بِالسِّنِّ ۙ وَ الْجُرُوْحَ قِصَاصٌ ؕ فَمَنْ
تَصَدَّقَ بِهٖ فَهُوَ كَفَّارَةٌ لَّهٗ ؕ وَ مَنْ لَّمْ
يَحْكُمْ بِمَاۤ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الظّٰلِمُوْنَ ﴿٤٥﴾

ये झूटी बातें सुनने के आदी हैं, और हराम माल खाने वाले हैं, अगर ये लोग आपके पास आयें तो आप (स.) उनमें फ़ैसला कर दें, या उनसे एराज़ करें, अगर आप (स.) उनसे एराज़ करेंगे तो वो आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, आप अगर फ़ैसला करना चाहें तो फ़ैसला इनसाफ़ के साथ कीजिये, बेशक अल्लाह तो इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है। और ये आपसे कैसे फ़ैसला करायेंगे जबके उनके पास तौरात है, उसमें अल्लाह का हुक्म मौजूद है, फ़िर उस के बाद भी उससे फ़िरते जाते हैं, और ये लोग ईमान ही नहीं रखते। हमने तौरेत नाज़िल की थी, उसमें हिदायत और रौशनी थी, अंबिया जो अल्लाह के मतीअ और फ़रमांबरदार थे उसी के मुताबिक़ यहूद को हुक्म दिया करते थे, और अहले अल्लाह और उल्मा भी इस वजह से के उनको ये हुक्म था के वो अल्लाह की उस किताब की हिफ़ाज़त और निगरानी करेंगे, और वो उनके शाहिद थे सो तुम भी लोगों से ना डरा करो, और मुझ ही से डरो, और मेरे अहकाम के बदले में थोड़े फ़ायदे की चीज़ मत .ख़रीदो, और जो अल्लाह के अहकाम के मवाफ़िक़ जो अल्लाह ने नाज़िल किये हैं हुक्म ना करेगा तो यही लोग काफ़िर हैं। और हमने उसमें ये फ़र्ज़ कर दिया था के जान के बदले जान, आंख के बदले आंख, नाक के बदले नाक, कान के बदले कान, दांत के बदले दांत, और .ख़ास ज़ख़्मों का भी बदला है, फ़िर जो उसको माफ़ कर दे तो वही उसका कफ़्फ़ारा है, और जो अल्लाह के नाज़िल किये हुए अ हकाम के मुताबिक़ हुक्म ना करे तो वो ही ज़ालेमीन में शुमार होंगे। (5:42-45)

وَ قَفَّيْنَا عَلٰٓى اٰثَارِهِمْ بِعِيْسَى ابْنِ مَرْيَمَ
مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ ۪ وَ
اٰتَيْنٰهُ الْاِنْجِيْلَ فِيْهِ هُدًى وَّ نُوْرٌ ۙ وَّ
مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ التَّوْرٰىةِ وَ
هُدًى وَّ مَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ ﴿۴۶﴾ وَ لْيَحْكُمْ
اَهْلُ الْاِنْجِيْلِ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فِيْهِ ؕ وَ مَنْ
لَّمْ يَحْكُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ
الْفٰسِقُوْنَ ﴿۴۷﴾

और हमने पीछे उनके ईसा को भेजा जो अपने से पहले नाज़िल शुदा किताब तौरेत की तसदीक़ करते थे, और हमने उनको इंजील अता की थी जिसमे हिदायत थी, और रौशनी थी, और वो अपने से पहले की किताब तौरेत की भी तसदीक़ करती थी और वो अल्लाह से डरने वालों के लिए हिदायत और नसीहत थी। आर इंजील वालों का ये फ़र्ज़ है के वो उसके मवाफ़िक़ हुक्म करें जो उसमें अल्लाह ने नाज़िल फ़रमाया है, और जो भी उसके मवाफ़िक़ हुक्म नहीं करेगा जो अल्लाह ने नाज़िल किया है, तो वो नाफ़रमानी में ही होगा।
(5:46-47)

وَ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا
بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَ مُهَيْمِنًا عَلَيْهِ
فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَ لَا تَتَّبِعْ
اَهْوَآءَهُمْ عَمَّا جَآءَكَ مِنَ الْحَقِّ ؕ لِكُلٍّ
جَعَلْنَا مِنْكُمْ شِرْعَةً وَّ مِنْهَاجًا ؕ وَ لَوْ شَآءَ
اللّٰهُ لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّ لٰكِنْ
لِّيَبْلُوَكُمْ فِيْ مَآ اٰتٰىكُمْ فَاسْتَبِقُوا
الْخَيْرٰتِ ؕ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا
فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ﴿۴۸﴾

और हमने आप पर ये किताब नाज़िल की जो बज़ाते .ख़ुद भी सच्ची है और इससे पहले उतरने वाली सब किताबों की तसदीक़ करती है और उनकी मुहाफ़िज़ भी है, तो उनके आपस के मामलात का इसी किताब के मवाफ़िक़ फैसला फ़रमाया कीजिये, (दीने) हक़ आपकी तरफ़ आया है इससे दूर हो कर उनकी .ख़्वाहिशात के मवाफ़िक़ अमल ना कीजिये, तुम में से हर एक के लिए हमने .ख़ास शरीअत और .ख़ास तरीक़त बना दी है, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सब को एक ही उम्मत बना देता, लेकिन अल्लाह तुम को आज़माना चाहता है इस दीन में जो तुम को दिया है, तो अच्छी बातों की तरफ़ दौड़ कर आओ, तुम सबको अल्लाह की तरफ़ लौट जाना है, फ़िर वो तुमको सब कुछ बता देगा जिनमें तुम इख़्तियार करते थे। (5:48)

وَ لَوْ اَنَّهُمْ اَقَامُوا التَّوْرٰىةَ وَ الْاِنْجِيْلَ وَ مَآ
اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ مِّنْ رَّبِّهِمْ لَاَكَلُوْا مِنْ
فَوْقِهِمْ وَ مِنْ تَحْتِ اَرْجُلِهِمْ ؕ مِنْهُمْ

और अगर ये लोग तौरेत, इंजील की और जो किताब उनके पास उनके रब की तरफ़ से भेजी गई है उसकी पूरी पाबंदी करते तो ऊपर से और नीचे से .ख़ूब फ़राग़त

से खाते, उनमें से एक जमात है जो सीधे रास्ते पर है, और उनमें अक्सर बद किरदार हैं। (5:66)

أُمَّةٌ مُّقْتَصِدَةٌ ۖ وَكَثِيرٌ مِّنْهُمْ سَاءَ مَا
يَعْمَلُونَ ٦٦

आप कह दीजिये के ऐ अहले किताब! तुम किसी राह पर भी नहीं जब तक तुम तौरेत और इंजील की और जो किताब तुम्हारे पास तुम्हारे रब की तरफ़ से भेजी गई है, उसकी भी पूरी पाबंदी ना करोगे, और ज़रूर जो चीज़ आपकी तरफ़ आपके रब की तरफ़ से भेजी जाती है, वो उनमें से अक्सर लोगों की सर्कशी और कुफ़्र को और .ज्यादा कर देती है, तो आप उन काफ़िरों पर ग़म ना किया करें। (5:68)

قُلْ يَا أَهْلَ الْكِتَابِ لَسْتُمْ عَلَىٰ شَيْءٍ حَتَّىٰ
تُقِيمُوا التَّوْرَاةَ وَالْإِنجِيلَ وَمَا أُنزِلَ
إِلَيْكُم مِّن رَّبِّكُمْ ۗ وَلَيَزِيدَنَّ كَثِيرًا
مِّنْهُم مَّا أُنزِلَ إِلَيْكَ مِن رَّبِّكَ طُغْيَانًا وَ
كُفْرًا ۖ فَلَا تَأْسَ عَلَى الْقَوْمِ الْكَافِرِينَ ٦٨

आप अपने रब की राह की तरफ़ इल्म की बातों से और अच्छी नसीहतों के ज़रिये से बुलायें, और उनके साथ अच्छे तरीक़े से बेहस कीजिये, वाक़ई आपका रब .खूब जानता है उसको जो रास्ते से गुम हुआ, और वो उसको भी .खूब जानता है जो राह पर चलने वाल हैं। (16:125)

ادْعُ إِلَىٰ سَبِيلِ رَبِّكَ بِالْحِكْمَةِ وَ
الْمَوْعِظَةِ الْحَسَنَةِ ۖ وَجَادِلْهُم بِالَّتِي هِيَ
أَحْسَنُ ۚ إِنَّ رَبَّكَ هُوَ أَعْلَمُ بِمَن ضَلَّ عَن
سَبِيلِهِ ۖ وَهُوَ أَعْلَمُ بِالْمُهْتَدِينَ ١٢٥

और अहले किताब से बहस ना किया करो मगर बेहतरीन तरीक़ा से, मगर हां जो उनमें .ज्यादती करें उनके साथ उसी तरह मुजादला करो और कह दो के जो किताब हम पर उतरी, और जो किताबें तुम पर उतरीं हम सब पर ईमान रखते हैं, और हमारा और तुम्हारा माबूद एक ही है, और हम सब उसी के फ़रमांबर्दार हैं। (29:46)

وَلَا تُجَادِلُوا أَهْلَ الْكِتَابِ إِلَّا بِالَّتِي هِيَ
أَحْسَنُ إِلَّا الَّذِينَ ظَلَمُوا مِنْهُمْ ۖ وَقُولُوا
آمَنَّا بِالَّذِي أُنزِلَ إِلَيْنَا وَأُنزِلَ إِلَيْكُمْ وَ
إِلَٰهُنَا وَإِلَٰهُكُمْ وَاحِدٌ وَنَحْنُ لَهُ
مُسْلِمُونَ ٤٦

आप फ़रमा दीजिये ऐ एहले किताब! आओ एक ऐसी बात की तरफ़ जो हमारे और तुम्हारे दरमियान मुसल्लिम होने में बराबर और मुशत्रिक है के हम अल्लाह के सिवा

قُلْ يَا أَهْلَ الْكِتَابِ تَعَالَوْا إِلَىٰ كَلِمَةٍ سَوَاءٍ
بَيْنَنَا وَبَيْنَكُمْ أَلَّا نَعْبُدَ إِلَّا اللَّهَ وَلَا

نُشْرِكَ بِهٖ شَيْـًٔا وَّ لَا يَتَّخِذَ بَعْضُنَا بَعْضًا اَرْبَابًا مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَقُوْلُوا اشْهَدُوْا بِاَنَّا مُسْلِمُوْنَ ﴿٦٤﴾

किसी और की इबादत ना करें और अल्लाह के साथ किसी को भी शरीक ना ठहरायें और हम में से कोई किसी को अल्लाह के सिवा रब ना बनाए, फिर अगर वो हक़ से मुंह मोड़ें तो तुम कह दो के तुम हमारे इस इक़रार के गवाह हो के हम तो मानते हैं। (3:64)

अहल-ए-किताब को यह ताकीद की गयी है कि वो अपनी शिक्षाओं पर अमल करें, क्योंकि अल्लाह के दीन की मौलिक शिक्षाएं जो अल्लाह के पैग़म्बरों ने दी हैं वो एक ही है:"और हम ने हर वर्ग में पैग़म्बर भेजा कि अल्लाह ही की इबादत करो और बुतों (की पूजा) से बचो तो उनमें कुछ ऐसे हैं जिन को अल्लाह ने हिदायत दी और कुछ ऐसे हैं जिन पर गुमराही सि) हो गयी सो ज़मीन में चल फिर कर देख लो कि झुटलाने वालों का अंजाम कैसा हुआ" (16:36), "और जो पैग़म्बर हम ने तुम से पहले भेजे उन की तरफ़ यही वह्यि भेजी कि मेरे अलावा कोई पूजनीय नहीं है तो मेरी ही बन्दगी करो"'(21:25)। एक अल्लाह पर ईमान जिसकी हिदायत के आगे इंसान को झुक जाना चाहिए और इस हिदायत के अनुसार ही अमल करना चाहिए, अल्लाह के सभी पैग़ामों का आधार है, जो इंसान को अन्दर से आज़ाद कर देता है ताकि वह हर बाहरी दबाव और अन्दरूनी उत्सुकता से मुक्त हो जाए। अल्लाह के सभी जनित प्राणी इस परिप्रेक्ष्य में अपना उचित और सही स्थान रखते हैं, क्यंकि वह ऊंची और महान हस्ती जिसके आगे इंसान को झुक जाना है वह एक है, और शेष सभी दूसरी चीज़ें उसकी पैदा की हुई हैं। अल्लाह की तरफ़ से आने वाले सभी पैग़ामों में इंसाफ़ और महरबानी के जो सिद्धांत दिए गए हैं उनके अनुसार हर इंसान दूसरों के साथ मामला और बर्ताव करने के सिलसिले में उत्तरदायी है। यह विश्वास अक़ीदे को मज़बूत करता है और इसके नैतिक नतीजे निश्चित रूप से ज़ाहिर होते हैं। इस जवाबदेही के लिए इंसान अपनी अध्यात्मिकता और आत्मसुधार की चेतना से तथा अल्लाह की हिदायत के अनुसार सामाजिक शिक्षा और क़ानूनी निगरानी से तैयार होता है।

इन आधारों पर मुसलमान अल्लाह और अल्लाह के पैग़ाम पर यक़ीन रखने वाले सभी लोगों से सहमत हैं, और यह यक़ीन रखने वालों को क़ुरआन में सम्बोधित करके यह कहा गया है कि वो इन शिक्षाओं को अपने जीवन में बरतें। यह उनकी अपनी अक़ल और नैकिता पर निर्भर है कि वह उन्हें अन्दर से इस बात पर तैयार करे कि वो जिस चीज़ पर पहले से ईमान रखते आए हैं उसकी रोशनी में इस्लाम की शिक्षाओं को समझें, उनकी तुलना करें और उनके बारे में फ़ैसला करें। इसके लिए कोई दबाव तो दूर मुसलमानों की तरफ़ से किसी हस्तक्षेप की भी ज़रूरत नहीं है। मुसलमानों की ज़िम्मेदारी तो बस इतनी है कि वो अल्लाह के दीन को जो

उनके पास मौजूद है पूरी बुद्धिमता के साथ और सभ्य ढंग से उन के सामने प्रस्तुत करें और उनके सवालों और पूछाताछ का संतोषजनक जवाब दें।

जब लोगों के बीच आपसी जानकारियों को साझा करने और समझने बूझने के लिए कोई वार्ता हो तो यह उन्ही लोगों के बीच हो जो हर तरह से ईमानदार और शरीफ़ लोग हों, और यह वार्ता अक़्ल व बुद्धि और आपसी विश्वास के आधार पर हो। मिसाल के तौर पर, क़ुरआन मुसलमानों को बताता है कि वो दीन और अक़ीदे के मामले में इस तरह से बात शुरू न करें कि जैसे सारा सत्य उनके ही पास है और दूसरे केवल झूट पर खड़े हैं (34:24)। इस तरह बातचीत निश्चित रूप से बे-नतीजा रहेगी। हर आदमी अपनी आस्था के सम्बंध में स्वभाविक रूप से संतुष्ट होता है और किसी दूसरी आस्था को हाथों हाथ मानने पर राज़ी नहीं किया जा सकता। सभी पक्षों को दूसरों की मान्यताओं को बिना पूर्वाग्रह के बताना चाहिए, और यह मानना चाहिए कि वहां भी कुछ न कुछ अच्छी बातें मौजूद हैं। क़ुरआन अहले किताब से अपील करता है कि समान बात की तरफ़ आएं यह कि अल्लाह के सिवा हम किसी की इबादत न करें और अल्लाह के साथ किसी को भागीदार न बनाएं और हम में कोई किसी को अल्लाह के सिवा अपना काम बनाने वाला न समझे। मैं समझता हूं कि यह आधार उन सभी लोगों के लिए स्वीकार्य है जो इब्राहीमी अक़ीदे पर हैं और अल्लाह की किसी किताब और पैग़म्बर की पैरवी करते हैं। 'ट्रिनिटी' में विश्वास रखने वाले भी हमेशा एक अल्लाह पर ईमान रखने का दावा करते हैं। समान आधारों से जो कोई भी मुंह मोड़ता है वह अपनी मानिसकता के अनुसार व्यवहार करता है ना कि दीन की हिकमत पर। इस तरह की किसी परिचर्चा में भाग लेने वाले मुसलमानों को इसके अलावा कोई जवाब देने की इजाज़त नहीं है कि सभ्य ढंग से और तौहीद पर ज़ोर देते हुए कोई ऐसी बात कहें जिसे कोई अहले किताब सैद्धांतकि रूप से रद न कर सके, चाहे विवरण में कितना ही मतभेद हो।

अल्लाह के लगातार पैग़ामों में इंसानों के विभिन्न परिस्थितियों के लिहाज़ से अलग अलग आदेश, लेकिन मूल संदेश एक मुहम्मद सल्ल० का फ़रमान है कि आप पर ईमान रखने वाले के लिए यह ज़रूरी है कि पिछली आसमानी किताबों और पहले आए हुए पैग़म्बरों पर भी ईमान रखे

اِنَّآ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ كَمَآ اَوْحَيْنَآ اِلٰى نُوْحٍ
وَّ النَّبِيّٖنَ مِنْۢ بَعْدِهٖ ۚ وَ اَوْحَيْنَآ اِلٰٓى
اِبْرٰهِيْمَ وَ اِسْمٰعِيْلَ وَ اِسْحٰقَ وَ يَعْقُوْبَ وَ
الْاَسْبَاطِ وَ عِيْسٰى وَ اَيُّوْبَ وَ يُوْنُسَ وَ

हमने आपकी तरफ़ वही की जैसे नूह की तरफ़ की थी, और उनके बाद दूसरे नबियों की तरफ़ की थी, और हमने वही की थी इब्राहीम की तरफ़, इसमाईल की तरफ़, इसहाक़ की तरफ़, याक़ूब की तरफ़, और औलादे याक़ूब की तरफ़, और ईसा की तरफ़, अय्युब की तरफ़,

هٰرُوْنَ وَ سُلَيْمٰنَ ۚ وَ اٰتَيْنَا دَاوٗدَ زَبُوْرًا ﴿١٦٣﴾
وَ رُسُلًا قَدْ قَصَصْنٰهُمْ عَلَيْكَ مِنْ قَبْلُ وَ
رُسُلًا لَّمْ نَقْصُصْهُمْ عَلَيْكَ ؕ وَ كَلَّمَ اللّٰهُ
مُوْسٰى تَكْلِيْمًا ﴿١٦٤﴾ رُسُلًا مُّبَشِّرِيْنَ وَ
مُنْذِرِيْنَ لِئَلَّا يَكُوْنَ لِلنَّاسِ عَلَى اللّٰهِ
حُجَّةٌۢ بَعْدَ الرُّسُلِ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ عَزِيْزًا
حَكِيْمًا ﴿١٦٥﴾

यूनुस की तरफ़, हारून की तरफ़ और सुलेमान की तरफ़, और हमने दाऊद को ज़बूर अता की थी। और हमने ऐसे लोगों को रसूल बनाया जिनका हाल हम आपको पहले बात चुके हैं और ऐसे रसूल पैदा किये जिनका हाल हमने आपको नहीं बताया, और अल्लाह ने मूसा से ख़ास तौर पर कलाम किया। उन सब रसूलों को ख़ुशख़बरी सुनाने वाले और डराने वाले बनाकर भेजा था, ताके लोगों को अल्लाह के सामने उन रसूलों के बाद कोई उज़्र बाक़ी ना रहे, और अल्लाह तो बड़ा ज़बरदस्त और बड़ी बड़ी हिकमतों वाला है। (4:163-165)

وَ اَنْزَلْنَاۤ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا
بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَ مُهَيْمِنًا عَلَيْهِ
فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ بِمَاۤ اَنْزَلَ اللّٰهُ وَ لَا تَتَّبِعْ
اَهْوَآءَهُمْ عَمَّا جَآءَكَ مِنَ الْحَقِّ ؕ لِكُلٍّ
جَعَلْنَا مِنْكُمْ شِرْعَةً وَّ مِنْهَاجًا ؕ وَ لَوْ شَآءَ
اللّٰهُ لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّ لٰكِنْ
لِّيَبْلُوَكُمْ فِيْ مَاۤ اٰتٰىكُمْ فَاسْتَبِقُوا
الْخَيْرٰتِ ؕ اِلَى اللّٰهِ مَرْجِعُكُمْ جَمِيْعًا
فَيُنَبِّئُكُمْ بِمَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ﴿٤٨﴾

और हमने आप पर ये किताब नाज़िल की जो बज़ाते ख़ुद भी सच्ची है और इससे पहले उतरने वाली सब किताबों की तसदीक़ करती है और उनकी मुहाफ़िज़ भी है, तो उनके आपस के मामलात का इसी किताब के मवाफ़िक़ फैसला फ़रमाया कीजिये, (दीने) हक़ आपकी तरफ़ आया है इससे दूर हो कर उनकी ख़्वाहिशात के मवाफ़िक़ अमल ना कीजिये, तुम में से हर एक के लिए हमने ख़ास शरीअत और ख़ास तरीक़त बना दी है, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सब को एक ही उम्मत बना देता, लेकिन अल्लाह तुम को आज़माना चाहता है इस दीन में जो तुम को दिया है, तो अच्छी बातों की तरफ़ दौड़ कर आओ, तुम सबको अल्लाह की तरफ़ लौट जाना है, फ़िर वो तुमको सब कुछ बता देगा जिनमें तुम इख़्तियार करते थे। (5:48)

وَ مَاۤ اَرْسَلْنَا مِنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا بِلِسَانِ قَوْمِهٖ
لِيُبَيِّنَ لَهُمْ ؕ فَيُضِلُّ اللّٰهُ مَنْ يَّشَآءُ وَ
يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ هُوَ الْعَزِيْزُ

और हमने तमाम रसूलों को उनही की क़ौमी ज़बान में रसूल बना कर भेजा है। ताके उनको अहकाम बयान करें,. फिर जिस को चाहे गुमराह कर दे और जिसको चाहे हिदायत दे दे और वही सब उमूर पर ग़ालिब है और

الْحَكِيْمُ ④

हिकमत वाला है। (14:4)

وَ لَقَدْ بَعَثْنَا فِيْ كُلِّ اُمَّةٍ رَّسُوْلًا اَنِ
اعْبُدُوا اللّٰهَ وَ اجْتَنِبُوا الطَّاغُوْتَ ۚ فَمِنْهُمْ
مَّنْ هَدَى اللّٰهُ وَ مِنْهُمْ مَّنْ حَقَّتْ عَلَيْهِ
الضَّلٰلَةُ ؕ فَسِيْرُوْا فِي الْاَرْضِ فَانْظُرُوْا
كَيْفَ كَانَ عَاقِبَةُ الْمُكَذِّبِيْنَ ۳۶

और हम हर उम्मत में कोई ना कोई रसूल भेजते रहे हैं के तुम अल्लाह की इबादत किया करो, और शैतान से बचते रहा करो, सो बाज़ को उनमें से अल्लाह ने हिदायत दी है, और बाज़ उनमें वो हुए जिन पर गुमराही साबित हुई तो फ़िर ज़मीन में ज़रा चलो फ़िरो, फ़िर नज़र डालो के झुटलाने वालों का क्या अंजाम हुआ। (16:36)

وَ مَاۤ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ اِلَّا رِجَالًا نُّوْحِيْۤ
اِلَيْهِمْ فَسْـَٔلُوْۤا اَهْلَ الذِّكْرِ اِنْ كُنْتُمْ لَا
تَعْلَمُوْنَ ۴۳ بِالْبَيِّنٰتِ وَ الزُّبُرِ ؕ وَ اَنْزَلْنَاۤ
اِلَيْكَ الذِّكْرَ لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ
اِلَيْهِمْ وَ لَعَلَّهُمْ يَتَفَكَّرُوْنَ ۴۴

और हमने तुम से पहले भी मर्दों ही को रसूल बना कर भेजा था, जिनकी तरफ़ हम वही किया करते थे, अगर तुम नहीं जानते हो तो इल्म वालों से दरयाफ़्त कर लो। (रौशन) दलीलें औ किताबें देकर, और हमने तुम पर भी ये किताब नाज़िल की है ताके तुम लोगों पर ज़ाहिर कर दो जो इर्शादात हमने लोगों पर नाज़िल किये हैं और ताके वो ग़ौर करें। (16:43-44)

وَ مَاۤ اَرْسَلْنَا مِنْ قَبْلِكَ مِنْ رَّسُوْلٍ اِلَّا نُوْحِيْۤ
اِلَيْهِ اَنَّهٗ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّاۤ اَنَا فَاعْبُدُوْنِ ۲۵

और आपसे पहले हमने कोई रसूल नहीं भेजा जिसको हमने ये वही ना की हो, के मेरे सिवा कोई माबूद नहीं, तो पस मेरी ही इबादत करो। (21:25)

اِنَّ هٰذِهٖۤ اُمَّتُكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً ۖ وَّ اَنَا
رَبُّكُمْ فَاعْبُدُوْنِ ۹۲

ये है तुम्हार तरीक़ा, एक ही तरीक़ा, और मैं तुम्हारा रब हूँ, तो तुम मेरी इबादत किया करो। (21:92)

وَ مَاۤ اَرْسَلْنَا قَبْلَكَ مِنَ الْمُرْسَلِيْنَ اِلَّاۤ اِنَّهُمْ
لَيَاْكُلُوْنَ الطَّعَامَ وَ يَمْشُوْنَ فِي الْاَسْوَاقِ ؕ وَ
جَعَلْنَا بَعْضَكُمْ لِبَعْضٍ فِتْنَةً ؕ اَتَصْبِرُوْنَ ۚ
وَ كَانَ رَبُّكَ بَصِيْرًا ۲۰

और हमने आप से पहले जितने रसूल भेजे थे वो सब खाते थे, और बाज़ारों में चलते फ़िरते थे, और हमने तुम में एक को दूसरे के लिये आज़माईश बनाया है, क्या तुम सब्र करोगे, और आपका रब ख़ूब देखने वाला है। (25:20)

وَمَا كَانَ رَبُّكَ مُهْلِكَ الْقُرَىٰ حَتَّىٰ يَبْعَثَ فِي أُمِّهَا رَسُولًا يَتْلُو عَلَيْهِمْ آيَاتِنَا ۚ وَمَا كُنَّا مُهْلِكِي الْقُرَىٰ إِلَّا وَأَهْلُهَا ظَالِمُونَ ﴿٥٩﴾

पस जब मूसा ने उस मुद्दत को पूरा किया और अपने घर वालों को लेकर चले तो तूर की तरफ़ एक आग नज़र आई तो अपन घर वालों से कहा, तुम (यहां) ठहरो मुझे आग नज़र आई है, शायद मैं वहां से रस्ते का कुछ पता लाऊँ, या आग का अंगारा ले आऊँ, ताके तुम ताप लो। (28:59)

وَإِذْ أَخَذْنَا مِنَ النَّبِيِّينَ مِيثَاقَهُمْ وَمِنْكَ وَمِنْ نُوحٍ وَإِبْرَاهِيمَ وَمُوسَىٰ وَعِيسَى ابْنِ مَرْيَمَ ۖ وَأَخَذْنَا مِنْهُمْ مِيثَاقًا غَلِيظًا ﴿٧﴾ لِيَسْأَلَ الصَّادِقِينَ عَنْ صِدْقِهِمْ ۚ وَأَعَدَّ لِلْكَافِرِينَ عَذَابًا أَلِيمًا ﴿٨﴾

और जब हमने रसूलों से अहद लिया और आप (स.अ.स.) से और इब्राहीम (अ.स.) और मूसा, और मरयम के बेटे ईसा से, और हमने उनसे पुख़्ता अहद लिया। ताके सच्चों से उनकी सच्चाई के बारे में दरयाफ़्त करे, और काफ़िरों के लिये दुख देने वाला अज़ाब तैयार कर रखा है। (33:7-8)

إِنَّا أَرْسَلْنَاكَ بِالْحَقِّ بَشِيرًا وَنَذِيرًا ۚ وَإِنْ مِنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ ﴿٢٤﴾

और हमने किसी बस्ती में कोई डराने वाला नहीं भेजा मगर वहां के ख़ुशहाल लोगों ने यही कहा के जो चीज़ तुमको देकर भेजा गया है हम उसको मानते ही नहीं। (35:24)

قُولُوا آمَنَّا بِاللَّهِ وَمَا أُنْزِلَ إِلَيْنَا وَمَا أُنْزِلَ إِلَىٰ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ وَإِسْحَاقَ وَيَعْقُوبَ وَالْأَسْبَاطِ وَمَا أُوتِيَ مُوسَىٰ وَعِيسَىٰ وَمَا أُوتِيَ النَّبِيُّونَ مِنْ رَبِّهِمْ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ مِنْهُمْ وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ ﴿١٣٦﴾

तुम कहो के हम अल्लाह पर यक़ीन लाए हैं और उस पर जो हमारे ऊपर उतरी है, और नीज़ उस पर जो इब्राहीम और इसमाईल, औ इसहाक़ और याक़ूब और उनकी औलाद पर नाज़िली हुई हैं, और उस पर भी जो मूसा और ईसा पर उतरी हैं, और उस पर भी जो दूसरे नबियों को उनके रब की तरफ़ से मिली हैं, और हम उन सब रसूलों में कोई फ़र्क़ नहीं करते, और हम सब उसी एक ही ख़ुदा की इताअत करते हैं।
(2:136, और देखें 3:84)

آمَنَ الرَّسُولُ بِمَآ أُنْزِلَ إِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ وَ
الْمُؤْمِنُونَ ۚ كُلٌّ آمَنَ بِاللّٰهِ وَ مَلٰٓئِكَتِهٖ وَ
كُتُبِهٖ وَ رُسُلِهٖ ۟ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ مِّنْ
رُّسُلِهٖ ۟ وَ قَالُوْا سَمِعْنَا وَ أَطَعْنَا ۫ غُفْرَانَكَ
رَبَّنَا وَ إِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨٥﴾

जो चीज़ अल्लाह की तरफ़ से रसूल पर नाज़िल हुई है (यानी क़ुरआन) उस पर रसूल को और तमाम मोमिनीन को पूरा अक़ीदा है। सबके सब अल्लाह पर और उसके फ़रिश्तों पर, और उसकी किताबों पर, और उसके रसूलों पर अक़ीदा रखते हैं, कि हम अल्लाह के रसूलों में से किसी में तफ़रीक़ नहीं करते। और उन सब ने यही कहा के हमने आपका कलाम सुना हम ने .ख़ुशी से इताअत की हम तेरी बख़्शिश चाहते हैं ऐ हमारे रब! और आप ही की तरफ़ लौटना है। (2:285)

يٰٓأَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوْٓا آمِنُوْا بِاللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ وَ
الْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰى رَسُوْلِهٖ وَ الْكِتٰبِ
الَّذِيْٓ أَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ۚ وَ مَنْ يَّكْفُرْ بِاللّٰهِ
وَ مَلٰٓئِكَتِهٖ وَ كُتُبِهٖ وَ رُسُلِهٖ وَ الْيَوْمِ الْآخِرِ
فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًا بَعِيْدًا ﴿١٣٦﴾

मोमिनों! तुम अल्लाह पर पूरा पूरा यक़ीन रखो, और उसके रसूल पर, उसकी किताब पर जो उसने अपने रसूल पर नाज़िल की, और उन सब किताबों पर जो इससे पहले नाज़िल हो चुकी हैं और जो अल्लाह का इन्कार करे, उसके फ़रिश्तों का इन्कार करे, उसकी किताबों का, उसके रसूलों का, और रोज़ क़यामत का इन्कार करे तो वो गुमराही में बड़ी दूर जा पड़ा है। (4:136)

إِنَّ الَّذِيْنَ يَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ وَ
يُرِيْدُوْنَ أَنْ يُّفَرِّقُوْا بَيْنَ اللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ وَ
يَقُوْلُوْنَ نُؤْمِنُ بِبَعْضٍ وَّ نَكْفُرُ بِبَعْضٍ ۙ وَّ
يُرِيْدُوْنَ أَنْ يَّتَّخِذُوْا بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيْلًا ﴿١٥٠﴾
أُولٰٓئِكَ هُمُ الْكٰفِرُوْنَ حَقًّا ۚ وَ أَعْتَدْنَا
لِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابًا مُّهِيْنًا ﴿١٥١﴾ وَ الَّذِيْنَ آمَنُوْا
بِاللّٰهِ وَ رُسُلِهٖ وَ لَمْ يُفَرِّقُوْا بَيْنَ أَحَدٍ
مِّنْهُمْ أُولٰٓئِكَ سَوْفَ يُؤْتِيْهِمْ أُجُوْرَهُمْ ۚ
وَ كَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٥٢﴾

जो अल्लाह के साथ और उसके रसूलों के साथ कुफ़्र करते हैं और चाहते हैं के अल्लाह और उसके रसूलों के दरमियान फ़र्क़ डालें, और कहते हैं के बाज़ों पर तो हम ईमान ले आए हैं और बाज़ के मुन्किर हैं और चाहते हैं के बैन बैन एक राह इख़्तियार करें। ये लोग यक़ीनन काफ़िर हैं, और काफ़िरों के लिए हमने अहानत आमेज़ अज़ाब तैयार कर रखा है। जो अल्लाह पर और उसके रसूलों पर ईमान लाए और उनमें से किसी में फ़र्क़ नहीं करते तो अल्लाह उनका जल्द ही उनका सवाब ज़रूर अता करेगा और अल्लाह तो है ही बड़ा बख़्शने वाला और रहमत करने वाला। (4:150-152)

شَرَعَ لَكُمْ مِّنَ الدِّيْنِ مَا وَصّٰى بِهٖ نُوْحًا وَّ
الَّذِيْٓ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ وَ مَا وَصَّيْنَا بِهٖٓ
اِبْرٰهِيْمَ وَ مُوْسٰى وَ عِيْسٰٓى اَنْ اَقِيْمُوا
الدِّيْنَ وَ لَا تَتَفَرَّقُوْا فِيْهِ ؕ كَبُرَ عَلَى
الْمُشْرِكِيْنَ مَا تَدْعُوْهُمْ اِلَيْهِ ؕ اَللّٰهُ
يَجْتَبِيْٓ اِلَيْهِ مَنْ يَّشَآءُ وَ يَهْدِيْٓ اِلَيْهِ
مَنْ يُّنِيْبُ ﴿۱۳﴾

मुक़र्रर किया तुम्हारे लिये वही दीन जिसका हुक्म उसने नूह (अ.स.) को किया, और जिसको बज़रिया वही हमने आपके पास भेजा और जिस का हमने इब्राहीम (अ.स.) को, और मूसा को और ईसा को हुक्म दिया के तुम इस दीन को क़ायम रखना, और इसमें फ़िर्क़ाबंदी ना करना, और जिस बात की तरफ़ आप मुशरिकों को बुलाते हैं वो उनको दुश्वार मालूम होती है, अल्लाह जिसे चाहता है अपनी तरफ़ खींच लेता है और जो श़ख्स रूजू करे उसको अपनी तरफ़ हिदायत देता है। (42:13)

وَ مَنْ اَحْسَنُ دِيْنًا مِّمَّنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ
لِلّٰهِ وَ هُوَ مُحْسِنٌ وَّ اتَّبَعَ مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ
حَنِيْفًا ؕ وَاتَّخَذَ اللّٰهُ اِبْرٰهِيْمَ خَلِيْلًا ﴿۱۲۵﴾

और उससे अच्छा और किस का दीन होगा जो अपना रूख अल्लाह की तरफ़ करे, और वो मुख़्लिस भी हो, और वो मिल्लते इब्राहीम (अ.स.) का इत्तेबा करे जिसमें कजी का नाम ना हो, और अल्लाह ने इब्राहीम को ख़ालिस दोस्त बनाया था। (4:125)

قُلْ اِنَّنِيْ هَدٰىنِيْ رَبِّيْٓ اِلٰى صِرَاطٍ
مُّسْتَقِيْمٍ ۚ دِيْنًا قِيَمًا مِّلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ
حَنِيْفًا ۚ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿۱۶۱﴾

आप कह दें के मेरे रब ने मुझ को एक ही सीधा रास्ता बताया है के वो एक दीन है मज़बूत, जो इब्राहीम (अ.स.) का तरीक़ा है जिसमें कोई कजी नहीं, और वो मुशरिक़ीन में से ना थे। (6:161)

ثُمَّ اَوْحَيْنَآ اِلَيْكَ اَنِ اتَّبِعْ مِلَّةَ اِبْرٰهِيْمَ
حَنِيْفًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿۱۲۳﴾

फ़िर हमने आपके पास वही भेजी के आप इब्राहीम (अ.स.) के तरीक़े पर ही चलिये के वो एक ही की तरफ़ के हो रहे थे, वो शिर्क करने वालों में से ना थे। (16:123)

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ الَّذِيْنَ هَادُوْا وَ
الصّٰبِـِٕيْنَ وَ النَّصٰرٰى وَ الْمَجُوْسَ وَ الَّذِيْنَ
اَشْرَكُوْٓا ۖ اِنَّ اللّٰهَ يَفْصِلُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ

बेशक जो मोमिन हैं, और जो यहूदी हैं, और जो सितारा परस्त, और जो नसारा हैं और मजूसी हैं, और जो मुशरिक हैं, अल्लाह सबके दरमियान क़यामत के दिन

फ़ैसला कर देगा, बिला शुबह अल्लाह हर चीज़ से बाख़बर है। (22:17)

الْقِيٰمَةِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ شَهِيْدٌ ﴿١٧﴾

क़ुरआन अल्लाह की तरफ़ से एक के बाद एक आने वाले सभी पैग़ामों को एक ही पैग़ाम के रूप में पेश करता है अल्बत्ता अलग अलग ज़मानों और अलग अलग स्थानों की अलग अलग परिस्थितियों के लिहाज़ से इसकी विस्तृत शिक्षाएं और आदेश अलग अलग रहे है:“हम ने तुम से हर एक (समुदाय) के लिए एक विधान और ढंग निर्धारित किया है”(5:48), “और हमने कोई पैग़म्बर नहीं भेजा मगर वह अपने समुदाय की भाषा बोलते थे”(14:4)। अल्लाह ने अपने हर पैग़म्बर को स्वयं उनकी अपनी क़ौम में भेजा (2:54; 5:20; 7:59,75,128; 10:7,83; 11:25,38,78; 19:11; 26:70; 27:56; 46:21), और उन्हें उनका भाई बताकर ज़िक्र किया है (7:65,73,85; 11:50,61,84; 27:45; 29:36)। मुहम्मद सल्ल० भी अपनी क़ौम के बीच ही आए:“लोगो तुम्हारे पास तुम में से ही एक पैग़म्बर आए हैं, तुम्हारी तकलीफ़ उनको भारी लगती है और तुम्हारी भलाई के लिए बहुत इच्छुक है और मोमिनों पर बहुत ही दया करने वाले और महरबान हैं” (9:128)।

जैसा कि उपरोक्त आयतों से ज़ाहिर है, क़ुरआन इस बात पर ज़ोर देता है कि अल्लाह के सभी पैग़म्बरों का पैग़ाम एक ही था, और मुहम्मद सल्ल० पर ईमान रखने वाले हर आदमी को पिछले सभी पैग़म्बरों पर ईमान लाना ज़रूरी है। ख़ुद मुहम्मद सल्ल० को भी यह शिक्षी दी गयी थी कि वह पहले पैग़म्बरों की तरह दृढ़ता से अपने संदेश पर जमें रहें और ईमान व दृढ़ता में उनका अनुसरण करें, जिसके बारे में उन्हें क़ुरआन में बताया गया है (16:123; 6:89)। हज़रत मूसा और हज़रत ईसा की शिक्षाएं और उन पर उतरने वाली किताबों का ज़िक्र क़ुरआन में बार बार किया गया है क्योंकि इन दोनों का युग मुहम्मद सल्ल० के युग से अपेक्षाकृत क़रीब है, और उन्हें मानने वाले यहूद व नसारा (ईसाई) अरब में रहते थे। अल्लाह तआला के सभी पैग़ामों का और ख़ास तौर से अब्राहमिक धर्मों यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म का कन्द्रीय बिन्दु यह है कि एक अल्लाह की इबादत करो और इस दुनिया में उसकी हिदायत पर चलो और मरने के बाद अल्लाह के सामने जवाबदेही पर विश्वास रखो। अरब में रहने वाले यहूदियों के बारे में क़ुरआन की आलोचनाएं उनके अपने व्यवहार पर हैं जबकि उनके पास आए संदेश के महत्व और महानता पर क़ुरआन में ज़ोर दिया गया है:“और यह तुम से (अपने मुक़दमे) क्यों निपटवाएंगे जबकि स्वयं उनके पास तौरात मौजूद है जिसमें अल्लाह का आदेश लिखा हुआ है (यह उसे जानते हैं) फिर उसके बाद उससे फिर जाते हैं और ये लोग ईमान ही नहीं रखते, बेशक हम ने ही तौरात उतारी है जिसमें हिदायत और रोशनी है ” (5:43-44),”(हां) फिर (सुन लो कि) हम ने मूसा को किताब दी थी ताकि उन लोगों पर जो सदाचारी हैं अपने

उपहार पूरे कर दें और (उस में) हर चीज़ का बयान (है) और रहमत है ताकि (उनकी क़ौम के) लोग अपने रब के सामने हाज़िर होने का यक़ीन करें''(6:154)।

हज़रत ईसा की तरह उनकी मां मरियम, उनकी क़ौम, उनकी शिक्षाओं और उन पर उतरने वाली किताब और उन पर ईमान लाने वाले उनके साथियों का ज़िक्र भी क़ुरआन में प्रभावूपर्ण ढंग से किया गया है (3:33-55; 19:16-34; 57:27; 61:14)। उनके चमत्कारी जन्म को भी ख़ास तौर से बयान किया गया है, और अपने संदेश के प्रति उनकी अडिगता, पैग़म्बरों में उनके विशेष स्थान, और उनके प्रतिष्ठित व्यक्तित्व व चरित्र को भी क़ुरआन में बयान किया गया है (3:45-46,49,55; 19:29-33)। हज़रत ईसा को अल्लाह का कलिमा कहा गया है जिसे उनकी मां मरियम की तरफ़ उतारा गया और अल्लाह की तरफ़ से एक ''रूह'' (आत्मा) कहा गया है (4:171)। मुसलमानों और ईसाइयों के बीच हज़रत ईसा से सम्बंधित उन तथ्यों और चमत्कारों के बारे में मतभेद नहीं है जिनसे उनके व्यक्तित्व की विशेषता मालूम होती है बल्कि हज़रत ईसा के स्वरूप और स्थिति के बारे में मतभेद है क्योंकि मुसलमान उनके मानव होने में विश्वास रखते हैं और साथ ही पैगम्बरों के इतिहास में उनके एक विशेष स्थान और प्रतिष्ठा को मानते हैं और उनके चमत्कारी जन्म पर ईमान रखते हैं (3:59; 14:171-172; 5:116-119; 19:34-36)। लेकिन हज़रत ईसा के बारे में मुसलमानों का दृष्टिकोण यहूदियों के दृष्टिकोण से बिल्कुल भिन्न है (4:156-158), इसके बावजूद कि दोनों उनके इन्सान होने को ही मानते हैं।

मुसलमान दूसरों से उनके ईमान व अक़ीदे के लिहाज़ से बर्ताव नहीं करते, और न करना चाहिए, बल्कि उनके व्यवहार के आधार पर करते हैं। क़ुरआन यह सिखाता है कि हर व्यक्ति को उसकी क्षमता, गुणों और कर्मों के हिसाब से ही बर्ता जाए, इस बात से अलग कि उसकी आस्था क्या है। ग़ैर मुस्लिम अपने व्यवहार और गुणों में सब एक जैसे नहीं होते और क़ुरआन ने अहले किताब के बारे में कहा है:''और अहल-ए-किताब में कोई तो ऐसा है कि अगर तुम उसके पास (रुपयों का) ढेर रख दो तो तुम को (तुरन्त) वापस देदे और कोई इस तरह का है कि अगर उसके पास एक दीनार भी अमानत रखो तो जब तक उसके सर पर हर समय खड़े न रहो तुम्हें दे ही नहीं, और ये भी सब एक जैसे नहीं हैं, इन अहल-ए-किताब में कुछ लोग (अल्लाह के हुक्म पर) चलते हैं जो रात के समय अल्लाह की आयतें पढ़ते और (उसके आगे) सिजदे करते हैं। (और) अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते और अच्छे काम करने को कहते और बुरी बातों से मना करते और नेकियों पर लपकते हैं और यही नेक लोग हैं। और ये जिस तरह की नेकी करेंगे उसकी अनदेखी न की जाएगी और अल्लाह गुनाह से बचने वालों को ख़ूब जानते हैं'' (3:113-115) दूसरी तरफ़ ख़ुद मुसलमानों में ऐसे निर्दयी लोग हो सकते हैं जिनसे मुसलमानों को प्रतिरोध करना पड़ता है, इसके बावजूद कि वो एक ही आस्था (अक़ीदे) के लोग होते है:''और अगर मोमिनों में कोई दो पक्ष आपस में लड़ पड़ें तो

उनमें सुलह करा दो और अगर एक पक्ष दूसरे पर ज़्यादती करे तो ज़्यादती करने वाले से लड़ो यहां तक कि वह अल्लाह के हुक्म की तरफ़ पलट आए'' (49:9)।

ऐसे लोगों के मामले में जो इब्राहीमी सिलसिले से सम्बंध नहीं रखते बल्कि देवी देवताओं में आस्था रखते हैं, या वो लोग जो पूरी तरह नास्तिक हों उन सब के बारे में क़ुरआन यह सिद्धांत देता है कि हर व्यक्ति की आस्था और ईमान का फ़ैसला अल्लाह तआला अन्तिम फ़ैसले वाले दिन करेंगे, जैसा कि ऊपर की आयत 22:17 से संकेत मिलता है। अल्लाह तआला ही किसी व्यक्ति की समस्त परिस्थितियों से पूरी तरह बाख़बर होते हैं चाहे वह मानसिक स्थिति हो, बौद्धिक हो, सामाजिक हो या और कोई स्थिति हो ''वह हस्ती हर चीज़ की जानकार है'' वह उनकी छुपी और खुली बातों को जानता है, वह तो दिलों तक की बात से बाख़बर है (11:5)। इसके अलावा यह कि कोई व्यक्ति बाहरी दबाव से कितना आज़ाद है और अपना फ़ैसला लेने की योग्यता उसमें कितनी है इसके मुताबिक़ फ़ैसला करना भी अल्लाह के न्याय सिद्धांत के अनुसार है, यह कि ''अल्लाह किसी नफ़्स पर उसकी क्षमता से अधिक भार नहीं डालता है'' (2:182), और किसी भी ज़िम्मेदारी को अदा करने के लिए अपनी मर्ज़ी में आज़ाद होना भी ज़रूरी है।

मुसलमानों के लिए यह ज़रूरी है कि वो लोगों से न्याय और विनम्रता से पेश आएं चाहे उनका धर्म और आस्था जो कुछ भी हो, जब तकि वो उन पर कोई ज़ुल्म न करें। वो लोग भी जिन्हें मुसलमान अपना शत्रु मानते हैं, लेकिन उन्होंने मुसलमानों के विरुध कोई ग़लत हरकत नहीं की है, मुसलमानों की शान्तिप्रियता और अच्छे व्यवहार के नतीजे में कल उनके मित्र हो सकतें हैं (60:7-6)। मुसलमानों को दूसरों के विरुध कोई शत्रुतापूर्ण बात या हरकत नहीं करना चाहिए ताकि किसी झगड़े में पड़ने से वो बचें और अतिरिक्त लोग उसमें लिप्त न हों और मामला आगे न बढ़े कि उसे सुलझाना कठिन हो जाए और दीन व ईमान को उससे चोट पहुंचे। मुसलमानों को हमैशा इस मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सच्चाई को ध्यान में रखना चाहिए जिसकी तरफ़ क़ुरआन बार बार उन्हें ध्यान दिलाता है कि ''लोगों के लिए दुनिया का जीवन और दुनिया का माल व सामान ख़ुशनुमा बना दिया गया है।''(2:212; 3:14; 6:108,122; 10:12; 13:33; 47:14)।

एक दूसरे के साथ ईमानदारी और महरबानी से पेश आना, और भौतिक व सामाजिक स्थितियों को बहतर बनाने और सभी इंसानों के जीवन को सुखी व प्रतिष्ठित बनाने के आपसी हित को पूरा करने के लिए एक दूसरे के साथ सहयोग करना शान्ति की स्थापना, आपसी सूझ बूझ और लगाव पैदा करने और सौहार्द का माहौल बनाने के लिए सबसे अच्छी भाषा होगी। इसके अतिरिक्त यह कि, हर इंसान चाहे उसका धर्म आज कुछ भी हो, अपने अन्दर सही और ग़लत में अन्तर करने का एक आत्मिक बल रखता है जो क़ुरआन के अनुसार उसमें डाला गया

है, और इस तरह हर आदमी हर समय भविष्य में ईमान लाने की सम्भावना रखता है:''और जब तुम्हारे रब ने आदम की संतानों से अर्थात उनकी पीठों से उनकी संतान निकाली तो उनसे स्वंय उनके मुक़ाबले में वचन ले लिया (यानि उनसे पूछ लिया कि) क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूं? वो कहने लगे कि क्यों नहीं हम गवाह हैं (आप हमारे रब हैं, यह वचन इस लिए लिया गया था) कि क़ियामत के दिन (कहीं यूं न) कहने लगो कि हमें तो इसका पता ही नहीं था''(7:172)। इस दृष्टिकोण से हर दूसरा आदमी, चाहे मोमिन हो या न हो, समान इंसानी गुणों के आधार पर हम से क़रीबी सम्बंध रखता है। लेकिन इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि मुसमलानों और एक अल्लाह पर ईमान रखने वाले दूसरे लोगों और ख़ास तौर से इब्राहीमी श्रंखला के लोगों के बीच एक विशेष सम्बंध को कम करके देखा जाए।

अहल-ए-किताब से क़रीबी सम्बंध:एक दूसरे का खाना हलाल और अहल-ए-किताब की औरतों से विवाह करना जायज़

اَلْيَوْمَ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ ؕ وَ طَعَامُ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حِلٌّ لَّكُمْ ۪ وَ طَعَامُكُمْ حِلٌّ لَّهُمْ ۪ وَ الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَ الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَاۤ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَ لَا مُتَّخِذِيْۤ اَخْدَانٍ ؕ وَ مَنْ يَّكْفُرْ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ حَبِطَ عَمَلُهٗ ۫ وَ هُوَ فِي الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝

आज हलाल चीज़ें तुम्हारे लिये हलाल की गईं, और अहले किताब का ज़बीहा खाना तुम्हारे लिये हलाल है, और तुम्हारा ज़बीहा उनको हलाल है, और मुसलमान पारसा औरतें और अहले किताब की पारसा औरतें, जब तुम उनको उनका मेहर अदा कर दो इस तौर पर के तुम बीवी बनाओ ना तो फ़िर एलानिया तौर पर बदकारी करो और ना खूफ़िया तौर पर आशनाई करो, और जो ईमान के साथ कुफ़्र करेगा तो उसका अमले नेक भी ग़ारत कर दिया जाएगा, और वो आख़िरत में भी ख़सारे में रहेगा। (5:5)

इंसानों के बीच समान मूल्यों, उनमें पैदा की गयी विविधता और उनके आत्मिक अस्तित्व पर ध्यान दिलाने से आगे बढ़ कर क़ुरआन मुसलमानों को यह भी इजाज़त देता है कि वह अहल-ए-किताब के साथ खाना खा सकते हैं और उनकी महिलाओं से विवाह करके उनके साथ वैवाहिक सम्बंध बना सकते हैं।

अहल-ए-किताब

इसमें कोई शक नहीं कि उपरोक्त आयत में क़ुरआन ने उन यहूदियों और ईसाइयों का उल्लेख किया है जो पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० और उनके संदेश के युग में अरब में मौजूद थे, इसके बावजूद कि क़ुरआन में बयान किए गए इस्लामी अक़ीदों से उनके अक़ीदे और तौर तरीक़े भिन्न थे। क़ुरआन ने अल्लाह और अल्लाह के दीन तथा अल्लाह के सामने जवाबदेही पर ईमान के आधार पर एहल ए किताब को एक विशेष दर्जे में रखा है, लिहाज़ा इस इजाज़त को मुशरिक महिलाओं से विवाह करने की मनाही पर लागू करने की कोई गुंजाइश नहीं है जिन के बारे में मनाही इससे पहले उतरी आयत (2:221) में की गयी है। क़ुरआन की बहुत से आयतों में अहल-ए-किताब की ख़ास हैसियत का इज़हार किया गया है और यह हैसियत उन लोगों से अलग है जो पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पैग़ाम पर ईमान नहीं रखते और एक अल्लाह पर ईमान का भी समान आधार नहीं रखते (3:186(22:17(98:1), उपरोक्त आयत 5:5 जो आयत 2:221 के बाद उतरी थी एक मुसलमान मर्द और एक अहल-ए-किताब औरत के बीच विवाह की अनुमित देती है। पैग़म्बर साहब के वरिष्ठ साथियों जैसे तीसरे ख़लीफ़ा हज़रत उसमान ने, तलहा बिन अब्दुल्लाह ने और हुज़ैफ़ा बिन यमन ने अहल-ए-किताब औरतों से शादी की थी। हज़रत उसमान की पत्नि ईसाई क़ौम से थीं और बाक़ी दोनों सहाबियों की पत्नियां यहूदी महिलाएं थीं।

अहल-ए-किताब का खाना जो कि मुसलमानों के लिए हलाल किया गया उसमें उनके हाथ का 'ज़बीहा' (कटा हुआ पशुद्ध भी शामिल है, और सम्भवता इसी से ही अभिप्राय भी है खाने का, क्योंकि मुसलमानों को पशु काटना (ज़िब्ह करना) सिखाया गया है। यह अनुमति केवल उनही मवेशियों के खाने के लिए है जिनका मास खाना शरीअत में जायज़ है, और इसका अर्थ किसी भी तरह से सुअर का मास खाना नहीं हो सकता। खाने व पीने के मना की गयी चीज़ें जैसे मुर्दार (मृत मवेशी), ख़ून और शराब (2:17(5:3,90-91(6:145(16:151) इस इजाज़त में शामिल नहीं हो सकतीं। मुसलमान अहल-ए-किताब का खाना खा लेते हैं और ख़ास तौर से उनके द्वारा ज़िब्ह किये गए पशु का मास अगर वह किसी हराम पशु का न हो। वो दूसरों को भी अपने साथ खिलाने से गुरेज़ नहीं करते और उन्हें खाने में शरीक होने के लिए बुलाने से हिचकते नहीं हैं। अहल-ए-किताब महिलाओं के अधिकार जिनसे मुसलमान विवाह करें इसी तरह सुरक्षित रखे जाएंगे जिस तरह मुस्लिम पत्नियों के अधिकार हैं, और ऊपर उल्लिखित आयत में इसी बात पर ज़ोर दिया गया है कि उनका महर और एक हलाल व जायज़ निकाह के लिए शरीअत की जो भी शर्तें हैं वो सब पूरी की जाएंगी।

अहल-ए-किताब पत्नियों के अधिकार

मुसलमानों की पत्नियां बनने वाली अहल-ए-किताब महिलाओं के अधिकार और ज़िम्मेदारियां भी वही हैं जो मुसलमान पत्नियों की हैं लेकिन इस पर अतिरिक्त रूप से उन्हें यह अधिकार भी प्राप्त है कि वो अपने धार्मिक अधिकारों से भी लाभान्वित हो सकती हैं। पहले यह उल्लेख किया जा चुका है कि फ़क़ीहों के बीच यह परिचर्चा रही है कि अहल ए किताब पत्नियों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना क्या जब्र (बल प्रयोग) का एक रूप है जिससे मना किया गया है (2:256), और जिन फ़क़ीहों ने अहले किताब पत्नियों को इस्लाम की तरफ़ बुलाने को ज़रूरी या सही माना है वो भी इस बात पर ज़ोर देते हैं यह काम बग़ैर किसी दबाव के या वैवाहिक सम्बंधों के अनुचित उपयोग से बचा हुआ होना चाहिए। अहल ए किताब पत्नि अपने धर्म स्थल में जा सकती है और अगर उसकी सुरक्षा के लिए ज़रूरी हो तो उसका मुस्लिम पति भी रास्ते में उसका साथ देने के लिए जा सकता है। एक ईसाई पत्नि अपने साथ "सलीब" (क्रास) या अपनी पवित्र किताब रख सकती है इस इजाज़त के अनुरूप कि एक मुसलमान मर्द अहल-ए-किताब पत्नि से शादी कर सकता है इस स्थिति में कि मूर्ति पूजा का कोई लक्षण उसके अमल में न पाया जाता हो। यह बात हालांकि उसकी खाने पीने की आदतों (शराब पीने या सुअर का मास खाने) पर भी लागू होती है लेकिन उसकी खानपान की आदतें अगर मुस्लिम पति और बच्चों के अक़ीदे और उनके अधिकारों में रूकावट बनेंगी तो इस उल्लंघन की इजाज़त उसे प्राप्त न होगी। (अतःव्यवहारिक रूप से यह कठिन मामला है कि एक मुसलमान पति किसी किताबी महिला से शादी करे और वह महिला शराब व सुअर जैसी चीज़े खाने पीने का शौक़ रखती हो तो इस स्थिति में दोनों में से किसी एक के अधिकारों का उल्लंघन न हो और ऐसा जोड़ा अपनी अपनी आज़ादियों और पाबन्दियों के साथ एक सौहार्दपूर्ण परिवार बना सके, इस लिए मुसलमानों का साधारण व्यवहार किसी ग़ैर मुस्लिम पत्नि से विवाह न करने का रहा है और व्यवहारिक जीवन के लिए यही उचित है, हां अपवाद की स्थिति के लिए यह क़ुरआनी इजाज़त एक सैद्धांतिक आधार देती हैः अनुवादक)।

न्याय और मेहरबानी

समाज और देश में दूसरे लोगों के साथ मुसलमानों के सम्बंधों के लिए एक अनिवार्य सिद्धांत

बेशक तुम्हारे लिये उन लोगों में एक उम्दा नमूना है لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِيهِمْ أُسْوَةٌ حَسَنَةٌ لِّمَن

كَانَ يَرْجُوا اللّٰهَ وَ الْيَوْمَ الْاٰخِرَ ؕ وَ مَنْ يَّتَوَلَّ فَاِنَّ اللّٰهَ هُوَ الْغَنِيُّ الْحَمِيْدُ ۠ عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّجْعَلَ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَ الَّذِيْنَ عَادَيْتُمْ مِّنْهُمْ مَّوَدَّةً ؕ وَ اللّٰهُ قَدِيْرٌ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝

(यानी) उस शख़्स के लिये जो अल्लाह (के सामने जाने) और यौमे आख़िरत पर अक़ीदा रखता है, और जो रूगर्दानी करेगा तो अल्लाह बेनियाज़ हैं हम्दो सना का सज़ावार है। अजब नहीं के अल्लाह तुम में और उनमें जिनसे तुम दुश्मनी रखते हो, दोस्ती पैदा कर दे, और अल्लाह बड़ी क़ुदरत वाला है, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला रहम वाला है। (60:6-7)

فَلِذٰلِكَ فَادْعُ ۚ وَ اسْتَقِمْ كَمَاۤ اُمِرْتَ ۚ وَ لَا تَتَّبِعْ اَهْوَآءَهُمْ ۚ وَ قُلْ اٰمَنْتُ بِمَاۤ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنْ كِتٰبٍ ۚ وَ اُمِرْتُ لِاَعْدِلَ بَيْنَكُمْ ؕ اَللّٰهُ رَبُّنَا وَ رَبُّكُمْ ؕ لَنَاۤ اَعْمَالُنَا وَ لَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ؕ لَا حُجَّةَ بَيْنَنَا وَ بَيْنَكُمْ ؕ اَللّٰهُ يَجْمَعُ بَيْنَنَا ۚ وَ اِلَيْهِ الْمَصِيْرُ ۝

पस ऐ नबी! आप इसी दीन की तरफ़ लोगों को बुलाते रहें, और इसी पर क़ायम रहें जैसा के आपको हुक्म किया गया है, और आप उनकी ख़्वाहिशात की पैरवी ना करें, और आप फ़ैसला दें के मैं तो ईमान लाता हूँ उन किताबों पर जो अल्लाह ने नाज़िल की हैं, और मुझे हुक्म हुआ है के मैं तुममें इन्साफ़ करूं, अल्लाह हमारा भी रब है और तुम्हारा भी रब है, हमारे आमाल का बदला हमको मिलेगा, और तुम्हारे आमाल का बदला तुम को मिलेगा, हममें और तुम में कोई तकरार नहीं है, अल्लाह हम सबको इकटठा कर देगा, और उसी की तरफ़ लौट कर जाना है। (42:15)

दूसरों के साथ मुसलमानों के सम्बंध स्थापित होने का आधार न केवल न्याय है बल्कि विनम्रता और महरबानी का रवैया भी इसका आधार बनता है। यह न केवल मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों के बीच सम्बंध के आधार हैं बल्कि ख़ुद मुसलमानों के आपसी सम्बंधों में भी और देश व दुनिया के साथ भी उनके सम्बंधों का आधार बनते हैं जब तक कि मुसलमानों के विरुध दूसरे लोग कोई आक्रामक हरकत नहीं करते, उनके विरुध जंग नहीं छेड़ते, उन्हें उनकी ज़मीनों से बेदख़ल नहीं करते या ऐसे किसी आक्रामक हमले के लिए किसी की मदद नहीं करते। मुसलमानों के साथ मुस्तक़िल रूप से रहने वाले दूसरे लोगों के लिए ''ज़िम्मी'' की शब्दावली प्रयोग होती है जिसका अर्थ है वो लोग जिनकी सुरक्षा और जिनके अधिकारों की सुरक्षा का ज़िम्मा लिया गया हो। यह एक ऐतिहासिक शब्दावली है और पैग़म्बर सल्ल० की उन हदीसों में इस्तेमाल हुई है जिनमें मुसलमानों को उनके आधीन रहने वाले लोगों से किए गए वायदे को पूरी ईमानदारी के साथ पूरा करने का निर्देश दिया गया है। लेकिन इस शब्दावली

का उद्देश्य मुसलमानों के देश में रहने वाले ग़ैर मुस्लिमों के लिए क़ुरआन व सुन्नत के आधार पर एक अलग स्थाई क़ानूनी हैसियत (या पहचान) स्थापित करना नहीं है। फ़िक़्ह (शरीअत के क़ानूनों की व्याख्यात्मक समीक्षा) की परिचर्चा में ज़िम्मियों को ''दारुल इस्लाम''(शान्ति क्षेत्र) में रहने वाले मुसलमानों के समान माना गया है (अलकसानी, बिदाय अलसनाई फ़ी तरतीब अलशराई, क़ाहिरा:1327 हिजरी, जिल्द 5, पेज 281 अलज़रकशी, शरह अलसियारुल कबीर, लेखक मुहम्मद इब्नुल हसन अलशीबानी, हैदराबाद, हिन्द:1335 हिजरी, जिल्द 5, पेज 516)। हमारे युग में ''सिटीज़न'' (नागरिक) की जो शब्दावली प्रचलित है उसे उसके स्थान पर उपयोग किया जा सकता है। यह एक ज़रूरी बात कि आधुनिक युग में किसी इंसान से नैतिक रूप से पेश आना क़ानूनी रूप से समान होने का बदल नहीं हो सकता यद्यपि यह बात बार बार साबित हो चुकी है कि जहां कहीं भी भेदभाव की परम्परा चली आ रही है, नैतिक प्रतिज्ञा और अहसास के बग़ैर समाज में अधिकारियों के द्वारा क़ानूनी समानता स्थापित नहीं की जा सकती।

मानव अधिकार, विशेषत:राजनीतिक अधिकार

किसी मुस्लिम शासन में मुसमलानों और ग़ैर मुस्लिमों के बीच समान अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के सम्बंध में एक जाना पहचाना सिद्धांत यह है कि''उनके अधिकार भी वहीं हैं जो हमारे हैं, और उनकी ज़िम्मेदारियां भी वही हैं जो हमारी हैं''। मशहूर हनफ़ी फ़क़ीह अलकसानी (मृ० 587 हिजरी/1190 ई०) ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक अलबदाय में एक हदीस नक़ल की है कि ''वो अगर ज़िम्मी होने का समझौता करते हैं तो उन्हें यह बता दो कि उनके भी वही अधिकार हैं जो मुसलमानों के हैं, और ज़िम्मेजारियां भी वहीं हैं जो मुसलमानों की हैं'', लेकिन हदीस की मशहूर किताबों में ऐसी कोई हदीस नहीं मिलती। फिर भी इस हदीस का मतलब फ़िक़्ह के लिहाज़ से स्वीकार करने योग्य है। हज़रत अली का कथन है कि उन्होंने केवल अपनी सम्पत्तियों को हमारी सम्पत्तियों की तरह सुरक्षित करने के लिए ज़िम्मी बनना स्वीकार किया है (सुनन दार क़ुतनी, दिल्ली, 1310 हिजरी, जिल्द 2, पेज 350)। ऐसा ही एक और कथन ''सम्पत्तियों और अधिकारों'' में समानता पर ज़ोर देता है (अलज़रकशी, शरह अलसियारुलकबीर, जिल्द 3, पेज 250)। मशहूर फ़क़ीह अलओज़ाई ने सीरिया के अब्बासी गवर्नर को, जो कि अब्बासी वंश से सम्बंध रखते थे, लिखे अपने एक लम्बे पत्र में कुछ ज़िम्मी व्यक्तियों के दोष की वजह से व्यक्तिगत रूप से उनसे निपटने के बजाए सभी ज़िम्मियों के विरुध लिए उनके फ़ैसलों की आलोचना करते हुए लिखा था कि ''किसी मुस्लिम शासन में ग़ैर मुस्लिम ज़िम्मी ग़ुलाम नहीं होते हैं बल्कि आज़ाद होते हैं, जिनके अधिकार उनका ज़िम्मा लेने के वायदे के आधार पर सुरक्षित होते हैं'' (अबु उबैद अलक़ासिम, अलअमवाल, क़ाहिरा, 1975

में प्रकाशित, पेज 222)।

आयत 5:51,57-58 जैसी आयतें जिनमें मुसलमानों से ईसाइयों और यहूदियों को "अवलिया"न बनाए जाने को कहा गया है उसका मतलब दोस्त बनाने से नहीं है जैसा कि कुछ अनुवादों और तफ़सीरों में इस शब्दावली का अनुवाद किया गया है, बल्कि अक़ीदे और अमल के मामले में सरपरस्त (संरक्षक) बनाने से है जो उन्हें धमकी या लालच से इस्लाम या मुसलमानों के सामुहिक हित के विपरीत किसी काम पर मजबूर करें। मशहूर मुफ़स्सिर अलतिबरी (मृ० 310 हिजरी/922 ई) की तफ़सीर से तो यही ज़ाहिर होता है लेकिन अलबेज़ावी जैसे बाद के मुफ़स्सिरों ने इससे मतभेद किया है (मृ० 791 हिजरी, 1389 ई०)। अच्छे सम्बंध रखने और दोस्ती का रवैया रखने की ताकीद ऐसे सभी लोगों के लिए है जो मुसलमानों से कोई दुश्मनी न रखते हों और मुसलमानों के विरुध कोई आक्रामकता न करें, चाहे वो मुसलमान हों या न हों (9:7,60; 60:7-8), जबकि उन लोगों से ऐसे सम्बंध बनाने से बचने को कहा गया है जिन्होंने मुसलमानों से दुश्मनी की हो और उनके विरुध जंग छेड़ी हो चाहे वो मुसलमानों हों या न हों (9:13; 60:7; 49:9)। और मुसलमानों से बैर और खुली दुश्मनी रखने वालों के सम्बंध में मुसलमानों को आगे के लिए यह उम्मीद रखना चाहिए कि वो शान्ति की तरफ़ वापस आ सकते हैं और उनसे दोस्ताना सम्बंध बन सकते हैं (60:7)। अतःआयत 5:57-58 में "अवलिया" का अर्थ कुछ विशेष अहल-ए-किताब को दोस्त बनाने की मनाही से लेना उसके ऐतिहासिक और क़ानूनी कारणों तक सीमित है, जैसा कि आयत 5:57-58 से ज़ाहिर है:::जिन्होंने तुम्हारे दीन को हंसी और खेल बना रखा है " ("और जब तुम लोग नमाज़ के लिए अज़ान देते हो तो ये उसे भी हंसी और खेल बनाते हैं"। आयत 5:52 उस दुश्मनी और टकराव के माहौल की तरफ़ इशारा करती है जिसके लिए यह मनाही आई है:"जिन लोगों के दिलों में निफ़ाक़ (दोग़लेपन) का रोग है तुम उन्हें देखोगे कि उनमें दोड़ दोड़ के मिले जाते हैं कहते हैं कि हमें डर है कि कहीं हम पर ज़माने का फेर न आ जाए, तो क़रीब है कि अल्लाह विजय भेजें या अपने पास से कोई और हुक्म (उतारें) फिर ये अपने दिल की बातों को जो छुपाया करते थे खीज हो कर रह जाएंगे।" फ़िक्ह के सिद्धांतों में यह बात मालूम है कि दुनिया के मामलों में क़ानून अस्तित्व और अस्तित्व विहीनता के साथ जुड़ा होता है (देखें तफ़सीरुल मनार में इन आयतों की व्याख्या, जिल्द 6, पेज 423-432)।

अभिव्यक्ति और संगठन बनाने का अधिकार

क़ुरआन के इस सिद्धांत के हिसाब से ग़ैर मुस्लिमों के लिए अक़ीदे और उस पर अमल करने की आज़ादी को सुनिश्चित किया गया है:"दीन के मामले में कोई जबरदस्ती नहीं है"(2:256)। अहल-ए-किताब के लिए अभिव्यक्ति और संगठित होने के अधिकार सुरक्षित

किए गए हैं जिनका अक़ीदा और शिक्षाएं उनसे यह मांग करती हैं कि अच्छे कामों का आदेश दें और बुरे कामों से रोकें (3:113-114, 5:78-79)। जहां तक दूसरों का मामला है तो उनका भी यही अधिकार है जब तक उनकी गतिविधियों से अल्लाह पर ईमान और नैतिक मूल्यों पर कोई हमला न होता हो और ईमान वालों को उक्साती न हों। ग़ैर मुस्लिम व्यक्ति और वर्गों के राजनीतिक अधिकारों को भी वहां तक सुरक्षित किया गया है जहां तक कि वो समाज के नैतिक आधार को मज़बूत करते हों और नैतिक मूल्यों पर अमल करते हों।

सार्वजनिक संस्थाएं

जहां तक सार्वजनिक संस्थाओं का मामला है तो पैग़म्बर साहब ने ग़ैर मुस्लिमों से रास्ता बताने, अरबी लिखना सिखाने और सैनिक मामलों में मदद करने की सेवाएं ली हैं। मदीना पलायन के बाद मदीना और आसपास में रहने वाले ग़ैर मुस्लिमों से किए गए समझौते ''मीसाक़-ए-मदीना'' के लिहाज़ से मदीना के यहूदियों को यह ज़िम्मेदारी दी गयी थी कि वो किसी विदेशी आक्रमण की स्थिति में शहर की सुरक्षा में भाग लेंगे और मदीना की आन्तरिक व्यवस्था में भी उन्हें शामिल होने की अनुमति दी गयी थी, या इस्लामी राज्य के आधीन स्वायत्ता दी गयी थी (देखें अब्दुल मलिक इब्ने हशाम की सीरत रसूलुल्लाह, क़ाहिरा, 1336-37, जिल्द 2, पेज 119-123, अबु उबैदुल क़ासिम इब्ने सलाम, क़ाहिरा, पेज 116-117)। अलमवारिदी, मशहूर शाफ़ई फक़ीह ने लिखा है कि एक ग़ैर मुस्लिम ज़िम्मी को राज्य के बहुत से पदों पर नियुक्त किया जा सकता है और वह ख़लीफ़ा का ''वज़ीरे तनफ़ीज़'' (ऐग्ज़ेक्यूटिव मिनिस्टर) भी बन सकता है। मवारिदी ने अपनी फ़िक्ही शब्दावलियों में एक और ऊंचे पद के लिए ''वज़ीरे तफ़वीज़'' (जिसे पूर्ण अधिकार प्राप्त हों अर्थात प्रधान मंत्री) की शब्दावली भी उपयोग की है, जिसके लिए उन्होंने वो सभी योग्यताएं प्रस्तावित की हैं जो ख़ुद ख़लीफ़ा के पद के लिए ज़रूरी हैं, इज्तिहाद की योग्यता सहित जो कि किसी ग़ैर मुस्लिम में नहीं हो सकती और किसी ग़ैर मुस्लिम से यह अपेक्षित भी नहीं हैं क्योंकि वह इस्लाम में विश्वास ही नहीं रखता है, और एक ग़ैर मुस्लिम से उसकी योग्यता का तक़ाज़ा करना ख़ुद उसके अपने अधिकारों का उल्लंघन होगा।

अभी हाल हाल तक विभिन्न देशों में संस्थाओं के (सामूहिक) शासन के बजाए व्यक्तियों का शासन होता था। अब आधुनिक युग में जिस तरह लोगों को शासक व्यक्तियों के बजाए शासक संस्थाओं का साधन प्राप्त है, तो जिस तरह ''सेप्रेशन अ०फ़ प०वर'' और ''चेक्स एण्ड बैलेंस'' जैसे सिद्धांत आज पाए जाते हैं उसी तरह आधुनिक इस्लामी फ़िक़्ह को मुसलमानों और ग़ैर मुसलमानों के मामले में इंसानी अधिकारों और समानता के सिद्धांतों को निरूपित करने से बचना नहीं चाहिए। कुछ विशेष पदों के लिए जैसे मुसलमानों के परिवारिक और ध

ार्मिक मामलों का फ़ैसला करने वाले जज का पद है जिसका मुसलमान होना ज़रूरी है, कुछ अपवाद परिस्थितियां अपनाई जा सकती हैं। इस तरह के अपवादिक प्रावधान क़ानून में किए जा सकते हैं, या परम्परा और रीति के ऊपर उन्हें छोड़ा जा सकता है जिन पर स्वभाविक रूप से न्याय और सदाचारिता के क़ानूनी व नैतिक सिद्धांत लागू होंगे।

सिविल, कमर्शियल, लेबर, टेक्सेशन, एडमिनिस्ट्रेशन और इसी तरह के संसारिक मामले जिनका अपना एक मानवीय रूप है, और न्याय का नैतिक आधार, ईमानदारी, और सभ्य होने की शर्तें दरकार हैं जिन पर तमाम इंसान सहमत हैं, विभिन्न धर्मों से जुड़े जज इन मामलों से सम्बंधित पदों पर नियुक्त हो सकते हैं, यदि वो इसकी योग्यता रखते हों और देश के क़ानून का ज्ञान और क़ानून के सम्मान की भावना रखते हों। यहां तक कि ताज़ीरी क़ानूनों के मैदान में भी विभिन्न धर्मों के जज इस नियम का अनुसरण कर सकते हैं जो अपराध, उसकी सज़ा, गवाही और तरीक़े के स्पष्टीकरण पर आधारित हो। इस तरह के मामलों में ग़ैर मुस्लिम पदाधि ाकारी शरीअत के क़ानून को देश के क़ानून के रूप में स्वीकार करेंगे, जबकि मुसलमानों का तो यह ईमान भी है कि इन क़ानूनों का स्रोत अल्लाह की हिदायत है। इस तरह के संसारिक कर्मों में, आज के ज़माने के किसी मुस्लिम राज्य को यह देखना चाहिए कि शरीअत के क़ानूनों के सामान्य लक्ष्य और उद्देश्य क्या हैं, लेकिन इसके लिए विश्वसनीय और प्रमाणित आलिमों की इज्तिहादी राय के अनुसार ही अमल किया जाएगा जिसमें पूरे समाज के सामान्य हितों को सामने रखा गया हो। क़ानून बनाने और क़ानूनों को लागू करने का काम मुसलमान और ग़ैर मुसलमान दोनों के द्वारा किया जा सकता है क्योंकि वो अनिवार्य रूप से न्याय, जनहित और क०मन सेंस के सिद्धांतों पर ही आधारित हैं। फ़ौज में मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों ने इस्लाम के शुरु ज़माने से ही मिल कर काम किया है, जैसा कि फ़िक़्ही परिचर्चाओं से मालूम होता है (जैसे तिबरी की इख़्तिलाफ़ुल फ़ुक़हा(दि बुक अ०फ़ इज्तेहाद एण्ड जिज़या एण्ड अहकामुल हारिबीन, एड़ि जोज़ेफ़ स्क०ट, लेड़ीनः1923, पेज 21(अलमवारिदी, अलअहकाम, पेज 60-140) मुस्लिम राज्य जिन उद्देश्यों के लिए स्थापित होता है उसके प्रति मुसलमान अपने धार्मिक कर्तव्य को महसूस करें और दुशमनों से उसकी सुरक्षा करने के लिए तैयार रहें, जबकि दूसरे लोग अपने देस के प्रति अपने भौतिक और भावनात्मक सम्बंधों से प्रेरित होंगे और देश की रक्षा की भावना अपने अन्दर पैदा करेंगे, लेकिन दोनों को ही देश, देशवासियों और राज्य के प्रति अपनी समान ज़िम्मेदारियों में एक दूसरे का साथ देना होगा, भले ही दोनों की नैतिक और धारणात्मक आधार अलग अलग हो सकते हैं। किसी भी मिलिट्री रेंक के लिए समान अधिकार और ज़िम्मेदारियां आम सिद्धांतों के अनुसार नैतिक और भौतिक लिहाज़ से तय की जाएंगी।

अलमावरिदी ने दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं का भी ज़िक्र किया है जिनके लिए ग़ैर-मुस्लिम नागरिकों (ज़िम्मियों) से काम लिया जा सकता है जैसे मिलिट्री फ़ोर्सेज़, ज़कात वसूली जबकि

वह निर्धारित हो, मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों से टैक्स वग़ैरह की वसूली और विभिन्न विभागों के कर्मचारियों की देखरेख की संस्था 'ह्यूमन रिसोर्स डिप०र्टमेण्ट' आदि (अलअहकामुल सुलतानिया, क़ाहिरा, 1973, पेज 27,60,116, 130, 152,209)। अगर इस तरह के अनेक और विभिन्न पदों के लिए ग़ैर मुस्लिमों को उस समय (मवारिदी के युग में) पात्र माना गया था, तो यह बात ज़ाहिर हो जाती है कि उन्हें उस बीते हुए युग में भी मुस्लिम राज्य व शासन के मामलों से अलग नहीं रखा गया था, और उस युग में अगर कुछ ग़लत हुआ है तो वह कुछ मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक कारणों से था ना कि क़ुरआन व सुन्नत के सिद्धांतों के हिसाब से था, जिनमें मुसलमानों को हमेशा यही शिक्षा दी गयी कि दूसरों के साथ न्याय और उपकार का मामला किया करें। व्यवहारिक रूप से बात की जाए तो ग़ैर मुस्लिम व्यक्तियों को मुस्लिम शासनों ने इतिहास के हर युग में पदों और नौकरियों पर नियुक्त किया है। हज़रत उमर ने कुछ ग़ैर मुस्लिमों को क्लर्क और अकाउण्टेंट के रूप में नियुक्त किया था। उमवी ख़लीफ़ा मुआविया का एक सहायक ईसाई था, और बाद में सुलैमान अब्दुल मलिक ने फ़िलिस्तीन के रमल्ला में निर्माण कार्यों की निगरानी के लिए एक ईसाई व्यक्ति को नियुक्त किया था। अब्बासी शासन में और उन्दुलुस के शासन में टैक्स की वसूली के लिए, मेयर पद के लिए और मंत्री पदों के लिए भी कुछ ग़ैर मुस्लिम पदाधिकारी थे (अलबिलाज़री, फ़ुतूहुल बलदान, क़ाहिरा 1959, पेज 247, 149(और देखें एएस ट्रेटन की दि केलिफ़ एण्ड देअर न०न मुस्लिम सबजेक्ट्स, लन्दनः1970(उन्दुलुस के लिए देखें लुतफ़ी अब्दुलबारी की अलइस्लाम फ़िल हस्पानिया, क़ाहिराः1969, पेज 33-34)। स्विस इतिहासकार नवीस आदम मेस ने आश्चर्यजनक रूप से मुस्लिम शासनों में ग़ैर मुस्लिम अधिकारियों और लोक प्रशासन के कर्मियों की एक बड़ी संख्या का ज़िक्र किया है (अलहज़रुल इस्लामिया फ़िल क़ुरआन, अलरबीअ, अलहिजरी, अरबी अनुवाद मुहम्मद अब्दुल हादी अबुरदा, बैरूतः1967, जिल्द 1, पेज 105-197(उन्दुलुस के लिए देखें लुतफ़ी अब्दुलबारी की किताब, बैरूत, पेज 33-34)।

गवाहों के रूप में भी क़ुरआन ने मुसलमान और ग़ैर मुस्लिम के बीच बराबरी का इशारा दिया हैः" वसीयत के समय तुम (मुसलमानों) में से दो विश्वसनीय मर्द गवाह हों या अगर (मुसलमान न मिलें और) तुम सफ़र कर रहे हो और (उस समय) तुम पर मौत की मुसीबत आ जाए तो किसी दूसरे धर्म के दो (व्यक्तियों को) गवाह (कर लो) "(5:106), यह सिद्धांत क़ुरआन की किसी और आयत से टकराता नहीं है, इसलिए इसे एक आम सिद्धांत के रूप में लिया जा सकता है, जिससे से ऐसे ख़ास मामलों को अलग रखा जाएगा जो मज़हब से सम्बंधित हों। आज के एक मशहूर फ़क़ीह मुहम्मद सलाम मज़कूर ने इस सच्चाई को बिल्कुल ठीक रूप से उजागर किया है कि कुछ क़ुरआनी आयतों से सामान्यता गवाहों के लिए, उनके दीन व अक़ीदे का लिहाज़ किए बग़ैर, अपेक्षित गुणों का इशारा मिलता है, जैसे आयत 2 282 और 4:6 जो

आम लेनदेन से सम्बंधित हैं, जबकि आयत 2:65 गवाह के मुसलमान होने की ताकीद (ज़ोर) के साथ है क्योंकि यह आयत तलाक़ के सम्बंध में है जो कि मुसलमानों का एक विशेष परिवारिक मामला है और दीन से जुड़ा हुआ है। एक और फ़क़ीह अब्दुल करीम ज़ैदान इस व्यापकता (या मेरे विचार में सामान्यता) को मुसलमानों और ग़ैर मुस्लिमों के बीच ऐसे सिविल और कमर्शियल ट्रांज़ेक्शन की इजाज़त का एक तार्किक नतीजा देखते हैं जिसमें मुसलमानों का होना शर्त नहीं है, गवाही के लिए इजाज़त की ज़रूरत सम्भवतःऐसे मामले में पड़े जिसमें केवल ग़ैर मुसलमान ही मौजूद हों। हालांकि मशहूर फ़क़ीह इब्नुल क़य्यिम ने इस व्यापकता का सैद्धांतिक रूप से समर्थन नहीं किया है फिर भी उन्होंने अपनी किताब अलतुरूक़ुल हाकमिया में आयत 5:106 पर अपने तर्क देते हुए जो कुछ लिखा है वह एक आम सिद्धांत का आधार बनता है जब तक क़ुरआन (या सुन्नत) में इस का रद न हो। वो लिखते हैं कि गवाही एक कलिमा है जिससे सच्चाई की पहचान होती है और सत्य सामने आता है, और यह कि ग़ैर मुस्लिम की गवाही में सच्चाई के प्रतीक मिल सकते हैं और इसलिए उसे क़ुबूल करना चाहिए और उसे व्यवहार में लाना चाहिए (अब्दुल करीम ज़ैदान, अहकामुल ज़िम्मिय्यीन, बैरूत, पेज 468-69)।

नागरिक अधिकार, सामाजिक व आर्थिक अधिकार और राज्य की नौकरियां

मुस्लिम राज्य में ग़ैर मुस्लिमों को पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त होते हैं, और अधिकारों व ज़िम्मेदारियों में वो मुसलमानों के बराबर ही होते हैं, सिवाए इसके कि उन्हें सुअर का मास खाने और शराब पीने की विशेष रूप से और सीमित अनुमति होती है जो कि मुसलमानों के मना है। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने अपनी ढाल एक यहूदी के पास रहन रखी थी। मुसलमान और ग़ैर मुस्लिम केवल उन व्यापारिक गतिविधियों में ही एक दूसरे से साझेदारी कर सकते हैं जिनकी शरीअत में इजाज़त है, जबकि ग़ैर मुस्लिम सुअर के मास और शराब जैसी चीज़ों का व्यापार में स्वयं आपस में ही एक दूसरे से साझेदारी करके कर सकते हैं क्यूंकि उनके लिए इसकी अनुमति है जबकि मुसलमानों के लिए यह मना है। इस्लामी शरीअत और मुस्लिम अदालतें इन मामलों में फ़ैसला देती हैं, लेकिन ग़ैर मुस्लिमों के धर्म से सम्बंधित मामलों में फ़ैसला उनके अपने समुदाय का जज ही कर सकता है जिसमें इस पद की ज़रूरी योग्यता पाई जाती हो। इमाम हनीफ़ा ने जो कि हनफ़ी फ़िक़्ह के संस्थापक हैं ग़ैर मुस्लिम के विशेष हालात का लिहाज़ यहां तक रखा है कि किसी मस्जिद के निर्माण कार्य के लिए या हज के सफ़र के लिए अगर ग़ैर मुस्लिम ने किसी के लिए कोई वसीयत की हो या अनुदान दिया हो तो उसे

अमल में नहीं लाया जाएगा ताकि उसकी धार्मिक आज़ादी बनी रहे क्योंकि उसके धर्म में नमाज़ और हज को चौरिटी का दर्जा नहीं मिला हुआ है जबकि ग़ैर मुस्लिम की वसीयत या अनुदान चर्च के कामों के लिए या उसके धर्म में माने गए किसी काम के लिए फ़क़ीहों के नज़दीक सही है। बहरहाल, इस्लाम में और अधिकतर धर्मों में जो काम मना हैं और अनुचित हैं उनके लिए वसीयत या अनुदान को व्यवहार में नहीं बरता जाएगा। जैसे चक्ला चलाना इसका एक उदाहरण है (ज़ैदान, अहकाम, पेज 395-409,443-452)।

सरकारी सेवाएं जैसे सड़कों का निर्माण, सिंचाई, आर्थिक और सामाजिक विकास योजनाएं, जन स्वास्थ्य, शिक्षा, जनसुरक्षा और अन्य ज़रूरी सेवाएं मुसलमान और ग़ैर मुस्लिम सभी अंजाम दे सकते हैं। पैग़म्बर सल्ल० की एक हदीस में है कि पानी, घास और आग (जैसे आम प्राकृतिक संसाधन) में सब शरीक हैं। मुसलमान व्यक्तियों या शासकों की ओर से ग़ैर मुस्लिमों को नुक़सान पहुंचाने वाली किसी हरकत से ग़ैर मुस्लिमों को इस्लामी शरीअत में, अदालत में और शासन में सुरक्षा प्रदान की गयी है (अबु यूसुफ़, अलखरिज, क़ाहिरा, 1397 हिजरी, पेज 107)। पैग़म्बर साहब ने एक ग़रीब यहूदी परिवार के लिए स्थाई रूप से वज़ीफ़ा जारी किया था (अबु उबैद अलक़ासिम इब्ने सलाम, अलअमवाल, पेज 372, 728-29)। इमाम अबु हनीफ़ा के साथी और हनफ़ी फ़िक़्ह के संकलन में हिस्सा लेने वाले फ़क़ीह मुहम्मदुल हसन ने बयान किया है कि मदीना निवास के दौरान पैग़म्बर सल्ल० ने मक्का में सूखा पड़ने पर वहां के ग़रीबों के लिए सहायता भेजी थी, जब कि मक्का वाले पैग़म्बर साहब के विरुध लड़ाई छेड़े हुए थे (जिल्द 1, पेज 144)। दूसरे ख़लीफ़ हज़रत उमर ने सीरिया के सफ़र में कुछ ईसाइयों को कोढ़ के रोग से ग्रस्त देखा था तो उनके लिए फिर स्थाई रूप से वज़ीफ़ा जारी कर दिया था (अलबिलाज़री, फ़ुतूह, पेज 135), और यही मामला एक बूढ़े यहूदी के हित में भी किया था (अबु यूसफ़ु, अलख़िराज, पेज 136)। हज़रत ख़ालिद बिन वलीद ने जब हीरा पर विजय प्राप्त की और वहां के लोगों से शान्ति समझौता किया था, तो इसकी सूचना उन्होंने ख़लीफ़ा हज़रत उमर को भेजी और हज़रत उमर ने उन्हें ताकीद की कि जो आदमी काम करने में अक्षम हो जाए, या बहुत बीमारी की स्थिति में हो, या पहले अमीर था और फिर ग़रीब हो गया हो और लोगों की दान ख़ैरात पर निर्भर हो उसे टैक्स की अदायगी से मआफ़ रखा जाता है, और उसकी व उसके पालन में रहने वाले लोगों की मदद मुसलमानों के जनकोष से की जाएगी जब तक वह "बिलाद-ए-इस्लाम" (इस्लाम के शासन क्षेत्र) में रहें (अबु युसूफ़, अलख़िराज, पेज 156)।

जिस तरह ज़रूरत पड़ने पर ग़ैर मुस्लिमों को सरकार की तरफ़ से मदद दी जाती थी, उसी तरह वो टैक्स के द्वारा राजकोष के लिए संसाधन जुटाने में भी हिस्सा लेते थे। इसके अलावा हज़रत उमर ने बनी तग़लीब के ईसाइयों से सामाजिक कल्याण की रक़म (ज़कात) वसूलने का भी काम किया जो एक ऐतिहासिक और फ़िक़्ही नज़ीर (मिसाल) है (अलबिलाज़री, उपोक्त

किताब, पेज 142,185-186; अबु यूसुफ़, अलख़िराज, पेज 129-130; अलमवारिदी, अलअहकाम, पेज 144; इब्नुल क़य्यिम, अहकाम अहलुज़िज़म्मा, बैरूत 1981: तआरुफ़ मुरत्तिब सुब्हुस स्वॉलेह, जिल्द 1, पेज 9-10)।

दूसरों के साथ मामला करने के मामले में क़ुरआन ने मुस्लिम समाज और राज्य को यह निर्देश दिया है कि अद्ल व अहसान (इंसाफ़ व उपकार) का रवैया अपनाएं (60:8)। मशहूर मालिकी फ़क़ीह शहाबुद्दीन अहमद अलक़राफ़ी ने इस अपेक्षित अहसान व मुरव्वत के अमल के लिए मिसालें दी हैः"कमज़ोरों, ग़रीबों और ज़रूरतमंदों का ख़्याल रखना, उनके साथ अच्छे ढंग से बात करना, उनकी विभिन्न आवश्यकताओं में उन्हें गम्भीरतापूर्वक सलाह देना, उनकी ग़ैर मौजूदगी में उनके सम्मान की रक्षा करना, उनकी सम्पत्तियों, परिवारों, सम्मान और सभी अधिकारों व हितों की रक्षा करना, उनके साथ कोई अन्याय हो तो उनके समर्थन में खड़ा होना, अपने सभी अधिकार प्राप्त करने में उनकी मदद करना। ये निश्चित रूप से अद्ल व अहसान व मुरव्वत की मिसालें हैं। ज़िम्मियों के साथ न्याय और उनके प्रति मुसलमानों की ज़िम्मेदारियों की पूर्ति के संदर्भ में अलक़िराफ़ी ने शब्द ज़िम्मा के अर्थ को स्पष्ट किया है कि मुस्लिम राज्य के ग़ैर मुस्लिम नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा का ज़िम्मा मुसलमान और इस्लामी शासन लेता है, इसलिए किसी मुसलमान की ओर से किसी ज़िम्मी पर कोई नैतिक या शरीरिक हमला इस वायदे व ज़िम्मेदारी का उल्लंघन होगा जो अल्लाह और अल्लाह के पैग़म्बर ने ज़िम्मियों से किया है। हद यह है कि कोई तकलीफ़ देने वाला शब्द भी किसी ज़िम्मी की अनुपस्थिति में या उपस्थिति में उसके ऊपर बोला जाए। अलक़िराफ़ी और इब्ने तीमिया के अनुसार यदि किसी ज़िम्मी पर कोई दुशमन हमला करे तो मुसलमानों को अल्लाह व पैग़म्बर और इस्लाम धर्म की तरफ़ से ली गयी इस ज़िम्मेदारी के वचन को पूरा करना होगा, अगर उनमें से किसी को पकड़ लिया जाए तो मुसमलानों की यह ज़िम्मेदारी होगी कि जिस तरह भी बस चले उसको आज़ाद कराकर वापस लाएं (अलक़िराफ़ी, अलफ़ुरूक़, बैरूत, जिल्द 3, पेज 14-35; और देखें इब्ने तीमिया की अलरिसाला अलक़बरसिया, रियाज़, पेज 26,31)।

शाफ़ई और हनफ़ी फ़िक़्ह में यह आम मत है कि कोई ग़ैर मुस्लिम यानि ज़िम्मी अगर कोई अपराध करता है तो शरीअत के अनुसार उस पर व्यक्तिगत रूप से मुक़दमा चलाया जाएगा, लेकिन ऐसे अपराध के लिए ज़िम्मी की क़ानूनी हैसियत किसी भी तरह प्रभावित नहीं होगी चाहे वह किसी दुशमन के लिए जासूसी का ही दोषी क्यों न पाया जाए (तिबरी, अलइख़्तिलाफ़, पेज 24-25,59; अलमवारिदी, अलअहकाम, पेज 143,146)। यह ठीक उसी तरह है जिस तरह कोई मुसलमान किसी अपराध का दोषी पाया जाए तो शरीअत के हिसाब से उसकी आम क़ानूनी हैसियत समाप्त नहीं हो जाती, और आधुनिक सेकुलर क़ानूनों में कोई दोषी अपने इंसानी अधिकारों से वंचित नहीं हो जाता, ख़ास तौर से राजनीतिक और सिविल मामलों में।

यही पैनल ल० और प्रोसीजर मुस्लिम शासन में सभी नागरिकों पर लागू होगा। इंसानी जान का सम्मान और मृतक को मुआवज़ा राशि, या दोषी को कोई शरीरिक या नैतिक सज़ा का प्रावधान उसके धर्म की वजह से हनफ़ी फ़िक्ह के हिसाब से तो सामान्यतःप्रभावित नहीं होगा जबकि दूसरी फ़िक्हों के अनुसार कुछ विशेष मामलों में न होगा (देखें जैदान, अहकाम, पेज 208-230)।

पूर्वकाल में किसी व्यक्ति की नागरिक स्थिति को तय करने में और व्यक्ति व राज्य के बीच सम्बंधों में उसका धर्म और रहन सहन आधार बनता था। इस बात को सामने रख कर यह समझा जा सकता है कि अलग अलग धर्मों के लोगों के मामले में फ़िक्ह के अन्दर कहीं कहीं अन्तर क्यों नज़र आता है। एक बात तो यह है कि यह कुछ विशेष और सीमित मामलों में ही था, और दूसरी बात यह है कि इस अन्तर व भेद के लिए कोई निर्धारित आसमानी सुबूत नहीं है, वरना सभी फ़क़ीहों के यहां इस मामले पर सहमति होती। चूंकि यह वह्यि के शब्दों को उसके सामूहिक परिवेश में समझने की एक इंसानी कोशिश का मामला है, और एक ख़ास सामाजिक व सांस्कृतिक माहोल में है इस वजह से यह फ़िक्ही मतभेद हुआ है, और इन विचारों में से जो विचार इस्लाम में न्याय के सिद्धांतों से सबसे क़रीब है उन तक भी कुछ फ़क़ीह पहुंचे हैं। अलबत्ता किसी मतन (क़ुरआन के शब्दों) को समझने का हमारा अपना एक तरीक़ा हो सकता है और हम एक अलग सामाजिक व राजनीतिक सास्कृतिक माहौल के प्रभाव में हैं तो हमारे चिन्तन का नतीजा भी कुछ अलग हो सकता है। क़ुरआन व सुन्नत की व्याख्याओं को समझने में और जिन मामलों में कोई स्पष्ट आदेश (सरीह नस) मौजद नहीं है उनके लिए नियम बनाने में इज्तिहाद की गुंजाइश इस्लामी फ़िक्ह को लगातार तरक़्क़ी देने का एक निरन्तर साध ान रही है।

चोरी के अपराध के लिए क़ुरआन की निर्धारित सज़ा (5:38) और विवाहित व्यक्तियों के द्वारा ज़िना के अपराध की सज़ा जो सुन्नत से साबित है उस पर हमेशा से आपत्ति की जाती रही है कि यह बहुत कड़ी और भयानक है। चूंकि इस अपराध के सुबूत के लिए और इसकी सज़ा जो सुन्नत से साबित है और जिसकी फ़िक्ही व्याख्याएं हैं उसके लागू होने के लिए मुकम्मल और शक व आशंका से परे सुबूत का उपलब्ध होना आम हालात में मुश्किल और कभी बिल्कुल असम्भव है, इसलिए इसके साबित होने का एक ही तरीक़ा है कि दोषी व्यक्ति बग़ैर किसी शरीरिक, भौतिक या मानसिक दबाव के स्वयं इसका इक़रार करें। सुन्नत के हिसाब से इस तरह के अपराध स्वीकृति का उत्साहवर्धन नहीं किया गया, क्योंकि किसी अपराध के प्रायिश्चित के लिए सबसे बहतरीन तरीक़ा सच्चे मन से तौबा करना और आगे इस अपराध से बाज़ रहने का दृढ़ निश्चय करना है, ना कि सार्वजनिक रूप से यह अपराध स्वीकार करके स्वयं को अपमानित करना और उसकी सज़ा भुगतना है (देखें इब्नुल क़य्यिम की इल्मुल

मुवक़्क़ईन, क़ाहिरा, जिल्द 4, पेज 306-308)। अतःइस तरह की सज़ा को लागू करना आम हालात में कठिन और ख़ास हालात में असम्भव है, चाहे आरोपी मुसलमान हो या ग़ैर मुस्लिम। यदि क़ुरआन "अल्लाह और उसके रसूल से जंग करने और धरती पर फ़साद मचाने" (5:33) जैसे गम्भीर अपराध के लिए, जो कि बड़े उत्पात या निराज की स्थिति तक पहुंच सकता है, कई तरह की सज़ाएं प्रस्तावित करता है, सज़ाए मौत से लेकर देस निकाला देने तक जिसे कुछ फक़ीहों ने जेल में रखने के समान माना है, तो क्या इससे यह इशारा नहीं मिलता कि बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए इन सज़ाओं पर भी फिर से ग़ौर करने की यह एक आसमानी सीख है।

आज की मुस्लिम हुकूमत में पेनल ला के लिए असिल मैदान 'ताज़ीरी क़ानून' (जो शरीअत की रोशनी में बनाए जाते हैं) होंगे जिनमें अपराध और उसकी सज़ा विधायिका (या) अदालत के फ़ैसले से बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार, तय और निर्धारित और बदले जा सकते हैं। किसी ज़माने में शासक एक सक्रिय मेकानिज़्म पर अमल करते थे और "सियासा" की शब्दावली के अन्तर्गत फ़क़ीहों से सलाह लिया करते थे, जिसका अर्थ था लोक व्यवस्था की बदलती हुई ज़रूरतों के अनुसार राज्य की आन्तरिक नीति को लगातार बनाए रखना, जिसके लिए शरीअत के सामान्य लक्ष्यों व उद्देश्यों से सीख ली जाती थी (इब्नुल क़य्यिम, इल्म, जिल्द 5, पेज 30-313)। अलबत्ता, यहां यह बात नक़ल करना ज़रूरी है कि मालिकी फ़क़ीहों ने यह समझा है कि ज़िना की जो सज़ा सुन्नत से साबित है वह ग़ैरे मुस्लिमों पर लागू नहीं होगी शायद इस वजह से कि मामला धार्मिक है। मालकियों का नज़रिया यह है कि जिस व्यक्ति पर ज़िना का दोष सि) हो जाए उसे उसके समुदाय के हवाले किया जाएगा ताकि वह अपनी धार्मिक शिक्षाओं के अनुसार उसे सज़ा दें। जबकि अबु हनीफ़ा का विचार यह है, जिसका समर्थन दूसरों ने भी किया है कि उसे कोड़े मारने की सज़ा दी जाएगी (देखें इब्ने रुश्द, हिदायतुल मुजतहिद, बैरूत, जिल्द 2, पेज 326, अलशोकानी, नीलुल औतार, बैरूतः1973, जिल्द 7, पेज 257-258, ज़ैदान, अहकाम, पेज 251-252)। ऐसा नहीं लगता कि पैनल ल० को पब्लिक ल० और राज्य के अधिकार व संप्रभुता से सम्बंधित समझने की धारणा मुस्लिम फ़क़ीहों ने अपनाई हो, और इन अपराधों से निपटने के लिए आधार धार्मिक चरित्र से मिले हों।

लिबास, सवारी और मकानों आदि से सम्बंधित बयान

हज़रत उमर के नाम से एक लिखित अध्यादेश मौजूद है जिसमें ज़िम्मियों के सम्बंध में कुछ ख़ास आदेश दिए गए हैं जो उनके लिबास, सवारी और मकानों से सम्बंधित हैं और जिनका उद्देश्य उन्हें उन पहलुओं से मुसलमानों से अलग पहचान देना है। इस तरह के आदेशों के लिए क़ुरआन व सुन्नत से कोई आधार उपलब्ध नहीं किया जा सकता है, इसके विपरीत क़ुरआन

व सुन्नत में न्याय और उपकार की जो शिक्षाएं हैं वो इसके बिल्कुल उलट हैं, और इब्नुल क़य्यिम ने इनकी प्रासंगिकता एक विशेष युग में मुसलमानों के हितों ("अल मसिलहा") के आधार पर बताई है। अपनी किताब अहकाम अहलुल ज़िम्मा में इब्नुल क़य्यिम अपने ज़माने (751 हिजरी/1350 ई) में धार्मिक नफ़रत व प्रतिशोध के माहौल से बहुत अधिक प्रभावित लगते हैं, जो कि सलीबियों के लगातार हमलों और कुछ ज़िम्मियों की तरफ़ से उनका साथ दिए जाने का नतीजा है। इब्नुल क़य्यिम जैसे एक विश्वसनीय स्कॉलर ने जब इस अजीब अध्यादेश की प्रासंगिकता पर बात की है तो यह इस आदेश की प्रमाणिकता का एक आधार बनती है, लेकिन वास्तव में यह चीज़ हमें लेखक की मनोवृत्ति और सोच को समझने में मदद देती है जबकि स्वयं अध्यादेश के प्रमाणित होने का समर्थन इससे किसी भी तरह नहीं होता। लेखक का मानना यह था कि विभिन्न युगों और विभिन्न स्थानों पर मुस्लिम शासक को यह अधिकार प्राप्त है कि स्थिति के अनुसार वह कोई क़ानून बना सकता है।

ख़लीफ़ा और उनकी ग़ैर मुस्लिम प्रजा (The Caliphs and Their non Muslim subjects) नामी अपनी किताब में टेट्रोन ने इस अध्यादेश की विश्वसनीयत पर सवाल उठाया है और इस्लाम के बिल्कुल प्रारम्भिक युग से इस अध्यादेश के जुड़े होने पर शक व्यक्त किया है और लिखा है कि अलबिलाज़री, अलतिबरी, याक़ूबी या इब्नुल असीर जैसे प्राचीन इतिहासकारों ने ऐसी कोई रिवायत बयान नहीं की है। इन इतिहासकारों ने सीरिया व इराक़ के शहरों की जनता के साथ समझौतों के बारे में जो संक्षिप्त बातें बयान की हैं वो तो उदारता को प्रदर्शित करती हैं, इसके विपरीत जोकि हम इस तथाकथित दस्तावेज में पाते हैं। सुब्हुस स्व०लेह ने रिवायतों की छानबीन और प्रमाण का जो तरीक़ा अपनाया है उसके लिहाज़ से यह चर्चा की है कि इस अध्यादेश से सम्बंधित जो तरह तरह की रिवायतें हैं उनके लेखन में उपयुक्त शैली और सटीकपन का अभाव है और इसमें विरोधाभासी अन्तर दिखाई देते हैं। इस कथित दस्तावेज का ज़िक्र दूसरी सदी हिजरी के अन्तिम समय से पहले कहीं नहीं मिलता और यह बाद के युग की स्थितियों से ज़्यादा अनुकूल लगता है। मुस्लिम राज्य के विकास का अध्यन करने वाले मशहूर और प्रतिष्ठित इतिहास कार मुहम्मद हमीदुल्लाह ने लिबास से सम्बंधित ऐसे हुक्मों और क़ानूनों को समय की सामाजिक व राजनीतिक स्थितियों के मामले ठहराया है ना कि क़ुरान व सुन्नत पर आधारित शरीअत का हिस्सा (सुब्हुस स्वॉलेह, इन्ट्रोडक्शन टु इब्नुल क़य्यिम, अहकाम अहलुल ज़िम्मा, जिल्द 1, पेज 13,15-16, 29-35, 41-46, 71-72, मुहम्मद हमीदुल्लाह अलहैदराबादी, इन्ट्रोडक्शन टु इब्नुलक़य्यिम, अहकाम अहलुल जिम्मा, पेज 94)

जिज़्या वसूली

قَاتِلُوا الَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَلَا بِالْيَوْمِ الْآخِرِ وَلَا يُحَرِّمُونَ مَا حَرَّمَ اللَّهُ وَرَسُولُهُ وَلَا يَدِينُونَ دِينَ الْحَقِّ مِنَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ حَتَّىٰ يُعْطُوا الْجِزْيَةَ عَن يَدٍ وَهُمْ صَاغِرُونَ ﴿٢٩﴾

अहले किताब, जो ना अल्लाह पर ईमान रखते हैं और ना क़यामत पर, और ना उन चीज़ों को हराम समझते हैं जो अल्लाह ने और उसके रसूल ने हराम की हैं और ना सच्चे दीन को क़ुबूल करते हैं, यहां तक लड़ो के वो मातहत होकर और रईय्यत जिज़िया देना मंज़ूर करें। (9:29)

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ ﴿١٩٠﴾

और तुम अल्लाह के रास्ते में उनसे लड़ो जो तुम से लड़ते हैं, मगर .ज्यादती ना करना, बिलाशुबह अल्लाह .ज्यादती करने वालों को महबूब नहीं रखता। (2:190)

जिज़्या का ज़िक्र क़ुरआन में केवल एक जगह (9:29) में आया है जो कि पैग़म्बर सल्ल० पर उतरी आख़री लम्बी सूरत है (128 आयतों वाली), और इसके बाद एक बहुत ही छोटी सी सूरत "अलनस्र" (110) उतरी। सूरत "तौबा" नवीं हिजरी में तबूक की लड़ाई के आस पास उतरी थी यानि पैग़म्बर साहब की मृत्यू (11 हिजरी) से दो साल पहले।

आयत 9:29 को क़ुरआन के सामूहिक परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। किसी के विरुध लड़ाई अकारण नहीं छेड़ी जा सकती, बल्कि यह दूसरों के आक्रामक हमलों के जवाब में ही ज़रूरी हो जाती है ताकि ईमान वालों और उनके अधिकारों की सुरक्षा हो और अक़ीदे की आज़ादी बनी रहे (222:39-40(2:19-194(4:75(8:61-62)। इसके अलावा यह कि जो लोग मुसलमानों के साथ शान्तिपूर्ण ढंग से रह रहे हों या मुसलमानों के प्रति सौहार्द का रवैया रखते हों तो केवल इस वजह से कि उनका धर्म और आस्था अलग है उनके विरुध लड़ाई नहीं छेड़ी जा सकती, बल्कि जो लोग मुसमलानों के साथ शान्ति का व्यवहार रखते हों उनके साथ न्याय और सौहार्द का मामला किया जाएगा, और लड़ाई केवल आक्रामकता का मुक़ाबला करने के लिए ही जायज़ है (60:8-9)। दूसरों पर इस बात के लिए किसी भी तरह से कोई दबाव नहीं बनाया जा सकता कि वो जो आस्था रखते हैं उसे छोड़ कर इस्लाम स्वीकार कर लें, क्योंकि दीन के मामले में किसी ज़ोर ज़बरदस्ती की अनुमति नहीं है (2:256(10:199(11:28(50:45(88:21-22)। अल्लाह ने अपने पैग़म्बरों को अपना पैग़ाम बन्दों तक पहुंचाने के लिए भेजा है ना कि उसे थोपने और ज़बरदस्ती मनवाने के लिए, और इंसानों की आस्था

व कर्म का फ़ैसला केवल अल्लाह ही करेंगे जो सभी इंसानों की सभी स्थितियों से बाख़बर है और सब के साथ मामला उनकी क्षमता व योग्यता के अनुसार ही करेंगे (3:20; 5:92,99; 13:40; 14:52; 16:35,82; 24:54; 29:18; 36:17; 42:48; 64:12)।

किसी आयत की ''तनसीख़'' (केन्सिल) होने का दावा तब तक नहीं किया जा सकता जब तक उसके विपरीत किसी दूसरी आयत के साथ उसके समायोजन का कोई रास्ता और गुंजाइश ही न हो, या उस आयत को किसी विशेष घटना या स्थिति से सम्बंधित न माना जाए कि जिससे एक साधारण नियम पर कोई चोट न लगती हो। क़ुरआन की व्याख्या व तफ़सीर से यह बात साबित है और फ़िक़्ह में भी इस बात को माना गया है कि पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के ज़माने में अरब द्वीप के अरब वासियों के लिए कुछ ख़ास आदेश हैं जिन्हें व्यापक रूप नहीं दिया जा सकता। अरब में निवास करने वाले अहल-ए-किताब को सम्भवतः राज्य की सत्ता को स्वीकार करने के प्रतीक के रूप में जिज़्या देने पर राज़ी होना था। इस मामले में जो आदेश उन पर लागू किया गया जो कि आयत 9:29 से ज़ाहिर है वह आस्था की वजह से या आस्था बदलने के लिए नहीं लागू किया गया था बल्कि ख़िराज (लगान) देने का आदेश था, और यह केवल एक राजनीतिक ज़रूरत थी, और यह बलपूर्वक आस्था बदलने की वजह से बिल्कुल नहीं थी। यह आयत ख़िराज या महसूल देने का आदेश देती है, धर्म बदलने का आदेश नहीं देती, और यह बात साफ़ तौर से समझ में आने वाली है कि यह मामला पैग़म्बर साहब के नैतृत्व में अरब में उभरने वाले केन्द्रीय शासन के मामले से सम्बंधित और सीमति है, यह कोई आम सिद्धांत नहीं है। इस बात का समर्थन ''साग़िर'' (आधीन) हो जाने की बात से होता है जिसका सम्बंध जिज़्या से है और आयत की व्याख्या यह की गयी है कि इस्लाम की सत्ता और उसके क़ानून को मानना (अलमवारिदी, उपरोक्त किताब, पेज 143; इब्नुल क़य्यिम, अहकाम अहलुल ज़िम्मा, जिल्द 1, पेज 23-24)। एक राजनीतिक सत्ता को मानने के प्रतीक के रूप में ख़िराज देने की पाबन्दी इस्लाम से पहले भी पूरे इतिहास में शासकों के यहां रही है। और अरब के लोग जो कि ईरान और रूम की बाज़ेन्टाइन साम्राज्यों के पास में रहते और बसते थे इन साम्राज्यों में प्रचलित इस चलन को जानते थे, यद्यपि वो स्वयं कभी जिज़्या देने पर मजबूर नहीं हुए थे। लेकिन इस आम धारणा के अनुसार कि क़ुरआन में कोई 'तनसीख' (रद) नहीं हुआ है, आयत 9:29 को क़ुरआन की सामूहिक शिक्षाओं के साथ रख कर समझना चाहिए, और इस बात को सामने रख कर कि अहल-ए-किताब के साथ लड़ाई का यह आदेश केवल उन लोगों पर ही लागू होगा जो इस्लाम और मुसलमानों के विरुध लड़ाई और आक्रामक व्यवहार करेंगे।

इसके अलावा आयत 9:29 अहल-ए-किताब के बारे में और उन लोगों के बारे में जिनसे मुसलमानों को जंग करने को कहा गया है कुछ ख़ास शर्तों का भी तक़ाज़ा करती है। ''अल्लाह

पर ईमान नहीं लाते और न आखरित के दिन पर (विश्वास करते हैं) और न उन चीजों को हराम समझते हैं जो अल्लाह और उसके पैग़म्बर ने हराम की हैं और न दीन-ए-हक़ पर चलते हैं ''। इससे यह बात समझ में आती है कि उनसे तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह ने उनकी तरफ़ भेजे पैग़म्बरों और किताबों के द्वारा जो कुछ उनके लिए वर्जित ठहराया उसे वर्जित मानें, मुहम्मद सल्ल० की शरीअत में हराम की गयी चीज़ों को अपने ऊपर हराम करना यहां मतलब नहीं है, क्योंकि अगर वो ऐसा करेंगे तो फिर तो मुस्लिम यानि आज्ञाकारी ही ठहरेंगे। इसलिए अगर मुसलमान केवल इस आधार पर किसी से जंग करें तो यह अल्लाह के संदेश को रद करने के समान होगा और इस तरह वो स्वयं अपने दीन का उल्लंघन करने के दोषी बनेंगे।

हालांकि यह आयत उन लोगों के सम्बंध में है जिन्हें ''पहले किताब दी गयी थी'', लेकिन क़ुरआन के मशहूर व्याख्याकारों (जैसे मालिक और औज़ाई वग़ैरह) ने इसे आम तौर से सभी तरह के ग़ैर मुस्लिमों के लिए लिया है इस आधार पर कि क़ुरआन की शब्दावलियों को केवल यहूदियों और ईसाइयों के लिए इस वजह से उपयोग किया गया था कि उस समय अरब के लोगों का सम्पर्क इन्ही लोगों से था। इसके अतिरिक्त, क़ुरआन ''साबिईन'' और ''मजूसियों'' का भी ज़िक्र करता है (2:62; 5:69; 22:17) और पैग़म्बर सल्ल० ने ख़ुद मजूसियों से मामला किया है (अलक़ुरतुबी, 9:29 की व्याख्या, जिल्द 8, पेज 110, तफ़सीरुलमनार, जिल्द 10, पेज 332,340,359-60 (रिवायत इब्ने क़ुदामा, अलमुग़नी)।

कुछ हनफ़ी फ़क़ीहों ने जिज़्या को ज़िम्मियों की रक्षा और जिहाद जैसी सेवाओं से उन्हें बरी रखने का बदल भी माना है (अलक़ुरतुबी, जिल्द 8, पेज 114, तफ़सीरुलमनार, जिल्द 10, पेज 346-347), क्योंकि ग़ैर मुस्लिम इस तरह की ज़िम्मेदारियों को अपने अक़ीदे और धर्म के ख़िलाफ़ समझ सकते हैं। मुहम्मद असद ने बिल्कुल सही लिखा है कि इस्लामी राज्य में, हर स्वस्थ और योग्य मुसलमान की यह ज़िम्मेदारी है कि वह जिहाद में हिस्सा ले जब कभी भी उसकी धार्मिक आज़ादी या मुसलमानों के राजनीतिक संरक्षण को ख़तरा हो, दूसरे शब्दों में, हर स्वस्थ मुसलमान अनिवार्य सैनिक सेवाएं देने का ज़िम्मेदार है। चूंकि यह मूल रूप से एक धार्मिक ज़िम्मेदारी है, ग़ैर मुस्लिम नागरिक जो कि इस्लामी नज़रिए को स्वीकार नहीं करते हैं, उनसे इस ज़िम्मेदारी को उचित रूप से अंजाम देने की अपेक्षा नहीं की जा सकती। दूसरी तरफ़, उन्हें पूरा संरक्षण दिया जाना भी ज़रूरी है और उनके नागरिक अधिकार और अन्य धार्मिक आज़ादियों की ज़मानत भी इस्लामी राज्य को देना है, इसलिए ग़ैर मुस्लिम नागरिकों (अहलुल ज़िम्मा यानि वो लोग जिनकी ज़िम्मेदारी ली गयी हो) पर एक विशेष टेक्स लागू किया गया। अतःजिज़्या सेनिक सेवाओं से बरी रखने के बदले और उनकी सुरक्षा की ज़मानत दिए जाने के बदले एक टेक्स है, इससे ज़्यादा कुछ नहीं। (यह शब्दावली जज़ा शब्द से निकली है जिसका मतलब बदला ही होता है)। जिज़्या का कोई निर्धारित प्रतिशत न तो क़ुरआन ने बताया है, न

पैग़म्बर सल्ल० ने तय किया है, अलबत्ता सभी रिवायतों से यह ज़ाहिर होता है कि यह ज़कात के प्रतिशत से अपेक्षाकृत कम होगा जिसकी अदाएगी मुसलमानों पर ज़रूरी है, और ज़कात चूंकि मुसलमानों के लिए एक धार्मिक कर्तव्य है इसलिए इसे ग़ैर मुस्लिमों पर लागू नहीं किया जा सकता। इसी तरह ऐसे सभी ग़ैर मुस्लिम नागरिक जो अपनी स्थिति के आधार पर सेनिक सेवाएं देने में अक्षम हों उन्हें पैग़म्बर सल्ल० के स्पष्ट आदेशों के आधार पर जिज़्या देने से मआफ़ रखा गया है जैसे (1) सभी महिलाएं (2) वो पुरूष जो अभी जवान नहीं हुए, (3) बूढ़े लोग, (4) सभी बीमार या अपंग लोग, (5) पादरी और पुजारी लोग, और वो सभी ग़ैर मुस्लिम जो स्वेच्छा से सेनिक सेवाएं दें, जिज़्या की आदाएगी से मआफ़ रखे गए हैं (दि मैसेज आफ़ क़ुरआन, आयत 9 29 पर नोट नम्बर 43, पेज 262)।

ऐतिहासिक नज़ीरों से इस बात का समर्थन होता है। मुसमलानों की विजयों का इतिहास लिखने वाले मशहूर इतिहासकार अलबिलाज़री ने लिखा है कि ग़ैर मुस्लिमों ने जब कभी भी अपनी ज़मीन की रक्षा में भाग लिया, तो उनसे जिज्या नहीं लिया गया, जैसे फ़िलिस्तीन में अलसामर्रा और लेबनान में अलजराहत की विजय के अवसर पर हुआ (उपरोक्त, पेज 162-164)। जब इस्लामी शासन क्षेत्र के एक भाग पर बाज़ेनन्टाइन हमले का मुक़ाबला करने के लिए मुसलमानों ने अपनी सभी सेनाओं को वहां लगा दिया और हमस की रक्षा करने की स्थिति में वो नहीं रहे तो उन्होंने जिज़्या के रूप में जो राशि वहां के लोगों से वसूल की थी वह उन्हें वापस कर दी (उपरोक्त, पेज 143)। इसी तरह की घटनाएं पूर्वी क्षेत्रों (इराक़, ईरान, आर्मीनिया और आज़रबाईजान आदि) की विजय के संदर्भ में अलतिबरी ने बताई हैं (तारीख़, लेड़ीन, पेज 2658, 2665-66)।

इस क़ुरआनी आयत के हिसाब से, जिज़्या की आदएगी वित्तीय स्थिति के आधार पर की जाएगी (अलमवारिदी, अलअहकाम, पेज 143, तफ़सीरुल मनार, जिल्द 10, पेज 342)। जैसा कि इससे पहले बयान किया गया, ''साग़िरून'' (आधीन) होने का शब्द जो इस आयत में आया है वह इस्लामी राज्य की सत्ता और क़ानून के आधीन हो जाने के अर्थों में इस्तेमाल हुआ है (अलमवारिदी, अलअहकाम, पेज 143, इब्नुल क़य्यिम, अहकाम अहलुल ज़िम्मा, जिल्द 1, पेज 23-24)। चूंकि ज़िम्मियों को यह वचन दिया गया कि उनकी हिफ़ाज़त की जाएगी और उनके अधिकार सुरक्षित रहेंगे इसलिए उन्हें देश के अन्दर या बाहर से किसी भी ख़तरे या हमले की स्थिति में पूरा संरक्षण देने की ज़िम्मेदारी भी मुस्लिम राज्य पर है, जैसा कि इससे पहले भी बताया गया है। दूसरे ख़लीफ़ा हज़रत उमर के युग में यह बात साबित हुई कि सेनिक सेवाएं देने के बदले में जिज़्या की अदाएगी से, या और किसी तरह की अदाएगी जैसे ज़कात से जो बनी तग़लीब ने अदा की थी, अलग रखा जा सकता है। ये दोनों स्थितियां एक नज़ीर और उदाहरण हैं। इस पूरे विवरण से इस विचार को बल मिलता है कि आज के मुस्लिम शासन में

जिसके सभी नागरिकों पर सेनिक सेवाओं की ज़िम्मेदारी हो, जिज़्या की गुंजाइश नहीं होगी, और इंसानी अधिकारों की रक्षा करने और ज़िम्मा लेने का पवित्र वचन इस बात से बदल सकता है कि सभी नागरिकों को बराबर के इंसानी अधिकार जिनमें राजनीतिक व नागरिक अधिकार भी शामिल हैं, दिए जाएं।

दुनिया में ग़ैर मुस्लिमों के साथ मुसमलानों के सम्बंध

देखें अध्याय 8 शरीअत 2 विश्वव्यापी सम्बंध

❁ ❁ ❁

परिवार

परिवार बनाने की स्वभाविक इंसानी प्रवृत्ति

يَاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّ خَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَ بَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيْرًا وَّ نِسَآءً ۚ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِىْ تَسَآءَلُوْنَ بِهٖ وَ الْاَرْحَامَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا ①

ऐ इन्सानों! अपने रब से डरते रहा करो जिसने तुमको एक जानदार से पैदा किया, और उस जानदार से उसका जोड़ा बनाया, और उन दोनों से बहुत से मर्द और औरतें फैला दीं, और अल्लाह से डरते रहा करो, जिसके नाम से तुम एक दूसरे से मुतालबा किया करते हो, और क़राबत से भी डरो, बेशक अल्लाह तुम सब को ख़ूब जानता है। (4:1)

बाइबिल में हज़रत आदम और उनकी पत्नि की पैदाइश का जो बयान है क़ुरआन उसका अनुमोदन नहीं करता है। यह आयत सभी इंसानों, मर्दों व औरतों, को सम्बोधित करती है और यह बताती है कि वो दोनों सामूहिक रूप से एक जीवित अस्तित्व (''नफ़्स'' से पैदा किए गए हैं जिससे दोनों लिंगों पुर्लिंग व स्त्रीलिंग का पता चलता है। मर्द व औरत का एक दूसरे का जोड़ा बनना इंसानी स्वभाव के अनुरूप है, और इस स्वभाविक सम्बंध से इंसानी पीढ़ी जारी रहती है और विकास होता रहता है, और दोनों लिंगों की अत्यधिक संख्या पूरी दुनिया में फैलती चली जाती है। लेकिन इंसान को अपनी शुरूआत और अपने जनक यानि अल्लाह तआला को कभी नहीं भूलना चाहिए जिनकी हिदायत व मार्गदर्शन से हर व्यक्ति अपने अधिकार पहचानता है और दूसरों से उनकी मांग करता है। इसके अलावा, जिस तरह इंसानों को पहले इंसान हज़रत आदम और उनकी पैदाइश और पैदा करने वाले से अवगत होना चाहिए उसी तरह अपने क़रीबी रिश्तेदारों से, और फिर पूरी इंसानी ब्रादरी से अपने सम्बंध को समझना चाहिए, क्योंकि सभी इंसानों का प्रारम्भिक मूल एक ही है और तमाम इंसान एक मर्द व औरत से पैदा हुए हैं। अपनी पैदाइश और अपने पैदा करने वाले के बारे में चेतना रखने से हर इंसान अपने कर्म व व्यवहार के बारे में इतना सावधान हो सकता है कि वह हमेशा ईमानदारी और सदाचार पर बने रहने की कोशश करे, और इंसानी सम्बंध और अधिक ठोस, मज़बूत और एक दूसरे का सहयोगी बनने वाले हों।

وَلَقَدْ أَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّن قَبْلِكَ وَجَعَلْنَا
لَهُمْ أَزْوَاجًا وَذُرِّيَّةً ۚ وَمَا كَانَ لِرَسُولٍ
أَن يَأْتِيَ بِآيَةٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ ۗ لِكُلِّ
أَجَلٍ كِتَابٌ ﴿٣٨﴾

और हमने तुम से पहले भी रसूल भेजे, और उनको हमने औलाद और बीवियां भी दीं, और ये किसी रसूल के इख़्तियार में नहीं के वो अल्लाह के हुक्म के बग़ैर कोई निशानी लाये, हर ज़माना के मुनासिब अहकाम होते हैं। (13:38)

وَمِنْ آيَاتِهِ أَنْ خَلَقَ لَكُم مِّنْ أَنفُسِكُمْ
أَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوا إِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُم
مَّوَدَّةً وَرَحْمَةً ۚ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَاتٍ
لِّقَوْمٍ يَتَفَكَّرُونَ ﴿٢١﴾

और उसी के निशानात में से है के उसने तुम्हारे लिये तुम्हारी ही जिन्स से औरतें पैदा कीं (ताके उसकी तरफ़ मायल होकर) आराम हासिल करो और तुम में बाहमी मोहब्बत और रहमत पैदा की, बेशक इसमें निशानियां हैं ग़ौर करने वालों के लिये। (30:21)

لِّلَّهِ مُلْكُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۚ يَخْلُقُ مَا
يَشَاءُ ۚ يَهَبُ لِمَن يَشَاءُ إِنَاثًا وَيَهَبُ
لِمَن يَشَاءُ الذُّكُورَ ﴿٤٩﴾ أَوْ يُزَوِّجُهُمْ ذُكْرَانًا
وَإِنَاثًا ۖ وَيَجْعَلُ مَن يَشَاءُ عَقِيمًا ۚ إِنَّهُ
عَلِيمٌ قَدِيرٌ ﴿٥٠﴾

आसमानों और ज़मीन की बादशाहत अल्लाह के लिये है, वो जो चाहता है पैछा कर देता है, जिसे चाहता है बेटियां अता करता है, और जिसे चाहता है बेटे अता करता है। या उनके बेटे और बेटियां दोनों इनायत फ़रमाता है, और जिसे चाहता है बेऔलाद रखता है, बेशक वो .ख़ूब जानने वाला बड़ी क़ुदरत वाला है। (42:49-50)

इंसानी प्रजाति अपने अस्तित्व से ही दो लिंगों पुरूष और महिला पर आधारित है। अल्लाह के पैग़म्बर भी एक इंसान होने के चलते परिवार और दम्पत्ति वाले हो सकते हैं। दोनों लिंगों के अन्दर एक दूसरे के लिए आकर्षण और एक दूसरे का ध्यान रखने की प्रवृत्ति डाली गयी है, ताकि हर एक अपनी पूर्ति, संतोष और सहारा दूसरे में महसूस करे। पति पत्नि के बीच भावनात्मक सम्बंध को क़ुरआन एक बिल्कुल साधारण, स्थाई और मौलिक शब्दों में बयान करता हैःएक तरफ़ प्रेम भावनाएं और दूसरी तरफ़ एक दूसरे के लिए दर्दमंदी व एक दूसरे का .ख़्याल रखना। बच्चे पालना और उनसे प्यार करना भी इंसानी स्वभाव की एक और पूर्ति है।

इन भावनाओं की अनदेखी नहीं की जा सकती न उन्हें ग़लत समझा जा सकता है जब तक वो अल्लाह के तक़वा और हिदायत के दायरे से बाहर न हों लेकिन ‘‘जो लोग ईमान वाले हैं वो सबसे ज़्यादा अल्लाह से मुहब्बत करते हैं’’ (2:165, और देखें 9:24)। जब यह संतुलन

बिगड़ता है और नैतिक मर्यादाओं व अल्लाह की हिदायत के बजाए बाल बच्चे ही सभी मामलों में फ़ैसला लेने का केन्द्र बिन्दु बन जाते हैं तो इंसान न्याय और सही तरीक़े से हट जाता है, और इंसान की ख़ुदपसन्दी (आत्मसिद्वि) परिवारवाद के रूप में ज़ाहिर होती है और उसका दायरा ज़रूरत से ज़्यादा फैल जाता है (64:14-16)।

أُحِلَّ لَكُمْ لَيْلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ إِلَىٰ نِسَآئِكُمْ ۚ هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَأَنتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ۗ عَلِمَ اللَّهُ أَنَّكُمْ كُنتُمْ تَخْتَانُونَ أَنفُسَكُمْ فَتَابَ عَلَيْكُمْ وَعَفَا عَنكُمْ ۖ فَالْـَٔانَ بَاشِرُوهُنَّ وَابْتَغُوا مَا كَتَبَ اللَّهُ لَكُمْ ۚ وَكُلُوا وَاشْرَبُوا حَتَّىٰ يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْأَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ الْأَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ ۖ ثُمَّ أَتِمُّوا الصِّيَامَ إِلَى اللَّيْلِ ۚ وَلَا تُبَاشِرُوهُنَّ وَأَنتُمْ عَاكِفُونَ فِي الْمَسَاجِدِ ۗ تِلْكَ حُدُودُ اللَّهِ فَلَا تَقْرَبُوهَا ۗ كَذَٰلِكَ يُبَيِّنُ اللَّهُ آيَاتِهِ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُونَ ﴿١٨٧﴾

तुम लोगों के लिए रोज़ो की रातों में अपनी औरतों के पास जाना हलाल कर दिया गया है, वो तुम्हारी पोशाक हैं और तुम उनकी पोशाक हो, अल्लाह .ख़ूब जानता है के तुम उनके पास जाने मे अपने हक़ में .ख़्यानत करते थे, सो उसने तुम पर मेहरबानी की और तुम को माफ़ कर दिया। अब तुम उनसे मुबाशरत करो, और अल्लाह से तलब करो जो उसने तुम्हारे लिए लिख है (यानी औलाद) और खाओ और पियो यहाँ तक के सुबह की सफ़ेद धारी रात की स्याह धारी से अलग नज़र आने लगे, फिर तुम रोज़ा रात तक पूरा करो, और जब मस्जिद के अन्दर ऐतेकाफ़ में हो, तो मुबाशरत ना करो। ये अल्लाह ने हदें लगा दी हैं, उनके क़रीब ना जाना, इसी तरह अल्लाह अपनी आयात साफ़ साफ़ बयान करता है ताके लोग अल्लाह से डरें। (2:187)

रोज़ा रखे होने की स्थिति में एक मुसलमान के लिए खाना, पीना और पति पत्नि का शरीरिक सम्बंध बनाना मना होता है और रमज़ान के पूरे महीने एक मुसलमान को सुबह से लेकर शाम तक इस पाबन्दी के साथ रहना होता है। चूंकि कामभावना या काम संतुष्टि खाने-पीने की ही तरह एक स्वभाविक आवश्यकता है इसलिए ऊपर की आयत में यह साफ़ इजाज़त दी गयी है कि यह ज़रूरी तक़ाज़े रात से सुबह तक (अफ़तार के बाद से सहरी के समय तक) पूरे किए जा सकते हैं। काम संतुष्टि व्यक्ति और समाज दोनों के लिए ज़रूरी है और पूरे महीने तक रोके रखना मुश्किल है, और काम संतुष्टि का जायज़ तरीक़ा रोज़े की आत्मा यानि तक़वा के विपरीत नहीं है, क्योंकि रोज़ा शरीर को पीड़ा देने के लिए नहीं है, बल्कि आत्मनियंत्रण के प्रशिक्षण की एक प्रक्रिया है। अल्लाह की लगाई गयी पाबन्दियों का मक़सद व्यक्तिगत और सामाजिक संतुलन क़ायम करना है, और अल्लाह की सभी शिक्षाएं इंसानी

स्वभाव और इंसान की स्वास्थ्य की स्थिति के अनुकूल हैं (30:30)। इस तरह काम संतुष्टि एक स्वभाविक मांग है जिससे परिवार अस्तित्व में आता है और बच्चे पैदा होते हैं। यह एक निर्माणकारी शक्ति है, अगर इसे व्यक्ति और समाज की ज़रूरत को पूरा करने के लिए सही तरीक़े से बरता जाए, जिस तरह खाना पीना भी सावधानी और सीमा के अन्दर रह कर ही उपयोगी है। रोज़ा इंसान की इच्छा शक्ति को मज़बूत करता है और आत्मनियंत्रण की शक्ति को बढ़ाता है, इंसान और उसकी जायज़ स्वभाविक इच्छाओं को मारता नहीं है। वैवाहिक सम्बंध और बच्चे पैदा करना इंसानी ज़रूरत हैं और इंसानी जीवन को बनाए रखने के लिए ज़रूरी हैं। इबादत अध्यात्मिक और शरीरिक ज़रूरतों में संतुलन बनाए रखती है, शरीर और शरीरिक मांगों पर बन्दिश नहीं लगाती है। व्यक्ति और समाज के बीच इस तरह का संतुलन ‘‘उम्मत-ए-वस्त’’ (संतुलन व संयम पर बने लोगों) को सामने लाता है जो अपनी शरीरिक शक्तियों को बढ़ाने का ध्यान रखें और इंसानी अक़्ल व रूहानियत से ख़ुद को नियंत्रण में रखें।

هُوَ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّ جَعَلَ مِنْهَا زَوْجَهَا لِيَسْكُنَ اِلَيْهَا ۚ فَلَمَّا تَغَشّٰىهَا حَمَلَتْ حَمْلًا خَفِيْفًا فَمَرَّتْ بِهٖ ۚ فَلَمَّاۤ اَثْقَلَتْ دَّعَوَا اللّٰهَ رَبَّهُمَا لَئِنْ اٰتَيْتَنَا صَالِحًا لَّنَكُوْنَنَّ مِنَ الشّٰكِرِيْنَ ﴿١٨٩﴾

वो अल्लाह ऐसा है जिसने तुम को एक तने वाहिद (आदम (अ.स.) से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया ताके वो उस जोड़े से उन्स हासिल करे, फ़िर जब मियां ने बीवी से क़ुरबत की तो उसको हमल रह गया, हल्का सा, वो उसको लिये हुए फ़िरती रहीं फ़िर जब वो बोझल हो गईं तो दोनों ने अल्लाह से दुआ की जो उनका मालिक है के अगर आपने हमको सही सालिम औलाद दी तो हम शुक्रगुज़ारी करेंगे। (7:189)

وَاللّٰهُ جَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا وَّ جَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَزْوَاجِكُمْ بَنِيْنَ وَحَفَدَةً وَّ رَزَقَكُمْ مِّنَ الطَّيِّبٰتِ ؕ اَفَبِالْبَاطِلِ يُؤْمِنُوْنَ وَبِنِعْمَتِ اللّٰهِ هُمْ يَكْفُرُوْنَ ﴿٧٢﴾

और अल्लाह ने तुम ही में से तुम्हारी औरतें पैदा की हैं, और उन औरतों से तुम्हारे बेटे, पोते पैदा किये हैं, और खाने को तुम्हें पाकीज़ा चीज़ें दीं, तो क्या बेअसल चीज़ों पर ऐतक़ाद रखते हैं, और अल्लाह की नेमतों की नाशुक्री करते हैं। (16:72)

मर्द और औरतें दोनों का मूल एक ही है और एक ही जीवित अस्तित्व से दोनों पैदा किए गए हैं। दोनों एक दूसरे के अस्तित्व को पूरा करते हैं और वैवाहिक सम्बंधों के द्वारा यह पूर्ति होती है और एक दूसरे से संतुष्टि प्राप्त करते हैं और आनन्दित होते हैं और दिल व दिमाग़ राहत पाते हैं। वैवाहिक सम्बंधों का ज़िक्र आयत 7:189 में एक दूसरे से पूरी तरह मिल जाने

या एक दूसरे पर छा जाने (''तग़श्शाहा'') के रूपक में आया है, जो न केवल शरीरिक मिलन तक सीमित है बल्कि मानसिक व आत्मिक सम्बंध को भी ज़ाहिर करता है।

इस पूर्ति और सम्मिलन से मिलने वाला सुख व राहत उनके मिल जाने के बाद थम नहीं जाती, बल्कि बच्चों के जन्म और पालनपोषण के माध्यम से यह बढ़ती जाती है। फिर परिवार बनता है और परिवार के साथ रहना व जीवन की आवश्यकताएं पूरी करना स्वयं अपने आप में एक दिलचस्प और प्रेमपूर्ण जीवन की सक्रियता है, जो अल्लाह के फ़ज़्ल (कृपा) और उसकी हिदायत से सुख का कारण बनती है। फिर किसी जोड़े को पोते पोतिया या नवासे नवासियां भी मिलती हैं तो इससे न केवल नस्ल का सिलसिला जारी रहता है बल्कि जीवन में एक नई उमंग और रवानी आती है। बच्चों और पोतो व पोतियों व नवासों नवासियों को पाने के सुख के साथ साथ मातापिता दादा दादी के सहयोग से बच्चों को पालने पोसने और उनके अन्दर अल्लाह की हिदायत से मिलने वाली संस्कारों को विक्सित करने का काम करते हैं। यह अमल विधिवित रूप से लेक्चर देने और बताने व पढ़ाने से ही नहीं होता बल्कि बच्चों के साथ खेलना, बोलना और उन्हें कहानियां सुनाना इस सीख का माध्यम बनते हैं और इस तरह परिवारिक व सामुदायिक मर्यादाएं बच्चों में विक्सित होती हैं।

कामसंतुष्टि और उसके बाद बच्चों की पैदाइश से जिसका सिलसिला आगे की पीढ़ी में भी जारी रहता है, होने वाले इस भौतिक, मानसिक व आत्मिक विकास से हर समझदार इंसान को अल्लाह का शुक्रगुज़ार होना चाहिए और अल्लाह की नेअमतों का आभारी होना चाहिए। ऐसे लोग और उनके सुखी सम्पन्न परिवार पूरे समाज के लिए नमूना बनते हैं (25:74)। लेकिन ऐसे भी लोग हैं कि ''जब वह उनको सही व साबुत (बच्चा) देता है तो उस (बच्चे) में जो वह उनको देता है अल्लाह का भागीदार बनाते हैं। जो वह शिर्क करते हैं अल्लाह उससे बुलन्द है। क्या वो ऐसों को शरीक बनाते हैं जो कुछ भी पैदा नहीं कर सकते और ख़ुद पैदा किए जाते हैं और न उनकी मदद की क्षमता रखते हैं और न अपनी ही मदद कर सकते हैं (7:190-192)।

قَدْ اَفْلَحَ الْمُؤْمِنُوْنَ ۙ الَّذِيْنَ هُمْ فِيْ
صَلَاتِهِمْ خٰشِعُوْنَ ۙ وَ الَّذِيْنَ هُمْ عَنِ
اللَّغْوِ مُعْرِضُوْنَ ۙ وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِلزَّكٰوةِ
فٰعِلُوْنَ ۙ وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِفُرُوْجِهِمْ
حٰفِظُوْنَ ۙ اِلَّا عَلٰٓى اَزْوَاجِهِمْ اَوْ مَا مَلَكَتْ
اَيْمَانُهُمْ فَاِنَّهُمْ غَيْرُ مَلُوْمِيْنَ ۚ فَمَنِ
ابْتَغٰى وَرَآءَ ذٰلِكَ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْعٰدُوْنَ ۚ

तहक़ीक़ उन ईमान वालों ने फ़लाह हासिल कर ली। जो अपनी नमाज़ में इजज़ो नियाज़ करते हैं। और जो बेहूदा बातों से परहेज़ करने वाले हैं। और ज़कात अदा करने वाले हैं। और जो अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करने वाले हैं। मगर अपनी मनकूहा बीवियों से, या अपनी बांदियों से, क्योंकि उन पर कोई मलामत नहीं। पस जो उनके अलावा के तालिब हों, वो हद से आगे बढ़ने वाले हैं। (23:1-7)

शर्म व लज्जा और अपनी अस्मिता व शील को बनाए रखना हर ईमाव वाले पर अनिवार्य है, मर्द हो या औरत। पति पत्नि एक दूसरे से यौन संतुष्टि प्राप्त करते हैं लेकिन विवाह के सम्बंध के बाहर हर व्यक्ति को चाहे वह विवाहित हो या अविवाहित स्वयं को किसी भी यौन सम्बंध से दूर रखना ज़रूरी है। इस्लाम हर उस चीज़ और बात पर विराम लगाता है जो यौन प्रेरणा पैदा करने वाली हो जैसे शरीरिक सौन्दर्य का अनुचित प्रदर्शन और बेशर्मी, घूरना और ग़ैर सगे मर्द व औरत का एकान्त में मिलना आदि।

इस्लाम के शुरुआती युग में जब ग़ुलामी का चलन था और बान्दियों के मालिकों को उन पर पूरा नियंत्रण प्राप्त होता था, इस्लाम ने ग़ुलामी के इस चलन को क्रमवार समाप्त करने की अपनी योजना के अन्तर्ग, यह आदेश दिया कि बान्दी के साथ शरीरिक सम्बंध स्थापित करना केवल विवाह के द्वारा ही जायज़ है:"ः इन बान्दियों के साथ उनके मालिकों की इजाज़त लेकर निकाह कर लो और नियम अनुसार उनका महर भी अदा कर दो, शर्त यह है कि अफ़ीफ़ा हों, न ऐसी कि खुल्लम खुल्ला बदकारी करें और छुप छुपा कर दोस्ती करना चाहें" (4:25; 4:3; 24:32)।

निकाह के बन्धन के साथ यौन सम्बंध से अलग, किसी भी दूसरी तरह का यौन सम्बंध इस्लाम में पूरी तरह हराम है। ज़िना और हरामकारी दोनों ही इस्लाम में हराम हैं और अगर क़ानूनी रूप से यह साबित हो जाए तो इसकी सज़ा भी अनिवार्य है। शादी होने तक अपनी अस्मिता और शील की रक्षा करना और पवित्र रहना हर मुसलमान पर लाज़िम है, मर्द हो या औरत और पूर्व काल के संदर्भ में कहा जाए तो चाहे आज़ाद हो या ग़ुलाम। ग़ुलाम को बराबर के इंसान की तरह ही बरतने का आदेश दिया गया है, और व्यक्तिगत व सरकारी उपायों के द्वारा उन्हें आज़ाद करने की प्रेरणा दी गयी है, और इस तरह ग़ुलामी का चलन क्रमवार समाप्त करना इस्लाम का उद्देश्य था।

وَ اَنْكِحُوا الْاَيَامٰى مِنْكُمْ وَ الصّٰلِحِيْنَ مِنْ عِبَادِكُمْ وَ اِمَآئِكُمْ ؕ اِنْ يَّكُوْنُوْا فُقَرَآءَ يُغْنِهِمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ؕ وَ اللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿۳۲﴾

और जो तुम में बे निकाह हों उनका निकाह कर दिया करो, और जो तुम्हारे ग़ुलाम और लोंडियां नेक हों उनका भी, अगर वो मुफ़लिस होंगे तो अल्लाह अपने फ़ज़्ल से .ख़ुशहाल कर देगा, और वो बहुत वुस्अत वाला और .ख़ूब जानने वाला है। (24:32)

यह आयत पूरे समाज को सम्बोधित करते हुए कहती है कि सभी कुंवारे व्यक्तियों के निकाह के लिए आवश्यक साधन उपलब्ध कराएं, चाहे वो आज़ाद हों या गुलाम मर्द हों या औरतें। इस बात से पहले तो यह पता चलता है कि विवाह हर व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है

जिसके लिए दरकार साधन उपलब्ध कराने की ज़िम्मेदारी पूरे समाज पर है, चाहे यह मदद आर्थिक हो या उसे सफ़ल बनाने के लिए नैतिक और शैक्षिक मदद हो। दूसरी बात यह पता चलती है कि किसी ग़ुलाम मर्द या औरत से यौन सम्बंध केवल निकाह के द्वारा ही बनाया जा सकता है, जैसा कि पहले भी कई जगह यह बात ज़ोर देकर कही गयी है।

وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَ ذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّ اجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ﴿۷۴﴾

और वो जो अपने रब से दुआ मांगते हैं, ऐ हमारे रब! तू हमको हमारी बीवियों और हमारी औलाद की तरफ़ से आंख की ठंडक इनायत फ़रमा, और हमको परहेज़गारों का इमाम बना। (25:74)

परिवार समाज की सबसे छोटी अर्थात मौलिक इकाई और केन्द्रीय संस्था है, यह पहला मैदान है जिसमें इस्लाम का पैग़ाम और उसका सुधार कार्यक्रम लागू होता है और हो सकता है। अच्छे व्यक्तियों और आपस में अच्छे सम्बंध रखने वाले व्यक्तियों पर आधारित परिवार, जो सभी पहलुओं से इंसानी ज़रूरतों को पूरा करने वाला हो, पूरे समाज के लिए एक प्रभावपूर्ण नमूना होता है। और यह परिवार उन अक़ीदों व नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्त करता है जिस पर उसके सदस्य अमल करते हैं। उपरोक्त आयत व्यक्तियों के लिए परिवार के महत्व को रेखांकित करती है क्योंकि यह उसके लिए सबसे पास का इंसानी समाज होता है और इस बात का नमूना होता है कि परिवारिक सम्बंधों में ज़ाहिरी, अक़ली, मानसिक और आत्मिक समन्वय उसके हर व्यक्ति के लिए एक वास्तविक आनन्द और संतोष का माध्य है। इसके अलावा, ऐसा मज़बूत और सुखी व संतुष्ट परिवार ताक़त का एक निश्चित साधन है, क्योंकि यह व्यक्तियों को भी सशक्त करता और प्रेरणा देता है और पूरे समाज को भी।

جَنّٰتُ عَدْنٍ يَّدْخُلُوْنَهَا وَمَنْ صَلَحَ مِنْ اٰبَآئِهِمْ وَ اَزْوَاجِهِمْ وَ ذُرِّيّٰتِهِمْ وَ الْمَلٰٓئِكَةُ يَدْخُلُوْنَ عَلَيْهِمْ مِّنْ كُلِّ بَابٍ ﴿۲۳﴾ سَلٰمٌ عَلَيْكُمْ بِمَا صَبَرْتُمْ فَنِعْمَ عُقْبَى الدَّارِ ﴿۲۴﴾

यानी हमेशा रहने के बाग़ात हैं जिन में वो दाख़िल होंगे और उनके बाप दादा और बीवियां और औलाद में से जो नेक होंगे वो भी बहिश्त में होंगे और फ़रिश्ते (बहिश्त के) हर एक दरवाज़े से उनके पास आयेंगे। और कहेंगे तुम पर सलामती हो ये तुम्हारे सब्र का फ़ल है, और आक़्बत का घर कैसा अच्छा है। (13:23-24)

رَبَّنَا وَاَدْخِلْهُمْ جَنّٰتِ عَدْنِ ِ الَّتِيْ وَعَدْتَّهُمْ وَ مَنْ صَلَحَ مِنْ اٰبَآئِهِمْ وَ

ऐ हमारे रब! उनको हमेशा रहने के लिये बहिश्त में दाख़िल फ़रमा जिनका वादा आपने उनसे किया है, और

اَزْوَاجِهِمْ وَ ذُرِّيّٰتِهِمْ ؕ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۙ﴿۸﴾

उनके मां बाप और बीवियों को और औलाद को भी दाख़िल फ़रमा जो सालेह हों, बेशक तू ग़ालिब हिकमत वाला है। (40:8)

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ اتَّبَعَتْهُمْ ذُرِّيَّتُهُمْ بِاِيْمَانٍ اَلْحَقْنَا بِهِمْ ذُرِّيَّتَهُمْ وَ مَاۤ اَلَتْنٰهُمْ مِّنْ عَمَلِهِمْ مِّنْ شَيْءٍ ؕ كُلُّ امْرِئٍۢ بِمَا كَسَبَ رَهِيْنٌ ﴿۲۱﴾

और जो ईमान लाये और उनकी औलाद ने ईमान में उनकी पैरवी की, हम उनकी औलाद को उनके साथ मिला देंगे और उनके आमाल में कोई कमी नहीं करेंगे, हर शख़्स अपने आमाल में फंसा होगा। (52:21)

ये आयतें यह बताती हैं कि परिवार और परिवारिक रिश्तों की भावनाएं कितनी स्वभाविक, सशक्त और मज़बूत होती हैं और उनकी ताक़त आख़िरत में भी कारगर होती है। फ़रिश्ते अल्लाह से दुआ करते हैं कि जिन लोगों ने अल्लाह का रास्ता अपना लिया है उन्हें उनके नेक पूर्वजों के साथ, उनके जोड़ों के साथ और उनकी संतानों के साथ जोड़ दीजिए, और यह अल्लाह ने तय कर दिया है। क़ियामत और बदले के दिन निश्चत रूप से हर व्यक्ति निजी रूप से अपनी मुक्ति के लिए चिन्तित होगा ''उस दिन भाई अपने भाई दूर भागेगा और अपनी मां और अपने बाप से और अपनी पत्नि से और अपने बेटों से। हर व्यक्ति उस दिन एक चिन्ता में होगा जो उसे (व्यस्ता के लिए) बहुत होगी'' (80:34-137, और देखें 70:11-14)। लेकिन जैसे ही किसी को मुक्ति और हमेशा की ख़ुशी का परवाना मिलेगा तो उसकी स्वभाविक और कभी ख़त्म न होने वाली परिवारिक भावनाएं उभर आएंगी और यह बात साबित होगी कि ये भावनाएं जीवित हैं और सक्रिय हैं, और अल्लाह अपनी कृपा के साथ उनसे पेश आएंगे और न्यास से बिल्कुल भी मुंह नहीं मोड़ा जाएगा, और परिवार के नेक व्यक्तियों को हमेशा के लिए एक जगह जमा कर दिया जाएगा। ये मातापिता के लिए एक इनाम होगा जिन्होंने अपने बच्चों को सत्य व सच्चाई और नैतिकता की शिक्षा व प्रशिक्षण के साथ परवान चढ़ाया होगा, लेकिन स्वयं औलाद भी अपना पूरा इनाम पाने की हक़दार होगी, कि उन्होंने अपनी आज़ाद मर्ज़ी से नेकी की इन महान मर्यादाओं को अपनाया जो उनके मातापिता ने उन्हें सिखाई थीं।

दूसरी ओर मातापिता और औलाद की नाफ़रमानी की वजह से और ग़लत रास्ता अपनाने की सज़ा में उस समय जब ख़ुद सभी पैग़म्बर अपने नाफ़रमान मातापिता या नाफ़रमान औलाद को मआफ़ किए जाने के इच्छुक होंगे, अल्लाह का इंसाफ़ इस तरह की भावनात्मक स्थिति और तरफ़दारी का ख़्याल करने की इजाज़त नहीं देगाः''और नूह ने अपने रब को पुकारा और कहा

ऐ अल्लाह मेरा बेटा भी मेरे घर वालों में है (तो उसको भी बचा ली जिए) आपका वायदा सच्चा है और आप सबसे बहतर हाकिम हैं (तो) अल्लाह ने फ़रमाया कि ए नूह वह तुम्हारे घर वालों में नहीं है वह ग़ैर स्वाले अमल है, जिस चीज़ की वास्तविकता तुम्हें पता नहीं उसके बारे में मुझसे सवाल ही न करो और मैं तुम्हें नसीहत करता हूं की मूर्ख न बनो। नूह ने कहा कि मेरे रब मैं आपकी शरण चाहता हूं कि ऐसी चीज़ का आप से सवाल करूं जिसकी वास्तविकता मुझे पता नहीं और अगर आप मुझे नहीं मआफ़ करेंगे और मुझ पर दया नहीं करेंगे तो मैं बर्बाद हो जाउंगा''(11:45-47) ''पैग़म्बर और मुसलमानों के लिए उचित नहीं कि जब उन पर खुल गया कि मुशरिक नरक में जाने वाले हैं तो उनके लिए बख़्शिश मांगें चाहे वो उनके क़रीबी सम्बंधी ही हों। और इब्राहीम का अपने पिता के लिए बख़्शिश मांगना तो एक वायदे के चलते था जो वह उससे कर चुके थे लेकिन जब उनको मालूम हो गया कि वह अल्लाह का दुशमन है तो उससे बेज़ार हो गए, कुछ शक नहीं कि इब्राहीम बहुत मृदुल और संयमशील थे'' (9:113-114) और देखें 19:47)। जोड़ों के मामले में अल्लाह ने नूह की पत्नि और लूत की पत्नि की मिसाल दी, ''दोनों हमारे दो नेक बन्दों के घर में थीं और दोनों ने उनके साथ धोखा किया तो वो अल्लाह के मुक़ाबले में उनके कुछ भी काम न आए और उनको आदेश दिया गया कि और दाखलि होने वालों के साथ तुम भी नरक में दाखलि हो जाओ''(66:10)। क़ुरआन की हिदायत के अनुसार, किसी व्यक्ति को इन स्वभाविक और सशक्त भावनाओं की वजह से अपने घर वालों को फिर से आपस में मिल जाने और उन्हें सीधे रास्ते पर चलाने के लिए उस समय तक ज़ोर नहीं डालना चाहिए जब तक यह साफ़ न हो जाए कि उसके प्यारे मातापिता ने या बच्चों ने अपनी मर्ज़ी से ना कि जिहालत या ग़फ़लत की वजह से, सच्चाई को झुटलाने और उसके ख़िलाफ़ खड़े होने का रास्ता चुन लिया है और अल्लाह का दुशमन बन गया है (देखें 6:33; 27:14)।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا قُوۡۤا اَنۡفُسَكُمۡ وَ اَهۡلِيۡكُمۡ نَارًا وَّقُوۡدُهَا النَّاسُ وَالۡحِجَارَةُ عَلَيۡهَا مَلٰۤئِكَةٌ غِلَاظٌ شِدَادٌ لَّا يَعۡصُوۡنَ اللّٰهَ مَاۤ اَمَرَهُمۡ وَ يَفۡعَلُوۡنَ مَا يُؤۡمَرُوۡنَ ۝

मोमिनों! तुम अपने आपको और अपने घर वालों को दोज़ख की आग से बचाओ, जिसका इंधन आदमी और पत्थर हैं, जिस पर तुंद.खू और सख़्त क़ुव्वत वाले फ़रिश्ते मुक़र्रर हैं, जो हुक्म उनको मिलता है उसकी नाफ़रमानी नहीं करते और जो हुक्म मिलता है उसको बजा लाते हैं। (66:6)

परिवारिक रिश्ते की भावनाएं चूंकि हर इंसान के स्वभाव और प्रकृति में मौजूद हैं इसलिए इन भावनाओं का तक़ाज़ा है कि हर व्यक्ति अपने घर वालों की चिंता करे और इस दुनिया के बारे में उसके दृष्टिकोण को दुरूस्त करे और उन्हें बताए कि इस सृष्टि के पीछे किसी की शक्ति

सक्रिय है, और उन्हें बुनियादी अक़ीदों (मौलिक आस्थाओं) और नैतिक मूल्यों की शिक्षा दे। व्यक्ति की पहली सामाजिक ज़िम्मेदारी अपने परिवार के लिए है कि वह भी एक समाज है और जिसके सदस्य उसके सबसे क़रीबी लोग हैं और जो पूरे समाज की केन्द्रीय इकाई है। पैग़म्बर सल्ल० ने अपना संदेश सबसे पहले अपनी पत्नि हज़रत ख़दीजा को पहुंचाया, और फिर अपने चचेरे भाई हज़रत अली को दिया जो आप के साथ ही आप के घर में रहते थे। फिर इसके कुछ समय बाद ही आप को यह आदेश हुआ कि अपने परिवार वालों को इसकी दावत दें:“अपने क़रीबी रिश्तेदारों को डराएं” (26:214)

निकाह/विवाह

वैवाहिक सम्बंधःजोड़े का चुनाव, समझौता, महर

وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى يُؤْمِنَّ ؕ وَ لَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّ لَوْ اَعْجَبَتْكُمْ ۚ وَلَا تُنْكِحُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَتّٰى يُؤْمِنُوْا ؕ وَ لَعَبْدٌ مُّؤْمِنٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكٍ وَّ لَوْ اَعْجَبَكُمْ ؕ اُولٰٓئِكَ يَدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ ۖۚ وَ اللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلَى الْجَنَّةِ وَ الْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ ۚ وَ يُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿۲۲۱﴾

ऐ मोमिनो! तुम मुशरिक़ औरतों से निकाह न करना जब तक वो ईमान ना लायें, मुशरिक औरत से कनीज़ मोमिना बेहतर है, .ख़्वाह मुशरिका कितनी ही भली लगे, इसी तरह मर्द मुशरिक़ जब तक मोमिन न हो तो मोमिन औरत से उसका निकाह मत किया करो, और मोमिन गुलाम बेहतर है मुशरिक़ मर्द से .ख़्वाह वो तुमको कितना ही अच्छा लगे, क्योंकि मुशरिक़ दोज़ख की तरफ़ बुलाते हैं, और अल्लाह अपनी मेहरबानी से जन्नत और बखशिश की तरफ़ बुलाता है, और अपने हुक्म खोलकर साफ़ साफ़ बयान करता है ताके वो नसीहत हासिल करें। (2:221)

घर में समन्वय और सौहार्द का माहौल बनाए रखने के लिए ज़रूरी है कि पति पत्नि के बीच बौद्धिक, अध्यात्मिक और व्यवहारिक रूप से कुछ ठोस समान आधार हों अर्थात उनमें समानता हो। यह चीज़ स्वयं पति पत्नि के बीच भी और फिर उन बच्चों के साथ भी बहतर सम्बंधों के लिए ज़रूरी है। पति पत्नि के बीच कड़े मतभेद शुरू में तो प्रेम की गर्मी से धीमे पड़ जाते हैं, लेकिन फिर धीरे धीरे जब दोनों एक दूसरे से बे तकल्लुफ़ हो जाते हैं और साथ साथ जीवन बिताने लगते हैं तो यह मतभेद उभरने लगते हैं। और फिर जब बच्चे समझदार होने लगते हैं और वह मातापिता के बीचे झगड़ा और मतभेद देखते हैं तो वह भी प्रभावित और परेशान होते

हैं, क्योंकि मां बाप अपने बच्चों के लिए आइडियल और उदाहरण होते हैं। अतःएक अल्लाह पर ईमान एक लम्बे, सुखी और सफल दामपत्य जीवन के लिए सब से महत्व समान आधार है और यह चीज़ परिवार की एकता और समन्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि पति पत्नि के जोड़े और उनसे बनने वाले परिवार में समन्वय और सुकून ही न हो तो ऐसा निकाह असफ़ल और बेमतलब होगा। उपरोक्त आयत इस बात पर ज़ोर देती है कि मज़बूत वैचारिक आधारों और समान मूल्यों को वक़्ती भावनाओं और आपसी आकर्षण की भावना पर प्राथमिकता देना चाहिए क्योंकि समय बीतने के साथ साथ क्षणिक भावनाएं और ज़ाहिरी आकर्षण व प्रेम को गम्भीर मतभेद समाप्त कर देंगे। लिहाज़ा, ऐसा या ऐसा जीवन साथी जो वही अक़ीदा रखता या रखती हो जो ख़ुद अपने हैं वही एक बहतर लाइफ़ पार्टनर बन सकता बन सकती है चाहे वह कम ज़ाहिरी आकर्षण रखता या रखती हो और सामाजिक प्रितष्ठा के लिहाज़ से कम तर ही हो।

क़ुरआन के मशहूर व्याख्याकार अलज़मख़्शरी के अनुसार यह आयत समान अक़ीदे के आध ाार पर किसी भी उचित अल्लाह के बन्दे या बन्दी को निकाह के लिए प्राथमिकता देती है, जबकि दूसरे मुफ़स्सिरों ने इस आयत की मंशा यह समझी है कि यह ''मोमिन ग़ुलाम (या बान्दी)'' को प्राथमिकता देने के लिए है। तफ़सीर में यह फ़र्क़ इस वजह से हुआ है कि अरबी भाषा का शब्द जो ग़ुलाम के लिए इस्तेमाल होता है और जो क़ुरआन में अल्लाह के बन्दे के लिए भी इस्तेमाल हुआ है वह एक ही है। अगर बाद वाली तफ़सीर को माना जाए तो इससे आज़ाद और ग़ुलाम मर्दों व औरतों के बीच निकाह का रास्ता निकलेगा (और देखें 4:25), जिसके नतीजे ग़ुलामी कि स्थिति के अनुसार मिलेजुले हो सकते हैं, और इस स्थिति को उन सिद्धांतों के लिहाज़ से जांचा जाएगा जो ग़ुलामी के सम्बंध में इस्लाम ने दिए हैं और ग़ुलामी को समाप्त करने के लिए उसने जो रणनीति अपनाई है, जबिक इस्लाम के सिद्धांतों और रणनीति के लिहाज़ से ग़ुलामी को उस समय की एक अस्थाई और बदलने लायक़ स्थिति ही समझना होगा। इसके अलावा, यह भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि इस तरह के निकाह से होने वाले बच्चों पर इस असमानता के अप्रिय प्रभाव पड़ सकते हैं (4:25)।

اَلْيَوْمَ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ ؕ وَ طَعَامُ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حِلٌّ لَّكُمْ ۪ وَ طَعَامُكُمْ حِلٌّ لَّهُمْ ۪ وَ الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَ الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ اِذَاۤ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ

आज हलाल चीज़ें तुम्हारे लिये हलाल की गईं, और अहले किताब का ज़बीहा खाना तुम्हारे लिये हलाल है, और तुम्हारा ज़बीहा उनको हलाल है, और मुसलमान पारसा औरतें और अहले किताब की पारसा औरतें, जब तुम उनको उनका मेहर अदा कर दो इस तौर पर के तुम बीवी बनाओ ना तो फ़िर एलानिया तौर पर बदकारी

أُجُوْرَهُنَّ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَ لَا مُتَّخِذِيْٓ اَخْدَانٍ ؕ وَمَنْ يَّكْفُرْ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ حَبِطَ عَمَلُهٗ ۡ وَ هُوَ فِي الْاٰخِرَةِ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝

करो और ना ख़ुफ़िया तौर पर आशनाई करो, और जो ईमान के साथ कुफ़्र करेगा तो उसका अमले नेक भी ग़ारत कर दिया जाएगा, और वो आख़िरत में भी .खसारे में रहेगा। (5:5)

यह आयत मुहम्मद सल्ल० के पैग़ाम और उनके साथ उतरी अल्लाह की किताब क़ुरआन पर ईमान रखने वाले लोगों और उन लोगों के बीच जिन के पास पहले पैग़म्बर और किताब आ चुकी थी, समान आधारों को उजागर करती है। यह संयुक्त आधार इतने ठोस हैं कि दोनों तरह के लोग एक दूसरे का खाना खा सकते हैं, जब तक कि दूसरों के खाने में कोई ऐसी चीज़ शामिल न हो जो इस्लाम में खुले रूप से हराम है, जैसे सुअर का मास या शराब वग़ैरह (2:173; 5:3)। मालिकी फ़िक़्ह और दूसरे फ़क़ीहों के नज़दीक अगर कोई हलाल जानवर अहल-ए-किताब ने ज़िब्ह किया है तो मुसलमान उसे खा सकते हैं चाहे उनका ज़िब्ह करने का तरीक़ा जो कुछ भी हो (देखें मुहम्मद अब्दुहू और रशीद रज़ा की तफ़सीरुल मनार, जिल्द 6, पेज 196-219)। मिल कर परिवार बनाना और बच्चे पालना मुसमलानों और अहल-ए-किताब के बीच समान आधारों का एक और सुबूत है, क्योंकि अहल-ए-किताब महिला से निकाह करना एक मुसलमान मर्द के लिए जायज़ है और एक क़ानूनी शादी के लिए ज़रूरी तमाम क़ानूनी और नैतिक प्रावधान अहल-ए-किताब महिला से विवाह करने के लिए भी पूर किए जाएंगे ''जब कि उनका महर देदो और उनसे .इफ़त क़ायम रखा मक़सद हो न खुली बदकारी करना और न छुपी दोस्ती करना''। अहल-ए-किताब लोगों का मामला उन लोगों से बिल्कुल अलग है जो अल्लाह के साथ शिर्क करते हैं जिनसे शादी करना मुसलमानों के लिए मना है, और जो ''जहन्नम की तरफ़ बुलाते हैं जबकि अल्लाह अपनी महरबानी से जन्नत और बख़्शिश की तरफ़ बुलाते हैं'' (2:221)। यद्यपि क़ुरआन हज़रत ईसा को ख़ुदाई का मुक़ाम देने या ख़ुदा का बेटा कहने या तीन ख़ुदाओं में से एक मानने को पूरी तरह रद करता है (4:171; 5:17,72-73; 9:30-31), लेकिन क़ुरआन ने उन्हें कहीं भी मुशरिकों में नहीं गिना है, या उन्हें उन लोगों की तरह नहीं समझा है जो अल्लाह की वहदानियत का और आख़िरत के दिन का इंकार करते हैं यानि ''काफ़िर''। क़ुरआन हमेशा साफ़ तौर से यह इशारा करता है कि अहल-ए-किताब स्वयं अपने आप में एक अलग वर्ग हैं, और उनके साथ धार्मिक व नैतिक समान मूल्यों को रेखांकित करता है जो उनमें और मुसलमानों में समान है और जिन्हें उनमें से बहुत से लोग अपनाते हैं और व्यवहारिक रूप से बरतते भी हैं (3:113-115)।

नोटः यहां पाठकों को सूरत अलनिसा (4) की आयत 150-151 को सामने रखना चाहिए जिसमें अल्लाह ने साफ़ फ़रमाया है कि ''जो लोग अल्लाह और उसके पैग़म्बरों का इंकार करते हैं और जो चाहते हैं कि अल्लाह और अल्लाह के पैग़म्बरों के बीच फ़र्क़ रखें और कहते हैं कि हम कुछ पैग़म्बरों पर ईमान रखते हैं और कुछ पैग़म्बरों का इंकार करते हैं, और जो चाहते हैं कि बीच का एक रास्ता पकड़े लें, वो लोग निश्चित रूप से काफ़िर हैं और हमने काफ़िरों के लिए ज़लील करने वाली सज़ा तैयार कर रखी है'' (4:15-151) - अनुवादक

وَاٰتُوا النِّسَآءَ صَدُقٰتِهِنَّ نِحْلَةً ؕ فَاِنْ طِبْنَ لَكُمْ عَنْ شَیْءٍ مِّنْهُ نَفْسًا فَكُلُوْهُ هَنِیْٓـًٔا مَّرِیْٓـًٔا ۝۴

और अपनी औरतों को उनका मेहर .ख़ुशी .ख़ुशी दिया करो, और अगर वो मेहर का कोई हिस्सा माफ़ कर दें तो तुम उसको मज़ेदार और ख़ुशगवार समझ कर खा लिया करो। (4:4)

इस्लाम में पति के ज़िम्मे है कि वह पत्नि को ''महर''अदा करे यानि उससे निकाह करने की अपनी सच्ची इच्छा के प्रतीक के रूप में उसे कुछ प्रदान करे, और इस बात के प्रतीक के रूप में कि वह पत्नि के नैतिक और भौतिक अधिकार अदा करेगा। यह महर जो कि पति को अपनी ख़ुशी से देना होता है वह एक जायज़ शादी के लिए इस्लाम में क़ानूनी रूप से अनिवार्य है और यह पत्नि की मिल्कियत (सम्पत्ति) हो जाता है जिसे उसे अपनी मर्ज़ी से इस्तेमाल करने का अधिकार होता है। महर की रक़म कितनी हो यह दोनों पक्षों की आपसी सहमति पर छोड़ दिया गया है और क़ुरआन ने इसके लिए कोई पैमाना निर्धारित नहीं किया है (4:20)। लेकिन पैग़म्बर साहब की हदीसों से यह मालूम होता है कि महर लोहे की एक अंगूठी भी हो सकता है या क़ुरआन की शिक्षा देना भी हो सकता है अगर पत्नि उसे महर के रूप में स्वीकार करे। पत्नि अपनी मर्ज़ी और ख़ुशी से महर का कुछ अंश मआफ़ भी कर सकती है, या महर के प्रतीक के रूप में कोई दूसरी चीज़ भी स्वीकार कर सकती है। फिर यदि वह किसी समय पर किसी वजह से तलाक़ लेना चाहे तो वह महर का कुछ अंश या पूरा महर अपनी मर्ज़ी से वापस भी कर सकती है, और इस तलाक़ लेने (''ख़ुला'') की वजह महिला का अपना मूड या मर्ज़ी ही हो सकती है, पति की तरफ़ से किसी दुर्व्यवहार, अन्याय या उसे छोड़ देने जैसी किसी हरकत से तंग आ कर तलाक़ लेने पर मजबूर होना न हो (4:128)।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ كَرْهًا ؕ وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيْنَ

मोमिनों! तुमको ये जायज़ नहीं है के तुम ज़बरदस्ती औरतों के वारिस बन जाओ, और इस नीयत से उनको मत रोके रखा करो के तुमने जो उनको दिया है उसमें से कुछ ले लो, मगर ये के वो औरतें खुली नाशाईस्ता हर्कत

بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ ۚ وَ عَاشِرُوْهُنَّ
بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰۤى اَنْ
تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّ يَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا
كَثِيْرًا ﴿١٩﴾ وَ اِنْ اَرَدْتُّمُ اسْتِبْدَالَ زَوْجٍ
مَّكَانَ زَوْجٍ ۙ وَّ اٰتَيْتُمْ اِحْدٰىهُنَّ قِنْطَارًا
فَلَا تَاْخُذُوْا مِنْهُ شَيْـًٔا ؕ اَتَاْخُذُوْنَهٗ
بُهْتَانًا وَّ اِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿٢٠﴾ وَ كَيْفَ
تَاْخُذُوْنَهٗ وَ قَدْ اَفْضٰى بَعْضُكُمْ اِلٰى بَعْضٍ
وَّ اَخَذْنَ مِنْكُمْ مِّيْثَاقًا غَلِيْظًا ﴿٢١﴾

करें तो रोकना ठीक है, और उनके साथ अच्छी तरह रहा सहो, अगर वो तुम को नापसंद हों तो अजब नहीं के अल्लाह उसमें बहुत सी ख़ूबियां पैदा कर दे। और अगर तुम एक औरत को छोड़ कर दूसरी करना चाहो और पहली औरत को बहुत सा माल दे चुके हो तो उसमें कुछ ना लेना, क्या तुम उस पर इल्ज़ाम लगा कर और सरीह ज़ुल्म करके अपना माल लेते हो। तुम किस तरह उसको लेते हो जबकि तुम आपस में एक दूसरे को हवाले कर चुके हो और वो तुम से एक ज़बरदस्त और मज़बूत इक़रार भी ले चुकी हैं। (4:21)

महिलाओं को अपनी मर्ज़ी के विपरीत वसीयत लिखने पर मजबूर करना या अपने महर में से कुछ वापस करना, या उन्हें विधवा हो जाने के बाद किसी ख़ास आदमी से विवाह करने पर मजबूर करना, इस तरह की सभी नुक़सानदायक और नाइंसाफ़ी पर आधारित बातें घरेलू जीवन की सच्चाई के ख़िलाफ़ हैं जो कि पति पत्नि के बीच आपसी प्रेम और आपसी समानता से ही बनता है। अगर पत्नि को पति से ना इंसाफ़ी की शिकायत हो तो वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए पति को अदालत के सामने भी बुला सकती है। लेकिन क़ुरआन में पतियों को यह सावधान किया गया है कि अपनी तरफ़ से कोई ना इंसाफ़ी न करें ताकि परिवार के निजी मामले लोगों के सामने न आएं। पति से मिलने वाले महर पर औरत का पूरा अधिकार है और यह विवाह के समय ही पति पर वाजिब हो जाता है और उसी समय दे देना चाहिए, चाहे निकाह का रिश्ता कामयाबी से बना रहे या बीच में किसी वजह से समाप्त हो जाए। जो पति अपनी पत्नि को तलाक़ देने का इरादा करलें उन्हें क़ुरआन अपनी पत्नि के साथ अपने सम्बंध की याद दिलाता है और उन्हें किसी भी तरह ना इंसाफ़ी से बचने का निर्देश देता है। निकाह के तमाम नैतिक, भौतिक और क़ानूनी हवालों से निकाह के सम्बंध को बयान करना बहुत महत्वपूर्ण भी है और प्रभावपूर्ण भी।

कुछ व्याख्याकारों ने इस्लाम पूर्व युग के अरब में इस चलन का ज़िक्र किया है कि किसी आदमी की मृत्यू के बाद उसके सबसे क़रीबी सम्बंधी को यह हक़ था कि वह उसकी पत्नि को भी विरासत में अपने पास रखता था। लेकिन इस्लाम में पति को इसकी भी अनुमति नहीं है कि अपनी पत्नि की सम्पत्ति को विरासत में प्राप्त करने के लिए उस पर कुछ पाबन्दियां लगाए और दबाव बनाए, इसका तो सवाल ही नहीं कि पति की मृत्यू के बाद किसी व्यक्ति को यह

अधिकार हो, चाहे वह मृतक का कितना ही क़रीबी रिश्तेदार हो, कि उस के व्यक्तिगत अस्तित्व को क़ैद करे। अतःइस चलन को भी रोक दिया गया। अलबत्ता विधवा औरत अपनी मर्ज़ी से पति के किसी रिश्तेदार से शादी कर सकती है अगर वह उसके लिए उपयुक्त हो, और इस दूसेर व्यक्ति का मृतक से कोई सम्बंध होना इस विवाह के लिए वर्जित होने का आधार नहीं बनता है, जिस तरह दूसरी पत्नि के बेटे के मामले में या मृतक पति के पिता के मामले में मना है जिसका ज़िक्र निम्नलिखित आयतों में हैः

وَ لَا تَنْكِحُوْا مَا نَكَحَ اٰبَآؤُكُمْ مِّنَ النِّسَآءِ
اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً وَّ
مَقْتًا ؕ وَ سَآءَ سَبِيْلًا ﴿۲۲﴾ حُرِّمَتْ عَلَيْكُمْ
اُمَّهٰتُكُمْ وَ بَنٰتُكُمْ وَ اَخَوٰتُكُمْ وَ عَمّٰتُكُمْ
وَ خٰلٰتُكُمْ وَ بَنٰتُ الْاَخِ وَ بَنٰتُ الْاُخْتِ وَ
اُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِيْۤ اَرْضَعْنَكُمْ وَ اَخَوٰتُكُمْ مِّنَ
الرَّضَاعَةِ وَ اُمَّهٰتُ نِسَآىِٕكُمْ وَ رَبَآىِٕبُكُمُ
الّٰتِيْ فِيْ حُجُوْرِكُمْ مِّنْ نِّسَآىِٕكُمُ الّٰتِيْ
دَخَلْتُمْ بِهِنَّ ۫ فَاِنْ لَّمْ تَكُوْنُوْا دَخَلْتُمْ
بِهِنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ ۫ وَ حَلَآىِٕلُ
اَبْنَآىِٕكُمُ الَّذِيْنَ مِنْ اَصْلَابِكُمْ ۙ وَ اَنْ
تَجْمَعُوْا بَيْنَ الْاُخْتَيْنِ اِلَّا مَا قَدْ سَلَفَ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿۲۳﴾ وَّ الْمُحْصَنٰتُ
مِنَ النِّسَآءِ اِلَّا مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ ۚ
كِتٰبَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ ۚ وَ اُحِلَّ لَكُمْ مَّا وَرَآءَ
ذٰلِكُمْ اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُّحْصِنِيْنَ
غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ ؕ فَمَا اسْتَمْتَعْتُمْ بِهٖ
مِنْهُنَّ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ فَرِيْضَةً ؕ وَ لَا
جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا تَرٰضَيْتُمْ بِهٖ مِنْۢ

और तुम उन औरतों से निकाह ना किया करो जो तुम्हारे बाप दादा या नाना के निकाह में रह चुकी हों मगर जो बात गुज़र गई वो तो गुज़र ही गई, बेशक ये बड़ी बेहयाई और नफ़रत की बात है, और शरअन और अक़्लन बहुत बुरा तरीक़ा है। तुम पर हराम की गई हैं तुम्हारी मायें, तुम्हारी बेटियां, और और तुम्हारी बहनें, तुम्हारी फूफियां, तुम्हारी ख़ालायें, तुम्हारी भतीजियां और भांजियां और तुम्हारी वो मायें जो तुम को दूध पिला चुकी हैं और तुम्हारी दूध पिलाई बहनें, और तुम्हारी बीवियों की मायें और तुम्हारी बीवियों की बेटियां जो तुम्हारी परवरिश में रहती हैं, उन बीवियों की लड़कियां जिनसे सोहबत की है, अगर तुमने उन बीवियों से सोहबत नहीं की है तो तुम पर कोई गुनाह नहीं, और तुम्हारे उन बेटों की बीवियां जो तुम्हारी नस्ल से हों, और ये के तुम दो बहनों को एक साथ रखो, मगर जो पहले हो चुका, बेशक अल्लाह बड़ा ही बख़्शने वाला और बड़ी ही रहम वाला है। और शौहर वाली औरतें भी तुम पर हराम हैं मगर वो जो तुम्हारी मिलकियत में आ जायें वो हराम नहीं हैं, ये हुक्म अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है, और उन मेहरमात के सिवा दूसरी औरतें तुम पर हलाल हैं इस तरह के तुम माल खर्च करके उनसे निकाह कर लो, बशर्त ये के इफ़त मक़सूद हो, सिर्फ़ मस्ती निकालना ना हो, फ़िर जिन औरतो से निकाह करके फ़ायदा हासिल करो तो उनको उनका मेहर अदा कर दो जो मुक़र्रर किया गया हो, अगर मुक़र्रर होने के बाद

بَعۡدِ الۡفَرِيۡضَةِ‌ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيۡمًا حَكِيۡمًا ۝٢٤

आपस की रज़ामंदी से कोई कमी या बेशी कर लो तो तुम पर कोई गुनाह नहीं, बिला शुबह अल्लाह तो ख़ूब जानने वाला और बड़ी हिकमत वाला है। (4:22-24)

जिन रिश्तेदारों का ज़िक्र इन आयतों में किया गया है उनके साथ विवाह का मना होना इंसानी स्वभाव और क०मन सेंस के अनुरुप है, और विभिन्न सामाजिक परम्पराओं में यह मनाही थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रचलित रही है। अगर विवाह उन मर्द व औरत के बीच होता है जो एक दूसरे से क़रीबी सम्बंध नहीं रखते तो यह मनोवैज्ञानिक और ज़ाहिरी रूप से आम प्रायःएक अच्चा रिश्ता होता है। जिन औरतों से निकाह करना मना है उनकी सूची आयत 23:4 में दी गयी है। अगर मामला विपरीत हो और औरत की तरफ़ से निकाह का प्रस्ताव हो तो इस रिश्तेदारी में निकाह की मनाही का नियम तब भी लागू होगा और उसी हिसाब से इस आदेश की सम्बोधक महिलाएं इस तरह होंगी कि तुम्हारे बाप, चाचा, भाई, भाईयों के बेटे, बहनों के बेटे. वग़ैरह या उस मर्द पर ही यह नियम क़ुरआन के इन शब्दों के अनुसार लागू होगा जिसे निकाह का प्रस्ताव दिया जाए।

आयत में मां का शब्द इस्तेमाल हुआ है जिसमें दादी पर-दादी और नानी पर-नानी वग़ैरह भी शामिल हैं, और शब्द 'बेटी' में नवासी व पर-नवासी और पोती व पर-पोती वग़ैरह भी शामिल हैं। बहन शब्द में सगी बहन और सोतेली बहन शामिल हैं। पिता की बहन का मतलब दादा की बहन भी होता है और मां की बहन का मतलब नानी की बहन भी होता है। दूध शरीक भाई बहन, दूध पिलाने वाली औरत (रज़ाई मां) के साथ भी विवाह वर्जित है। दो सगी बहनों को एक साथ निकाह में रखना भी मना है और यह मनाही फूफी और भतीजी या ख़ाला और भांजी को भी एक साथ निकाह में रखने पर भी लागू होती है।

"महरम" यानि सगी रिश्तेदार औरतों से विवाह की मनाही वाली यह आयतें इस्लामी इंसाफ़ के आम सिद्धांतों पर ज़ोर देते हुए पूरी होती हैं कि ये मनाही इस आदेश के उतरने के बाद ही लागू होगी और इस आदेश के उतरने से पहले जो विवाह हो चुके हैं उन पर यह आदेश लागू नही होगा, और उन पर इस दुनिया में या आख़िरत में कोई सज़ा नहीं है।

इन आयतों में जो सिद्धांत दिए गए हैं उनके फ़ायदे इंसानी अनुभवों और आधुनिक वैज्ञानिक खोजों से साबित हो चुके हैं, फिर भी यह माना जाता रहा है कि क़रीबी रिश्तेदार से विवाह का फ़ायदा यह है कि विरासत परिवार के अन्दर ही रहेगी। हज़रत उमर से जुड़ी एक रिवायत में इस पर चेताया गया है और लोगों को सलाह दी गयी है कि अपने परिवार में विवाह न करें।

وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ مِنْكُمْ طَوْلًا اَنْ يَّنْكِحَ
الْمُحْصَنٰتِ الْمُؤْمِنٰتِ فَمِنْ مَّا مَلَكَتْ
اَيْمَانُكُمْ مِّنْ فَتَيٰتِكُمُ الْمُؤْمِنٰتِ ؕ وَاللّٰهُ
اَعْلَمُ بِاِيْمَانِكُمْ ؕ بَعْضُكُمْ مِّنْۢ بَعْضٍ ۚ
فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَ اٰتُوْهُنَّ
اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ
مُسٰفِحٰتٍ وَّ لَا مُتَّخِذٰتِ اَخْدَانٍ ۚ فَاِذَآ
اُحْصِنَّ فَاِنْ اَتَيْنَ بِفَاحِشَةٍ فَعَلَيْهِنَّ
نِصْفُ مَا عَلَى الْمُحْصَنٰتِ مِنَ الْعَذَابِ ؕ
ذٰلِكَ لِمَنْ خَشِيَ الْعَنَتَ مِنْكُمْ ؕ وَ اَنْ
تَصْبِرُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿٢٥﴾
يُرِيْدُ اللّٰهُ لِيُبَيِّنَ لَكُمْ وَيَهْدِيَكُمْ سُنَنَ
الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ وَيَتُوْبَ عَلَيْكُمْ ؕ وَاللّٰهُ
عَلِيْمٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٦﴾ وَاللّٰهُ يُرِيْدُ اَنْ يَّتُوْبَ
عَلَيْكُمْ ۫ وَ يُرِيْدُ الَّذِيْنَ يَتَّبِعُوْنَ
الشَّهَوٰتِ اَنْ تَمِيْلُوْا مَيْلًا عَظِيْمًا ﴿٢٧﴾ يُرِيْدُ
اللّٰهُ اَنْ يُّخَفِّفَ عَنْكُمْ ۚ وَخُلِقَ الْاِنْسَانُ
ضَعِيْفًا ﴿٢٨﴾

और जो तुम में से मोमिना आज़ाद औरत से निकाह की क़ुदरत नहीं रखता तो वो मोमिना लौंडी से निकाह कर ले जो अपने आपस में की मिलकियत में हों, और अल्लाह तुम्हारे ईमान को .ख़ूब जानता है, तुम आपस में सब बराबर हो, सो उनके मालिकों की इजाज़त से उनसे निकाह कर लिया करो, और उनको उनके मेहर दस्तूर के मुताबिक़ अदा कर दिया करो, इस तौर पर के मनकूहा बनाई जाए, ना अलानिया बदकार हों, और .ख़ुफ़िया आशनाई करने वाली हो, अगर वो निकाह में आकर भी बदकारी करे, तो जो सज़ा आज़ाद औरतों के लिए है उसकी आधी सज़ा लौंडी के लिए है, यानी 50100 कोड़े, ये रियायत उसके लिए है जो तुम में ज़िना का अंदेशा रखता हो, और अगर तुम सब्र करो, तो .ज़्यादा बेहतर है, और अल्लाह तो बड़ा ब.ख़्शने वाला और रहम करने वाला है। और अल्लाह तो ये चाहता है के वो अपने अहकामात तुम को खोल कर बयान कर दे, और लोगों के तरीक़े बता दे, और तुम पर तवज्जह फ़रमाए, और अल्लाह तो .ख़ूब जानने वाला है, और बड़ी हिकमतों वाला है। और अल्लाह तो तुम पर तवज्जाह करना चाहता है, और जो अपनी .ख़्वाहिशात के ताबे है वो ये चाहते हैं के तुम सीधे रास्ते से गुमराह हो जाओ और बहुत दूर चले जाओ। अल्लाह तो तुम्हारे बोझ को हल्का करना चाहता है, और इन्सान तो पैदा ही हुआ है कमज़ोर और नहीफ़। (4:25-28)

इनमें से पहली आयत में परिवार के मामलों के सिलसिले में विशेष निर्देश दिए जाने के अलावा इस्लाम के कई अनिवार्य सिद्धांत बयान हुए हैं। पहला यह कि ग़ुलाम भी आज़ाद लोगों के समान हैं, और यह वह सिद्धांत है जो इस्लाम के इस पूरे दृष्टिकोण का आधार है कि वह सैद्धांतिक रूप से ग़ुलामी का विरोधी है और उसे समाप्त करने के लिए एक व्यापक रणनीति अपनाता है और क्रमवार मौलिक बदलावों की एक व्यवस्था बनाता है। दूसरा यह स्पष्ट सिद्धांत और नियम कि ग़ुलाम औरत के साथ यौन सम्बंध केवल खुले रूप से विवाह करने के

बाद ही जायज़ है:''इन लोण्डियों के साथ उनके मालिकों की इजाज़त लेकर निकाह कर लो और विधि अनुसार उनका महर भी अदा कर दो शर्त यह है कि अफ़ीफ़ा हों, ने ऐसी खुल्लम खुल्ला बदकारी करें और न छुप छुपा कर दोस्ती करना चाहें। ऐसी ग़ुलाम औरतों से विवाह भी एक समय में ज़्यादा से ज़्यादा चार शादियों की इजाज़त के दायरे में ही है, जिसकी गुंजाइश विशेष स्थितियों के लिए रखी गयी है और यह बहु पत्नि विवाह के चलन को सीमित करने के लिए है'' (देखें पहले ज़िक्र की गयी आयत 3:4 और उसकी व्याख्या)।

लेकिन चूंकि इस्लाम के सिद्धांतों और उसके व्यापक प्रोग्राम का मक़सद ग़ुलामी को क्रमवार ख़त्म करना था इसलिए उपरोक्त आयत तीसरा बिन्दु यह देती है कि जो कोई अपने जैविक मांगों के दबाव से राहत पाने के लिए किसी ग़ुलाम औरत से विवाह करे तो उसे दूसरी समस्याओं का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि इस स्थिति में आदमी उस माहौल से अनजान और अनमेल हो सकता है जिस माहौल में उस ग़ुलाम लड़की का पालन हुआ है। ग़ुलाम औरतों पर ग़ुलामी के अप्रिय मानसिक और व्यवहारिक प्रभाव पड़ते थे, ख़ास तौर से इस्लाम के प्रारम्भिक युग में जबकि ग़ुलामी के ख़ात्मे के लिए इस्लाम की व्यापक योजना अमल में नहीं आई थी, और इस वजह से उन्हें फुसलाना और बहका देना आसान था। इस्लाम की न्याय व्यवस्था उनकी कठिनाइयों को समझती थी, इसलिए यह प्रावधान किया गया कि किसी बुरी हरकत पर जो सज़ा आज़ाद औरत को दी जाएगी, ग़ुलाम औरत को उसकी आधी सज़ा दी जाएगी। इस तरह की नैतिक कमज़ोरियों को भी ज़हन में रखना होगा, और ग़ुलामी सामूहिक रूप से इस्लाम के सिद्धांतों के ख़िलाफ़ है, अतःऐसी महिला से जिसके परिवेश की पूरी जानकारी न हो, विवाह करने के बजाए ''यह ज़्यादा बहतर है कि तुम सब्र करो''। ग़ुलामी को पुरी तरह ख़त्म करने से पहले और सभी ग़ुलामों के लिए आज़ाद व्यक्तियों की तरह जीवन बिताने की अनुकूल स्थिति बनने से पहले के अन्तरिम काल में ग़ुलाम मर्द और ग़ुलाम औरत आपस में विवाह करने के लिए प्राकृतिक रूप से ज़्यादा अनुकूल थे।

ग़ुलामी को पूरी तरह समाप्त करने की व्यापक योजना को क्रमवार अमल में लाने के लिए इन अस्थाई (अल्पकालिक) और दूरगामी (दीर्घकालिक) प्रावधानों को समझना कुछ मुश्किल नहीं है कि अल्लाह की तरफ़ से आने वाली हिदायत में यह बिल्कुल स्पष्ट है। इस योजना को व्यक्तियों की मानसिक व सामाजिक स्थितियों की अनुकूलता के साथ पूरा करने के लिए यह सिद्धांत और यह कार्ययोजना ज़रूरी थी कि उनमें जल्दबाज़ी से काम नहीं लिया गया, इससे कोई असंतोष पैदा नहीं हुआ, कोई औपचारिक घोषणा नहीं की गयी, निर्दयता और अदूरदर्शिता से काम नहीं लिया गया, इन सारी समस्याओं से बचने के लिए यह क्रमवार कार्ययोजना नहीं अपनाई गयी होती और अन्तरिम उपाय न किए गए होते तो इससे उद्देश्य ही ख़त्म हो जाता। अल्लाह की यह आख़री हिदायत इस बात को स्पष्ट करती है कि यह इंसानी स्वभाव से कितना

अधि मेल रखती है, क्योंकि अल्लाह वह है जिसने इंसान को पैदा किया है और इंसानों की हिदायत के लिए अपने पैग़म्बर भेजे और किताबें उतारीः''अल्लाह चाहते हैं कि (अपनी आयतें) तुम से खोल खोल कर बयान फ़रमाएं और तुम्हें बीत चुके लोगों के तरीक़े बताएं और तुम पर महरबानी करें और अल्लाह जानने वाले हिकमत वाले है'', ''और अल्लाह तो चाहते हैं कि तुम पर महरबानी करें और जो लोग अपनी इच्छाओं के पीछे चलते हैं वो चाहते हैं कि तुम सीधे रास्ते से भटक कर दूर जा पड़ो। अल्लाह चाहते हैं कि तुम पर से बोझ हल्का करें और इंसान कमज़ोर पैदा हुआ है''(4:26-28), ''तो तुम एक तरफ़ के हो कर दीन पर सीधा मुंह किए चले जाओ (और) अल्लाह की प्रकृति को जिस पर अल्लाह ने लोगों को पैदा किया है (अपनाए रहो) अल्लाह की बनाई हुई (प्रकृति) में बदलाव नहीं हो सकता, यही सीधा दीन है लेकिन अधिकतर लोग जानते नहीं''(30:30)।

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَرِثُوا النِّسَآءَ كَرْهًا ۗ وَلَا تَعْضُلُوْهُنَّ لِتَذْهَبُوْا بِبَعْضِ مَآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيْنَ بِفَاحِشَةٍ مُّبَيِّنَةٍ ۚ وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا ﴿١٩﴾

मोमिनों! तुमको ये जायज़ नहीं है के तुम ज़बरदस्ती औरतों के वारिस बन जाओ, और इस नीयत से उनको मत रोके रखा करो के तुमने जो उनको दिया है उसमें से कुछ ले लो, मगर ये के वो औरतें खुली नाशाईस्ता हर्कत करें तो रोकना ठीक है, और उनके साथ अच्छी तरह रहा सहो, अगर वो तुम को नापसंद हों तो अजब नहीं के अल्लाह उसमें बहुत सी ख़ूबियां पैदा कर दे। (4:19)

وَاَنْكِحُوا الْاَيَامٰى مِنْكُمْ وَالصّٰلِحِيْنَ مِنْ عِبَادِكُمْ وَاِمَآئِكُمْ ۗ اِنْ يَّكُوْنُوْا فُقَرَآءَ يُغْنِهِمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۗ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٣٢﴾ وَلْيَسْتَعْفِفِ الَّذِيْنَ لَا يَجِدُوْنَ نِكَاحًا حَتّٰى يُغْنِيَهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ۗ وَالَّذِيْنَ يَبْتَغُوْنَ الْكِتٰبَ مِمَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ فَكَاتِبُوْهُمْ اِنْ عَلِمْتُمْ فِيْهِمْ خَيْرًا ۖ وَّاٰتُوْهُمْ مِّنْ مَّالِ اللّٰهِ الَّذِيْٓ

और जो तुम में बे निकाह हों उनका निकाह कर दिया करो, और जो तुम्हारे ग़ुलाम और लोंडियां नेक हों उनका भी, अगर वो मुफ़लिस होंगे तो अल्लाह अपने फ़ज़्ल से .ख़ुशहाल कर देगा, और वो बहुत वुस्अत वाला और .ख़ूब जानने वाला है। और जो ग़ुर्बत के सबब शादी नहीं कर सकते वो पाकदामनी पर क़ायम रहें, यहां तक के अल्लाह उनको अपने फ़ज़्ल से ग़नी कर दे, और जो तुम्हारे ग़ुलाम लौंडी तुम से मकातेबत चाहें, अगर तुम उनमें सलाहियत और नेकी पाओ तो उनसे मुकातेबत कर लो, और .ख़ुदा ने जो माल तुम को दिया है उसमें से

اٰتٰكُمْ ؕ وَلَا تُكْرِهُوْا فَتَيٰتِكُمْ عَلَى الْبِغَآءِ اِنْ اَرَدْنَ تَحَصُّنًا لِّتَبْتَغُوْا عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ؕ وَمَنْ يُّكْرِهْهُّنَّ فَاِنَّ اللّٰهَ مِنْۢ بَعْدِ اِكْرَاهِهِنَّ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۳۳

उनको भी दे दो, और अपनी लौंडियों को अगर वो पाकदामन रहना चाहें, दुनिया के फ़ायदे हासिल करने के लिये उनको बदकारी के लिये मजबूर ना करो, और जो उनको मजबूर करेगा, तो उनकी उस मजबूरी के बाद अल्लाह माफ़ करने वाला मेहरबान है। (24:32-33)

ऊपर की आयत में ग़ुलाम (मर्द या औरत) रखने वाले व्यक्तियों से कहा गया है कि अगर ग़ुलाम मुआवज़े के बदले आज़ादी की मांग करे तो उसकी यह मांग स्वीकार करें और उसके साथ समझौता लिखलें, और सभी माध्यमों से उसकी हर सम्भव सहायता करें ताकि वह आज़ाद हो जाए, ख़ास तौर से इस स्थिति में कि जब मालिक को अपने ग़ुलाम के अन्दर कोई भलाई (गुण) दिखाई देता हो। क़ुरआन के अनुसार, और फिर इस पर फ़क़ीहों के चिन्तन के अनुसार, ग़ुलाम को आज़ाद हो जाने में उसकी मदद करना व्यक्तिगत और सामाजिक ज़िम्मेदारी है, और ग़ुलाम को यह मौक़ा दिया जाना चाहिए कि वह आज़ाद हो कर मेहनत मज़दूरी करे और आज़ादी के लिए तय किए मआवज़े को अदा करने के लायक़ बने। इसके अलावा न केवल वो लोग जो किसी ग़ुलाम के सचमुच मालिक हों, बल्कि पूरा समाज जिसका प्रतिनिधित्व राज्य के शासक और शासन करने वाली संस्थाएं व अधिकारी करते हैं, उनकी भी यह ज़िम्मेदारी है कि वो इस मामले में ग़ुलाम की मदद करें, और सार्वजनिक ख़ज़ाना भी समाज की ही सम्पत्ति होती है, और वह व्यक्ति जो ग़ुलाम का आक़ा है इस मामले में कुछ क़ुरबानी व उपकार से भी काम ले सकता है। यहां क़ुरआन व्यक्तियों और समाज को यह ध्यान दिलाता है कि उनके पास जो दौलत है उसका असिल मालिक अल्लाह तआला स्वयं हैं जिन्होंने पूरी सृष्टि को और उसमें मौजूद सभी संसाधनों को पैदा किया है, और माल रखने वाले व्यक्तियों या समाज को अल्लाह ने माल का केवल रखवाला (मुतवल्ली) बनाया है और व्यक्तियों व समाज को यह दौलत निवेश, ऐक्सचेंज और ज़रूरी चीज़ों पर ख़र्च करना चाहिए अल्लाह की हिदायत के मुताबिक़। व्यक्तियों और समाज को अल्लाह की तरफ़ से दिए गए संसाधन और सम्पत्तियां उन पर एक सामूहिक ज़िम्मेदारी डालती हैं, और माल रखने वाले व्यक्तियों को माल पर बे-रोक़ टोक और असीमित अधिकार नहीं दिए जाने चाहिएं।

अगर दूसरी आयत का पहला हिस्सा इस बात पर ज़ोर देता है कि जो ग़ुलाम मुआवज़े के बदले आज़ादी का इच्छुक हो उसकी हर सम्भव मदद की जाए, इसके बाद का हिस्सा किसी ग़ुलाम लड़की को वेश्यावृत्ति के लिए फुसलाने या दबाव में लाने के ख़िलाफ़ चेताता है चाहे यह वेश्वावृत्ति मालिक की आमदनी में बढ़ोतरी के लिए हो या ख़ुद ग़ुलाम औरत आज़ाद होने और मुआवज़े की रक़म जुटाने के लिए करे। इससे पहले वाली आयत (6:32) भी साफ़ तौर से यह

बताती है कि ग़ुलाम के लिए भी और आज़ाद आदमी के लिए भी यौन सम्बंध बनाने का माध यम केवल विवाह है। इसके अलावा, लड़की को अपना शरीर बेच कर पैसा कमाने के लिए मजबूर करने से यहां जो मना किया गया है तो यह आदेश उन आज़ाद लड़कियों के मामले में भी लागू होता है जिनका विवाह आज लम्बे चौड़े दहेज, शानदार घर और क़ीमती फ़र्नीचर वग़ैरह की इच्छा और विवाह के दूसरे ख़र्चों की वजह से कठिन हो गयी हैं और जिसकी वजह से कोई लड़की मजबूर हो कर इस दुनिया के माल मताअ को हासिल करने के लिए मजबूर हो जाए।

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ ؕ فَالصّٰلِحٰتُ قٰنِتٰتٌ حٰفِظٰتٌ لِّلْغَيْبِ بِمَا حَفِظَ اللّٰهُ ؕ وَالّٰتِیْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِی الْمَضَاجِعِ وَاضْرِبُوْهُنَّ ۚ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيًّا كَبِيْرًا ﴿۳۴﴾ وَاِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوْا حَكَمًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَهْلِهَا ۚ اِنْ يُّرِيْدَآ اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ بَيْنَهُمَا ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا خَبِيْرًا ﴿۳۵﴾

मर्द औरतों के मुहाफ़िज़ और निगराँ हैं, इसलिए के अल्लाह ने बाज़ पर फ़ज़ीलत दी, और इसलिए के मर्द अपना माल भी उन पर खर्च करते हैं, फिर नेक बीवियां फ़रमांबरदार होती हैं, और उनकी ग़ैर हाज़री में अल्लाह की हिफ़ाज़त के साथ उनके घर की निग्रान होती हैं, और जिन औरतों से तुम को अंदेशा हो के वो सरकशी करने लगी हैं तो पहले उनको समझाओ, फिर उनके साथ सोना लेटना तर्क कर दो, फिर ज़ोदोकोब कर दो, फिर अगर वो तुम्हारी इताअत करने लगें तो फिर बहाना तलाश मत करो, बिलाशुबह अल्लाह बड़ी रफ़अत वाला और अज़मत वाला है। और अगर तुम को अंदेशा हो के मियां बीवी में कोई नाचाक़ी है तो तुम सब एक आदमी मुनसिफ़ मिज़ाज बही .ख्वाहे .ख़ानदान मियां की जानिब से और एक ऐसा ही आदमी बीवी की तरफ़ से तसफ़िया के लिए चुन लो जो फ़ैसले की सलाहियत रखता हो और दोनों मुनसिफ़ चाहेंगे के इस्लाह हो जाए तो अल्लाह भी उन मियां बीवी में इत्तिफ़ाक़ कर देंगे, बिलाशुबह अल्लाह तो .ख़ूब जानने वाला है और .ख़बरदार है। (4:34-35)

इनमें से पहली आयत यह स्पष्ट करती है कि आदमी का अपनी पत्नि और बच्चों से सम्बंध उसके ऊपर एक ज़िम्मेदारी का है, यह उन पर अपना बर्चस्व बनाने के लिए नहीं है। अल्लाह ने महिलाओं पर 9 महीने तक बच्चे को अपने अस्तित्व से साथ लेकर चलने का बोझ डाला है, फिर जन्म का कष्ट उठाने का भार उन पर डाला है, फिर वह बच्चे को पालती भी है और जब तक बच्चा अपनी ज़रूरतें ख़ुद पूरी करने योग्य नहीं हो जाता तब तक मां ही बच्चे

की सारी ज़रूरतें पूरी करती है :" उसकी मां पीड़ा पर पीड़ा सहन करके पेट में उठाए रखती है (फिर उसको दूध पिलाती है) और दो वर्ष में उसका दूध छूटता है " (31:14), "उसकी मां ने उसको तकलीफ़ से पेट में रखा और तकलीफ़ से ही जना" (46:15)। मर्द चूंकि इस बोझ से मुक्त है, इसलिए उसकी ज़िम्मेदारी औरत की मदद करना और उसे सहारा देना है और पत्नि व बच्चों की पूरी देखभाल करना और उनकी ज़रूरतें पूरी करना उसके ज़िम्मे है। अतःमर्द की यह क़ानूनी ज़िम्मेदारी है, लेकिन यह केवल उसके शीरिक गठन की वजह से है, किसी लैंगिक भेदभाव की वजह से नहीं है। मर्द जब तक अपनी पत्नि और बच्चों के प्रति अपनी यह क़ानूनी और नैतिक ज़िम्मेदारियां पूरी करता रहता है तब तक वह पत्नि और बच्चों की तरफ़ से प्रेम और सम्मान का हक़दार होता है, बर्चस्व बनाए रखने और उनको अपना ग़ुलाम समझने का हक़दार नहीं होता। और यह कि क़ुरआन चूंकि अधिकार और ज़िम्मेदारियां देता है, और उसने कुछ को कुछ के मुक़ाबले प्रतिष्ठि किया है और इसलिए भी कि मर्द अपना माल ख़र्च करते हैं, जबकि कुछ स्थितियों में पत्नि को पति से भी ज़्यादा छूट मिली हुई है। पति के बीमार होने पर या और किसी मजबूरी से घर की आर्थिक ज़रूरतें पूरी करने की ज़िम्मेदारी औरत पर ही आ जाती है और वह घर का ख़र्च चलाने के साथ घर की देखरेख और सभी मामलों को अंजाम देने की ज़िम्मेदार बन जाती है। जब पति और पत्नि दोनों मिल कर घर का ख़र्च उठा रहे हों तो घर की ज़रूरतें पूरी करने में दोनों की स्थिति एक जैसी हो जाती है।

क़ुरआन यह भी बयान करता है कि औरतों का हक़ (मर्दों पर) वैसा ही है जैसा रीति के अनुसार (मर्दों का हक़) औरतों पर है अलबत्ता मर्दों को औरतों पर प्रधान किया गया है (2:228)। एक बार फिर यह बात ध्यान में रहे कि यह प्रधानी बर्चस्व के अर्थ में नहीं है बल्कि ज़्यादा ज़िम्मेदार होने के आधार पर है। किसी पत्नि का पति के प्रति ज़िम्मेदारियां पूरी करने में कमी का अर्थ यह नहीं है कि पति के ऊपर पत्नि की जो ज़िम्मेदारियां हैं उनमें कमी करने का आधार पति को मिल जाएगा। हज़रत इब्ने अब्बास ने "फ़ज़ीलत" का अर्थ मर्द पर अधि ाक ज़िम्मेदारियां होना बताया है ताकि वह ख़ुद पर और अधि भार उठाए और पत्नि के साथ शालीनता का व्यवहार करते हुए उसकी भौतिक और नैतिक ज़रूरतों को और बढ़ चढ़ कर पूरा करे। एक और व्याख्याकार इब्ने अतिय्या का कथन क़ुरतुबी ने नक़ल किया है कि उन्होंने इब्ने अब्बास की इस व्याख्या को शानदार और ज़बरदस्त ठहराया है। बहरहाल, जैसा कि पहले कहा गया कि इस "फ़ज़ीलत" या प्रधानी से किसी भी तरह घरेलू जीवन में हाकिम बन जाने का आधार नहीं मिलता, क्योंकि घर पति और पत्नि दोनों की आपसी सहमति से और आपसी सहयोग व सलाह से चलता है (2:223)।

हालांकि ऐसे मर्द और औरतें भी हैं जो अपने निजी और छुपे मामलों की हिफ़ाज़त भी इसी तरह करते हैं जिस तरह अल्लाह की हिदायत के अनुसार करना चाहिए, लेकिन ऐसे लोग भी

हैं जिनका अखड़पन, निशृंस और आक्रामक व्यवहार ज़ाहिर होता है और उनके इस व्यवहार के नतीजे ख़तरनाक होते हैं। यह आयत महिलाओं के अखड़पन, विद्रोहपूर्ण और आक्रामक व्यवहार के तीन स्तरों के सम्बंध में निपटने के लिए तीन तरीक़े बताती है:उन्हें समझाना, उनसे अपना बिस्तर अलग कर लेना और उनकी पिटाई लगाना। यह तीन तरह के उपाय हैं जो स्थिति के अनुसार अपनाए जा सकते हैं, यह एक निरन्तर क्रम नहीं है कि जिसे जारी रखा जाए। जहां काम केवल समझाने बुझाने से हो जाए वहां फिर और आगे क़दम उठाने की ज़रूरत नहीं है और जहां केवल पहले दो उपाय काफ़ी हों वहां फिर पिटाई लगाने का कोई आधार नहीं है। पिटाई लगाने की नौबत तभी आएगी जब पत्नि का विद्रोहपूर्ण व्यवहार इतना बढ़ जाए कि वह स्वयं को, बच्चों को या पति को नुकसान पहुंचाने पर उतारू हो जाए। ऐसी स्थिति जब अचानक पैदा हो जाए तो फिर समझाना बुझाना और बिस्तर अलग कर देना काम नहीं आता, और उसके आक्रामक व्यवहार को रोकने के लिए शरीरिक बल प्रयोग करना ज़रूरी हो जाता है। पैग़म्बर साहब ने अपने अन्तिम हज के सम्बोधन में औरत की इस हरकत को :''हश''(बेशर्मी) की हरकत के समान रखा है जिसके कारण उसे मार लगाने की इजाज़त दी है, और हदीस के व्याख्याकारों ने और फ़क़ीहों ने सज़ा के इस रूप को बहुत ही हल्की फुल्की मार और सांकेतिक पिटाई तक सीमित समझा और समझाया है, ऐसी हल्की सी मार जैसे मिस्वाक (दातून) से मारा जाए। यहां जो :''हश'' हरकत का ज़िक्र है वह ज़िना या ऐसे कुकर्म से बिल्कुल अलग है जिसके लिए छानबीन, मुक़दमा और सज़ा देने की ज़िम्मेदारी शासन या शासकों पर रखी गयी है।

चूंकि क़ुरआन ने और ख़ुद पैग़म्बर साहब ने जीवन भर मर्दों को बार बार इसका निर्देश दिया कि महिलाओं के साथ न्यायपूर्ण और दयाशीलता का व्यवहार करें और उनके विरुध कोई भी नैतिक और शरीरिक हिंसा न करने के लिए सावधान किया है यहां तक कि लड़ाई के मामले में भी, इसलिए उपरोक्त आयत में मर्द को जो सख़्ती करने और सज़ा देने की इजाज़त दी गयी है उसे केवल एक क़ानूनी नज़र से समझा जा सकता है कि यह ऐसे गम्भीर स्थिति से निपटने के लिए है जो पूरे परिवार को सुरक्षित और सलामत रखने के लिए ख़तरा बन जाए। अगर पत्नि की तरफ़ से पति के विरुध इस सख़्ती या मारपीट की शिकायत सम्बंधित अधिकारियों से की जाए या अदालत में मुक़दमा सुना जाए तो ऐसी स्थिति में यदि पति स्थिति की इस गम्भीरता को साबित करने में असफ़ल रहा जिसके कारण उसे पत्नि को शरीरिक दण्ड देने की अनुमति हो तो वह इसके लिए मुआवज़ा मांग सकती है, और तलाक़ की मांग भी कर सकती है।

पत्नि की ऐसी सरकशी से या घरेलू सम्बंधों में ख़राबी से निपटने के लिए क़ुरआन सबसे पहले चरण पर यह सीख देता है कि पति व पत्नि दोनों के घर वालों की तरफ़ से एक एक मध्यस्त को बुलाया जाए जो सम्बंधों को ठीक करने और शिकायत दूर करने की कोशिश करें,

इन मध्यस्तों की कोशिश को अल्लाह की मदद प्राप्त होगी क्योंकि वह ''अलीम''व ''ख़बीर''हैं और गम्भीर व सच्ची कोशिशों में मदद करते हैं। यह भी ज़हन में रखन चाहिए कि इस्लामी न्याय के आम सिद्धांत किसी व्यक्ति को किसी विवाद में क़ानून को हाथ में लेने की अनुमति नहीं देते सिवाय इसके कि आत्मरक्षा में कुछ करना वास्तव में ज़रूरी हो जाए। क़ानून लागू करने की ज़िम्मेदारी राज्य के शासकों की है ना कि विवाद में शामिल किसी पक्ष की चाहे वह पीड़ित ही हो (देखें चोरी व ज़िना की सज़ा से सम्बंधित आयतें 5:38(24:2)।

وَ اِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تُقۡسِطُوۡا فِى الۡيَتٰمٰى
فَانْكِحُوۡا مَا طَابَ لَـكُمۡ مِّنَ النِّسَآءِ مَثۡنٰى
وَثُلٰثَ وَرُبٰعَ ۚ فَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تَعۡدِلُوۡا
فَوَاحِدَةً اَوۡ مَا مَلَـكَتۡ اَيۡمَانُكُمۡ ؕ ذٰ لِكَ
اَدۡنٰٓى اَلَّا تَعُوۡلُوۡا ؕ‏ ﴿۳﴾

अगर तुम को अन्देशा हो के तुम यतीम लड़कियों के बारे में इन्साफ़ ना कर सकोगे तो और औरतों से जो तुम को पसंद हों निकाह कर लो, दो दो औरतों से, तीन तीन औरतों से, चार चार औरतों से, पस अगर तुमको अन्देशा हो के तुम इन्साफ़ ना कर सकोगे तो फ़िर एक ही काफ़ी है, या जो लौंडी तुम्हारी मिलकियत में हो वही सही, इस सूरत में ज़्यादती ना होने की तवक़्क़ो क़रीब तर है। (4:3)

(सबके साथ) समान व्यवहार न कर पाने की आशंका और ''जो औरतें तुम्हें पसन्द हों दो दो या तीन तीन या चार उन से निकाह करो'' के बीच तार्किक सम्बंध को समझने में प्राथमिक युग के और फिर उनके बाद के मुफ़स्सिरों ने बहुत प्रयास किए हैं। अलतिबरी ने सईद बिन जुबैर और क़तादुह जैसे तबिईन के नज़रिए से सहमति व्यक्त की है जो मुहम्मद असद के शब्दों में यह है कि जिस तरह तुम्हें उचित रूप से यतीमों के हितों के सिलसिले में अन्याय की आशंका होती है इसी तरह की सावधानी उन औरतों के हितों और अधिकारों का ख़्याल करने में भी करो जिन से तुम विवाह करते हो।

एक और व्याख्या जो पैग़म्बर साहब की पत्नि मुसलमानों की मां आयशा रज़ि के नाम से नक़ल की गयी है उसमें इस आयत को ऐसी यतीम बच्ची के संरक्षक से सम्बंधित समझा गया है जिससे वह व्यक्ति शादी करने का इच्छुक हो लेकिन जिसे आशंका हो कि उसे पत्नि की तरह बरतने में उसके साथ न्याय और ईमानदारी का मामला न कर सकेगा या उसकी सम्पत्ति के मामले में ईमानदारी नहीं बरत सकेगा इस वजह से कि वह पहले से ही संरक्षक था, ऐसे आदमी को सलाह दी गयी है कि उस यतीम बच्ची से निकाह करने के बजाए जो दूसरी औरतें पसन्द हों उनसे निकाह कर ले (और देखें आयत 4:427)। यहां इस बात को भी जोड़ा जा सकता है कि आयत का संदर्भ लड़ाई या उसे जैसे किसी और कारण से यतीम बच्चियों या बे सहारा

औरतों की संख्या बढ़ जाने की स्थिति के लिए भी हो सकती है, ख़ास तौर से जब हम इस बात को ध्यान में रखें कि यह आयत उहद की लड़ाई के बाद उतरी थी। इस स्थिति में एक से अधिक महिलाओं से शादी करना स्थिति से निपटने के लिए एक अस्थाई बन्दोबस्त रहा होगा, इस तरह यह एक सशर्त अनुमति है ना कि एक साधारण सिद्धांत। आयत में साफ़ साफ़ कहा गया है अगर इस बात की आशंका हो कि (सब औरतों से) समान व्यवहार न कर सकोगे तो एक महिला (काफ़ी है) या बान्दी जिसके तुम मालिक हो, इससे तुम बे इंसाफ़ी से बच जाओगे। इसी सूरत की एक और आयत मुकम्मल और पूरा पूरा इंसाफ़ के नामुमकिन होने पर ज़ोर देती है और तुम चाहे कितना ही चाहो औरतों में हरगिज़ बराबरी नहीं कर सकोगे तो ऐसा भी न करना कि एक ही की तरफ़ ढल जाओ और दूसरी को (ऐसी स्थिति में) छोड़ दो कि जैसे अधड़ में लटक रही है और आपस में सहमति कर लो और परहेज़गारी करो तो अल्लाह बख़्शने वाला महरबान है (4:129)। यह आयत यद्यपि एक तरफ़ एक से अधिक पत्नियों के साथ मुम्किन और व्यवहारिक समान बर्ताव की सम्भावना का दरवाज़ा खोलती है और इसी आधार पर एक से अधिक महिलाओं से विवाह की अनुमति देती है लेकिन दूसरी तरफ़ इस बात की भी अनदेखी नहीं करना चाहिए कि यही आयत इंसानी स्वभाव के मनोवैज्ञानिक आधार को रेखांकित करती है यानि समान व्यवहार न कर पाने की कमज़ोरी, और इस बात को अधिकतर मामलों में एक तरफ़ नहीं डाला जा सकता। अतः, ऐसा असुरक्षित जोखिम उठाने से बचने में ही समझदारी है जब तक कि यह सामाजिक रूप से ज़रूरी न हो जाए और एक ज़्यादा गम्भीर ना इंसाफ़ी को दूर करना एक तक़ाज़ा न हो जाए इस स्थिति में विवाह की योग्यता रखने वाली अविवाहित महिलाओं की संख्या विवाह की योग्यता रखने वाले मर्दों की संख्या से बहुत ज्यादा न हो जाए। किसी स्वस्थ और अच्छे समाज में कोई औरत व्यवहारिक रूप से तब तक दूसरी पत्नि बनना मंज़ूर नहीं करेगी जब तक कि उसके लिए इकलौती पत्नि बनने का अवसर ही न रह जाए।

उपरोक्त बिन्दुओं के अलावा आयत में जो तुम्हारी मिलकियत में हैं (यानी बान्दी) को भी क़ानूनी और जायज़ शादी के दर्जे में रखा गया है जिसकी कुछ शर्तें और निश्चित नतीजे हैं। क्योंकि इस्लाम के शुरू में और ग़ुलाम की पूरी तरह सामाप्ति से पहले के अन्तिरम काल में उनके अस्तित्व को स्वीकार किया गया था और उनके अधिकारों को सुनिश्चित किया गया था। इस नीति का मक़सद मुस्लिम समाज में मुकम्मल आज़ादी और मुकम्मल समानता के लक्ष्य को प्राप्त करना था जो कि इस्लाम का मौलिक सिद्धांत है। इस बात का समर्थन इसी सूरत की आयत 25 से भी होता है जो ग़ुलाम औरतों का निकाह कर देने से सम्बंधित है और यह निर्देश देती है कि इन लोण्डियों के साथ उनके मालिकों की इजाज़त लेकर निकाह कर लो और रीति के अनुसार उनका महर भी दो शर्त यह है कि निकाह करके पवित्र सम्बंध बनाना मक़सद

हो चोरी छुपी यारी करने वाली न हों (4:25)। इससे साफ़ पता चलता है कि ग़ुलाम औरत (बान्दी) के साथ यौन सम्बंध केवल जायज़ तरीक़े से यानि शरीअत के नियमों के अनुसार विवाह करने के बाद ही जायज़ है। इस बात का समर्थन मुहम्मद अब्दुहू ने भी अपनी तार्किक चर्चा में किया है जिसे रशीद रज़ा ने नक़ल किया है:"मर्द को चार ग़ुलाम औरतों से ज़्यादा विवाह नहीं करना चाहिए" (तफ़सीरुलमनार, जिल्द 6, पेज 350)। अलबत्ता, बेगिनती ग़ुलाम औरतों से केवल उनके बान्दी होने के आधार पर बग़ैर शादी के यौन सम्बंध को क़ुरआन व सुन्नत से साबित नहीं किया जा सकता, जैसा कि मुहम्मद असद ने मैसेज आफ़ दि क़ुरआन में आयत 4:3 और 25 पर अपनी व्याख्याओं में किया है कि :" दाशता रखना इस्लाम में मना है. इस आम विचार के विपरीत जो बीती सदियों में पाया जाता था और जिस पर कुछ मुसमलानों से अमल भी किया है"

तलाक़

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ ۚ فَاِنْ فَآءُوْ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝ وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝

जो लोग अपनी औरतों के पास ना जाने की क़सम खा लें तो उनको चार माह तक इन्तिज़ार करना होगा, अगर इस दौरान में अपनी क़सम से रूजू कर लें तो फिर अल्लाह तो है ही बख़्शने वाला रहम वाला। अगर तलाक़ ही का अज़्म कर लिया है, तो फिर अल्लाह तो .ख़ूब सुनने वाला, .ख़ूब जानने वाला है। (2:226-227)

इस्लाम से पहले अरबों में पत्नियों के साथ कई तरह के अपमानजनक और दुखदायक व्यवहार प्रचलि थे जैसे यह कि उनसे अलग रहने की क़सम खा लेना, या उनसे यह कहना कि 'तुम्हारी पीठ मेरे लिए मेरी मां की पीठ की तरह (हराम) है' अर्थात "ज़िहार" करना (58:2), और इस तरह पत्नि लाचार लाचार और बे सहारा बनकर रह जाती थी और समाज में लटकी हुई स्थिति में रहती कि न तो वह पत्नि ही रहती और न तलाक़ के बाद अलग होजाने वाली आज़ाद औरत होती कि कोई उससे दूसरा निकाह कर ले। क़ुरआन ने ऐसी क़समें खाने से मना किया और इन पर दो तरह से पाबन्दी लगाई। एक तो यह कि अल्लाह के नाम पर बार बार क़समें खाने से मना किया और इस बात से कि क़समें खा खा कर 'हुस्ने सुलूक' और 'तक़वा' के अमल से और लोगों में सुलह व साज़गारी कराने से रुक जाएं यह कहते हुए कि "अल्लाह तुम्हारी लग्व क़समों पर तुम से पकड़ नहीं करेगा लेकिन जो क़समें तुम दिल के इरादे से खाओगे उन पर पकड़ करे गा"(2:224-225, और 5:89), और दूसरे इस तरह कि, पत्नि से दूर

रहने की क़सम खाने वाले मर्द के लिए चार महीने की अवधि निर्धारित कर दी कि उसके पूरा होने के बाद या तो उसे पत्नि से फिर निकाह करके उसे अपने साथ रखना होगा या फिर भले तरीक़े से उसे रुख़सत करना होगा। ''ज़िहार''जैसे गम्भीर मामले में सज़ा तय की गयी और ऐसे अपमानजनक व पीड़ादायक अमल को बातिल (अवैध) क़रार दिया गयाः''और जो लोग अपनी पत्नियों को मां कह बैठें फिर अपने कहे से पीछे हट जाएं तो (उन को) पत्नि से मिलन से पहले एक ग़ुलाम आज़ाद करना (ज़रूरी) है, (मोमिनो) तुम्हें यह नसीहत की जाती है और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उससे बाख़बर है। जिसको ग़ुलाम न मिले वह सम्भोग से पहले लगातार दो महीने के रोज़े रखे जिसको इसकी भी क्षमता न हो (उसे) 60 ग़रीबों को खाना खिलाना (चाहिए), यह (हुक्म) इसलिए (है) कि तुम अल्लाह और उसके पैग़म्बर के आज्ञाकारी हो जाओ, और यह अल्लाह की हदें हैं और न मानने वालों के लिए दुख देने वाला अज़ाब है'' (58:3-4) क़ुरआ ने इस अमल की इन शब्दों में निन्दा की कि ''जो लोग तुम में से अपनी औरतों को मां कह देते हैं वो उनकी माएं नहीं (हो जातीं) उनकी माएं तो वही हैं जिनके पेट से वो पैदा हुए, बेशक वह अनुचित और झूटी बात कहते हैं'' (58:2 और 33:4)।

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ؕ وَ لَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ اِنْ كُنَّ يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ وَ بُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا ؕ وَ لَهُنَّ مِثْلُ الَّذِيْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ ۪ وَ لِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ ؕ وَ اللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝ اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۪ فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ؕ وَ لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْـًٔا اِلَّآ اَنْ يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيْمَا افْتَدَتْ بِهٖ ؕ

तलाक़ वाली औरतें तीन हैज़ तक अपने आपको रोके रखें और ये जाइज़ नहीं है उनके लिए के उसको छुपायें जो अल्लाह ने उनके पेटों में पैदा किया है, अगर वो औरतें अल्लाह पर और यौमे आख़िरत पर पूरा यक़ीन रखती हैं, और अगर इस मुद्दत में उनके शौहर फिर मवाफ़क़त चाहें तो उनका हक़ .ज्यादा है के वो उनको अपनी ज़ौजियत में ले लें और दस्तूर के मवाफ़िक़ औरतों को हक़ वही है जो मर्दों का हक़ औरतों पर है, अलबत्ता मर्दों को औरतों पर फ़ज़ीलत है, और अल्लाह तो है ही बड़ा ज़बरदस्त ग़ालिब और बड़ी हिकमत वाला। तलाक़ सिर्फ़ दो बार है, फिर या तो औरतों को बतरीक़ शाईस्ता निकाह में रहने देना है या नेकी के साथ .ख़ुशी .ख़ुशी रुख़सात कर देना है, और ये जायज़ नहीं है कि जो मेहर तुम दे चुके हो कुछ वापस ले लो, मगर ये के दोनों को अंदेशा हो के वो अल्लाह की हुदूद पर क़ायम नहीं रहेंगे, अगर तुमको ये अंदेशा है के वो दोनों अल्लाह की हुदूद पर क़ायम नहीं रहेंगे तो औरतें अपने शौहर से रिहाई

पाने के लिए बदले में कुछ दे दे तो दोनों पर कोई गुनाह नहीं, ये अल्लाह की हुदूद है, तो उनसे कहीं बाहर ना निकलना, और जो अल्लाह की इन हुदूद से बाहर निकलेगा, ऐसे ही लोग ज़ालिम हैं। फिर अगर शौहर (तीसरी) तलाक़ (भी) दे दे उसके बाद पहले शौहर को जायज़ नहीं है कि उस औरत से निकाह करे जब तक ये औरत किसी दूसरे मर्द से निकाह न कर ले, अलबत्ता अगर दूसरा शौहर उसको तलाक़ दे दे, और औरत और पहला शौहर एक दूसरे की तरफ़ रुजू कर लें तो उन पर कोई गुनाह नहीं है अगर दोनों यक़ीन करें के अल्लाह की हुदूद पर क़ायम रहेंगे, और ये अल्लाह की हदें हैं, वो उनको उन लोगों के लिए बयान फ़रमाता है जो इल्म रखते हैं। और जब तुम अपनी औरतों को रजई तलाक़ दे चुके, और उनकी मुद्दत के दिन भी ख़त्म होने के क़रीब पहुंच जायें तो उनके हुस्ने सुलूक से अपने निकाह में रहने दो या बतरीक़े शाईस्ता रुख़सत कर दो, और इस नियत से अपने निकाह में न रखो के उनको तकलीफ़ दो और कोई ज़्यादती करो, और जो ऐसा करेगा वो अपना ही नुक़सान करेगा, और अल्लाह के अहकाम को हंसी और खेल न बनाओ, और अल्लाह ने जो नेमतों तुम को दी हैं उनको याद करते रहो, और नीज़ जो तुम पर किताब और दानाई की बातें नाज़िल की हैं, उनको याद रखो (और अमल करो) जिसके ज़रिये से ही तुम को नसीहत फ़रमाते हैं, और अल्लाह से डरते रहो, और ये जान लो के अल्लाह हर चीज़ पर पूरा पूरा इल्म रखता है। और जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दे चुको, और उनकी इद्दत के रोज़ पूरे हो जायें तो उनको दूसरे शौहरों से निकाह करने से न रोका करो जबके वो आपस में जायज़ तौर पर राज़ी हो जायें इस हुक्म से उसको नसीहत की जाती है जो अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर पूरा पूरा यक़ीन रखता है, ये तुम्हारी रूह का तज़किया

تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْهَا ۚ وَ مَنْ
يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿۲۲۹﴾
فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى
تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ ؕ فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا
جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَآ اِنْ ظَنَّآ اَنْ
يُّقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ وَ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ
يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ﴿۲۳۰﴾ وَ اِذَا طَلَّقْتُمُ
النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَاَمْسِكُوْهُنَّ
بِمَعْرُوْفٍ اَوْ سَرِّحُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ ۪ وَّ لَا
تُمْسِكُوْهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوْا ۚ وَ مَنْ
يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ ؕ وَ لَا
تَتَّخِذُوْٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ؗ وَّ اذْكُرُوْا نِعْمَتَ
اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ مَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ
وَ الْحِكْمَةِ يَعِظُكُمْ بِهٖ ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ وَ
اعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمٌ ﴿۲۳۱﴾ وَ اِذَا
طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا
تَعْضُلُوْهُنَّ اَنْ يَّنْكِحْنَ اَزْوَاجَهُنَّ اِذَا
تَرَاضَوْا بَيْنَهُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ ذٰلِكَ يُوْعَظُ
بِهٖ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ
الْاٰخِرِ ؕ ذٰلِكُمْ اَزْكٰى لَكُمْ وَ اَطْهَرُ ؕ وَ اللّٰهُ
يَعْلَمُ وَ اَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۲۳۲﴾

और जिस्म की पाकी की बेहतरीन सूरत है, और अल्लाह
(तो इसकी .ख़ूबी) जानता है मगरतुम नहीं जानते।
(2:228-232)

कभी कभी जब पति और पत्नि में सहमति और समन्वय नहीं बन पाता तो तलाक़ मजबूरी हो जाती है चाहे पति व पत्नि दोनों अपने आप में अच्छे व्यक्तित्व के मालिक ही हों। क़ुरआन इस सच्चाई को सैद्धांतिक रूप से स्वीकार करता है और एक ऐसे निकाह को बनाए रखने पर ज़ोर नहीं देता जिसमें पति व पत्नि एक दूसरे के साथ ख़ुशगवार जीवन नहीं बिता पा रहे हों। लेकिन वह इस मामले में जल्द बाज़ी से रोकता है और तलाक़ के फ़ैसले में जल्दबाज़ी से काम लेने को मना करता है। लेकिन जब तलाक़ अवश्यम्भावी हो जाए तो इस्लाम इसके लिए उचित, अनुकूल और सरल तरीक़ा सिखाता है।

निकाह को बनाए रखने के लिए कई उपाय सुझाए गए हैं जिनमें सबसे पहला क़दम यह है कि दोनों पक्षों को इसके लिए आमादा करने की कोशिश की जाती है कि थोड़ी सी असहमति की वजह से या किसी सामयिक अप्रिय स्थिति की वजह से तलाक़ जैसा गम्भीर फ़ैसला लेने से बचेः“उनके साथ अच्छी तरह से रहो सहो, अगर वह तुम्हें पसन्द न हों तो आश्चर्य नहीं कि तुम किसी चीज़ को नापसन्द करो और अल्लाह उसमें बहुत सी भलाइयां पैदा कर दें”(4:19), “और अगर आज्ञाकारी हो जाएं तो फिर उनको तकलीफ़ देने का कोई बहाना मत ढूंढो” (4:34)। पैग़म्बर सल्ल० ने यह शिक्षा दी है कि अल्लाह ने जिन कामों को जायज़ रखा है उनमें सबसे बुरी चीज़ तलाक़ है (अबु दाऊद, इब्ने माजा और अलहाकिम)। तलाक़ के बारे में सोचने से पहले मेल मिलाप के सभी प्रयास होना चाहिएं और इसके लिए पति पत्नि के बीच सहमति बनाने की कोशिश दोनों के रिश्तेदारों, क़रीबी दोस्तों और स्थानीय प्रशासन के विशेष विभाग और अधिकारियों के द्वारा की जानी चाहिए (4:35), और कुछ फ़क़ीहों के नज़दीक यह तलाक़ के लिए तलाक़ से पहले पूरी की जाने वाली अनिवार्य शर्तें हैं।

जब मेलमिलाप के सभी प्रयास असफ़ल हो जाने के बाद तलाक़ को ही हल समझा जाने लगे तो पैग़म्बर सल्ल० की हदीस के मुताबिक़ तलाक़ का फैसला करना चाहिए जब औरत पाकी की स्थिति में हो अर्थात माहवारी के बाद की स्थिति जिसमें माहवारी के दिनों की मानसिक और शरीरिक कमज़ोरी मौजूद न हो (रिवायत इब्ने हंबल) पैग़म्बर सल्ल० की एक और हदीस बताती है कि तलाक़ ग़ुस्सा और उत्तेजनी की स्थिति में बे सोचे समझे नही देना चाहिए (इब्ने हंबल, अबुदाऊद, अलहाकिम), और आयत 65:2 के अनुसार कुछ फ़क़ीहों ने यह कहा है कि सही तरह से तलाक़ देने के लिए तलाक़ देते समय दो गवाहों को सामने रखना चाहिए।

जब उचित रूप से तलाक़ का फैसला कर लिया जाए और इसका इज़हार कर दिया जाए तो फिर महिला को दूसरी शादी करने से पहले एक अवधि तक इन्तेज़ार करना होता है ताकि तलाक़ देने वाले पति से मेलमिलाप का एक अवसर और फिर से निकाह कर लेने की एक सम्भावना भी बाक़ी रहे और यह भी स्पष्ट हो जाए कि महिला गर्भवती है या नहीं। यदि तलाक़ देते समय या इद्दत की अवधि के बीच यह ज़ाहिर हो कि औरत गर्भवति है तो बच्चा होने तक वह दूसरा निकाह नहीं कर सकती। जो औरत गर्भवति न हो तो उसके लिए इन्तेज़ार की यह अवधि क़ुरआन के अनुसार कुछ फ़क़ीहों के नज़दीक तीन माहवारियां पूरी हो जाने तक है और कुछ दूसरे फ़क़ीहों के नज़दीक माहवारियों के बीच की तीन अवधियां (पाकी की स्थितियां) हैं, क्योंकि आयत में जो शब्द इस्तेमाल हुआ है उसके दोनों ही अर्थ निकलते हैं। यदि तलाक़ पाई औरत को पेट में बच्चा होने का प्रारम्भिक अहसास होता है तो यह अवधि बढ़ जाएगी और औरत को बच्चे की पैदाइश तक इन्तेज़ार करना होगा, इसलिए तलाक़ पाने वाली औरत से कहा गया कि वह गर्भवती होने की सच्चाई को छुपाए नहीं, क्योंकि गर्भ का अहसास सबसे पहले स्वयं उसी को होगाः"उनके लिए जायज़ नहीं कि अल्लाह ने जो कुछ उनके रहम में पैदा किया है उसे वह छुपाएं, अगर वह अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान रखती हैं।" बच्चे की पैदाइश के बाद ख़ुद उस बच्चे की मौजूदगी भी विवाह को बनाए रखने का एक कारण बन सकती है।

बहरहाल, एक दूसरे से अलग हो चुके पति पत्नि दोनों को यह ताकीद की गयी है कि वह तलाक़ के फ़ैसले पर पुनर्विचार करें और इस मुद्दत में अपने निकाह को बनाए रखने के लिए संजीदगी से सोचें। पूर्व पतियों को यह सीख दी गयी है कि निकाह के रिश्ते को फिर से जोड़ने और परिवार को बनाए रखने के लिए वो पेशक़दमी करेःइस इद्दत की मुद्दत के दौरान उनके पति इस बात का हक़ रखते हैं कि वह फिर निकाह कर लें। क्योंकि आम तौर से मर्द ही पहले पहल औरत को निकाह का प्रस्ताव देतें हैं। तथापि तलाक़ पाई औरत यह फ़ैसला करने के लिए आज़ाद है कि वह इस अलग हो जाने वाले पति के साथ दोबारा निकाह करके उसके साथ जीवन बिताने का फ़ैसला करे या नहीं, चाहे पति की तरफ़ से यह प्रस्ताव इद्दत के दौरान हो या इददत के बाद जब तक महिला ने दूसरा विवाह नहीं किया है।

अगर कोई विवाह तलाक़ के बाद दोबारा होता है और फिर कोई ऐसी समस्या आती है जो हल न हो सके तो तलाक़ देने की गुंजाइश और कम हो जाती है यानि तलाक़ देने और फिर निकाह कर लेने का यह सिलसिला ज़्यादा नहीं चल सकता। अतःतलाक़ पर और पाबन्दी यह है कि एक ही जोड़े के लिए तलाक़ की यह गुंजाइश ज़्यादा से जज़्यादा तीन बार के लिए है। दो तलाक़ों के बाद या तो दोनों के आपसी सम्बंध और साथ साथ रहने की स्थिति में बहतरी आएगी या फिर तीसरी तलाक़ होगी जिसकी भरपाई का कोई मौक़ा आगे नहीं रहेगा। पूर्व पति

और पत्नि के बीच अब फिर से निकाह केवल इस स्थिति में हो सकता है कि तलाक़ पाई पत्नि ने इद्दत की अवधि बीत जाने के बाद किसी दूसरे मर्द से निकाह किया हो, और फिर उस पति से उसको तलाक़ हो गयी हो, या पति की मृत्यू हो जाने से वह फिर से विधवा हो गयी हो। इन तीनों तलाक़ों में क़ानूनी शर्तें पूरी करना अलग अलग ज़रूरी है और तीनों के बीच एक उचित समय बिताना भी ज़रूरी है, एक ही बार में तीन तलाक़े नहीं दी जा सकतीं, क्योंकि एक ही समय तीनों अवसरों को इस्तेमाल कर बैठना उन सभी सावधानी वाले बन्दोबस्त के विपरीत है जो जल्द बाज़ी से बचने के लिए बताए गए हैं और एक के बाद दूसरी तलाक़ की गुंजाइश रखने का जो उद्देश्य है कि पति पत्नि का जोड़ा बना रहे और परिवार न टूटे इसके विपरीत है। इसके अतिरिक्त, पहले पति से तीन और जुदाई वाली तलाक़ हो जाने के बाद दूसरे पति से निकाह एक वास्तविक और गम्भीरतापूर्वक किया गया निकाह हो ना कि एक औपचारिक ख़ानापूर्ति कि जिसके बाद पहले पति से निकाह कर लेने का आधार बन जाए। पहली शादी की परख चूंकि दो बार हो चुकी होगी और दोनों के साथ साथ रह पाने की उम्मीद समाप्त हो चुकी होगी इसलिए औरत के लिफ और मर्द के लिए भी फिर यह बहतर होगा कि वह नए जोड़े के साथ जीवन शुरू करें।

चूंकि पति को यह इजाज़त दी गयी है कि वह अपने मुंह से तलाक़ देकर विवाह ख़त्म कर सकता है, इसलिए औरत को यह हक़ दिया गया है कि वह तलाक़ की ज़रुरस महसूस होने पर तलाक़ की मांग करने के लिए अदालत से सम्पर्क कर सकती है। यह इसलिए कि पति के द्वारा तलाक़ दिए जाने की स्थिति में यह ज़िम्मेदारी उस पर आती है कि वह अपनी तलाक़ दी गयी पत्नि और बच्चों की मदद करे और यह उसकी स्वीकृति होती है कि वह इसके लिए तैयार है। दूसरी तरफ़ जब महिला ख़ुद तलाक़ की मांग करती है तो अलग होने के क़ानूनी और आर्थिक नतीजे, बच्चों की तहवील और पूर्व पति की दूसरी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने का फ़ैसला अदालत करेगी, चूंकि तलाक़ देने का फ़ैसला पति ने नहीं किया है तो उसके ऊपर ज़िम्मेदारियां भी नहीं आतीं। उसे स्वभाविक रूप से यह अधिकार मिलता है और वह कहने का हक़ रखता है कि दोषी उसकी पत्नि है और वह ख़ुद ही तलाक़ चाहती है इसलिए उसे स्वंय ही कुछ नुक़सान सहन करना चाहिएं या बच्चों को अपने पास रखने का हक़ उसे नहीं मिलना चाहिए। ऐसी स्थितियों में, जो कि अप्रत्याशित नहीं हैं जब महिला ख़ुद ही तलाक़ की मांग करे तो विवाद के निपटारे के लिए और तलाक़ के बाद के मामलों को सुलझाने के लिए अदालती फ़ैसले की ज़रूरत होती है।

तथापि, यह इस्लामी शरीअत के सिद्धांतों के विपरीत नहीं होगा अगर आज के किसी मुस्लिम शासन में परिवारिक विवादों के संदर्भ में सम्बंधित नियमों में यह लिखा जाए कि यदि अदालत के द्वारा निपटारा होगा या अनुमोदन होगा तो तलाक़ और उसके क़ानूनी नतीजों की

ज़िम्मेदारी सभी पक्षों पर सरकारी रूप से लागू होगी फिर भी दोनों पक्ष सभी मामले अदालत के बाहर ही आपसी सहमति से तय कर सकते हैं, और इस सहमति पर अदालत के अनुमोदन की मुहर केलव एक औपचारिक ख़ानापूर्ति होगी। अगर कोई औरत पति की तरफ़ से किसी दुर्व्यवहार की शिकायत न करे और केवल अपनी तबीयत की वजह से पति के साथ रहने पर राज़ी न होने के चलते तलाक़ की मांग करे तो वह पति पर लागू होने वाली देनदारियों से पति को पूरी तरह या आंशिक रूप से राहत दे सकती हैः"हां अगर तुम्हें यह आशंका हो कि वो (पति पत्नि) अल्लाह की हदों को बनाए नहीं रख सकेंगे तो अगर औरत (पति के हाथ से) रिहाई पाने के बदले में कुछ दे तो (दोनों पर) कुछ गुनाह नहीं", पैग़म्बर सल्ल० ने इस तरह का फ़ैसला एक मामले में किया था जब एक औरत ने इस बात को माना कि उसे पति से कोई अख़लाक़ी या क़ानूनी शिकायत नहीं है लेकिन मेरी तबीयत उससे मेल नहीं खाती। वह इस मामले में हमेशा स्वयं को दोषी समझती रही क्योंकि उसने इस तरह की भावनाओं को स्वयं ही अनुचित समझा और वह इस भावनात्मक दबाव की वजह से परिवारिक जीवन का मुस्तक़िल आनन्द नहीं उठा सकी।

यद्यपि किसी जल्दबाज़ी और तत्परता से बचने के लिए तलाक़ पर नैतिक, क़ानूनी और नियमपूर्ण कार्रवाई के तहत रोक लगाई गयी है लेकिन अगर यह अति आवश्यक हो जाए तो फिर बिना किसी अन्याय के उसे उचित और सरल ढंग से अमल में लाना चाहिए। तलाक़ मांगने पर तलाक़ न देना या तलाक़ देने के बाद इद्दत के बाद, दसूरा निकाह करने से औरत को रोकना एक ज़बरदस्ती है और नुक़सानदायक है, क्योंकि "जो ऐसा करेगा वह अपनी ही नुक़सान करेगा और अल्लाह के आदेशों को हंसी (और खेल) न बनाओ." "उनको दूसरे पतियों के साथ जब वो आपस में जायज़ तौर पर सहमत हों निकाह करने से मत रोको" । मर्दों को यह शिक्षा दी गयी है कि तलाक़ पाई औरत के अधिकार पूरे करें और उनके अधिकारों की रक्षा करें, "और अल्लाह ने जो नेअमतें बख़्शी हैं और तुम पर जो किताब और हिकमत की बातें उतारी हैं जिनसे अल्लाह तुम्हें नसीहत देते हैं उनको याद रखो और अल्लाह से डरते रहो और जान रखो कि अल्लाह हर चीज़ से बाख़बर हैं इस (आदेश) से उस व्यक्ति को नसीहत की जाती है जो तुम में से अल्लाह और आखरित के दिन पर विश्वास रखता है. यह तुम्हारे लिए बहुत अच्छी और पाकीज़गी की बात है, और अल्लाह जानते हैं और तुम नहीं जानते"।

और मायें अपने बच्चों को पूरे दो साल तक दूध पिलायें, ये हुक्म उसके लिए है जो पूरी मुद्दत तक दूध पिलाती हैं, और दूध पिलाने वाली माँ का खाना, कपड़ा दस्तूर के मुताबिक़ बात के ज़िम्मे है किसी को भी उसकी ताक़त

وَ الْوَالِدٰتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ
كَامِلَيْنِ لِمَنْ اَرَادَ اَنْ يُّتِمَّ الرَّضَاعَةَ ؕ وَ
عَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَ كِسْوَتُهُنَّ

بِالْمَعْرُوْفِ ۭ لَا تُكَلَّفُ نَفْسٌ اِلَّا وُسْعَهَا ۚ
لَا تُضَاۗرَّ وَالِدَةٌۢ بِوَلَدِهَا وَلَا مَوْلُوْدٌ لَّهٗ
بِوَلَدِهٖ ۤ وَعَلَي الْوَارِثِ مِثْلُ ذٰلِكَ ۚ فَاِنْ
اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ
فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا ۭ وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ
تَسْتَرْضِعُوْٓا اَوْلَادَكُمْ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ
اِذَا سَلَّمْتُمْ مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ۭ وَاتَّقُوا
اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ
بَصِيْرٌ ۝٢٣٣

से .ज्यादा तक्लीफ़ नहीं दी जाती, न तो माँ को उसके बच्चे के सबब नुक़सान पहुंचाया जाए, और न बाप को उसकी औलाद के सबब नुक़सान पहुंचाया जाए, और इसी तरह नान नफ़्क़ा की वारिस पर ये ज़िम्मेदारी है, अगर दोनों माँ-बाप आपस की मर्ज़ी और मशवरे से बच्चे को दूध छुड़ाना चाहें तो उन पर कोई गुनाह नहीं है, अगर अपनी औलाद को दूध पिलवाना चाहते हों तो इसमें भी कोई गुनाह नहीं, बशर्ते ये के तुम दूध पिलाने वालियों को उनका हक़ दस्तूर के मुवाफ़िक़ देना तसलीम कर लो जो कुछ तुमने देना तय किया है और अल्लाह से डरते रहो, और जान लो के अल्लाह तुम्हारे आमाल को .खूब देख रहा है (2:223)

जिस तरह क़ुरआन तलाक़ पाई महिलाओं का ध्यान रखता है और तलाक़ देने वाले मर्द के अधिकारों की भी अनदेखी नहीं करता इसी तरह वह निकाह के नतीजे में पैदा होने वाली कमज़ोर संतान का भी ध्यान रखता है। एक दूसरे से अलग हो जाने वाले पति व पत्नि जब अपने असफ़ल पिछले जीवन को पीछे डाल कर एक सफ़ल और सुखी भविष्य की कोशश में लगते हैं तो उनके बच्चों के भविष्य का सवाल खड़ा होता है क्योंकि बच्चे या तो दोनों की अनदेखी का शिकार हो सकते हैं या उनमें से किसी एक की ममता व प्यार से दूर हो सकते हैं। इन आयतों में यह निर्देश दिया गया है कि बच्चे की देखभाल उस समय तक करना ज़रूरी है जब तक उसको संरक्षण और देखरेख की ज़रूरत है ताकि बच्चे के हित भी सुरक्षित रह सकें और मातापिता के हित भी क्योंकि बच्चे के हित मातापिता के हित से अलग हो सकते हैं और ख़ास तौर से तलाक़ की स्थिति में इस मामले में विवाद खड़ा हो सकता है। मां बच्चे की देखरेख की ज़िम्मेदारी से पीछा छुड़ाने के लिए उसका दूध छुड़ाने में जल्दी कर सकती है या बच्चे को दूध पिलाने के बदले पिता से ज़्यादा पैसे की मांग कर सकती है या पिता की यह कोशश हो सकती है कि मां बच्चे को और अधिक दिनों तक दूध पिलाए ताकि बच्चे के आहार की ख़र्चा उठाने से वह बचा रहे। यहां क़ुरआन बच्चे के हितों और अधिकारों की रक्षा करता है जो कि खुद अपने लिए अभी कुछ नहीं कर सकता। मां पर बच्चे की देखरेख की ज़िम्मेदारी नहीं है, जब तक वह दूध पिलाएगी तो बच्चे के पिता से अपने और अपने बच्चे के लिए नफ़्क़ा (खर्चा) पाती रहेगी। निकाह में रहने की स्थिति में तो यह है ही लेकिन तलाक़ हो जाने पर भी उसे यह हक़ प्राप्त है (और देखें 65:5-6)।

उपरोक्त आयत यद्यपि नफ़क़ा की मात्रा और तलाक़ पाई महिला व बच्चे की ज़रूरतों से सम्बंधित है लेकिन यह न्याय के सिद्धांतों को भी रेखांकित करती है इस तरह कि विभिन्न पक्षों के अधिकारों और ज़िम्मेदारियों को स्पष्ट करती है:मां पर उसकी क्षमता से ज़्यादा बोझ न डाला जाए:न तो मां को उसके बच्चे की वजह से नुक़सान पहुंचाया जाए और न बाप को उसके बच्चे की वजह से नुक़सान पहुंचाया जाए। अगर पूर्व पति की मृत्यू हो जाती है तो तलाक़ पाई महिला और उसके बच्चे का नफ़क़ा (ख़र्चा) पति के वारिसों के ज़िम्मे होगा।

एक और सिद्धांत बच्चे के पालनपोषण से सम्बंधित यह बयान किया गया जो पूरे परिवार के जीवन पर लागू होता है कि अगर दोनों (मां बाप) आपसी सहमति से बच्चे का दूध छुड़ान चाहें तो उन पर कुछ गुनाह नहीं। आपसी सलाह और सहमति घर के मामलों को चलाने का आधार है। विचार विमर्श किए बग़ैर यह मान लेना कि सहमति है या इस बारे में बातचीत करना लेकिन किसी सहमति पर पहुंचे बग़ैर एकतरफ़ा रूप से फैसला ले लेना दोनों ही तरीक़े अनुचित हैं और एक स्थिर व सुखी परिवारिक जीवन बिताने के लिए सहायक नहीं हैं। इस ज़माने में बच्चे को दूध पिलाने सम्बंधी मामले में बच्चों के चिकत्सक की सलाह से भी फ़ैसला लिया जा सकता है। चूंकि बच्चे की देखरेख क़ानूनी लिहाज़ से मां की ज़िम्मेदारी नहीं है इसलिए कोई दूसरी औरत भी बच्चे को दूध पिला सकती है और इसके लिए बच्चे के पिता की तरफ़ से उसे उचित मुआवज़ा दिया जाएगा, यही दूध पिलाने वाली मां बच्चे की हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदार होगी और दूध पिलाने की ज़िम्मेदारी पूर कर चुकने के बाद बच्चे को सही सलामत उसकी मां को वापस करेगी।

لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَا لَمْ
تَمَسُّوْهُنَّ اَوْ تَفْرِضُوْا لَهُنَّ فَرِيْضَةً ۚۖ وَّ
مَتِّعُوْهُنَّ ۚ عَلَى الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَ عَلَى
الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ ۚ مَتَاعًا ۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا
عَلَى الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۲۳۶﴾ وَ اِنْ طَلَّقْتُمُوْهُنَّ مِنْ
قَبْلِ اَنْ تَمَسُّوْهُنَّ وَ قَدْ فَرَضْتُمْ لَهُنَّ
فَرِيْضَةً فَنِصْفُ مَا فَرَضْتُمْ اِلَّآ اَنْ
يَّعْفُوْنَ اَوْ يَعْفُوَا الَّذِيْ بِيَدِهٖ عُقْدَةُ
النِّكَاحِ ؕ وَ اَنْ تَعْفُوْۤا اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ؕ وَ لَا

तुम पर कोई गुनाह नहीं है अगर तुम औरतों को उनके पास जाने से पहले तलाक़ दे दो उनका मेहर मुक़र्रर करने से पहले ही छोड़ दो दस्तूर के मुताबिक़ उनको कुछ .ख़र्च के लिए ज़रूर दे दो, मक़्दूर वाले के लिए उसके मक़्दूर के मुताबिक़ है और तंगदस्त के लिए उसकी हैसियत के मुताबिक़ है, एक .ख़ास क़िस्म का फ़ायदा पहुँचाना दस्तूर के मुताबिक़ वाजिब है नेको कारों पर। और अगर तुम औरतों को उनके पास जाने से पहले तलाक़ दे दो, लेकिन मेहर मुक़र्रर कर चुके हो तो आधा मेहर अदा करना होगा हाँ अगर औरतें अपना मेहर बख़्श दें, या मर्द जिनके हाथ में उक़्दे निकाह है, अपना हक़ छोड़ दें, अगर तुम मर्द ही अपना हक़ छोड़

تَنْسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٣٧﴾

दो तो ये बात परहेज़गारी की है, और आपस में भलाई करने का जज्बा फ़रामोश ना करो, बिला शुब्ह अल्लाह तुम्हारे सब कामों को ख़ूब देख रहा है। (2:236-237)

ऐसा भी हो सकता है कि निकाह क़ानूनी रूप से आयोजित हो जाए यानि निकाह की औपचारिकता पूरी कर ली जाए लेकिन पति व पत्नि के बीच सम्भोग न हो सके और इससे पहले ही किसी वजह से तलाक़ का फ़ैसला हो जाए। ऐसी तलाक़ को क़ुरआन जायज़ बताता है, क्योंकि तनाव भरे और मुहब्बत से ख़ाली जीवन से बहतर यह है कि अलग हो जाएं। ''ग़ैर मदख़ूला'' (सम्भोग रहित) तलाक़ पाई पत्नि को यह अधिकार है कि उसका महर पहले तय हो चुका हो तो उसमें से आधा वह वसूल कर ले कि तलाक़ की वजह से उसे जो मानसिक पीड़ा पहुंची उसकी भरपाई हो जाए। अलबत्ता तलाक़ देने वाले पति को क़ुरआन यह सीख देता है कि वह अपनी तरफ़ से महर का बाक़ी आधा हिस्सा भी महिला को ही देदे। इसी तरह ऐसी औरत को भी यह प्रेरणा दी गयी है कि वह भी अहसान के रूप में अपने हक़ को छोड़ सकती है, और अगर तलाक़ की मांग ख़ुद उसी ने की हो तो यह उसके लिए ख़ास तौर से एक उचित बात होगी। यहां भी क़ुरआन इसी बात पर ज़ोर देता है जो क़ुरआन में जगह जगह कही गयी है कि नैतिकता और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने की भावना क़ानून से ऊपर चीज़ है, और उपकार करना न केवल बहतर है बल्कि इंसानी सम्बंधों को बनाए रखने के लिए ज़रूरी भी है ''और अगर तुम अपना हक़ छोड़ दो तो यह तक़वा की बात है। और आपस में भलाई करने को न भूलना।''' अगर निकाह के समय महर का निर्धारण न हुआ हो तो ग़ैर मदख़ूला महिला को उसके विवेक के हिसाब से नफ़क़ा देना होगाः''क्षमता वाला अपनी क्षमता के हिसाब से दे और तंग हाथ वाला अपनी हैसियत के हिसाब से। नेक लोगों पर यह एक तरह का हक़ है।''

وَلِلْمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۭ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ﴿٢٤١﴾ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٢٤٢﴾

और मुतलिक़ा औरतों को भी दस्तूर के मुताबिक़ नान नफ़क़ा देना चाहिये, परहेज़गारों पर ये भी हक़ है। इसी तरह अल्लाह तुम्हारे लिये अपने अहकाम बयान फ़रमा देता है, ताके अपनी अक़्लों से सोचो और ग़ौर करो। (2:241-242)

तलाक़ पाई महिला को उसकी इद्दत की अवधि के दौरान एक उचित ख़र्चा देने के साथ साथ बच्चे या बच्चों की ज़रूरतों के लिए जब तक भी वो मां के पालन पोषण में हों महिला को उचित रक़म देते रहना भी इस आयत में तलाक़ वाली महिला का सामान्य अधिकार बताया गया है। इस अधिकार के लिए न तो कोई अवधि निर्धारित की गयी है और न रकम निर्धारित

की गयी है:"मालदार आदमी अपने साधनों के हिसाब से और साधारण हैसियत वाला अपनी हैसियत के हिसाब से।" कुछ फ़क़ीहों (जैसे शाफ़ई, अबु तहावुर और अलतिबरी वग़ैरह) ने इस आयत को सभी तलाक़ वाली औरतों के लिए तलाक़ देने वाले पति की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी की नज़र से देखा है चाहे वो मदख़ूला हों या ग़ैर-मदख़ूला, चाहे उनका महर निर्धारित हो या नहीं, और चाहे वो ग़ुलाम महिला हो या आज़ाद महिला। देश की अदालतें या शासक इस अतरिक्त हक़ के लिए ज़्यादा से ज़्यादा समय का निर्धारण कर सकती हैं कि यह औरत के दूसरी शादी करने तक जारी रहेगा या जब ज़रूरत न रहे।

وَ اِنۡ یَّتَفَرَّقَا یُغۡنِ اللّٰہُ کُلًّا مِّنۡ سَعَتِہٖ ؕ وَ
کَانَ اللّٰہُ وَاسِعًا حَکِیۡمًا ﴿۱۳۰﴾

अगर दोनों मियां बीबी जुदा हो जावें तो अल्लाह अपनी वुसअत से हर एक को बे फ़िक्र कर देगा, और अल्लाह तो बड़ी वुसअतों का मालिक है, और बड़ी हिकमतों वाला है। (4:130)

یٰۤاَیُّہَا الَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡۤا اِذَا نَکَحۡتُمُ
الۡمُؤۡمِنٰتِ ثُمَّ طَلَّقۡتُمُوۡہُنَّ مِنۡ قَبۡلِ اَنۡ
تَمَسُّوۡہُنَّ فَمَا لَکُمۡ عَلَیۡہِنَّ مِنۡ عِدَّۃٍ
تَعۡتَدُّوۡنَہَا ۚ فَمَتِّعُوۡہُنَّ وَ سَرِّحُوۡہُنَّ
سَرَاحًا جَمِیۡلًا ﴿۴۹﴾

मोमिनों! जब तुम मुसलमान औरतों से निकाह कर के उनको हाथ लगाने से पहले ही तलाक़ दे दो तो तुम को इख़्तियार नहीं है के तुम उसको मजबूर करो के इद्दत पूरी करे, और उनको कुछ खर्च दे कर ख़ुशी ख़ुशी रूख़्सत करो। (33:49)

یٰۤاَیُّہَا النَّبِیُّ اِذَا طَلَّقۡتُمُ النِّسَآءَ
فَطَلِّقُوۡہُنَّ لِعِدَّتِہِنَّ وَ اَحۡصُوا الۡعِدَّۃَ ۚ وَ
اتَّقُوا اللّٰہَ رَبَّکُمۡ ۚ لَا تُخۡرِجُوۡہُنَّ مِنۡۢ
بُیُوۡتِہِنَّ وَ لَا یَخۡرُجۡنَ اِلَّاۤ اَنۡ یَّاۡتِیۡنَ
بِفَاحِشَۃٍ مُّبَیِّنَۃٍ ؕ وَ تِلۡکَ حُدُوۡدُ اللّٰہِ ؕ وَ
مَنۡ یَّتَعَدَّ حُدُوۡدَ اللّٰہِ فَقَدۡ ظَلَمَ نَفۡسَہٗ ؕ
لَا تَدۡرِیۡ لَعَلَّ اللّٰہَ یُحۡدِثُ بَعۡدَ ذٰلِکَ
اَمۡرًا ﴿۱﴾ فَاِذَا بَلَغۡنَ اَجَلَہُنَّ
فَاَمۡسِکُوۡہُنَّ بِمَعۡرُوۡفٍ اَوۡ فَارِقُوۡہُنَّ

ऐ नबी! जब तुम लोग औरतों को तल्लाक़ देने लगो तो उनकी इद्दत के शुरू में तल्लाक़ दो, और इद्दत का शुमार रखो, और अल्लाह से डरते रहा करो, जो तुम्हारा रब है, ना तुम उनको (अय्यामे इद्दत में) उनके घरों से निकालो, और ना वो ख़ुद निकलें मगर हां अगर वो सरीह बेहयाई करें (तो निकाल देना चाहिये) और ये अल्लाह की हदें हैं, और जो अल्लाह की अदों से आगे बढ़ेगा, तो वो अपने ऊपर ज़ुल्म करेगा, (ऐ तल्लाक़ देने वाले) तू क्या जाने, शायद उसके बाद ख़ुदा रजअत की कोई सबील पैदा कर दे। फ़िर जब वो अपनी मेआद को पहुंच जाये, तो तुम उनको अपनी ज़ौजियत में रहने दो क़ायदे के मुवाफ़िक़,

بِمَعْرُوْفٍ وَّ اَشْهِدُوْا ذَوَیْ عَدْلٍ مِّنْكُمْ
وَ اَقِیْمُوا الشَّهَادَةَ لِلّٰهِ ؕ ذٰلِكُمْ یُوْعَظُ بِهٖ
مَنْ كَانَ یُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَ الْیَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ۬ وَ
مَنْ یَّتَّقِ اللّٰهَ یَجْعَلْ لَّهٗ مَخْرَجًا ۙ۲ وَّ
یَرْزُقْهُ مِنْ حَیْثُ لَا یَحْتَسِبُ ؕ وَ مَنْ
یَّتَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ فَهُوَ حَسْبُهٗ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
بَالِغُ اَمْرِهٖ ؕ قَدْ جَعَلَ اللّٰهُ لِكُلِّ شَیْءٍ
قَدْرًا ۳ وَ الّٰٓئِیْ یَىِٕسْنَ مِنَ الْمَحِیْضِ مِنْ
نِّسَآىِٕكُمْ اِنِ ارْتَبْتُمْ فَعِدَّتُهُنَّ ثَلٰثَةُ
اَشْهُرٍ ۙ وَّ الّٰٓئِیْ لَمْ یَحِضْنَ ؕ وَ اُولَاتُ
الْاَحْمَالِ اَجَلُهُنَّ اَنْ یَّضَعْنَ حَمْلَهُنَّ ؕ
وَ مَنْ یَّتَّقِ اللّٰهَ یَجْعَلْ لَّهٗ مِنْ اَمْرِهٖ
یُسْرًا ۴ ذٰلِكَ اَمْرُ اللّٰهِ اَنْزَلَهٗۤ اِلَیْكُمْ ؕ وَ
مَنْ یَّتَّقِ اللّٰهَ یُكَفِّرْ عَنْهُ سَیِّاٰتِهٖ وَ یُعْظِمْ
لَهٗۤ اَجْرًا ۵

और या अच्छी तरह अलैहदा कर दो, और अपनों में से दो आदिल मर्द गवाह कर लो, और अल्लाह ही की शहादत क़ायम रखो, इन बातों से उसको ही नसीहत की जाती है जो अल्लाह पर और रोज़ आख़िरत पर पूरा यक़ीन रखता है और जो अल्लाह से डरेगा वही उसके लिये (रंजो ग़म से) निकलने के लिये कोई सूरत पैदा कर देगा। उसको ऐसी जगह से रिज़्क़ अता करेगा, जहां से उसको गुमान भी ना होगा, और जो अल्लाह पर भरोसा रखे तो वो उसके लिये काफ़ी है, अल्लाह अपने काम को पूरा कर देता है, अल्लाह ने हर चीज़ का एक अंदाज़ा मुक़र्रर कर लिया है। और तुम्हारी मुतलक़ा औरतों में से जो हैज़ से ना उम्मीद हो चुकी हों, अगर तुम को (उनकी इद्दत के बारे में) शुबह हो तो उनकी इद्दत तीन महीने हैं, और जिनको हैज़ अभी नहीं आया (उनकी भी इद्दत यही है) और हामला औरतों की इद्दत की मुद्दत बच्चा का पैदा होना है, जो अल्लाह से डरेगा, अल्लाह उसके हर काम में सहूलत पैदा कर देगा। ये अल्लाह का हुक्म है जो उसने तुम पर नाज़िल किया है, और जो अल्लाह से डरेगा, वो उससे उसके गुनाह माफ़ कर देगा, और उसको अज्र अज़ीम देगा। (65:1-5)

اَسْكِنُوْهُنَّ مِنْ حَیْثُ سَكَنْتُمْ مِّنْ
وُّجْدِكُمْ وَ لَا تُضَآرُّوْهُنَّ لِتُضَیِّقُوْا
عَلَیْهِنَّ ؕ وَ اِنْ كُنَّ اُولَاتِ حَمْلٍ فَاَنْفِقُوْا
عَلَیْهِنَّ حَتّٰى یَضَعْنَ حَمْلَهُنَّ ۚ فَاِنْ
اَرْضَعْنَ لَكُمْ فَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ ۚ وَ اْتَمِرُوْا
بَیْنَكُمْ بِمَعْرُوْفٍ ۚ وَ اِنْ تَعَاسَرْتُمْ
فَسَتُرْضِعُ لَهٗۤ اُخْرٰى ۶ لِیُنْفِقْ ذُوْ سَعَةٍ
مِّنْ سَعَتِهٖ ؕ وَ مَنْ قُدِرَ عَلَیْهِ رِزْقُهٗ

मुतलक़ा औरतों को वहीं रखो जहां तुम ख़ुद रहते हो, अपनी वूसत के मुवाफ़िक़ और उनको तंग करने के लिये तकलीफ़ ना दो, और अगर हमल से हो तो बच्चे की पैदाईश तक उनका ख़र्च देते रहो फ़िर अगर वो बच्चे को तुम्हारे कहने से दूध पिलाये तो उनकी उज्रत दो, और बच्चे के बारे में पसंदीदा तरीक़े से मवाफ़क़त रखो और बाहम ज़िद और नाइत्तिफ़ाक़ी करोगे तो बच्चे को उस के बाप के कहने से कोई और औरत दूध पिलायेगी। वुसअत वाले को अपनी वुसअत के मुताबिक़ ख़र्च करना चाहिये, और जिसके रिज़्क़ में तंगी हो तो वो

فَلْيُنْفِقْ مِمَّآ اٰتٰىهُ اللّٰهُ ۭ لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا مَآ اٰتٰىهَا ۭ سَيَجْعَلُ اللّٰهُ بَعْدَ عُسْرٍ يُّسْرًا ۝

जितना .ख़ुदा ने उसे दिया है उसके मुवाफ़िक़ .ख़र्च करे, .ख़ुदा किसी को तकलीफ़ नहीं देता मगर उसी के मुताबिक़ जो उसको दिया है और ख़ुदा अनक़रीब तंगी के बाद फ़रा.ख़ी अता करेगा। (65:6-7)

ये आयतें तलाक़ की प्रक्रिया के लिए कुछ और क़ानूनी और व्यवहारिक सेफ़ गार्ड्स (सुक्षात्मक उपाय) बताती हैं। इससे पहले की आयतें (2:229-230) में कहा गया कि एक जोड़े के बीच तीन बार से अधिक तलाक़ का फ़ैसला नहीं लिया जा सकता और पहली दो तलाक़ों के बाद वापसी की गुंजाइश है लेकिन तीसरी बार तलाक़ देने पर हमेशा के लिए अलग हो जाते हैं और अब निकाह नहीं हो सकता। कई फ़क़ीहों ने कहा है कि हर एक तलाक़ एक 'तोहर' (दो माहवारी के बीच की अवधि) में एक बार देना चाहिए और इस 'तोहर' में दोनों ने सम्भोग न किया हो। पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० की एक हदीस से पता चलता है कि तलाक़ माहवारी की स्थिति में नहीं दी जा सकती क्योंकि इस स्थिति में औरत व मर्द दोनों शरीरिक और मानसिक दबाव में होते हैं, न ऐसी तोहर की हालत में दी जा सकती है जिसमें दोनों सम्भोग कर चुके हों, क्योंकि इस सम्बंध की वजह से दोनों के बीच निकटता आती है और इससे यह पता चलता है कि निकाह बना रह सकता है और दोनों को अपने फ़ैसले पर पुनर्विचार के लिए और समय दिया जाना चाहिए। दोनों को पहली या दूसरी तलाक़ के निर्धारित समय का ध्यान रखना होगा, और इद्दत के दिन गिनते रहना चाहिएं ताकि उन दोनों तलाक़ों से वापसी इस अवधि के पूरा होने से पहले पहले बग़ैर निकाह के की जा सके। जैसा कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है, यह इद्दत की अवधि तीन माहवारियों या तीन तोहर के हिसाब से तय की जाएगी (अलग अलग फ़िक़्ही राय के हिसाब क्योंकि क़ुरआन (2:228) में जो शब्द इस्तेमाल हुआ है उसके दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं)।

इन आयतों में यह भी कहा गया है कि तलाक़ देकर पत्नि को तुरन्त घर से नहीं निकालना चाहिए और क़ुरआन में इसके लिए "उनके घरो" के शब्द इस्तेमाल किए गए हैं, न उन्हें उस समय तक घर से निकलने के लिए किसी भी तरह मजबूर किया जाए जब तक वह खुले तौर से किसी बेशर्मी के काम में लिप्त न पाई जाएं। ऊपर की आयतों में से दूसरी आयत में इस बात पर ज़ोर दिया गया है जैसा कि इससे पहले आयत 2:229 में निर्देश दिया गया था कि अलग अलग हो जाने की यह प्रक्रिया उचित रूप से होना चाहिए, और अगर इद्दत के दौरान वापसी कर ली जाए तो यह भी उचित तरीक़े से हो ताकि घर के जीवन में शान्ति और प्रतिष्ठा बनी रहे। यह आयतें इस बात की मांग करती हैं कि निकाह को बनाए रखने का फ़ैसला भी और तलाक़ को अमल में लाने का फ़ैसला भी कुछ फ़क़ीहों की राय के अनुसार "अपने में से

दो मुन्सिफ़ गवाहो'' की मौजूदगी में होना चाहिए। यह कार्यशैली जैसा कि आज हमारे ज़माने में भी सम्बंधित अधिकारी के यहां रजिस्टर्ड होना ज़रूरी है, फ़ैसले को ठोस और गम्भीर बनाती है। पिछली आयतें यह इशारा करती हैं कि इद्दत के दिन की गिनती तलाक़ पाई औरत के माहवारी के दिनों से शुरू करना चाहिए। जो महिलाएं माहवारी आने की उम्र से निकल चुकी हो या उन्हें और किसी कारण से माहवारी आना रुक गयी हो तो इद्दत के दिन कैलेण्डर के तीन महीनों के हिसाब से गिने जाएंगे। गर्भवती महिला के लिए फ़क़ीहों की समझ यह है कि उनकी इद्दत की अवधि चार महीने और दस दिन है जो कि क़ुरआन में हर विधवा के लिए एक आम सिद्धांत के रूप में बताई है (2:234), जबकि कुछ लोगों का विचार यह है कि गर्भवती महिला के लिए इद्दत की अवधि बच्चे की पैदाइश तक है जैसा कि क़ुरआन में तलाक़ पाने वाली गर्भवती औरत के लिए एक आम सिद्धांत के रूप में बताई गयी है। यह दूसरा वर्ग अपनी राय के पक्ष में पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० की एक हदीस पेश करता जिसमें कहा गया है कि पैदाइश के साथ ही गर्भवती महिला की इद्दत ख़त्म हो जाना चाहिए चाहे उस समय तक चार महीने और दस दिन की अवधि पूरी न हुई हो (देखं इब्ने कसीर की तफ़सीर में आयत 2:235 की व्याख्या)।

उपरलिखित अन्तिम दो आयतों में तलाक़ पाई औरत के नफ़क़े (ख़र्चे) का कुछ विवरण दिया गया है (2:241), और यह कि इस नफ़क़े में क्या क्या चीज़ें आती हैं। यह आयत यह कहती है कि तलाक़ पाई औरत अगर अपना घर छोड़ती है तो उसके रहने की व्यवस्था की जाएगी। यह व्यवस्था वैसी ही होना चाहिए जैसे पति की है लेकिन पति की क्षमता के हिसाब से ही होगी और आवास उपलब्ध कराने में तथा दूसरी ज़रूरी चीज़ें उपलब्ध कराने में या और किसी बहाने से तलाक़ पाई औरत को कोई नुक़सान या तकलीफ़ नहीं देना चाहिए। निकाह के नतीजे में पैदा होने वाली संतान के पालन की ज़िम्मेदारी मां पर नहीं, इसलिए उसे उसका ख़र्चा दिया जाएगा, और अगर वह बच्चे को दूध पिलाने या उसका पालन करने पर राज़ी नहीं है तो किसी दूसरी औरत से यह सेवा ली जाएगी और उसे उसका मुआवज़ा दिया जाएगा। हर पति को यह निर्देश दिया गया है कि वह अपनी तलाक़ दी गयी पत्नि पर इस हद तक ख़र्च करे और इस हद तक उसके आराम का ख़्याल रखे जितना उसके बस में है, और नफ़क़े के मामले में इस्लाम का यह आम न्यायिक सिद्धांत अपनाया जाएगा कि ''अल्लाह किसी जानदार पर उसकी क्षमता से अधिक भार नहीं डालते'' (और देखें 2:233, 286; 6:152; 7:42; 23:62)।

इन सभी आयतों से और क़ानूनी मामलों से सम्बंधित दूसरी क़ुरआनी आयतों से भी, यह पता चलता है कि क़ानून अल्लाह के तक़वा पर आधारित है और तक़वा व अख़लाक़ व ज़मीर से इसका मुस्तक़िल सम्बंध है, ''इस तरह हर उस व्यक्ति को नसीहत की जाती है जो अल्लाह

पर और आखरित के दिन पर ईमान रखता है और जो कोई अल्लाह पर भरोसा रखेगा तो वह उसके लिए काफ़ी होगा अल्लाह अपने काम को (जो वह करना चाहता है) पूरा कर देता है अल्लाह ने हर चीज़ा का अन्दाज़ा निर्धारित कर रखा है. और जो अल्लाह से डरेगा अल्लाह उसके काम में सहूलत पैदा कर देगा"। इस्लामी शरीअत का मौलिक गुण यह है कि क़ानूनी बन्दोबस्त बग़ैर ईमान व अख़लाक़ के कारामद नहीं हो सकते और ये तीनों चीज़ें व्यक्ति और समाज के रवैये में एक दूसरे से जुड़ी होना चाहिएं। आज की दुनिया में बहुत से बने बनाए क़ानून स्वयं क़ानून बनाने वालों के भृष्टाचार की वजह से ही असफ़ल हो जाते हैं, और कभी कभी स्वंय वो लोग जिनके हित में क़ानून बनाए जाते हैं वो भी अपने भृष्टाचार से क़ानून को बे फ़ायदा बना देते हैं। इसके अलावा यह कि आदमी के जीवन का कोई न कोई उद्देश्य होना चाहिए जो उसके दिल व दिमाग़ में बसा हो और जो उसे अपनी क़ानूनी ज़िम्मेदारियां पूरी करने के लिए सक्रिय रखे चाहे राह में कितनी ही रुकावटें और कठिनाइयां हों। देशप्रेम का फ़लसफ़ा सभी लोगों को क़ायल नहीं कर सकता और न हमेशा प्रभावी रह सकता है। क़ानून का प्रभावपूर्ण और कारगर क्रियान्वन नैतिक आधारों की मांग करता है जो व्यक्तिगत और आम शिक्षा से पैदा हो सकते हैं ताकि व्यक्ति और समाज तमाम तरह के दबाव और दुश्वारियों के बावजूद अपनी क़ानूनी ज़िम्मेदारियां पूरी करने के लायक़ बन सकें। इस लिहाज़ से अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान से बढ़ कर कोई चीज़ नहीं हो सकती क्योंकि ईमान की गहराई और व्यापकता तक कोई चीज़ नहीं पहुंच सकती।

निकाह को बनाए रखने या समाप्त कर देने के लिए समाधान

وَ اِنِ امْرَاَةٌ خَافَتْ مِنْۢ بَعْلِهَا نُشُوْزًا اَوْ اِعْرَاضًا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يُّصْلِحَا بَيْنَهُمَا صُلْحًا ؕ وَ الصُّلْحُ خَيْرٌ ؕ وَ اُحْضِرَتِ الْاَنْفُسُ الشُّحَّ ؕ وَ اِنْ تُحْسِنُوْا وَ تَتَّقُوْا فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿۱۲۸﴾

और किसी औरत को अगर अपने शौहर से बददिमाग़ी और लापरवाही का ग़ालिब एहतमाल हो तो दोनों को कोई गुनाह नहीं है के दोनों बाहम सुलह कर लें और ये सुलह बेहतर है, और तबीयतें तो बुख़्ल की तरफ़ मायल होती हैं, अगर तुम नेकी करो और अल्लाह से डरो, तो अल्लाह तुम्हारे सब कामों से खूब बाख़बर है।

(4:128)

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۪ فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ؕ وَ لَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ

तलाक़ सिर्फ़ दो बार है, फिर या तो औरतों को बतरीक़ शाईस्ता निकाह में रहने देना है या नेकी के साथ ख़ुशी ख़ुशी रुख़सात कर देना है, और ये जायज़ नहीं है कि जो

تَأْخُذُوا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْـًٔا اِلَّآ اَنْ
يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۭ فَاِنْ
خِفْتُمْ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ
عَلَيْهِمَا فِيْمَا افْتَدَتْ بِهٖ ۭ تِلْكَ حُدُوْدُ
اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْهَا ۚ وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ
اللّٰهِ فَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿٢٢٩﴾

मेहर तुम दे चुके हो कुछ वापस ले लो, मगर ये के दोनों को अंदेशा हो के वो अल्लाह की हुदूद पर क़ायम नहीं रहेंगे, अगर तुमको ये अंदेशा है के वो दोनों अल्लाह की हुदूद पर क़ायम नहीं रहेंगे तो औरतें अपने शौहर से रिहाई पाने के लिए बदले में कुछ दे दे तो दोनों पर कोई गुनाह नहीं, ये अल्लाह की हुदूद है, तो उनसे कहीं बाहर ना निकलना, और जो अल्लाह की इन हुदूद से बाहर निकलेगा, ऐसे ही लोग ज़ालिम हैं। (2:229)

कोई औरत जब पति की तरफ़ से किसी दुर्व्यवहार या अन्याय की शिकायत के बग़ैर केवल अपनी भावनात्मक स्थिति के चलते तलाक की मांग करे तो जिस तरह तलाक़ लेने के लिए वह अपने कुछ अधिकारों को त्याग सकती है या पति को कोई चीज़ दे सकती है (2:229), इसी तरह वह निकाह को बनाए रखने के लिए भी कुछ अधिकारों को छोड़ सकती है (4:128)। जब पति की तरफ़ से कोई मेल न हो पा रहा हो तो पत्नि घर को बनाए रखने के लिए पति को कुछ छूट दे सकती है जैसे शरीरिक सम्बंध न बनाने पर राज़ी हो जाना या पति को दूसरे निकाह का अवसर देना अगर वह सभी क़ानूनी तक़ाज़े पूरे करके ऐसा कर रहा हो और यह उसके लिए मुम्किन भी लगता हो, या दूसरी पत्नि को ज़्यादा समय देने पर राज़ी हो जाना। जिस तरह से भी मामला बन सकता हो, तो क़ुरआन के अनुसार निकाह को बनाए रखना तलाक़ से बहतर है, ख़ास तौर से तब जब पत्नि किसी कारण से स्वयं अपने बल पर जीवन न बिता सकती हो, या दोनों एक दूसरे के साथ एक लम्बा समय बिता चुके हों, या छोटे बच्चे हों जिनको अभी मातापिता के सहारे की ज़रूरत हो और पति व पत्नि के अलग होने की स्थिति में उनके लिए दुश्वारियां खड़ी हो सकती हों, वग़ैरह।

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ
اَزْوَاجًا يَّتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ اَرْبَعَةَ
اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا ۚ فَاِذَا بَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا
جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ
بِالْمَعْرُوْفِ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ﴿٢٣٤﴾
وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْمَا عَرَّضْتُمْ بِهٖ مِنْ
خِطْبَةِ النِّسَاۗءِ اَوْ اَكْنَنْتُمْ فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ۭ

और जो लोग तुम में से फ़ौत हो जायें और अपनी औरतें छोड़ जायें तो ये औरतें चार माह और दस रोज़ तक अपने आपको रोके रखें, और जब ये इद्दत के दिन पूरे हो जायें तो तुम पर कोई गुनाह नहीं है के वो अपनी ज़ात के लिए कोई कार्यवाई करें दस्तूर के मुताबिक़ अल्लाह तो तुम्हारी सारी बातों से ख़ूब वाक़िफ़ है। अगर तुम इशारों इशारों में औरतों को निकाह का पैग़ाम दो या निकाह की ख़्वाहिश को अपने दिल में मख़्फ़ी रखो तो इसमें कोई गुनाह नहीं है, अल्लाह को इल्म है के तुम

عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ وَ لٰكِنْ لَّا
تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا
مَّعْرُوْفًا ؕ وَ لَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ
حَتّٰى يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ؕ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّ
اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ وَ
اعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿٢٣٥﴾

उनसे अपने लिए निकाह की बातें करोगे (मगर ये बातें इद्दत के दिनों में नहीं करनी चाहियें) लेकिन तुम उन से क़ौलो इक़रार .ख़ुफ़िया ना करना मगर ये के दस्तूर के मुताबिक़ कोई बात कर लो, और निकाह का इरादा हरगिज़ ना करना जब तक इद्दत के दिन पूरे न हो जायें, ये यक़ीन रखो के अल्लाह .ख़ूब जानता है जो तुम्हारे दिलो में है, उससे बचते रहो, और ये भी मालूम रहे के अल्लाह तो है ही बड़ा बख़्शने वाला और हिल्म वाला। (2:234-235)

जब महिला का पति जो कि उसका सहारा होता है उसके पास न रहे तो इस बात की आंशका होती है कि कहीं दूसरे लोग उसका हक़ न मार लें, या वह स्वंय अपने पति के छोड़े माल में से दूसरों का अधिकार भी ख़ुद न ले और दूसरों को उसकी जानकारी न हो, या पति के ऊपर कुछ देनदारी हो और वह केवल पत्नि को ही मालूम हो तो हो सकता है वह उसे छुपा ले। इसलिए अधिकारों और ज़िम्मेदारियों का निर्धारण ज़रूरी है ताकि सभी पक्षों के साथ न्याय हो सके। विधवा महिला को दूसरे विवाह से पहले चार महीने दस दिन की इद्दत पूरा करना होती है, यह इद्दत तलाक़ पाई महिला की इद्दत से ज़्यादा है और इसकी वजह है दोनों मामलों की स्थिति अलग अलग होना। तलाक़ से महिला को भावनात्मक और मानसिक आघात पहुंचता है, ऐसि स्थिति में इद्दत की अवधि तलाक़ वाली महिला को छूट देने के लिए कम से कम ही होना चाहिए, जबकि पति की मृत्यू से विधवा होने वाली महिला को पति अपनी इच्छा से छोड़ कर नहीं जाता, ऐसी स्थिति में मृतक पति के प्रति अपनी वफ़ादारी और मुहब्बत का तक़ाज़ा यह है कि दूसरा विवाह करने से पहले विधवा महिला को तलाक़ वाली औरत की अपेक्षा ज़्यादा लम्बे समय तक इन्तेज़ार करना चाहिए। फिर भी उसे अधिकार है कि वह अपने भविष्य के लिए जो भी जायज़ शरीफ़ाना फ़ैसला करे इद्दत पूरी होते ही उस पर अमल कर सकती है। यदि विधवा गर्भवती है तो उसकी इद्दत बच्चे के जन्म तक चलेगी चाहे इसमें चार महीने दस दिन से अधिक का समय लगे, एक मत तो यह है जबकि दूसरा मत यह है कि जो कि हदीस पर आधारित है कि बच्चे के जन्म लेते ही इद्दत समाप्त हो जाती है चाहे इसमें चार महीने दस दिन से कम का समय लगे (देखें तफ़सीर इब्ने कसीर आयत 2:235)।

कोई मर्द जो किसी विधवा औरत से विवाह का इच्छुक हो वह उस औरत की इद्दत समाप्त होने से पहले स्पष्ट रूप से उसे निकाह का पैग़ाम नहीं दे सकता। अलबत्ता वह सांकेतिक रूप से अपना इरादा ज़ाहिर कर सकता है ताकि औरत को इस सिलसिले में सोचने का कुछ मौक़ा

मिल जाए या यह कि औरत के पास कोई और प्रस्ताव आने से पहले वह अपना इरादा औरत को बता देना चाहे। बहरहाल, विधवा औरत जिसने अपने पति को खो दिया उसके हालात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए, किसी मर्द की तरफ़ से कोई संकेत या औरत की तरफ़ से कोई सकारात्मक संकेत नैतिकता व शालीनता के दायरे में ही होना चाहिए और जब तक इद्दत पूरी न होने निकाह का पक्का इरादा न किया जाए, ''और जान रखो कि जो कुछ तुम्हारे दिलों में है अल्लाह को सब मालूम है तो उससे डरते रहो. ''

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا ۚۖ وَّصِيَّةً لِّاَزْوَاجِهِمْ مَّتَاعًا اِلَى الْحَوْلِ غَيْرَ اِخْرَاجٍ ۚ فَاِنْ خَرَجْنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيْ مَا فَعَلْنَ فِيْٓ اَنْفُسِهِنَّ مِنْ مَّعْرُوْفٍ ۭ وَاللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿٢٤٠﴾

जो तुम में से फ़ौत हो जायें और बीवियों को छोड़ जायें, वो अपनी बीवियों के हक़ में वसीयत कर जायें के उनको एक साल तक .ख़र्च दिया जाए और घर से ना निकाला जायें, अलबत्ता अगर वो .ख़ुद चली जायें तो तुम पर कोई गुनाह नहीं उस क़ायदे की बात में जो वो अपने बारे में करें, और अल्लाह ज़बरदस्त है और हिकमत वाला। (2:240)

पति के लिए यह ज़रूरी किया गया है कि वह अपने बाद अपनी विधवा औरत के आराम व सुकून को सुनिश्चित करने के लिए एक साल तक उसके रहने बसने की व्यवस्था करे और अगर वह अपनी मर्ज़ी से बग़ैर किसी दबाव के पति के घर से जाना चाहती हो तो जा सकती है लेकिन उसे इसके लिए एक साल तक मजबूर नहीं किया जाएगा। यह व्यवस्था पति के छोड़े गए माल में पत्नि के अधिकार और पति की तरफ़ से उसके लिए की गयी किसी वसीयत से अलग है, क्योंकि इस आयत (2:240) में जो कुछ कहा गया है उसमें और विधवा औरत की विरासत के बारे में आयत 4:12 में जो शिक्षा दी गयी है उसमें कोई टकराव नहीं है।

बच्चों के साथ मातापिता का सम्बंध

اَلْمَالُ وَالْبَنُوْنَ زِيْنَةُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَالْبٰقِيٰتُ الصّٰلِحٰتُ خَيْرٌ عِنْدَ رَبِّكَ ثَوَابًا وَّخَيْرٌ اَمَلًا ﴿٤٦﴾

माल और बेटे दुनिया की ज़िन्दगी की रौनक़ हैं, और नेकियां जो बाक़ी रहने वाली हैं, आपके रब के नज़दीक सवाब के ऐतबार से बहुत बेहतर हैं, और उम्मीद के लिहाज़ से भी बहुत बेहतर हैं। (18:46)

زُيِّنَ لِلنَّاسِ حُبُّ الشَّهَوٰتِ مِنَ النِّسَآءِ

लोगों के लिए मरग़ूब चीज़ों की मोहब्बत मुज़ईय्यत की

وَ الْبَنِيْنَ وَ الْقَنَاطِيْرِ الْمُقَنْطَرَةِ مِنَ الذَّهَبِ وَالْفِضَّةِ وَالْخَيْلِ الْمُسَوَّمَةِ وَ الْاَنْعَامِ وَ الْحَرْثِ ؕ ذٰلِكَ مَتَاعُ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَاللّٰهُ عِنْدَهٗ حُسْنُ الْمَاٰبِ ﴿۱۴﴾

गई है जैसे औरतें, बेटे, सोने और चांदी के बड़े बड़े ढेर, निशान लगे घोड़े और मवेशी और खेती, ये सब दुनिया की ज़िन्दगी के सामान हैं। और अल्लाह के पास तो बहुत ही अच्छा ठिकाना है। (3:14)

दूसरे जीवों की तरह इंसान का भा यह स्वभाव है कि संतान उत्पत्ति करे और इंसानी प्रजाति को बनाए रखने का सिलसिला जारी रखे। इसी तरह इंसान का स्वभाव यह भी है कि वह माल व दौलत को भी पसन्द करता है, उसे अपनी सम्पत्ति बनाना और अपने पास रखना चाहता है। क़ुरआन चूंकि अल्लाह की तरफ़ से, जो कि सभी इंसानों के जनक हैं, एक मार्गदर्शन है इसलिए वह इंसानी स्वभाव का सैद्धांतिक रूप से विरोध नहीं करता (देखें कि अल्लाह ने औलाद और माल को अपना फ़ज़ल बताया है और पैग़म्बर साहब की हदीसों में भी इसमें बरकत की दुआएं दी गयी हैं, और देखें अल्लाह की तरफ़ से (बख़्शिश और माल व औलाद की तमन्ना के लिए क़ुरआनी आयतें 2:162,201,280; 3:37-38; 5:114; 7:32; 11:71-73; 13:38; 14:37; 19:2-15; 21:89; 29:17; 51:28-30; 65:7; 67:15, अलबत्ता क़ुरआन इंसान को यह सीख देता है कि वह इस मामले में संतुलित व्यवहार रखे और आत्मसराहना व भौतिकतावाद के विभिन्न रूपों जैसे शावनिज़्म (यानि अपने परिवार, क़बीले या क़ौम का बर्चस्व स्थापित करने की भावना) या लालच से बचे। अल्लाह और आख़िरत के दिन पर ईमान इस संतुलन को स्थापित रखने के लिए कल्पनात्मक आधार देता है, क्योंकि इस ईमान से यह विश्वास पैदा होता है कि इंसान का सफ़र इस दुनिया और इसकी राहतों व आनन्दों तक ही सीमित नहीं है और हर एक को जवाबदेह होना है और इस दुनिया में किए गए अपने कामों का बदला पाना है और एक अनन्त जीवन आगे आने वाला है। इस्लाम के संदेश में मौजूद नैतिक मूल्य और क़ानूनी नियम इस संतुलन को बनाए रखने के लिए व्यवहारिक ढंग देते हैं।

मातापिता पर बच्चों को पालने पोसने और विभिन्न पहलुओं से उनको विक्सित करने की क़ानूनी ज़िम्मेदारी है यानि उन्हें शरीरिक, बौद्धिक, मानसिक, अध्यात्मिक और नैतिक रूप से परवान चढ़ाना, और यह काम उसी समय से शुरू हो जाता है जब बच्चा अपनी मां के पेट में मौजूद होता है (2:223)। क़ुरआन इस बात को सख़्ती से मना करता है कि बच्चे की हत्या की जाए, चाहे यह सीधे रूप से हो या शरीरिक व नैतिक रूप से उसका ध्यान न रख कर अप्रत्यक्ष रूप से हो (16:137,140,151; 16:58-59; 17:131; 60:12; 81:8-9)। बच्चों के अधिकारों में यह भी शामिल है कि मातापिता बच्चे का अच्छा सा नाम रखें और बुरा नाम रखने से बचें (हदीसःइब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी, दारमी)। बच्चे का नाम उसके पिता के नाम से जोड़ा

जाना चाहिए:“उन्हें उनके पिता के सम्बंध से पुकारो, यह अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इंसाफ़ की बात है”(33:4-5) और जब मातापिता में से किसी की मौत हो जाए तो बच्चों का विरासत में सबसे ज़्यादा हिस्सा है (4:7-10)।

وَوَصّٰى بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِيْهِ وَ يَعْقُوْبُ ۗ يٰبَنِىَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰى لَكُمُ الدِّيْنَ فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَ اَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۞ اَمْ كُنْتُمْ شُهَدَآءَ اِذْ حَضَرَ يَعْقُوْبَ الْمَوْتُ ۙ اِذْ قَالَ لِبَنِيْهِ مَا تَعْبُدُوْنَ مِنْۢ بَعْدِىْ ۗ قَالُوْا نَعْبُدُ اِلٰهَكَ وَ اِلٰهَ اٰبَآئِكَ اِبْرٰهٖمَ وَ اِسْمٰعِيْلَ وَ اِسْحٰقَ اِلٰهًا وَّاحِدًا ۖۚ وَّ نَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۞

और इब्राहीम ने अपने बेटों को इस बात की वसीयत की और याक़ूब ने भी, ऐ बेटों! अल्लाह ने तुम्हारे लिए यही दीन पसंद किया है, तो तुम मरना नहीं मगर मुसलमान ही मरना। क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब याक़ूब वफ़ात पाने लगे, जब याक़ूब ने अपने बेटों से कहा तुम मरे बाद किस की बंदगी किया करोगे? तो सब ने यही कहा के आपके माबूद की, और आप के बाप दादा इब्राहीम और इसमाईल और इसहाक़ के माबूद की बंदगी करेंगे जो माबूद यकता है, और हम उसी के हुक्म की इताअत करेंगे। (2:132-133)

यह मातापिता की ज़िम्मेदारी है कि वो अपने अनुभवों से बच्चों को अवगत कराएं और उनका मार्गदर्शन करें, उन्हें निर्देश दें और उनकी निगरानी करें बग़ैर इसके कि उन पर जब्र करे:“अपने आप को और अपने घर वालों को (जहन्नम की) आग से बचाओ जिसका ईंधन आदमी और पत्थर हैं”(66:6)। यह बात पैग़म्बरों के तरीक़ों से भी ज़ाहिर है जिन्होंने अपने सबसे क़रीबी लोगों यानि अपने घर के व्यक्तियों, अपने बाल बच्चों को अल्लाह का पैग़ाम पहुंचाने की ज़िम्मेदारी पूरी करने की कोशिश की। क़ुरआन में हज़रत नूह का क़िस्सा कई जगह बयान हुआ है जिन्होंने अपने बेटे को बहुत समझाया कि वह ईमान लाने वालों में से हो जाए और ईमान वालों के साथ कशती में सवार हो जाए ताकि सेलाब में डूबने से बच जाए, और फिर जब तूफ़ान थम गया तो हज़रत नूह ने विनम्रता से जो दुआ की उसको भी क़ुरआन में नक़ल किया गया है:“वह उनको लेकर (तूफ़ान की) लहरों में चलने लगी (लहरें क्या थीं) मानो पहाड़ (थे) उस समय नूह ने अपने बेटे को कि (कश्ती से) अलग था पुकारा कि बेटा हमारे साथ सवार होजा और काफ़िरों में शामिल न हो। उसने कहा कि मैं (अभी) पहाड़ से जा लगूंगा वह मुझे पानी से बचा लेगा। उन्होंने कहा कि आज अल्लाह के अज़ाब से बचाने वाला कोई नहीं (और न कोई बच सकता है) मगर जिस पर अल्लाह रहम करे, इतने में दोनों के बीच लहर आ गयी और वह डूब कर मर गया.”

''और नूह ने अपने रब को पुकारा और कहा, अल्लाह मेरा बेटा भी मेरे घर वालों में है (तो उसको भी बचा लीजिए) आपका वायदा सच्चा है और आप सबसे बहतर हाकिम हैं। अल्लाह ने फ़रमाया कि ऐ नूह वह तुम्हारे घर वालों में नहीं है वह ग़ैर स्वालेह अमल है तो जिस चीज़ की वास्तविकता तुम्हें पता नहीं उसके बारे में मुझ से सवाल न करो और मैं तुम्हें नसीहत करता हूं कि मूर्ख मत बनो। नूह ने कहा मेरे रब मैं आपकी शरण लेता हूं इस बात से कि ऐसी चीज़ का सवाल करूं जिसकी वास्तविकता मुझे पता नहीं और अगर आपने मुझे बख़्शा और मुझ पर रहम नहीं किया तो मैं तबाह हो जाउंगा। आदेश हुआ कि नूह हमारी तरफ़ से सलामती और बरकतों के साथ (जो) तुम पर और तुम्हारे साथ की जमाअतों पर (उतारी गयी हैं) उतर आओ और कुछ और जमाअतें होंगी जिनको हम (दुनिया के फ़ायदों से) आनन्दित करेंगे फिर उनको हमारी तरफ़ से दर्दनाक अज़ाब होगा'' (11 24-43,45-48, और देखें 46 17)।

हज़रत इब्राहीम अलैहिस सलाम ने अपने अन्तिम सांस तक अपने बच्चों को यह सीख दी कि अल्लाह पर ईमान रखें और अल्लाह की ही इबादत करें और अल्लाह की हिदायत पर चलें, उनके पोते हज़रत याक़ूब ने भी यही नसीहत अपने बच्चों को की थी। हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल ने जब अल्लाह की इबादत के घर काबा का निर्माण शुरू किया तो उन्होंने अल्लाह से दुआ की ''ऐ रब हमें अपना आज्ञाकारी बनाए रखना और हमारी संतान में से भी एक वर्ग को अपना आज्ञाकारी बनाते रहना और (अल्लाह) हमें हमारे इबादत के तरीक़े बताना और हमारे हाल पर ध्यान रखना आप तो बेशक ध्यान रखने वाले महरबान हैं''(2:128)। लेकिन जब हज़रत इब्राहीम ने अल्लाह से यह दुआ की कि उनकी संतान को भी लोगों का इमाम बनाया जाए तो अल्लाह की तरफ़ से यह दोटूक जवाब मिला कि इमामत व्यक्ति की योग्यता के आधार पर दी जाती है पैतृक सम्बंध के आधार पर नहीः''अल्लाह ने जवाब दिया कि मेरा वायदा ज़ालिमों (पापियों) के लिए नहीं है''(2:124)।

وَ لَقَدْ اٰتَيْنَا لُقْمٰنَ الْحِكْمَةَ اَنِ اشْكُرْ لِلّٰهِ ؕ وَ مَنْ يَّشْكُرْ فَاِنَّمَا يَشْكُرُ لِنَفْسِهٖ ۚ وَ مَنْ كَفَرَ فَاِنَّ اللّٰهَ غَنِيٌّ حَمِيْدٌ ﴿۱۲﴾ وَ اِذْ قَالَ لُقْمٰنُ لِابْنِهٖ وَ هُوَ يَعِظُهٗ يٰبُنَيَّ لَا تُشْرِكْ بِاللّٰهِ ؕ اِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيْمٌ ﴿۱۳﴾

और हमने लुक़मान को हिकमत अता की के अल्लाह का शुक्र करते रहो, और जो शुक्र करेगा तो अपने ही फ़ायदे के लिये करेगा, और जो ना शुक्री करेगा तो ख़ुदा बेनियाज़ ख़ूबियों वाला है। और जब लुक़मान ने अपने बेटे को नसीहत करते हुए कहा, बेटा! अल्लाह के साथ कभी शिर्क ना करना, बेशक शिर्क बहुत बड़ा ज़ुल्म है। (31:12-13)

يٰبُنَيَّ اِنَّهَآ اِنْ تَكُ مِثْقَالَ حَبَّةٍ مِّنْ خَرْدَلٍ فَتَكُنْ فِيْ صَخْرَةٍ اَوْ فِي السَّمٰوٰتِ اَوْ فِي الْاَرْضِ يَاْتِ بِهَا اللّٰهُ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَطِيْفٌ خَبِيْرٌ ۝ يٰبُنَيَّ اَقِمِ الصَّلٰوةَ وَاْمُرْ بِالْمَعْرُوْفِ وَانْهَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَاصْبِرْ عَلٰي مَآ اَصَابَكَ ۭ اِنَّ ذٰلِكَ مِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ ۝ وَلَا تُصَعِّرْ خَدَّكَ لِلنَّاسِ وَلَا تَمْشِ فِي الْاَرْضِ مَرَحًا ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ كُلَّ مُخْتَالٍ فَخُوْرٍ ۝ وَاقْصِدْ فِيْ مَشْيِكَ وَاغْضُضْ مِنْ صَوْتِكَ ۭ اِنَّ اَنْكَرَ الْاَصْوَاتِ لَصَوْتُ الْحَمِيْرِ ۝

ऐ मेरे बेटे! अगर कोई अमल राई के दाने के बराबर हो, और हो भी किसी पत्थर के अन्दर, या आसमानों में मख़्फ़ी हो या ज़मीन में हो तो अल्लाह उसको भी ले आयेगा, बिला शुबह अल्लाह तो बड़ा बारीक बीन और ख़बरदार है। ऐ मेरे बेटे! नमाज़ पाबंदी से अदा करते रहना! और अच्छी बातों का हुक्म करते रहना, और बुरी बातों से मना करते रहना, और उस मुसीबत पर सब्र करते रहना जो तुझे पहुंचे, बिलाशुबह ये बड़ी हिम्मत के काम हैं। और लोगों के सामने (मारे ग़ुरूय के) अपने गाल ना फ़ुलाना, और ज़मीन पर अकड़ कर ना चलना, बेशक अल्लाह किसी मुतकब्बिर फ़ख्र करने वाले को पसंद नहीं करता। और अपनी चाल में मयान रवी इख़्तियार कर, और अपनी आवाज़ को पस्त कर, बेशक आवाज़ों में सबसे बुरी आवाज़ गधों की आवाज़ है।
(31:16-19)

मातापिता को अपने बच्चों की शिक्षा पर और उन्हें बौद्धिक, मानसिक और अध्यात्मिक हर रूप से विक्सित करने पर ध्यान देना चाहिए, जिस तरह वो उनकी शरीरिक विकास और उनकी भौतिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते हैं। हज़रत लुक़मान प्राचीन अरब में एक हकीम व बुद्दिजीवी के रूप में मशहू थे। उपरोक्त आयतों में अपनी औलाद को उनकी जो नसीहतें नक़्ल की गयी हैं वो बच्चों को नैतिकता सिखाने और शिक्षा देने का एक मुस्तक़िल नमूना हैं कि इस तरह नसीहत के लहजे में समझाया जाना चाहिए ना कि बच्चों पर बात को थोपा जाए और उन पर हुक्म चलाया जाए। एक अल्लाह पर ईमान और उसकी इबादत से नैतिकता परवान चढ़ती है कि ये दोनों चीज़ें इंसान के अन्दर में विक्सित होती हैं, और एक अल्लाह पर ईमान रखने वाला और एक अल्लाह की इबादत करने वाला इंसान हमेशा सदाचार के पक्ष में और दुराचार के ख़िलाफ़ खड़ा होता है। इसके नतीजे में समय समय पर समस्याएं खड़ी होती हैं लेकिन इसके चलते ''अम्र बिल मअरूफ़'' और ''नही अनिल मुनकर'' का कर्तव्य नहीं छोड़ देना चाहिए, जो व्यक्ति नेकी की तरफ़ बुलाता है उसे लोगों के दुर्व्यवहार को सहन करना चाहिए और धैर्य रखना चाहिए और जिस मक़सद पर वह लगा हुआ है उस पर जमे रहना चाहिए। लेकिन जो व्यक्ति इसे अपने निज और अंहकार की समस्या बनाएगा वह अहंकार में इस नैतिक प्रतिष्ठा को खो सकता है क्योंकि वह स्वयं को अच्छाइयों का रक्षक और बुराइयों

का दुशमन समझने लगता है। अतःये आयतें दावत व इस्लाह के ऐसे सक्रिय कार्यकर्ता को यह याद दिलाती हैं कि अहंकार और घमण्ड भी अच्छाई पर अमल न करने और बुराइयों की तरफ़ उत्सुक होने से कम बुरी चीज़ नहीं है। क़ुरआन में हज़रत लुक़मान के द्वारा बेटे को की गयी नसीहत नक़ल की गयी है उससे यह ताकीद होती है कि आत्मविश्वास और आत्मनियंत्रण की शक्ति बचपन में ही घर के प्रशिक्षण से आ जाना चाहिए ताकि वह समाज का एक निर्माणकारी और सक्रिय तत्व बन सके।

وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَ ذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّ اجْعَلْنَا لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ﴿۷۴﴾

और वो जो अपने रब से दुआ मांगते हैं, ऐ हमारे रब! तू हमको हमारी बीवियों और हमारी औलाद की तरफ़ से आंख की ठंडक इनायत फ़रमा, और हमको परहेज़गारों का इमाम बना। (25:74,)

और देखें 46:15

माता पिता अपने बच्चों से मुहब्बत करते हैं और उनका पूरा ध्यान रखते हैं और उन्हें शरीरिक, मनोवैज्ञानिक, बौद्धिक और नैतिक परिपक्वता के लिहाज़ से एक नमूना देखना चाहते हैं और इसके लिए दुआ भी करते हैं (और देखें 14:40; 46:15)। आख़िरत में भी मातापिता अपने परिवार वालों को, ख़ास तौर से अपने बच्चों को, अल्लाह की प्रसन्नता और इनाम पाने वाले लोगों में देखना चाहेंगे और जन्नत में उनको अपने साथ देखने की कामना रखेंगे (13:23; 40:8; 52:21)।

لِلرِّجَالِ نَصِيْبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَ الْاَقْرَبُوْنَ ۠ وَ لِلنِّسَآءِ نَصِيْبٌ مِّمَّا تَرَكَ الْوَالِدٰنِ وَ الْاَقْرَبُوْنَ مِمَّا قَلَّ مِنْهُ اَوْ كَثُرَ ؕ نَصِيْبًا مَّفْرُوْضًا ﴿۷﴾

मर्दों के लिए भी हिस्सा है उस चीज़ में जो मां बाप और बहुत क़रीबी रिश्तेदार छोड़ मरें, और औरतों का भी हिस्सा है उस चीज़ में जो मां बाप और बहुत क़रीब के रिश्तेदार छोड़ मरें, .ख़्वाह वो चीज़ थोड़ी हो या बहुत, हिस्सा क़तई मुक़र्रर है। (4:7)

बच्चों को भौतिक रूप से सुखी रखने और देखने की मातापिता की ज़िम्मेदारियां उनके जीवन के बाद भी जारी रहती हैं, और इसी लिए क़ुरआन ने मातापिता की विरासत में बच्चों का हिस्सा निर्धारित किया है। बेटों और बेटियों दोनों के लिए समानुपातिक हिस्सा रखा गया है। जैसा कि विरासत के संदर्भ में क़ुरआन के सिद्धांतों का बयान आगे आ रहा है।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تُلۡهِكُمۡ اَمۡوَالُكُمۡ وَ
لَاۤ اَوۡلَادُكُمۡ عَنۡ ذِكۡرِ اللّٰهِ‌ۚ وَمَنۡ يَّفۡعَلۡ
ذٰلِكَ فَاُولٰٓـئِكَ هُمُ الۡخٰسِرُوۡنَ ﴿٩﴾

मोमिनों! तुम को तुम्हारा माल और औलाद अल्लाह की याद से ग़ाफ़िल ना कर दें, और जो लो ऐसा करेंगे वो ख़सारे उठाने वाले होंगे। (63:9)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اِنَّ مِنۡ اَزۡوَاجِكُمۡ وَ
اَوۡلَادِكُمۡ عَدُوًّا لَّكُمۡ فَاحۡذَرُوۡهُمۡ‌ۚ وَاِنۡ
تَعۡفُوۡا وَتَصۡفَحُوۡا وَتَغۡفِرُوۡا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ
رَّحِيۡمٌ ﴿١٤﴾ اِنَّمَاۤ اَمۡوَالُكُمۡ وَ اَوۡلَادُكُمۡ
فِتۡنَةٌ‌ ؕ وَاللّٰهُ عِنۡدَهٗۤ اَجۡرٌ عَظِيۡمٌ ﴿١٥﴾
فَاتَّقُوا اللّٰهَ مَا اسۡتَطَعۡتُمۡ وَ اسۡمَعُوۡا وَ
اَطِيۡعُوۡا وَاَنۡفِقُوۡا خَيۡرًا لِّاَنۡفُسِكُمۡ‌ؕ وَمَنۡ
يُّوۡقَ شُحَّ نَفۡسِهٖ فَاُولٰٓـئِكَ هُمُ الۡمُفۡلِحُوۡنَ ﴿١٦﴾

मोमिनों! तुम्हारी बाज़ बीवियां और औलाद तुम्हारे दुश्मन हैं, सो उनमें बचते रहो, और तुम अगर माफ़ कर दो और दरगुज़र करो, और बख़्श दो तो अल्लाह भी बख़्शने वाला मेहरबान है। तुम्हारा माल और तुम्हारी औलाद तो एक आज़माईश है, और अल्लाह के हां बड़ा अज्र है। सो जहां तक मुमकिन हो तुम अल्लाह से डरते रहो, और सुनो और फ़रमांबर्दारी करो, और (अल्लाह की राह में) ख़र्च करो, ये तुम्हारे लिये बेहतर है, और जो शख़्स हिर्से नफ़्स से महफ़ूज़ रहा, तो यही लोग राह पाने वाले हैं। (64:14-16)

इंसान में अपने परिवार और रिश्तेदारों के साथ सम्बंधों और उनके प्रति भावनाएं रखने का सिलसिला हालांकि हज़रत आदम और उनकी पत्नि के अस्तित्व में आने के समय से चला आ रहा है, लेकिन इन भावनाओं और सम्बंधों के दबाव में आदमी को अनुचित भाई-भतीजावाद और परिवारिक बर्चस्व की धुन में नहीं लग जाना चाहिए। आदमी (मर्द या औरत) को इस बात से सावधान रहना चाहिए कि उसके क़रीबी लोगों, उसके घर वालों में कोई ऐसा हो सकता है जो उसके हितों या मर्यादाओं के विपरीत हो क्योंकि अल्लाह ने हर इंसान को उसकी आज़ाद मर्ज़ी और पसन्द के साथ पैदा किया है। अतः माता पिता या कोई मर्द या औरत अपने जोड़े को अपनी मर्ज़ी पर चलने के लिए मजबूर नहीं कर सकता। आदमी बस अपनी पसन्द और अपने विश्वास व आस्था को अपने बच्चों को बता और सिखा सकता है और उन पर चलने के लिए उन्हें प्रेरित कर सकता या कर सकती है, उन पर अपने नज़रिए या आस्था को थोप नहीं सकता या सकती।

हर व्यक्ति की पसन्द या ना पसन्द और फ़ैसले का आधार स्वयं उसका अपना आज़ाद ग़ौर व चिंतन होना चाहिए। किसी मामले में फ़ैसला करते हुए किसी व्यक्ति के लिए उसके घर वाले उसकी एक कमज़ोरी बन जाते हैं जिनकी वजह से ऐसा हो सकता है कि वह व्यक्ति सही फ़ैसला लेने, न्याय करने और सीधे तरीक़े पर बने रहने से विचलित हो जाए और इस तरह बीवी बच्चे अनजाने में उसके और उसकी नैतिकता के लिए दुश्मन साबित हों। इसके अलावा जानबूझ

कर भी व्यक्ति के नैतिक मूल्यों और हितों के विरोध में खड़े हो सकते हैं। क़ुरआन जहां परिवार की एकता और सौहार्द पर ज़ोर देता है वहीं यह इंसान को ख़बरदार भी करता है कि ये स्वभाविक और प्राकृतिक सम्बंध इंसान की नैतिक और व्यवहारिक मर्यादाओं से टकराना नहीं चाहिएं (और देखं 8:28)। क़ुरआन इस बात पर ज़ोर देता है कि किसी मामले में फ़ैसला करते हुए इंसान की नज़र अल्लाह की हिदायत पर केन्द्रित रहना चाहिए और किसी भी वक़्ती स्वार्थी भावना और मेलान को नज़र अंदाज़ करके अल्लाह की हिदायत को ही ऊपर रखना चाहिए। ''कह दो कि अगर तुम्हारे बाप और बेटे और भाई और औरतें और परिवार वाले और जो माल तुम कमाते हो और तिजारत जिसके बन्द होने से डरते हो और मकान जिनको तुम पसन्द करते हो अल्लाह और उसके रसूल से और अल्लाह के रास्ते में जिहाद करने से ज़्यादा पसन्द हों तो ठहरे रहो यहां तक अल्लाह अपना आदेश (यानि अज़ाब) भेजे और अल्लाह ना फ़रमान लोगों को हिदायत नहीं दिया करते''(9:24)।

क़ुरआन ईमान वालों को यह भी सिखाता है कि माल व दौलत और औलादों की बहुतात से जो अहंकार और घमण्ड इंसान के अन्दर पैदा होने लगता है उससे बचें। ''जान रखों कि दुनिया का जीवन केवल खेल और तमाशा और साज सज्जा और तुम्हारा आपस में गर्व करना और माल व औलाद में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की चाहत रखना है (इसकी मिसाल ऐसी है) जैसे बारिश कि (इससे खेती उगती और) किसानों को भली लगती है फिर वह ख़ूब जोबन पर आ जाती है फिर (ऐ देखने वाले) तू उसको देखता है कि (पक कर) पीली पड़ गयी फिर चूरा चूरा हो गयी और आख़िरत में (काफ़िरों के लिए) कड़ी यातना और (मोमिनों के लिए) अल्लाह की तरफ़ से बख़्शिश और प्रसन्नता है और दुनिया का जीवन तो धोखे का सामान है''(57:20)। अरब के क़बायली समाज में चूंकि औलाद की बहुतायत पर गर्व की भावना व्यक्ति के अन्दर बहुत गहराई से होती थी इसलिए क़ुरआन में इस पर बार बार चेताया गया और इंसान का ध्यान इस सच्चाई की तरफ़ दिलाया गया कि औलाद और माल व दौलत देने वाला अल्लाह ही है (3:0; 9:55,58; 23:55-56; 26:132-134; 34:35-37; 58:17; 68:10-14; 71:10-12; 74:11-16)।

मातापिता के साथ बच्चों का सम्बंध

وَقَضٰى رَبُّكَ اَلَّا تَعْبُدُوْٓا اِلَّآ اِيَّاهُ وَ
بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۗ اِمَّا يَبْلُغَنَّ عِنْدَكَ
الْكِبَرَ اَحَدُهُمَآ اَوْ كِلٰهُمَا فَلَا تَقُلْ لَّهُمَآ

और आपके रब ने हुक्म दिया है के अल्लाह के सिवा किसी दूसरे की इबादत मत किया करो, और अपने मां बाप के साथ अच्छा बर्ताओ किया करो, अगर उनमें से एक या दोनों तेरे पास बुढ़ापे को पहुंच जायें तो उकी

أُفٍّ وَّ لَا تَنۡهَرۡهُمَا وَ قُلۡ لَّهُمَا قَوۡلًا
كَرِيۡمًا ﴿٢٣﴾ وَاخۡفِضۡ لَهُمَا جَنَاحَ الذُّلِّ مِنَ
الرَّحۡمَةِ وَ قُلۡ رَّبِّ ارۡحَمۡهُمَا كَمَا رَبَّيٰنِيۡ
صَغِيۡرًا ﴿٢٤﴾ رَبُّكُمۡ اَعۡلَمُ بِمَا فِيۡ نُفُوۡسِكُمۡ ؕ
اِنۡ تَكُوۡنُوۡا صٰلِحِيۡنَ فَاِنَّهٗ كَانَ لِلۡاَوَّابِيۡنَ
غَفُوۡرًا ﴿٢٥﴾

कभी (हां से) हूँ तक ना कहो, और ना उनको झिड़का करो, और उनसे बड़े अदब से बात किया करो। और उनके सामने शफ़्क़त से इनकसारी के साथ झुके रहा करो, और यूं दुआ करते रहा करो, ऐ मेरे रब! तू उन पर रहम फ़रमा, जैसा के उन्होंने मुझे बचपन में (ऐसी शफ़्क़त से) पाला है। तुम्हारा रब तुम्हारे दिलों की बातें ख़ूब जानता है, अगर तुम नेक होंगे तो फ़िर वो तौबा करने वालों को बख़्शने वाला है। (17:23-25)

وَ وَصَّيۡنَا الۡاِنۡسَانَ بِوَالِدَيۡهِ ۚ حَمَلَتۡهُ اُمُّهٗ
وَهۡنًا عَلٰى وَهۡنٍ وَّ فِصٰلُهٗ فِيۡ عَامَيۡنِ اَنِ
اشۡكُرۡ لِيۡ وَ لِوَالِدَيۡكَ ؕ اِلَيَّ الۡمَصِيۡرُ ﴿١٤﴾ وَ
اِنۡ جَاهَدٰكَ عَلٰٓى اَنۡ تُشۡرِكَ بِيۡ مَا لَيۡسَ
لَكَ بِهٖ عِلۡمٌ ۙ فَلَا تُطِعۡهُمَا وَ صَاحِبۡهُمَا فِي
الدُّنۡيَا مَعۡرُوۡفًا ۫ وَّاتَّبِعۡ سَبِيۡلَ مَنۡ اَنَابَ
اِلَيَّ ۚ ثُمَّ اِلَيَّ مَرۡجِعُكُمۡ فَاُنَبِّئُكُمۡ بِمَا
كُنۡتُمۡ تَعۡمَلُوۡنَ ﴿١٥﴾

और हमने इन्सान को अपने मां बाप के साथ हुस्ने सुलूक करने के लिये ताकीद की है, उसकी मां ने तकलीफ़ उठाकर उसको पेट में रखा फ़िर उसको दूध पिलाती रही दो बरस तक, और हक़ मान मेरा और अपने मां बाप का, आख़िर मेरे ही पास आना है। और अगर वो तुझे मजबूर करें के तू मेरे साथ किसी को शरीक करे जिसका तुझको कोई इल्म ना हो तो उनका हुक्म ना मानना, और दुनिया के कामों में ज़रूर उनका साथ देना, और जो मेरी तरफ़ रूजू करें उनका साथ देना (पूरी तरह से) फ़िर तुम को मेरी ही तरफ़ लौटना है तो मैं बताऊँगा तुम क्या करते थे। (31:14-15)

وَوَصَّيۡنَا الۡاِنۡسَانَ بِوَالِدَيۡهِ اِحۡسٰنًا ؕ
حَمَلَتۡهُ اُمُّهٗ كُرۡهًا وَّ وَضَعَتۡهُ كُرۡهًا ؕ وَ
حَمۡلُهٗ وَ فِصٰلُهٗ ثَلٰثُوۡنَ شَهۡرًا ؕ حَتّٰٓى اِذَا
بَلَغَ اَشُدَّهٗ وَ بَلَغَ اَرۡبَعِيۡنَ سَنَةً ۙ قَالَ
رَبِّ اَوۡزِعۡنِيۡۤ اَنۡ اَشۡكُرَ نِعۡمَتَكَ الَّتِيۡۤ
اَنۡعَمۡتَ عَلَيَّ وَ عَلٰى وَالِدَيَّ وَ اَنۡ اَعۡمَلَ
صَالِحًا تَرۡضٰىهُ وَ اَصۡلِحۡ لِيۡ فِيۡ ذُرِّيَّتِيۡ ۚ

और हमने इनसान को अपने वालदैन के साथ नेक सुलूक करने का हुक्म दिया है, इसकी मां ने उसको तकलीफ़ के साथ पेट में रखा, और तकलीफ़ से उसको जना और उसका पेट में रहना, और दूध का छुड़ाना तीस (30) माह में होता है, यहां तक के जब वो जवानी को पहुंचता है और चालीस बरस का हो जाता है तो कहता है, के ऐ मेरे रब! तू मुझे तौफ़ीक़ बख़्श के मैं शुक्र अदा करूं तेरी उन नेमतों का जो तूने मुझे और मेरे मां बाप को अता फ़रमाई हैं, और ये के मैं नेक अमल करूं,

إِنِّي تُبْتُ إِلَيْكَ وَإِنِّي مِنَ الْمُسْلِمِينَ ⑮

जिनको तू पसंद करता है और मेरे लिये मेरी औलाद में इसलाह व तक़वा दे। मैं तेरी तरफ़ रूजू करता हूँ और मैं फ़रमांबर्दार हूँ। (46:15)

बच्चे जब बड़े हो कर अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं तो मातापिता के प्रति उनकी भौतिक और नैतिक ज़िम्मेदारियां उन पर लागू होती हैं, ख़ास तौर तब जब वो बूढ़े हो जाएं और उन्हें मदद व सहारे की ज़रूरत हो। क़ुरआन की कई आयतों में अल्लाह की बन्दगी के साथ साथ मातापिता के साथ सद व्यवहार की शिक्षा दी गयी है (देखें 2:83; 4:36; 6:151; 31:13-14)। क़ुरआन में और पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की हदीसों में मां की देख रेख और उनके साथ अच्छे व्यवहार की ज़िक्र ख़ास तौर से किया गया है, जैसे यह कि "मां तकलीफ़ पर तकलीफ़ सहन करके पेट में उठाए रखती है (फिर उसको दूध पिलाती है) और (आख़िरकार) दो वर्ष में उसका दूध छुड़ाना होता है।" यहां तक कि अगर मातापिता एक अल्लाह पर ख़ुद ईमान न रखते हों और अपने उन बच्चों से जो अल्लाह पर ईमान रखें यह तक़ाज़ा करें कि बच्चे उनकी आस्था को अपनाएं तो उन्हें मातापिता की यह बात तो नहीं मानना चाहिए लेकिन इसके बावजूद दुनिया में उनके साथ अच्छी तरह रहें (31:15)। माता पिता यदि ईमान वाले हों और मोमिन औलाद की नेकी और अच्छे चरित्र पर संतुष्ट हों और इस पर उन्हें ख़ुशी प्राप्त हो तो बच्चों को मातापिता की बात मानना चाहिए और उनका अनुसरण भी करना चाहिए (2:133; 12:38)। अल्लाह के पैग़म्बरों ने इसकी मिसालें पेश की हैं। हज़रत नूह का अपने बेटे से लगाव और उसके सुधार के लिए चिंतित रहना, हज़रत इब्राहीम का अपने पिता को हमेशा एक अल्लाह की तरफ़ बुलाते रहना, इन दोनों ही पैग़म्बरों ने अल्लाह से उनकी मआफ़ी के लिए दुआ की लेकिन जब उन्हें अहसास हो गया कि उनकी तरफ़दारी अल्लाह के इंसाफ़ के मुताबिक़ नहीं है तो उन्होंने इस दुआ से भी ख़ुद को रोक लिया:"और किताब में इब्राहीम को याद करो बेशक वह बहुत ही सच्चे पैग़म्बर थे। जब उन्होंने अपने बाप से कहा कि बाबा आप ऐसी चीज़ों को क्यों पूजते हैं जो न सुनें और न देखें और न आपके कुछ काम आ सकें। बाबा मुझे ऐसा ज्ञान मिला है जो आपको नहीं मिला तो मेरे साथ हो जाइए मैं आपको सीधे रस्ते पर चला दूंगा। बाबा शैतान की पूजा न कीजिए बेशक शैतान अल्लाह का नाफ़रमान (अवज्ञाकारी) है। अब्बा मुझे डर लगता है कि आप को अल्लाह का अज़ाब आ पकड़े तो आप शैतान के साथी हो जाएं। उसने कहा कि इब्राहीम क्या तू मेरे पूजनीय हस्तियों से मुंह फेरे हुए है अगर तू बाज़ न आएगा तो मैं तुझे पत्थरों से मा डालूंगा और तू हमेशा के लिए मुझ से दूर हो जा। इब्राहीम ने सलाम अलेक कहा (और कहा कि) मैं आपके लिए अपने रब से बख़्शिश मांगूंगा बेशक वह मुझ पर बहुत ही मेहरबान है। और मैं आप लोगों से और जिनको आप अल्लाह के सिवा

पुकारते हैं उनसे किनारा करता हूं और अपने रब को ही पुकारुंगा उम्मीद है कि मैं अपने रब को पुकार कर वंचित नहीं रहूंगा''(19:41-48; और देखें 6:74-83, 26:69-89), ''इब्राहीम का अपने पिता के लिए बख़्शिश मांगना तो एक वायदे की वजह से था जो वह उससे कर चुके थे लेकिन जब उनको मालूम हो गया कि वह अल्लाह का दुशमन है तो उससे विमुख हो गए, कुछ शक नहीं कि इब्राहीम बड़े नर्म दिल और संयमशील थे'' (9:114, और देखें 60:4)। हज़रत यहया और हज़रत ईसा दोनों ने अपने अनुयायियों को अपने मातापिता का ध्यान रखने की शिक्षा दी (19:14,32)।

मातापिता और उनकी संतान के बीच ख़ास सम्बंध को बनाए रखने के लिए और किसी भी तरह की भावनात्मक चोट से उसे बचाए रखने के लिए दोनों पर यह अनिवार्य किया गया है वो एक दूसरे के पूर्व जोड़े से शादी नहीं कर सकते (4:22-23)। मातापता को उनकी औलाद की विरासत में हिस्सा दिया गया है:''तुम को मालूम नहीं कि तुम्हारे बाप दादों और बेटो पोतों में से फ़ायदे के लिहाज़ से कौन तुम से क़रीब है''(4:11)। मातापिता के लिए बच्चों को दुआ करना चाहिए कि इस दुनिया में उन्हें अच्छा जीवन मिले और आख़िरत में भी अच्छा जीवन मिले (4:41; 27:19; 46:15; 71:28;। दोनों के लिए सौभाग्य और सुख की बात यह भी है कि उन्हें जन्नत में एक दूसरे का साथ मिले (13:13; 40:8)। लेकिन जिस तरह मातापिता को चेताया गया है कि उनकी औलाद उनके लिए सच्चाई और सदाचारिता से हटने की वजह बन सकती है इसी तरह औलाद को भी मातापिता की वजह से सच्चाई के रास्ते से न हटने के बारे में सावधान किया गया है:''कह दो कि अगर तुम्हारे बाप और बेटे और भाई और औरतें और परिवार के आदमी और माल जो तुम कमात हो और व्यापार जिसके बन्द होने से डरते हो और मकान जिनको तुम पसन्द करते हो अल्लाह और उसके रसूल से और अल्लाह के रास्ते में संघर्ष करने से ज्यादा प्यारे हों तो ठहरे रहो यहां तक कि अल्लाह अपना आदेश (यानि अज़ाब) भेजे और अल्लाह ना फ़रमान लोगों को हिदायत नहीं देते'' (9:23-24, और देखें 58:22)। ऐसे भी लोग हैं जो हक़ को जानते बूझते झुटलाते हैं और यह कह कर अपनी बात पर ज़ोर देते हैं कि वो अपने पूर्वजों की आस्था पर चलते हैं और फिर अपने माल और औलाद की बहुतायत पर गर्व करते हैं। पूर्वजों का ऐसा अन्धाधुंध अनुसरण और एक क़बीलाई मानिसकता इंसान के लिए कोई प्रतिष्ठा का बात नहीं है जिसके पास अक़ल है और उसे इस्तेमाल करने की आज़ादी मिली हुई है। इस अन्ध नक़्क़ाली की क़ुरआन में जगह जगह निन्दा की गयी है, क्योंकि यह रवैया अरब के क़बायली समाज में आम तौर से छाया हुआ था (2:170; 5:104; 7:28,70; 10:78; 11:87,109; 14:10; 21:53-54; 26:74; 31:21; 34:43; 37:69; 43:22-23)।

भाई बहने

और आप उन अहले किताब को आदम (अ.स.) के दो बेटों का क़िस्सा पढ़ कर सुना दीजिये, जब दोनों ने अपनी अपनी नज़्र मानी उनमें से एक की नज़्र मक़तूल हो गई, और दूसरे की नज़्र ना मक़बूल, तो उससे दूसरे ने कहा के मैं तुझको ज़रूर क़त्ल करूंगा, उससे एक ने जवाब दिया, के अल्लाह मुत्तक़ियों ही का अमल क़बूल करता है। अगर तू मुझ पर दस्तदराज़ करेगा ताके, तू मुझे क़त्ल कर दे तो मैं फ़िर भी तुझ पर दस्त दराज़ी करने वाला नहीं हूँ, के तुम को क़त्ल करूं, मैं तो अल्लाह से डरने वाला हूँ, जो सारे जहानों का मालिक है। मैं तो ये चाहता हूँ के तू मेरे गुनाह और अपने सब सर रख ले, फ़िर तू दोज़खियों में शामिल हो जाए, और यही सज़ा होती है ज़ुल्म करने वालों की। सो उसके दिल ने उसको अपने भाई के क़त्ल पर आमादा कर दिया फ़िर उसको क़त्ल ही कर दिया, फ़िर वो नुक़सान उठाने वालों में शामिल हो गया। फ़िर अल्लाह ने एक कव्वा भेजा, वो ज़मीन को खोदता था ताके वो उसको सिखा दे के अपने भाई की लाश को छुपा दे, कहने लगा अफ़सोस मैं इससे भी बदतर हूँ के मैं इस कव्वे ही जैसा होता के अपने भाई की लाश को छुपा देता तो वो बड़ा शर्मिंदा हुआ। इसी वजह से हमने बनी इस्राईल पर ये लिख दिया के जो शख़्स किसी को बिला मुआवज़ा दूसरे शख़्स के या बदून किसी फ़साद के जो ज़मीन में उससे फ़ैला हो क़त्ल कर डाले तो गोया उसने तमाम आदमियों को क़त्ल कर डाला, और जो किसी को बचा लाये तो गोया के उसने तमाम आदमियों को बचा लिया, और बनी इस्राईल के पास हमारे बहुत से रसूल खुली निशानियां लेकर आए, फिर भी बहुत से उनमें से दुनिया में.ज्यादती करने वाले ही रहे। (5:27-32)

وَ اتْلُ عَلَيْهِمْ نَبَاَ ابْنَیْ اٰدَمَ بِالْحَقِّ ۘ اِذْ
قَرَّبَا قُرْبَانًا فَتُقُبِّلَ مِنْ اَحَدِهِمَا وَ لَمْ
يُتَقَبَّلْ مِنَ الْاٰخَرِ ؕ قَالَ لَاَقْتُلَنَّكَ ؕ
قَالَ اِنَّمَا يَتَقَبَّلُ اللّٰهُ مِنَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿٢٧﴾
لَئِنْۢ بَسَطْتَّ اِلَیَّ يَدَكَ لِتَقْتُلَنِیْ مَاۤ اَنَا
بِبَاسِطٍ يَّدِیَ اِلَيْكَ لِاَقْتُلَكَ ۚ اِنِّیْۤ
اَخَافُ اللّٰهَ رَبَّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿٢٨﴾ اِنِّیْۤ اُرِيْدُ اَنْ
تَبُوْٓاَ بِاِثْمِیْ وَ اِثْمِكَ فَتَكُوْنَ مِنْ اَصْحٰبِ
النَّارِ ۚ وَ ذٰلِكَ جَزٰٓؤُا الظّٰلِمِيْنَ ﴿٢٩﴾ فَطَوَّعَتْ
لَهٗ نَفْسُهٗ قَتْلَ اَخِيْهِ فَقَتَلَهٗ فَاَصْبَحَ
مِنَ الْخٰسِرِيْنَ ﴿٣٠﴾ فَبَعَثَ اللّٰهُ غُرَابًا
يَّبْحَثُ فِی الْاَرْضِ لِيُرِيَهٗ كَيْفَ يُوَارِیْ
سَوْءَةَ اَخِيْهِ ؕ قَالَ يٰوَيْلَتٰۤی اَعَجَزْتُ اَنْ
اَكُوْنَ مِثْلَ هٰذَا الْغُرَابِ فَاُوَارِیَ سَوْءَةَ
اَخِیْ ۚ فَاَصْبَحَ مِنَ النّٰدِمِيْنَ ﴿٣١﴾ مِنْ اَجْلِ
ذٰلِكَ ۛۚ كَتَبْنَا عَلٰی بَنِیْۤ اِسْرَآءِيْلَ اَنَّهٗ مَنْ
قَتَلَ نَفْسًاۢ بِغَيْرِ نَفْسٍ اَوْ فَسَادٍ فِی
الْاَرْضِ فَكَاَنَّمَا قَتَلَ النَّاسَ جَمِيْعًا ؕ وَ
مَنْ اَحْيَاهَا فَكَاَنَّمَاۤ اَحْيَا النَّاسَ
جَمِيْعًا ؕ وَ لَقَدْ جَآءَتْهُمْ رُسُلُنَا بِالْبَيِّنٰتِ ۟
ثُمَّ اِنَّ كَثِيْرًا مِّنْهُمْ بَعْدَ ذٰلِكَ فِی الْاَرْضِ
لَمُسْرِفُوْنَ ﴿٣٢﴾

भाई बहनों में आपस में कभी कभी ईर्ष्या और जलन की भावना भी पैदा हो जाती है, इन आयतों में हज़रत आदम के दो बेटों के बीच ईर्ष्या का ज़िक्र हुआ है जिनके पास पर्याप्त साधन और जगह मौजूद थी लेकिन आपसी बैर और जलन ने इन दोनों को लड़वाया और नतीजे के रूप में इंसानी इतिहास में इंसान के हाथों इंसान की हत्या की पहली घटना हुई। एक की स्वार्थवादिता और अहंकार ने उसे इस बड़े अपराध पर उक्साया क्योंकि उसे कुछ संकेतों के द्वारा यह पता चल गया था कि अल्लाह के नाम पर उसकी क़ुर्बानी अल्लाह के यहां क़ुबूल नहीं हुई जबकि उसके भाई की क़ुर्बानी क़ुबूल हो गयी थी। उसने अपने भाई को धमकाया, लेकिन दूसरे भाई ने इंसानी स्वभाव के अच्छे पहलू को अपनाया और उसी पर जमा रहा (90:10; 91:7-10) और हिंसा का जवाब हिंसा से देने से स्वयं को रोके रखा, और इस तरह निःस्वार्थ और ख़ून ख़राबे से बचने की प्रतिबद्धता का एक नमूना पेश किया। हत्या का पापी होने वाला अहंकारी भाई इतना परेशान हुआ कि उसे यह भी समझ में न आया कि अपने मृतक भाई की लाश को किस तरह ठिकाने लगाए, उसने एक कौवे को देखा कि पानी या खाने की तलाश में ज़मीन कुरेद रहा था तो उसे ज़मीन खोदने और उसमें दबा देने का .ख़्याल आया।

इस क़िस्से में जो मनोवैज्ञानिक और सामाजिक तथ्य उजागर किए गए हैं उनके अलावा इसमें एक नैतिक पैग़ाम भी है। हमेशा कोई न कोई व्यक्ति ऐसा होता है जो सही रास्ता चुनता है और इंसानी स्वभाव के अच्छे पहलू को पकड़ता और उसके तरक़्क़ी देता है, जब कि इसके विपरीत हमेशा कोई न कोई ऐसा ज़रूर होता है जो ज़ुल्म और हिंसा का रास्ता अपनाता है। क़ुरआन इन दोनों तरह के इंसानों को सम्बोधित करता हैःकि जो व्यक्ति किसी को (अकारण) हत्या करेगा (यानि) बग़ैर इसके कि जान का बदला लिया जाए या देश में ख़राबी करने की सज़ा दी जाए उसने मानो तमाम लोगों की हत्या कर दी और जो जीवन देने का कारण बना तो मानो उसने तमाम लोगों की जान बचाली। इसके बाद वाली आयत (5:33) में ज़मीन पर फ़साद मचाने वालों और हत्या व रक्तपात करने वालों के लिए दुनिया में सज़ा के बारे में बताया गया है।

हज़रत याक़ूब के बेटे हज़रत यूसुफ़ और उनके भाइयों के क़ुर्आनी क़िस्से से भी यह मालूम होता है कि भाइयों के बीच जलन किसी को बग़ैर सोचे समझे अपराध पर उक्साने का कारण बन सकती है, ''हां यूसुफ़ और उनके भाइयों (के क़िस्से) में पूछने वालों के लिए (बहुत सी) निशानियां हैं। जब उन्होंने (आपस में) ज़िक्र किया कि यूसुफ़ और उसका भाई अब्बा को हम से ज़्यादा प्यारे हैं हालांक हम जत्थे का जत्था हैं, कुछ शक नहीं कि अब्बा खुली ग़लती पर हैं। तो यूसुफ़ को (या तो जान से) मार डालो या किसी देश में फेंक दो फिर अब्बा का ध्यान केवल तुम्हारी तरफ़ हो जाएगा और उसके बाद तुम अच्छी हालत में हो जाओगे। उनमें से एक कहने वाले ने कहा कि यूसुफ़ को जान से न मारो, किसी गहरे कुंवे में डाल दो कि कोई गुजरने

वाला (दूसरी जगह) ले जाएगा अगर तुम को करना है (तो यूं करो)"(12:7-10)। लेकिन हज़रत यूसुफ़ का क़िस्सा कई उतार चढ़ाव के बाद एक सकारात्मक अंजाम को पहुंचता है:"भाइयों ने) कहा कि अल्लाह की क़सम अल्लाह ने तुम्हें हम पर प्रतिष्ठा दी है और बेशक हम ख़ताकार थे। (यूसुफ़ ने) कहा कि आज के दिन (से) तुम पर कुछ ग़ुस्सा नहीं है अल्लाह तुम्हे मआफ़ करे और वह बहुत रहम करने वाले हैं"(12:91-91)।

हज़रत मूसा से सम्बंधित क़ुरआन का यह क़िस्सा भी बहुत दिलचस्प है कि उनकी मां ने फ़िरऔन के डर से जब अपने बच्चे को एक ताबूत में बन्द करके अल्लाह का नाम लेकर दरिया में बहा दिया तो हज़रत मूसा की बहन अपने भाई के पीछे पीछे दोड़ती रहीं और तब तक उन पर नज़र रखी जब तक उनका ताबूत फ़िरऔन के महल पर जा कर न रुक गया और फ़िरऔन की पत्नि ने उन्हें निकाल कर अपने बच्चे की तरह उन्हें गोद में न ले लिया:"और उसकी बहन से कहा कि इसके पीछे पीछे चली जा तो वह उसे दूर से देखती रही और उन (लोगों) को कुछ ख़बर न थी। और हमने पहले ही उस पर (दाइयों) के दूध हराम कर दिए थे तो मूसा की बहन ने कहा कि मैं तुम्हें उसके घर वाले बताऊं कि तुम्हारे लिए इस (बच्चे) को पालें और उसकी अच्छी तरह (से) पालन करें, तो हम ने (इस तरीक़े से) उनको उनकी मां के पास पहुंचा दिया ताकि उनकी आंखें ठण्ड़ी हों और वो ग़म न खाएं और मालूम करें कि अल्लाह का वायदा सच्चा है लेकिन ये अक्सर जानते हैं"(28:11-13)।

हज़रत मूसा और उनके भाई हारून के क़िस्से में भी आपसी सहयोग की और अल्लाह का पैग़ाम पहुंचाने की ज़िम्मेदारी में शरीक होने की मिसाल दी गयी है (7:142; 19:153; 20:29-36; 21:48; 25:35-36; 26:10-17,46-48; 28:34-35)। हालांकि हज़रत मूसा ने अल्लाह से कलाम करने के लिए तूर पहाड़ पर जाने से पहले सीना मरुस्थल में जब अपने भाई को बनी इस्राईल का ज़िम्मेदार बना कर अपने पीछे छोड़ा था और वापस आकर यह देखा कि क़ौम तो अल्लाह को छोड़ कर बछड़े को पूजने में लगी हुई है तो अपने भाई पर बहुत ग़ज़बनाक हुए थे। हज़रत हारून ने अपने भाई मूसा को यक़ीन दिलाया कि उन्होंने बनी इस्राईल को इस बिगाड़ से रोकने की पूर कोशिश की थी लेकिन ये लोग माने नहीं, तब मूसा ने यह समझ लिया कि अपने भाई को आरोपित करना सही नहीं है और फिर उन्होंने अपने और अपने भाई की मआफ़ी के लिए अल्लाह से दुआ की (7:148-151; 20:83-89)। इस क़िस्से से यह सबक़ मिलता है कि जिस तरह किसी व्यक्ति के मातापिता उसके अक़ीदों, मर्यादाओं और हितों के विरोधी हो सकते हैं इसी तरह उसे अपने भाई बहनों से भी यह ख़तरा हो सकता है और इसलिए हर व्यक्ति को इस लिहाज़ से भी पूरी तरह सावधान और ख़बरदार रहना चाहिए (9:23-24)।

भाई और बहने चाहे सगे हों या सौतेले एक ही मां या एक बाप की विरासत में एक दूसरे के साथ शरीक होते हैं (4:12,176)। क़ुरआन में दूध शरीक भाई बहनों का भी ज़िक्र है। यह

आपस में एक दूसरे से शादी नहीं कर सकते।

यतीम बच्चे

فِى الدُّنْيَا وَ الْاٰخِرَةِ ؕ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْيَتٰمٰى ؕ قُلْ اِصْلَاحٌ لَّهُمْ خَيْرٌ ؕ وَاِنْ تُخَالِطُوْهُمْ فَاِخْوَانُكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ ؕ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَاَعْنَتَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝٢٢٠

दुनिया और आख़िरत की बातों में (ग़ौर किया करो) और वो तुम से यतीमों की निसबत भी दरयाफ़्त करते हैं, कह दो के उनको दुरुस्त करना बहुत अच्छा काम है, अगर उनसे मिल जुल कर राहे तो वो तुम्हारे भाई हैं और अल्लाह तो ये बात .खूब जानता है के .खराबी करने वाला कौन है और दुरुस्त करने वाला कौन है, और अगर अल्लाह चाहता तो तुम को तकलीफ़ में डाल देता, बिला शुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त ग़ालिब और बड़ी हिकमत वाला है। (2:220)

क़ुरआन में यतीमों की देखभाल, मदद और उनसे हमदर्दी की नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी पर बार बार ज़ोर दिया गया है, ख़ास तौर से उन यतीमों के बारे में जो किसी के संरक्षण में हों, और यह बताया गया है कि यह शिक्षा अल्लाह की तरफ़ से आने वाले पैग़ामों में अनिवार्य रूप से दी जाती रही है (2:83,177,215(4:36(6:152(17:34(18:82(76:8(89:17(90:14-15(93:6,9(107:2)। उपरोक्त आयत में क़ुरआन यतीम के संरक्षक को यह इजाज़त देता है कि वह उसके माल को किसी व्यापार या निवेश में लगाकर उसमें अपनी शिरकत कर सकते हैं जब तक कि वह यतीम के हित में हो, क्योंकि कुछ संरक्षक यह सोचते हैं कि अमानत का हक़ यह है कि यतीम की सम्पत्ति और पूंजी को अपने व्यापार से पूरी तरह अलग रखा जाए। क़ुरआन यह बताता है कि यतीम के लिए जो जायज़ तरीक़ा भी मुफ़ीद हो उसे अमल में लाया जा सकता है, चाहे यह यतीम के व्यापारिक मामलों को अलग रखने में हो या उनके व्यापारिक मामलों में शरीक हो कर हो, ''और अगर अल्लाह चाहते तो तुम्हें तकलीफ़ में नहीं डालते बेशक अल्लाह तआला ग़ालिब (और) हिकमत वाले हैं।''

وَاٰتُوا الْيَتٰمٰٓى اَمْوَالَهُمْ وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيْثَ بِالطَّيِّبِ ۖ وَلَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَهُمْ اِلٰٓى اَمْوَالِكُمْ ؕ اِنَّهٗ كَانَ حُوْبًا كَبِيْرًا ۝٢ وَ

और यतीमों का माल उन्हीं को देते रहा करो, और तुम अच्छी चीज़ से बुरी चीज़ को ना बदला करो, और उनका माल ना खाया करो अपने मालों में मिलाकर क्योंकि ऐसा करना बड़ा गुनाह है। अगर तुम को अन्देशा हो के

اِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تُقۡسِطُوۡا فِی الۡیَتٰمٰی فَانۡکِحُوۡا مَا طَابَ لَکُمۡ مِّنَ النِّسَآءِ مَثۡنٰی وَ ثُلٰثَ وَ رُبٰعَ ۚ فَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا تَعۡدِلُوۡا فَوَاحِدَۃً اَوۡ مَا مَلَکَتۡ اَیۡمَانُکُمۡ ؕ ذٰلِکَ اَدۡنٰۤی اَلَّا تَعُوۡلُوۡا ؕ

तुम यतीम लड़कियों के बारे में इन्साफ़ ना कर सकोगे तो और औरतों से जो तुम को पसंद हों निकाह कर लो, दो दो औरतों से, तीन तीन औरतों से, चार चार औरतों से, पस अगर तुमको अन्देशा हो के तुम इन्साफ़ ना कर सकोगे तो फ़िर एक ही काफ़ी है, या जो लौंडी तुम्हारी मिलकियत में हो वही सही, इस सूरत में .ज्यादती ना होने की तवक़्क़ो क़रीब तर है। (4:2-3)

इन आयतों में से पहली आयत उन लोगों को सम्बोधित करती है जो किसी यतीम के मामलो के ज़िम्मेदार हों, और सामूहिक रूप से पूरे समाज को सम्बोधित करती है कि यतीम के माल की पूरी तरह रक्षा करें और उसका शोषण न करें। यह आयत सामान्य रूप से इस बात पर ज़ोर देती है कि हलाल व तैयब कमाई के बजाए ग़लत और ना जायज़ तरीक़े से कुछ न लिया जाए, और ख़ास तौर से यतीम के संरक्षक को यह निर्देश देती है कि यतीम के अच्छे माल से अपने बुरे माल को न बदलें।

यतीम की अच्छी तरह से देखभाल के लिए, ऐसे हालात में जैसे जंग के बाद सामने आते हैं, जब यतीम बच्चियों की (या बे सहारा महिलाओं की) अधिकता हो जाए और विवाह की क्षमता रखने वाले मर्द कम हों, एक मर्द एक से अधिक विवाह कर सकता है, लेकिन चार से अधिक नहीं, इस शर्त के साथ कि सब के साथ न्याय का व्यवहार किया जाएगा। अगर केवल इस बात की आशंका हो कि एक पत्नि से ज़्यादा अच्छा व्यवहार होगा दूसरों की अपेक्षा होगी तो एक मर्द को एक ही पत्नि रखना चाहिए क्योंकि इस तरह वह एक से अधिक पत्नि और कई कई बच्चों की अतिरिक्त ज़िम्मेदारी का भार उठाने से, और दूसरों को दुख देने से बच जाएगा। यह बात बिल्कल ज़ाहिर है कि यतीमों के प्रति अन्याय की आशंका का ज़िक्र एक मजबूरी की हालत के रूप में करना जिसमें एक से अधिक पत्नियां रखने की इजाज़त हो, उसका मतलब यह है कि उनके बीच एक दूसरे को प्रभावित करने का सम्बंध है, और यह कि यह इजाज़त अपवाद के रूप में यतीमों के हित के लिए दी गयी है, इस शर्त के साथ कि उनसे पत्नियों की तरह न्यायोचित व्यवहार किया जाए।

وَ ابۡتَلُوا الۡیَتٰمٰی حَتّٰۤی اِذَا بَلَغُوا النِّکَاحَ ۚ فَاِنۡ اٰنَسۡتُمۡ مِّنۡہُمۡ رُشۡدًا فَادۡفَعُوۡۤا اِلَیۡہِمۡ اَمۡوَالَہُمۡ ۚ وَ لَا تَاۡکُلُوۡہَاۤ اِسۡرَافًا وَّ بِدَارًا

और तुम यतीमों को आज़मा लिया करो यहां तक के वो बालिग़ हो जायें, फिर अगर उनमें तुम एक गुना तमीज़ देखो तो उनके अम्वाल उनको दे दो और उन मालों को ज़रूरत से ज़ायद उठा कर और इस .ख्याल से के ये

أَن يَكْبَرُوا ۚ وَمَن كَانَ غَنِيًّا فَلْيَسْتَعْفِفْ ۖ وَمَن كَانَ فَقِيرًا فَلْيَأْكُلْ بِالْمَعْرُوفِ ۚ فَإِذَا دَفَعْتُمْ إِلَيْهِمْ أَمْوَالَهُمْ فَأَشْهِدُوا عَلَيْهِمْ ۚ وَكَفَىٰ بِاللَّهِ حَسِيبًا ⑥

बालिग़ हो जावें, जल्दी जल्दी मत खा डालो, और जो मुसतग़नी हो सो वो बिलकुल अपने को बचाये और जो हाजतमंद हो तो मुनासिब मिक़दार से खाले, फिर जब उनके माल उनके हवाले करने लगो तो उन पर गवाह भी कर लिया करो, और अल्लाह ही काफ़ी है हिसाब लेने वाला। (4:6)

इन आयतों का तक़ाज़ा यह है कि एक यतीम को उसके बालिग़ होने के बाद जब उसकी सम्पत्ति और मिल्कियत उसके हवाले की जाए तो इससे पहले उसे इस ज़िम्मेदारी के लिए भी तैयार किया जाए और उसकी जांच भी की जाए जिससे यह साबित हो कि वह वास्तव में अब इस लायक़ है कि उसे उसकी सम्पत्ति सोंप दी जाए। यह एक बहुत क़ीमती सिद्धांत है जिसको बड़े पैमाने पर काम में लाया जा सकता है, जैसे किसी पद की ज़िम्मेदारी सोंपने के लिए किसी व्यक्ति की योग्यता की परीक्षा लेना और उसके लिए ज़रूरी योग्यता का औपचारिक प्रमाणपत्र तलब करना। अलबत्ता जो लोग किसी यतीम की सम्पत्तियों के ज़िम्मेदार हों उन्हें यह ख़बरदार किया गया है कि वो अपने अधिकार का दुरूपयोग न करें और उसके माल को खुद अपने हित में और यतीम के हित को अनदेखा करके इस्तेमाल न करें।

यतीम को उसका माल हवाले करने से पहले उसकी परिपक्वता को सुनिश्चत करना राज्य के शासकों के द्वारा ज़रूरी कार्ययोजना और निगरानी के माध्यम से ज़रूरी है ताकि किसी भी तरह के दुरूपयोग को पहले ही क़दम पर रोका जा सके और अगर क़ानूनी व निगरानी सुरक्षा उपायों के बावजूद ऐसा हो तो तुरन्त सामने आ जाए। संरक्षक से कहा गया है कि अगर वह मालदार है तो यतीम के मामलों की देखरेख की ज़िम्मेदारी बग़ैर किसी फ़ायदे के करे, और अगर ग़रीब है तो यतीम के माल की सुरक्षा और उसके मामलों के देखभाल करते हुए उसके माल में से ज़रूरत की हद तक जायज़ तरीक़े से मुआवज़ा ले। यतीम के अधिकारों की हिफ़ाज़त के लिए जो अपनी सम्पत्ति को अपने हाथ में लेने के योग्य हो जाता है, संरक्षक के अधिकारों की रक्षा के लिए जो उसका निगरां था, इस सुपुर्दगी की गवाही ज़रूरी है और साथ ही साथ उसे लिखना ज़रूरी है। क़ुरआन यहां भी एक क़ानूनी ज़िम्मेदारी को अख़्लाक़ और तक़वा पर ज़ोर दिए बग़ैर पेश नहीं करताः“अल्लाह हिसाब लेने के लिए काफ़ी है।”

وَإِذَا حَضَرَ الْقِسْمَةَ أُولُو الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ وَالْمَسَاكِينُ فَارْزُقُوهُم مِّنْهُ وَقُولُوا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوفًا ⑧ وَلْيَخْشَ الَّذِينَ لَوْ تَرَكُوا

और जब तक़सीमे तर्के के वक़्त दूर के रिश्तेदार व यतीम और ग़रीब लोग आ मौजूद हों तो बालिग़ों के हिस्से में से कुछ उनको भी दे दिया करो, और उनसे अख़लाक़ के साथ बात किया करो। और उनको डरना

مِنْ خَلْفِهِمْ ذُرِّيَّةً ضِعٰفًا خَافُوْا عَلَيْهِمْ ۖ
فَلْيَتَّقُوا اللّٰهَ وَلْيَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا ۝٩ اِنَّ
الَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ الْيَتٰمٰى ظُلْمًا اِنَّمَا
يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ نَارًا ۭ وَسَيَصْلَوْنَ
سَعِيْرًا ۝١٠

चाहिये जो अगर अपने पीछे छोटे छोटे बच्चे छोड़ मरें उनको उनकी फ़िक्र हो सो उनको अल्लाह से डरते रहना चाहिये और मौक़े की बात करें। बेशक जो यतीमों का माल ना हक़ खाते हैं वो अपने पेटों में आग ही भर रहे हैं और वो जल्द जलती आग में दाख़िल होंगे।
(4:8-10)

मृतक के क़ानूनी वारिसों को यह कहा गया है कि वह उन यतीमों का इस मीरास में .ख़्याल रखें जिनका इस विरासत में कोई क़ानूनी हक़ तो नहीं है लेकिन वो इसमें से कुछ मिलने की उम्मीद रखते हैं, और उनको अपनी ख़ुशी से कुछ न कुछ हिस्सा दें। एक और चेतावनी यहां उन लोगों को दी गयी है जो यतीमों के मामलों के निगरां हैं। उन्हें जिस तरह भविष्य में अपनी बे सहारा औलाद के साथ अच्छे बर्ताव की चिंता रहती है उसी तरह वो अपनी निगरानी में रहने वाले यतीम बच्चों का ध्यान रखें। जो कोई यतीम के माल में चोरी करेगा उसे आख़िरत में भड़कती हुई आग का मज़ा चखना होगा।

وَيَسْتَفْتُوْنَكَ فِي النِّسَاۗءِ ۭ قُلِ اللّٰهُ
يُفْتِيْكُمْ فِيْهِنَّ ۙ وَمَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ فِي
الْكِتٰبِ فِيْ يَتٰمَى النِّسَاۗءِ الّٰتِيْ لَا تُؤْتُوْنَهُنَّ
مَا كُتِبَ لَهُنَّ وَتَرْغَبُوْنَ اَنْ
تَنْكِحُوْهُنَّ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ
الْوِلْدَانِ ۙ وَاَنْ تَقُوْمُوْا لِلْيَتٰمٰى بِالْقِسْطِ ۭ وَ
مَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِهٖ
عَلِيْمًا ۝١٢٧

और लोग आपसे औरतों के बारे में दरयाफ़्त करते हैं, आप कह दीजिये, अल्लाह उनके बारे में तुम को हुक्म देते हैं और वो आयात भी जो क़ुरआन के अन्दर तुम को पढ़ कर सुनाई जाती हैं, जो उन यतीम औरतों के बारे में हैं जिनको तुम उनका हक़े मुक़र्ररा नहीं देते, और चाहते हो के उनसे निकाह करो, और कमज़ोर बच्चों के बारे में, और ये के यतीम बच्चों के साथ इन्साफ़ पर क़ायम रहो, और जो तुम नेक काम करोगे उसको अल्लाह .ख़ूब जानता है। (4:127)

इस आयत में तमाम यतीमों के अधिकारों की रक्षा और उनके साथ न्यायिक व्यवहार के आम सिद्धांत को उजागर किया गया है, और ख़ात तौर से यतीम औरतों का ज़िक्र है जिनके अधिकार, सम्पत्ति या महर से वो लोग उन्हें वंचित कर देते हैं जो उनके मामलों के निगरां होते हैं और उनसे विवाह करने के इच्छुक होते हैं या जिन लोगों से उनका विवाह करना चाहते हैं उनसे उसके बदले में कुछ चाहते हैं। यह पूरे समाज की एक आम ज़िम्मेदारी है कि उन कमज़ोर यतीमों के हितों की हिफ़ाज़त करें, और उनकी न्यायिक रक्षा के लिए सरकार द्वारा कोई संस्था

स्थापित की जानी चाहिए या यतीमों के अधिकारों के लिए स्पेशल पब्लिक प्रासेक्यूटर की नियुक्ति होनी चाहिए।

وَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَا غَنِمْتُمْ مِّنْ شَيْءٍ فَاَنَّ لِلّٰهِ
خُمُسَهٗ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِي الْقُرْبٰى وَ
الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ اِنْ
كُنْتُمْ اٰمَنْتُمْ بِاللّٰهِ وَمَآ اَنْزَلْنَا عَلٰى عَبْدِنَا
يَوْمَ الْفُرْقَانِ يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعٰنِ ؕ وَاللّٰهُ
عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٤١

और जान लो के जो चीज़ तुम बतौर ग़नीमत के हासिल करो उसमें पांचवां हिस्सा ($^1/_5$) अल्लाह का और उसके रसूल का है और एक हिस्सा आपके अहले क़राबत का, और यतीमों का, और मोहताजों का, और मुसाफ़िरों का हैं अगर तुम अल्लाह पर यक़ीन रखते हो और उस चीज़ पर जो हमने अपने बन्दे (मोहम्मद (अ.स.)) पर फ़ैसला के दिन जिस दिन दो जमातें बाहम मुक़ाबिल हुई थीं नाज़िल की, और अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (8:41)

مَآ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ مِنْ اَهْلِ الْقُرٰى
فَلِلّٰهِ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِي الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى
وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ كَيْ لَا يَكُوْنَ
دُوْلَةًۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ ؕ وَ مَآ اٰتٰىكُمُ
الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۚ وَمَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ
فَانْتَهُوْا ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ
الْعِقَابِ ۝

जो माल अल्लाह ने अपने रसूल को देहातों में दिलवाया है, वो अल्लाह का है और उसके रसूल का, और रसूल के रिश्तेदारों, और यतीमों, हाजतमंदों और मुसाफ़िरों का है, ताके जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में ना फ़िरता रहे, और जो चीज़ रसूल तुम को दें वो ले लो, और जिससे मना करें उससे बाज़ रहो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह सख़्त अज़ाब देने वाला है। (59:7)

इन आयतों में 'माल-ए-ग़नीमत' के बटवारे के सिद्धांत बताए गए हैं। मुफ़स्सिरों और फ़क़ीहों के मुताबिक़ पहली आयत (8:41) उस माल से सम्बंधित है जो मुजाहिदों को जंग में हाथ लगता है, और दूसरी आयत (59:7) उस माल से सम्बंधित है जो जंग के बग़ैर ही हाथ आ जाता है उसके लिए "न तुम ने घोड़े दोड़ाए न ऊंट" (59:6)। दोनों ही मामलों में, और एक आम सिद्धांत के रूप में, सार्वजनिक संसाधनों को समाजिक न्याय के लिए इस्तेमाल में लाया जाता है और महरूमों की मदद की जाती है ख़ास तौर से उन लोगों की मदद जो अपनी शरीरिक या सामाजिक कमज़ोरी के चलते अपनी रोज़ी कमाने में सक्षम नहीं होते। इसलिए दोनों स्थितियों में एक हिस्सा यतीमों और दूसरे ज़रूरतमंदों के लिए रखा गया है। आख़री आयत में इस्लाम की आर्थिक नीति के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य को स्पष्ट रूप से बयान किया

गया है कि ''माल की गर्दिश केवल मालदारों में ही न होती रहे''।

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَآءَ اَمْوَالَكُمُ الَّتِیْ جَعَلَ
اللّٰهُ لَكُمْ قِيٰمًا وَّ ارْزُقُوْهُمْ فِيْهَا
وَاكْسُوْهُمْ وَقُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۝٥

और तुम बेवक़ूफ़ों को अपने वो माल ना दिया करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये मायए ज़िन्दगी बनाया है, और उन मालों में उनको खिलाते रहो, पहनाते रहो, और उनसे अच्छी अच्छी बातें किया करो। (4:5)

यह आयत इस सच्चाई को उजागर करती है कि जो लोग नादान (फैसला करने में कमज़ोर) होते हैं वो न केवल अपने निजी हितों को नुक़सान में डालते हैं, बल्कि पूरे समाज के हित को ख़तरे में डालते हैं क्यूंकि हर व्यक्ति और उसकी सम्पत्ति समाज से ही जुड़ी होती है। अतःयह आयत पूरे समाज और सम्बंधित व्यक्तियों को सम्बोधित करती है कि मूर्खों की सम्पत्ति की देखरेख इस तरह किया करें जैसे कि वह उनकी अपनी ही सम्पत्ति है, ''अपने अमवाल''। अलबत्ता अपने माल पर नादानों के क़ानूनी अधिकारों को किसी भी तरह से ख़त्म नहीं किया जा सकता, और उनके माल से उनके लिए एक आराम के जीवन को सुनिश्चित करना ज़रूरी है। इसके अतिरिक्त, उनके साथ मुहब्बत भरा और उचित व्यवहार करना चाहिए, और वो जैसे ही इस लायक़ हो जाएं कि अपने मामलों को ठीक से अंजाम दे सकें तो उनकी सारी सम्पत्ति उनके हवाले कर देना चाहिए। यह सिद्धांत क़ुरआन ने यतीमों को उनका माल सुपुर्द करने से पहले इस बात को सुनिश्चित करने के लिए दिया है कि वो मानसिक रूप से परिपक्व हो गए हों और अपने मामलों को ठीक से अंजाम देने की योग्यता उनमें पैदा हो गयी हो (4:6)।

विरासत का अनिवार्य बटवारा और वसीयत को पूरा करना

كُتِبَ عَلَيْكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ
اِنْ تَرَكَ خَيْرًا ۖۚ اِۨلْوَصِيَّةُ لِلْوَالِدَيْنِ وَ
الْاَقْرَبِيْنَ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى
الْمُتَّقِيْنَ ۝١٨٠ فَمَنْۢ بَدَّلَهٗ بَعْدَ مَا سَمِعَهٗ
فَاِنَّمَاۤ اِثْمُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يُبَدِّلُوْنَهٗ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝١٨١ فَمَنْ خَافَ مِنْ
مُّوْصٍ جَنَفًا اَوْ اِثْمًا فَاَصْلَحَ بَيْنَهُمْ فَلَاۤ
اِثْمَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝١٨٢

तुम पर ये फ़र्ज़ है के जब तुम में से किसी की मौत क़रीब आ जाए तो अगर वो तर्का छोड़ने वाला हो तो वालदेन और दीगर अक़रबा के लिए कुछ न कुछ बता दे यानी वसीयत कर जाए, ये अल्लाह से डरने वालों पर हक़ है। फिर जो उस वसीयत के सुनने के बाद उसको तबदील करेगा तो उसका गुनाह उन ही पर होगा, और अल्लाह यक़ीनन सुनने वाला है, और .ख़ूब जानने वाला भी है। अलबत्ता जिस श.ख़्स को वसीयत करने वाले की जानिब से किसी बदउनवानी की या किसी जुर्म के इरतकाब का अन्देशा हो फिर ये श.ख़्स उनमें आपस में

मसालेहत करा दे, तो उस पर कोई गुनाह नहीं, अल्लाह तो .ख़ुद माफ़ करने वाला और रहम वाला है। (2:180-182)

يايها الذين امنوا شهادة بينكم اذا
حضر احدكم الموت حين الوصية
اثنن ذوا عدل منكم او اخرن من
غيركم ان انتم ضربتم في الارض
فاصابتكم مصيبة الموت تحبسونهما
من بعد الصلوة فيقسمن بالله ان ارتبتم
لا نشتري به ثمنا و لو كان ذا قربى و لا
نكتم شهادة الله انا اذا لمن
الاثمين ﴿١٠٦﴾ فان عثر على انهما استحقا
اثما فاخرن يقومن مقامهما من
الذين استحق عليهم الاولين فيقسمن
بالله لشهادتنا احق من شهادتهما و ما
اعتدينا انا اذا لمن الظلمين ﴿١٠٧﴾ ذلك
ادنى ان ياتوا بالشهادة على وجهها او
يخافوا ان ترد ايمان بعد ايمانهم و
اتقوا الله و اسمعوا و الله لا يهدي
القوم الفسقين ﴿١٠٨﴾

मोमिनों! शहादत ये है के जब तुम में से कोई मरने के क़रीब हो तो वसीयत के वक़्त तुम में से दो आदिल मर्द गवाह रहें, या दूसरे दो मर्द ग़ैर मज़हब के, अगर तुम सफ़र में हो और उस वक़्त मौत की मुसीबत आजाए अगर तुम को उन गवाहों पर शुबह हो तो उनको नमाज़ के बाद रोको फ़िर वो अल्लाह की क़समें खायें के हम शहादत का कोई मुआवज़ा नहीं लेंगे, चाहे हमारा कोई रिश्तेदार ही हो और ना हम अल्लाह की शहादत छुपायेंगे, अगर हम ऐसा करें तो हम गुनाहगार होंगे। फ़िर अगर मालूम हो जाए के उन दोनों ने कोई गुनाह किया है (यानी झूट बोला है) तो दो आदमी उन में से जिनका हक़ उन्होंने मारना चाहा था उनकी जगह खड़े हों, तो मईय्यत से रिश्ते में क़रीब तरीन हों, फ़िर वो अल्लाह की क़समें खायें के हमारी शहादत उनकी शहादत से, बहुत सच्ची है, और हमने कोई .ज्यादती नहीं की है हमने ऐसा किया हो तो हम बे इन्साफ़ हैं। ये बहुत क़रीब है, इसके के ये लोग सही सही शहादत दें, या इससे .ख़ौफ़ करें के हमारी क़समें उनकी क़समों के बाद रद्द कर दी जायेंगी, और अल्लाह ही से डरा करो, और उसके अहकाम को ग़ौर से सुनो, और अल्लाह नाफ़रमानों को हिदायत नहीं देता। (5:106-108)

हर वह मुसलमान जिसके पास कुछ धन दौलत हो जो उसकी मौत के बाद उसका विरसा बनेगी उससे कहा गया है कि अपनी मौत से पहले एक वसीयत लिखे जिसमें यह दिशा निर्देश हो कि वह अपने छोड़े गए माल को किसी तरह वितरित करना चाहता है। यह तक़ाज़ा जिसका ज़िक्र उपरोक्त आयत 2:180-182, और 5:106-108 में किया गया है, आयत 2:180 में बहुत ज़ोर देकर किया गया है और इसके लिए ‘‘कुतिबःअलैकुम’’(तुम पर अनिवार्य कर दिया गया

है) के शब्द इस्तेमाल किये गए हैं। ये आयतें 5:106-108 इस ज़रूरत के महत्व को रेखांकित करती हैं और यह बताती हैं कि यह काम किस तरह किया जाए, वसीयत लिखने से पहले ''जब तुम्हें मौत आ पकड़े'' यहां तक कि ''जब तुम सफ़र में हो और मौत का बुलावा आ पहुंचे''। इसके अलावा, यह आयतें सूरत ''मायदा'' में शामिल हैं जो उन दो सूरतों से पहले अवतरित हुई थी जिन पर वहिय का उतरना बन्द हुआ और यह उतरना रसूलुल्लाह के अन्तिम हज के दौरान 10 हिजरी में हुआ जिसके बाद जल्दी ही आप की मृत्यू हो गयी।

यह सभी आदेश वसीयत और उस पर अमलदरामद के महत्व को उजागर करते हैं। दूसरी तरफ़, आयतें 4:11-12,76 (जिन की व्याख्या आगे आ रही है) में मीरास के अनिवार्य वितरण के जो नियम दिए गए हैं वह पहले उतर चुके थे क्योंकि जिस सूरत (''अलनिसा'') में ये आयतें हैं वो कई रिवायतों के अनुसार या तो तीसरी सूरत ''आले इमरान''के बाद उतरी जिसमें सन 3 हिजरी में होने वाली उहद की लड़ाई से सम्बंधित आयतें हैं या 33 नम्बर की सूरत ''अलअहज़ाब''के बाद उतरी जिसमें अहज़ाब (लशकरों) की लड़ाई से सम्बंधित आयतें हैं जो कि पांच हिजरी में उतरी थी। जो भी हो बहरहाल सूरत 5 कई साल बाद 10 हिजरी में क़ुरआन के उतरने की समाप्ति और पैग़म्बर साहब की मृत्यू से तुरन्त पहले उतरी। इसके आलावा सूरत 4 में बताए गए मीरास के नियम व्यक्तिगत वसीयत के मुस्तक़िल महत्व को साफ़ तौर से ज़ाहिर करते हैं जो कि पहले आयत 2:180-182 में अनिवार्य की गयी थी, और 4:11-12 आयतों में बयान किए गए अनिवार्य वितरण के आदेशों में वसीयत की प्राथमिकता को स्पष्ट करते हैं जो चार जगह लगातार बयान हुए हैः:'' वसीयत (की तामील) के बाद जो उसने की हो'', :'' वसीयत (की तामील के) बैद उन्होंने की हो'', :'' तुम्हारी वसीयत (की तामील) के बाद जो तुमने की हो और क़र्ज चुकता करने के बाद (जो तुम ने ले रखे हों)'' ,''. वसीयत पूरी करने के बाद (जो की गयी हो) और क़र्ज़ चुकता करने के बाद (जो लिए गए हों). ''।

पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की एक हदीस दारक़ुतनी ने ''अलसुनन'' में हज़रत जाबिर से रिवायत की है कि वारिस के लिए कोई वसीयत नहीं है जिसका हिस्सा विरासत में तय कर दिया गया है (4:11-12)। अलसुयूती ने अपने हदीस संग्रह में इसे हसन कहा है यानि प्रमाणिकता के मानकों के हिसाब से दूसरे दर्जे की हदीस जिसे हसन कहते हैं। लेकिन एक फ़िक़्ही राय ऐसी वसीयत को जायज़ ठहराती है जो 4:11-12,176 में ज़िक्र किए गए वारिसों को अतिरिक्त हिस्सा देती है अगर वह वसीयत एक तिहाई माल में से की गयी हो और अगर उस पर क़ुरआन व सुन्नत में बताए गए सभी वारिस राज़ी हों। फ़िक़्ह जअफ़रिया के फक़ीहों ने इस पर केवल एक तिहाई में से वसीयत करने की शर्त लगाई है और बाक़ी सभी वारिसों के राज़ी होने की शर्त को नहीं जोड़ा है। असिल में कुल मीरास के एक तिहाई में से वसीयत करने की इजाज़त एक प्रमाणित (सही) हदीस के आधार पर जिसे इब्ने हंबल, बुख़ारी, मुस्लिम,

नसई और इब्ने माजा ने हज़रत इब्ने अब्बास से रिवायत किया है जो कि पैग़म्बर सल्ल० के चचेरे भाई भी हैं। एक तिहाई की हद तय करने का मक़सद एक और विसतृत रिवायत से मालूम होता है जो इमाम मालिक, इब्ने हंबल, बुख़ारी, मुस्लिम, अबुदाऊद, तिरमिज़ी, नसई और इब्ने माजा ने नक़ल की है और पैग़म्बर सल्ल० के सहाबी सआद इब्ने अबी वक़ास रज़ि से सम्बंधित है जिसमें कहा गया है:"एक तिहाई दिया जा सकता है और एक तिहाई बहुत है। बहतर यह है कि तुम ख़ुशहाल वारिसों को छोड़ दो और दूसरे ज़रूरतमंद (वारिस) को उसमें से दे दो। और जो कुछ तुम अल्लाह की रज़ा के लिए ख़र्च करोगे उसका बदला अल्लाह के यहां पाओगे। यह बात एक लम्बी हदीस से और जिस अवसर पर यह हदीस कही गयी उसके बारे में जो कुछ कहा गया है उससे अभिव्यक्त है, कि ये ऐसे ज़रूरतमंदो लोगों के हक़ में वसीयत करने के लिए है जो वसीयत करने वाले के घर से बाहर के लोग हैं और आम सदक़े व ख़ैरात के लिए है।

अतरिक्त वसीयत जो क़ुरआन में बयान हुई है वह मातापिता और दूसरे रिश्तेदारों के लिए है (2:180)। यह वसीयत हर एक की ख़ास ज़रूरतों के लिहाज़ से होगी जो कि मृतक के परिवार का व्यक्ति है, और इसी लिए क़ुरआन में विरासत के विभाजन को प्राथमिकता दी गयी है जो कि आयत 4:11-12 में बताई गयी है। यह कोई ख़ास बच्चा या क़रीबी रिश्तेदार हो सकता है जिसका ध्यान रखा जाना किसी न किसी वजह से ज़रूरी हो, जो ज़्यादा ज़रूरतमंद हो दूसरे वारिसों की तुलना में जिनका ज़िक्र इन आयतों में किया गया है जो सम्पन्न हों और उनके पास अपनी ही दौलत काफ़ी हो। क़र्ज़ के सिलसिले में वसीयत के मामले में एक अकेली शर्त यह है कि यह दूसरे वारिसों को वंचित करने के मक़सद से न की गयी हो (4:12), या तथ्यों के विपरीत न हो या नेकी से हटने पर आधारित न हो (2:182), और इस तरह के मामलों में मध्यस्तों या अदालत के द्वारा वारिसों के बीच न्यायपूर्वक बंटवारा कराया जा सकता है।

जब मौत आ पकड़े और ख़ास तौर से ऐसी स्थिति में जब कि आदमी सफ़र में हो और घर से दूर हो तो इस स्थिति में वसीयत के लिए जो तरीक़ा बताया गया है वह एक अचानक और कठिन स्थितियों की दिक्क़तों और तत्काल तक़ाज़ों के मद्देनज़र दिया गया है। वसीयत लिखने या लिखवाने के बजाए दो विश्वसनीय गवाहों की मौजूदगी में मौखिक रूप से कहने, जैसा कि 2:282-283 आयतों में क़र्ज़ के लेनदेन को लिखवाने का निर्देश दिया गया, जल्दबाज़ी की हालत और नियम में लचक की ज़रूरत का ख़्याल रखा गया है और सफ़र की कठिनाइयों का ख़्याल भी रखा गया है (2:282-283)। यहां यह बात ध्यान देने की है कि वसीयत को सुन कर गवाह बनने के सिलसिले में यहां मर्द और औरत का कोई फ़र्क़ नहीं किया गया उस गवाही के विपरीत जो क़र्ज़ के लेनदेन के सिलसिले में 2:282-283 आयतों में बताई गयी है। अतःवहां

जो फ़र्क़ रखा गया है उसे कारण और तर्क से समझना चाहिए और उन्ही स्थितियों तक उसे सीमित रखना चाहिए जो क़र्ज़ के लेनदेन से सम्बंधित आयतों में ज़िक्र की गई हैं और जिसकी वजह से एक मर्द की जगह दो औरतों की गवाही का नियम दिया गया है यानि यह कि ''अगर उनमें कोई एक भूल जाए तो दूसरी उसे याद दिला दे''(2:282)। ज़बानी वसीयत की गवाही के लिए केवल दो विश्वसनीय व्यक्ति ही चाहिएं, जो ''तुम्हारे अलावा (यानि ग़ैर मुस्लिम) लोगों में से'' भी हो सकते हैं (5:106)। यह महत्वपूर्ण सिद्धांत ठोस तरीक़े से इशारा करते हैं कि इस्लामी शरीअत में लिंग या धर्म के आधार पर क़ानूनी हैसियत, अधिकारों और ज़िम्मेदारियों में लोगों के बीच कोई फ़र्क़ नहीं रखा गया है।

अल्लाह तुमको तुम्हारी औलाद के बारे में हुक्म देता है, के (1) लड़के का हिस्सा दो लड़कियों के हिस्से के बराबर है, (2) अगर सिर्फ़ लड़कियां ही हों गो दो से ज़्यादा हों तो उन लड़कियों को तर्के का दो तिहाई मिलेगा, (3) और अगर एक ही लड़की हो तो उसको निस्फ़ तर्का 1/2 हिस्सा मिलेगा, और उसके मां बाप यानी दोनों में से हर एक के लिए (4) मईय्यत के तर्के में से छटा छटा हिस्सा यानी 1/6 है, अगर मईय्यत की कोई औलाद हो, और अगर उस मईय्यत की कोई औलाद ना हो (5) और उसके मां बाप ही उसके वारिस हों तो उसकी मां का एक तिहाई यानी 1/3 है, और मईय्यत के एक से ज़्यादा भाई या बहन हों, (6) तो उसकी मां को छटा यानी 1/6 हिस्सा मिलेगा, ये तक़सीम क़र्ज़े और वसीयत के बाद है, तुम्हारे बाप दादा और तुम्हारे बेटे जो हैं तुम पूरे तौर पर जान नहीं सकते के उनमें से कौन सा शख़्स तुमको नफ़ा पहुंचाने में नज़दीक तर है, इसलिए अल्लाह ने अपनी तरफ़ से ये हुक्म मुक़र्रर कर दिया है, यक़ीनन अल्लाह बड़ा इल्म वाला और हिकमत वाला है। जो तर्का तुम्हारी बीवियां छोड़ जायें उसमें तुम्हारा हिस्सा निस्फ़ ½ है बशर्त ये के उनके कोई औलाद न हो, अगर उनके कोई औलाद हो तो तुम्हारा हिस्सा ¼ है, वसीयत निकाल लेने के बाद और क़र्ज़ा अदा करने के बाद और तुम्हारी बीवियों का हिस्सा

يُوصِيكُمُ اللَّهُ فِي أَوْلَادِكُمْ ۖ لِلذَّكَرِ
مِثْلُ حَظِّ الْأُنثَيَيْنِ ۚ فَإِن كُنَّ نِسَاءً
فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ ثُلُثَا مَا تَرَكَ ۖ وَإِن
كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ ۚ وَلِأَبَوَيْهِ
لِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ مِمَّا تَرَكَ إِن
كَانَ لَهُ وَلَدٌ ۚ فَإِن لَّمْ يَكُن لَّهُ وَلَدٌ وَ
وَرِثَهُ أَبَوَاهُ فَلِأُمِّهِ الثُّلُثُ ۚ فَإِن كَانَ لَهُ
إِخْوَةٌ فَلِأُمِّهِ السُّدُسُ مِن بَعْدِ وَصِيَّةٍ
يُوصِي بِهَا أَوْ دَيْنٍ ۗ آبَاؤُكُمْ وَأَبْنَاؤُكُمْ
لَا تَدْرُونَ أَيُّهُمْ أَقْرَبُ لَكُمْ نَفْعًا ۚ
فَرِيضَةً مِّنَ اللَّهِ ۗ إِنَّ اللَّهَ كَانَ عَلِيمًا
حَكِيمًا ⑪ وَلَكُمْ نِصْفُ مَا تَرَكَ أَزْوَاجُكُمْ
إِن لَّمْ يَكُن لَّهُنَّ وَلَدٌ ۚ فَإِن كَانَ لَهُنَّ
وَلَدٌ فَلَكُمُ الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْنَ مِن بَعْدِ
وَصِيَّةٍ يُوصِينَ بِهَا أَوْ دَيْنٍ ۚ وَلَهُنَّ
الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْتُمْ إِن لَّمْ يَكُن لَّكُمْ
وَلَدٌ ۚ فَإِن كَانَ لَكُمْ وَلَدٌ فَلَهُنَّ الثُّمُنُ
مِمَّا تَرَكْتُم مِّن بَعْدِ وَصِيَّةٍ تُوصُونَ بِهَا
أَوْ دَيْنٍ ۗ وَإِن كَانَ رَجُلٌ يُورَثُ كَلَالَةً أَوِ

امْرَاَةٌ وَّ لَهٗۤ اَخٌ اَوْ اُخْتٌ فَلِكُلِّ وَاحِدٍ
مِّنْهُمَا السُّدُسُ ۚ فَاِنْ كَانُوْۤا اَكْثَرَ مِنْ
ذٰلِكَ فَهُمْ شُرَكَآءُ فِی الثُّلُثِ مِنْۢ بَعْدِ
وَصِیَّةٍ یُّوْصٰی بِهَاۤ اَوْ دَیْنٍ ۙ غَیْرَ مُضَآرٍّ ۚ
وَصِیَّةً مِّنَ اللّٰهِ ؕ وَ اللّٰهُ عَلِیْمٌ حَلِیْمٌ ﴿۱۲﴾
تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ ؕ وَ مَنْ یُّطِعِ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ
یُدْخِلْهُ جَنّٰتٍ تَجْرِیْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ
خٰلِدِیْنَ فِیْهَا ؕ وَ ذٰلِكَ الْفَوْزُ الْعَظِیْمُ ﴿۱۳﴾ وَ
مَنْ یَّعْصِ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ وَ یَتَعَدَّ حُدُوْدَهٗ
یُدْخِلْهُ نَارًا خَالِدًا فِیْهَا ۪ وَ لَهٗ عَذَابٌ
مُّهِیْنٌ ﴿۱۴﴾

एक चौथाई है उस तर्के का जो तुम ने छोड़ा है बशर्त ये के तुम्हारे औलाद ना हो, और अगर तुम्हारे औलाद हो तो उनको तुम्हारे तर्के में से आठवां 1/8 हिस्सा मिलेगा, वसीयत के बाद जो तुमने की है या क़र्ज़े के बाद और अगर कोई मईय्यत जिसकी मीरास दूसरों को मिले .ख्वाह वो मईय्यत मर्द हो या औरत, ऐसी हो जिसके उसूल व फरौ ना हों और उसके एक भाई या एक बहन हो तो उन दोनों में से हर एक का छटा 1/6 हिस्सा है तो फिर अगर ये लोग उससे .ज्यादा हों तो वो सब एक तिहाई 1/3 हिस्सा में शरीक हो जायेंगे, वसीयत और क़र्ज़े के बाद, बशर्त ये के किसी को ज़रर ना पहुंचे, ये हुक्म अल्लाह की तरफ़ से है, और अल्लाह तो .खूब जानने वाला और हलीम है। ये सारे अहकाम अल्लाह की हदें हैं, जो अल्लाह की और उसके रसूल की फ़रमांबरदारी करेगा अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल फ़रमाएगा जिसके नीचे नहरें बह रही हैं, ये हमेशा हमेशा उनमें ही रहेंगे, ये बड़ी ज़बरदस्त कामयाबी है। और जो अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करेगा और उसकी हुदूद से निकल जाएगा तो उसको जहन्नुम में दाख़िल करेंगे और वहीं हमेशा हमेशा रहेगा, और उसे ऐसी सज़ा होगी जिसमें ज़िल्लत ही ज़िल्लत है। (4:11-14)

یَسْتَفْتُوْنَكَ ؕ قُلِ اللّٰهُ یُفْتِیْكُمْ فِی
الْكَلٰلَةِ ؕ اِنِ امْرُؤٌا هَلَكَ لَیْسَ لَهٗ وَلَدٌ وَّ
لَهٗۤ اُخْتٌ فَلَهَا نِصْفُ مَا تَرَكَ ۚ وَ هُوَ یَرِثُهَاۤ
اِنْ لَّمْ یَكُنْ لَّهَا وَلَدٌ ؕ فَاِنْ كَانَتَا اثْنَتَیْنِ
فَلَهُمَا الثُّلُثٰنِ مِمَّا تَرَكَ ؕ وَ اِنْ كَانُوْۤا
اِخْوَةً رِّجَالًا وَّ نِسَآءً فَلِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ
الْاُنْثَیَیْنِ ؕ یُبَیِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اَنْ تَضِلُّوْا ؕ

लोग आपसे हुक्म दरयाफ़्त करते हैं, तो आप फ़रमा दीजिये, के अल्लाह कलाला के बारे में तुमको ये हुक्म देता है के अगर कोई फ़ौत हो जाए जिसके औलाद ना हो (और ना मां बाप) हों और उसके बहन हो तो उस बहन को कुल तर्का का एक निस्फ़ 1/2 हिस्सा मिलेगा, और वो अपनी बहन का वारिस होगा (अगर वो बहन फ़ौत हो जाए) अगर उसके औलाद ना हो, अगर बहनें दो हों तो उनको कुल तर्के का दो तिहाई 2/3 हिस्सा मिलेगा, और अगर वारिस चन्द बहन भाई हैं मर्द और

وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ

औरत, तो एक मर्द को दो औरतों के हिस्से के बराबर मिलेगा, अल्लाह तुम से (दीन की बातें) इसलिये बयान करता है के तुम गुमराही में ना पड़ो, और अल्लाह हर चीज़ को ख़ूब जानने वाला है। (4:176)

कोई व्यक्तिगत वसीयत जो मृतक के घर वालों के ख़ास हालात के अनुसार लिखी गयी हो उसे 4:11-12,176 आयतों में दिए गए विरासत के आम ज़रूरी निर्देशों पर प्राथमिकता दी गयी है। यह आम ज़रूरी निर्देश मृतक की पूरी मीरास पर लागू होंगे यदि मृतक ने कोई वसीयत नहीं छोड़ी है, और अगर कोई जायज़ वसीयत है जिसमें पूरी की पूरी विरासत को शामिल नहीं किया गया हो तो यह मीरास के अंश पर लागू होंगे। इन आयतों में दिए गए नियम एक परिवार के व्यक्तियोःमां बाप व बच्चों और भाई बहनों के लिए बनाए गए हैं, और यह परिवार की विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के अनुसार लागू होते हैं। पैग़म्बर सल्ल० की हदीसों से वारिसों का दायरा बढ़ जाता है और इसमें बाप के रिश्तेदार भी शामिल हो जाते हैं, लेकिन फ़िक़्ह जअफ़रिया ने इस हदीस और इस नियम को नहीं माना है। बेटों और बेटियों के लिए या अगर बेटे व बेटियां न हों तो भाइयों व बहनों के लिए विरासत में हिस्से से सम्बंधित जो नियम इन आयतों में दिया गया है किः"मर्द का हिस्सा दो औरतों के हिस्सों के बराबर है", तो इस बारे में यह ज़हन में रखना चाहिए कि इस तरह का हुक्म इस आम सिद्धांत के साथ लागू होता है कि मर्द घर के ख़र्चे पूरे करने का क़ानूनी रूप से ज़िम्मेदार है और इस तरह औरत की सभी ज़रूरतें मर्द पूरी करते हैं, चाहे वह बाप हो, पति हो, भाई हों या बेटे हों, और इस तरह विरासत में औरत को अपनी निजी ज़रूरतोंके लिए कुछ ज़्यादा ही हिस्सा मिलता है जबकि उसकी ज़रूरतें उसका क़रीबी मर्द पूरी करता ही है जो क़ानूनी रूप से उसके लिए ज़िम्मेदार होता है। जब ऐसा मामला न हो और औरत को अपनी ज़रूरतों लिए अपनी रोज़ी ख़ुद कमानी पड़े, तो स्थितियों की वजह से निजी वसीयत में उसका विशेष ध्यान रखा जा सकता है, और 2:180-182 आयतों के अनुसार मीरास का बंटवारा होगा। फिर भी, अहम बात यह है कि क़ुरआन उस मृतक की मीरास में जिसके बेटे और मां-बाप दोनों मौजूद हों मां और बाप दोनों को यानि मर्द व औरत को बराबर का हिस्सा देता है (4:11), और सौतेले भाई बहनों के मामले में भी जबकि मृतक का कोई सीधा वारिस न हो।

इस स्थिति में कि जब मृतक की कोई औलाद न हो या मातापिता में से भी कोई न हो भाइयों व बहनों में मीरास का बंटवारे का जहां तक मामला है तो अधिकतर मुफ़स्सिरों ने लिखा है कि आयत 4:12 में जो हिस्से बताए गए हैं वो सौतेले भाई बहनों से सम्बंधित हैं, जबकि ऐसे ही मामले में सगे भाई बहनों के हिस्से आयत 4:176 में बताए गए हैं। विरासत के नियमों

को फ़िक़्ह के सभी स्कूलों में बहुत विस्तार और गहनता से समझा और समझाया गया है जैसा कि इस्लामी फ़िक़्ह के ख़ज़ानों से अभिव्यक्त है।

❁ ❁ ❁

समाज में औरतों की स्थिति

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَ الْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ
اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ
وَ يَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَ
يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَ يُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ ؕ
اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ
حَكِيْمٌ ۝۷۱

मोमिन मर्द, और मोमिन औरतें, आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं, अच्छे काम करने को कहते हैं, और बुरे कामों से मना करते हैं, नमाज़ पाबंदी से पढ़ते हैं, और ज़कात देते हैं, और अल्लाह और रसूल की इताअत करते हैं, उन्हीं पर अल्लाह जल्द रहम करेगा, बिलाशुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त और बड़ी हिकमतों वाला है। (9:71)

यह आयत समाज में औरतों के इंसानी अधिकारों और ज़िम्मेदारियों तथा मर्दों से उनकी समानता और आपसी सहयोग के एक अनिवार्य सिद्धांत को बयान करती है। मुस्लिम महिलाएं समाज में नैतिक मूल्यों की हिफ़ाज़त और उनको बरतने के मामले में मुस्लिम मर्दों की निगरां व ज़िम्मेदार हैं, जिस तरह मुस्लिम मर्द समाज की सामूहिक बहतरी और तरक़्क़ी के मामले में मुस्लिम औरतों के निगरां व ज़िम्मेदार हैं। क़ुरआन कहता है कि सभी मुसलमानों को मिलजुल कर नैतिक मूल्यों पर अमल करना है और इसके लिए "अम्र बिल मअरूफ़" व "नही अनिल मुनकर" (अच्छे कामों का हुकम और बुरे कामों की रोकथाम) की ज़िम्मेदारी अदा करते रहना है अगर वो अपनी उस उम्मती हैसियत (संतुलित मर्यादाओं वाला समुदाय) को बनाए रखना चाहते हैं जो क़ुरआन में उनकी बताई गयी है कि "बहतरीन उम्मत जो इंसानों (की भलाई) के लिए निकाली गयी है" (3:110)। और अगर उस निन्दा से बचना चाहते हैं जो पहले आ चुके अल्लाह के संदेश पाने वाले लोगों में से कुछ लोगों का भाग्य बनी क्योंकि वो अपनी निष्क्रियता के चलते या दुराचारी होने और ज़ालिमों का साथ देने की वजह से अल्लाह के पैग़ाम की नैतिक मूल्यों को बरतने और उनकी सुरक्षा करने में नाकाम रहे (5:78-81)। चुनांचि, अल्लाह के पैग़ाम के नैतिक मूल्यों को बरतने और बनाए रखने के लिए लोगों के पब्लिक, सोशल, ऐजुकेशनल या राजनीतिक ग्रूप बनाए जा सकते हैं (3:104), और शासकों की यह ज़िम्मेदारी है कि लोगों को इन मूल्यों की शिक्षा देने के साथ साथ ऐसे ग्रूपों के अधिकारों की रक्षा करें और उनकी कोशिशों में उनकी मदद करें और इसके लिए उन्हें सुविधाएं उपलब्ध कराएं (22:41)।

उपरोक्त आयत (9:7) में क़ुरआन साफ़ कहता है कि मुसमलान मर्द और मुसलमान औरतें इन ज़िम्मेदारियों में बराबर से और संयुक्त रूप से शरीक हैं, और ये दोनों का हक़ व ज़िम्मेदारी

है कि सामाजिक कल्याण व विकास के निगरां बनें। समाज के इन निगरानों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से ख़ुद अपने आप इन मूल्यों पर मज़बूती से जमे रहना चाहिए जिन्हें वो समाज में बनाए रखना चाहते हैं, क्योंकि जो चीज़ इंसान के अपने पास न हो वह दूसरों को वो कैसे दे सकता है (2:44; 61:2-3)। लिहाज़ा, मोमिन मर्दों और औरतों को सबसे पहले अपनी व्यक्तिगत ज़िम्मेदारियों को पूरा करना चाहिए यानि नमाज़ की पाबन्दी, ज़कात की अदायगी, और अपने व्यवहार में अल्लाह की हिदायत का पालन, जिससे वो सामाजिक नैतिकता की हिफ़ाज़त के मामले में विश्वास के लायक़ बनें और अल्लाह की रज़ा और बदला उन्हें मिले।

يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ اِذَا جَآءَكَ الْمُؤْمِنٰتُ
يُبَايِعْنَكَ عَلٰۤى اَنْ لَّا يُشْرِكْنَ بِاللّٰهِ شَيْـًٔا وَّ
لَا يَسْرِقْنَ وَ لَا يَزْنِيْنَ وَ لَا يَقْتُلْنَ
اَوْلَادَهُنَّ وَ لَا يَاْتِيْنَ بِبُهْتَانٍ يَّفْتَرِيْنَهٗ
بَيْنَ اَيْدِيْهِنَّ وَ اَرْجُلِهِنَّ وَ لَا يَعْصِيْنَكَ
فِيْ مَعْرُوْفٍ فَبَايِعْهُنَّ وَ اسْتَغْفِرْ لَهُنَّ
اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۲﴾

ऐ नबी! जब तुम्हारे पास मोमिन औरतें बैत करने के लिये आयें के अल्लाह के साथ ना तो शिर्क करेंगी ना चोरी करेंगी, ना बदकारी करेंगी, ना अपनी औलाद को क़त्ल करेंगी, ना अपने हाथ पाऊँ में कोई बोहतान बांध लायेंगी, ना नेक कामों में तुम्हारी नाफ़रमानी करेंगी, तो उनसे बैत ले लो, और उनके लिये बख़्शिश मांगो, बिला शुबह अल्लाह तो बड़ा बख़्शने वाला, रहम वाला है। (60:12)

यह आयत इस आम क़ुरआनी सिद्धांत पर अमलदरामद की मिसाल पेश करती है कि मोमिन मर्द और मोमिन औरतें एक दूसरे के प्रति बराबर से ज़िम्मेदार और एक दूसरे के निगरां हैं (9:71)। क़ुरआन ने बताया कि पैग़म्बर सल्ल जब इस्लाम पर चलने और जमे रहने की ''बेअत''(शपथ) दिलाएं तो मर्दों और औरतों को समान रूप से उसे बरतना चाहिए। दोनों को ही यह अहद करना होता है कि वो एक अल्लाह पर ईमान और अल्लाह के सामने जवाबदेही पर विश्वास के मामले में हमेशा चोकन्ना रहेंगे और अल्लाह की हिदायत में जो नैतिक मर्यादाएं सिखाई गयी हैं उन पर हमेशा चलते रहेंगे और पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का अनुपालन करेंगे। जब किसी औरत ने इस तरह वायदा किया जिस तरह मर्दों से लिया गया था तो अल्लाह के पैग़म्बर सल्ल० ने इस वायदे को क़ुबूल कर लिया और अल्लाह से दुआ की कि उससे जो कुछ गुनाह हुए हों अल्लाह उन्हें मआफ़ कर दें। जब मुसलमानों के दीन और जान व माल की हिफ़ाज़त के लिए जिहाद का ऐलान हुआ तो मर्दों और औरतों दोनों ने इस जिहाद में हिस्सा लिया और अपनी अपनी ज़िम्मेदारियां अदा कीं और मैदान में सब साथ साथ गए, हर एक ने अपने वचन को पूरा कर दिखाने की और मोमिनों के अधिकारों व अक़ीदें व उसी अभिव्यक्ति की हिफ़ाज़त करने की ज़िम्मेदारी को पूरा करने की भरपूर कोशिश की।

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَدْخُلُوْا بُيُوْتًا
غَيْرَ مَسْكُوْنَةٍ فِيْهَا مَتَاعٌ لَّكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ
يَعْلَمُ مَا تُبْدُوْنَ وَ مَا تَكْتُمُوْنَ ﴿۲۹﴾ قُلْ
لِّلْمُؤْمِنِيْنَ يَغُضُّوْا مِنْ اَبْصَارِهِمْ وَ
يَحْفَظُوْا فُرُوْجَهُمْ ؕ ذٰلِكَ اَزْكٰى لَهُمْ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ خَبِيْرٌۢ بِمَا يَصْنَعُوْنَ ﴿۳۰﴾ وَ قُلْ
لِّلْمُؤْمِنٰتِ يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ وَ
يَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَ لَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ
اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلٰى
جُيُوْبِهِنَّ ۪ وَ لَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا
لِبُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اٰبَآئِهِنَّ اَوْ اٰبَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ
اَوْ اَبْنَآئِهِنَّ اَوْ اَبْنَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اِخْوَانِهِنَّ
اَوْ بَنِيْۤ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْۤ اَخَوٰتِهِنَّ اَوْ
نِسَآئِهِنَّ اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ اَوِ التّٰبِعِيْنَ
غَيْرِ اُولِي الْاِرْبَةِ مِنَ الرِّجَالِ اَوِ الطِّفْلِ
الَّذِيْنَ لَمْ يَظْهَرُوْا عَلٰى عَوْرٰتِ النِّسَآءِ ۪ وَ لَا
يَضْرِبْنَ بِاَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا يُخْفِيْنَ مِنْ
زِيْنَتِهِنَّ ؕ وَ تُوْبُوْۤا اِلَى اللّٰهِ جَمِيْعًا اَيُّهَ
الْمُؤْمِنُوْنَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۳۱﴾

इसमें तुम्हारे लिये कोई हर्ज नहीं है के तुम किसी ग़ैर आबाद घर में दाख़िल हो जाओ और उसमें तुम्हारा सामान हो, और अल्लाह जानता है जो तुम ज़ाहिर करते हो और जो तुम छुपाते हो। आप मोमिन मर्दों से कह दो के वो अपनी नज़रें नीची रखें, और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें, ये उनके लिये बड़ी पाकीज़ा बात है, बेशक अल्लाह बाख़बर है जो ये करते हैं। और आप मोमिन औरतों से कह दीजिये के वो अपनी निगाहें नीची रखा करें और अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त किया करें, और अपनी ज़ीनत को ना ज़ाहिर किया करें, मगर जो हिस्सा इसमें खुला रहता हो, और अपने सीनों पर चादरें ओढ़े रहा करें, और अपनी ज़ीनत को ना ज़ाहिर करें मगर अपने शौहरों अपने बाप, अपने खुसर, अपने बेटों और शौहर के बेटों, अपने भाईयों, अपने भतीजों, अपने भांजों और अपनी ही क़िस्म की औरतों पर या अपनी लौंडी ग़ुलाम पर, या उन ख़ुद्दाम पर जो औरतों की ख़्वाहिश ना रखते हों, और या ऐसे लड़कों पर जो औरतों के पर्दों की चीज़ों से वाक़िफ़ ना हों, और अपने पाँऊ को इस तरह ज़मीन पन ना मारें के उनका पोशीदा ज़ेवर मालूम हो जाये, और ऐ मोमिनों! तम सबके सब अल्लाह के सामने तौबा करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। (24:29-31)

चूंकि मोमिनों को यानि मर्दों व औरतों दोनों को बग़ैर किसी इजाज़त के सार्वजनिक स्थानों पर और बे आबाद घरों में जाने की इजाज़त दी गयी है इसलिए उन्हें इस आज़ादी से आने जाने के कुछ ख़ास अदब व तरीक़ों पर अमल करना ज़रूरी है। पहली बात यह है कि किसी के शरीर पर या शरीर के किसी हिस्से पर नज़रें न गाढ़ें और अपनी शर्मगाहों (प्राइवेट पार्ट्स) की हिफ़ाज़त करें। नज़र को बचाने का मतलब यह नहीं है कि अपनी आंखें मीच ली जाएं या जिस व्यक्ति से बात कर रहे हैं उसकी तरफ़ न देखें बल्कि इसका मतलब यह है कि बात करते हुए नज़र जमा कर न देखें।

दूसरी बात यह कि हया (लज्जा) पर बने रहने के लिए और किसी अप्रिय बात के उक्सावे से बचने के लिए, मर्दों और औरतों दोनों के लिए लिबास (कपड़ों) का एक नियम भी है। मर्दों के शरीर के सभी ऐसे अंग जो यौन आकर्षण वाले हैं लिबास से ढके रहना ज़रूरी हैं और अपने बाज़ुओं (भुजाओं) को दिखावे या शरीर के अधिकतर हिस्सों को केवल आकर्षण के लिए खुले रखना आदमी की हयादारी और शराफ़त के ख़िलाफ़ है और बदकारी (बुराई) के लिए उक्साने का कारण है। औरतों के लिए भी ज़रूरी है कि वो अपने शरीर की शोभा और हुस्न को न दिखाएं सिवाए उसके कि जो कुछ ख़ुद ब ख़ुद ही दिखें। शुरु ज़माने में मुसलमानों के अमल और व्यवहार के हिसाब से और बहुत से फ़क़ीहों की राय के मुताबिक़ इस शोभा को विस्तार से नहीं बताया गया है और यह विस्तृत व्याख्या एक स्थाई सामान्य क़ानून के लिए अनुकूल या मुमकिन भी नहीं हैं क्योंकि ज़माने और जगह के फ़र्क़ की वजह से सामाजिक तौर तरीक़ों में फ़र्क़ और बदलाव आते रहते हैं। पूर्वकाल में जो कुछ एक आज़ाद औरत के लिए शराफ़त और लज्जा वाली वेशभूषा से अलग समझा गया था वह उस समय की ग़ुलाम औरत की वेशभूषा से अलग था। यही फ़र्क़ आज एक घरेलू औरत और एक नौकरी करने वाली औरत में हो सकता है, या एक बूढ़ी औरत और एक जवान औरत में हो सकता है या ना महरम मर्दों और महरम मर्दों से मिलने के मामले में हो सकता है (मिसाल के लिए देखेः शोकानी की नीलुल औवतार, बैरूत, 1973, जिल्द 1, पेज 55-66, जिल्द 6, पेज 239-245; अलअमीरुलसनानी, सुबुल्स्सलाम, क़ाहिरा 1960, जिल्द 3, पेज 113; इब्ने रुश्दःबिदायतुल मुजतहिद, बेरूत, जिल्द 1 पेज 82-84)। कुछ मशहूर मुफ़स्सिरों ने भी 24:30-31 की तफ़सीर में इस लचक को व्यक्त किया है। अलफ़ख़रुलराज़ी लिखते हैं कि क्या कुछ ढका जाए यह रिवाज (चलन) पर छोड़ दिया गया है, जब कि ज़मखशरी ने रिवाज और फ़ितरत (स्वभाव) पर छोड़ा है। अलवाहिदी और इब्ने अतिय्या ने आधा बाज़ू खोले रखने की अनुमित दी है (हालांकि पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की हदीस में कलाई तक ढकने की साफ़ हिदायत दी गयी है) और अलनेशापुरी ने कोहनी तक हाथ खुला रखने की अनुमति दी है। खुला रखने के मामले में इब्ने हय्यान रिवाज और फ़ितरत के अलावा ग़रीब औरतों की ज़रूरत का भी लिहाज़ करते हैं।

इस्लाम से पहले अरब की औरतों मे सर ढकने का रिवाज था लेकिन वह इस तरह से कि औरतें अपनी औढ़नी को पीछे कमर की तरफ़ डालती थीं जबकि उनका सीना खुला रहता था (देखें अलक़ुरतुबी की तफ़सीर आयत 24:30 के संदर्भ में, जिल्द 2, पेज 230, क़ाहिरा)। क़ुरआन की आयत साफ़ तौर से इस पर ज़ोर देती है कि सीने को ढांका जाए और इसे खुला रखने के उस समय के रिवाज से बचा जाए। मुस्लिम औरतों के ड्रेस कोड का असिल मक़सद जैसा कि एक और आयत में बताया गया है उनकी शराफ़त और लज्जा को व्यक्त करना है ''ताकि वो पहचान ली जाएं (कि शरीफ़ औरतें हैं) और सताई न जाएं'' (33:59)। यह मक़सद

किसी एक ही तरह के लिबास से पूरा नहीं होता, बल्कि इसे बदलते हुई हालातों के ऊपर छोड़ दिया गया है, जबकि हया व शराफ़त एक स्थाई मूल्य है और हमेशा ज़रूरी है चाहे यह शर्त किसी भी तरह के लिबास से पूरी हो।

मुस्लिम मर्दों और औरतों दोनों के लिए इस तरह की नैतिक और औपचारिक पाबन्दियां इस लिए हैं कि मर्द और औरतें एक दूसरे के सामने आ सकें और व्यक्तिगत या सामाजिक ज़रूरत के लिए आसानी से मिल सकें, अपनी अक़ल और योग्यताओं से एक दूसरे का सहयोग कर सकें और एक दूसरे से बातचीत कर सकें बग़ैर इसके के कि उनमें शरीरिक निकटता और आकर्षण की भावना पैदा हो।

وَالَّذِيْنَ يُؤْذُوْنَ الْمُؤْمِنِيْنَ وَالْمُؤْمِنٰتِ
بِغَيْرِ مَا اكْتَسَبُوْا فَقَدِ احْتَمَلُوْا بُهْتَانًا وَّ
اِثْمًا مُّبِيْنًا ﴿۵۸﴾ يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ قُلْ لِّاَزْوَاجِكَ
وَبَنٰتِكَ وَنِسَآءِ الْمُؤْمِنِيْنَ يُدْنِيْنَ
عَلَيْهِنَّ مِنْ جَلَابِيْبِهِنَّ ؕ ذٰلِكَ اَدْنٰۤى اَنْ
يُّعْرَفْنَ فَلَا يُؤْذَيْنَ ؕ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا
رَّحِيْمًا ﴿۵۹﴾

और जो लोग मोमिन मर्दों और मोमिन औरतों को ऐसे (काम करने की तोहमत) से ईज़ा देंगे जो उन्होंने नहीं किया हो, तो उन्होंने बोहतान और सरीह गुनाह का बोझ सर पर रखा। ऐ नबी! अपनी बीवियों, बेटियों और मुसलमान औरतों से कह दीजिये के (जब वो बाहर किला करें) तो अपने ऊपर अपनी चादरें थोड़ी सी नीची कर लिया करें, ये अम्र उनके लिये मौजिबे शनाख़्त और इम्तियाज़ होगा, तो कोई उनको ईज़ा ना देगा और अल्लाह बख़्शने वाला मेहरबान है। (33:58-59)

यह हर इंसान का हक़ है चाहे मर्द हो या औरत कि उसके व्यक्तित्व, प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता को सुरक्षा मिली रहे। किसी के ख़िलाफ़ कोई भी तोहमत व बोहतान (लांछन) या बदगुमानी (बुरा सोचना) और अफ़वाह फैलाने की इजाज़त किसी को भी नहीं है (और देखें 49:6,12), और जो कोई भी किसी दूसरे के इस इंसानी हक़ के उल्लंघन का दोषी हो वह उसके लिए नैतिक और क़ानूनी रूप से अपराधी होगा। अलबत्ता मोमिन मर्दों व औरतों को ला परवाही और उदासीनता से ख़ुद को इस तरह के हमलों के लिए नर्म चारा नहीं बनना चाहिए। पिछली आयतें 24:30-31 में लिबास का जो नियम दिया गया है जिससे मर्दों व औरतों की हया व अख़लाक़ की हिफ़ाज़त होती है, और उपरोक्त आयत भी औरतों के लिबास की असिल ज़रूरत को उजागर करती है, और यह इस मक़सद की तरफ़ भी इशारा करती है कि जिसके लिए औरतों को अपने शरीर और शरीर की सजावट व शोभा को प्रदर्शित करने से मना किया गया है उसको छोड़ कर जो ख़ुद ब ख़ुद ज़ाहिर हो, और घर से बाहर अपने लिबास पर एक बाहरी लिबादह औढ़ने को कहा गया है। इन निर्देशों का मक़सद औरतों के अधिकारों और

आज़ादी को दबा देना नहीं है या उनहें कम दर्जे पर रखना नहीं है बल्कि इनका मक़सद केवल यह है कि वो पहचान ली जाएं और सताई न जाएं। औरत के शरीर में बहुत आकर्षण होता है और लिबास का नियम बेबुनियाद और अनावश्यक नहीं है। यह मर्दों व औरतों को सार्वजनिक स्थानों पर एक दूसरे के साथ सहूलत से मिलने के लिए है और औरतों को अपनी व्यक्तिगत व सामाजिक ज़िम्मेदारियों के लिए बाहर निकलने या आने जाने पर रोक नहीं लगाई गयी है और इस लिए कि शरीरिक व यौन आकर्षण के बावजूद मर्द व औरतें सकारात्मक और नैतिक उद्देश्यों व ज़रूरतों के लिए बातचात या एक दूसरे के साथ सामाजिक सहयोग कर सकें।

وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ وَّلَا مُؤْمِنَةٍ إِذَا قَضَى اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗٓ اَمْرًا اَنْ يَّكُوْنَ لَهُمُ الْخِيَرَةُ مِنْ اَمْرِهِمْ ۭ وَمَنْ يَّعْصِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ فَقَدْ ضَلَّ ضَلٰلًا مُّبِيْنًا ۝

और किसी मोमिन मर्द और किसी मोमिना औरत को हक़ नहीं है के जब अल्लाह और उसका रसूल कोई हुक्म दे के उनको उनके इस काम में कोई इख़्तियार रहे और जो कोई अल्लाह और इसके रसूल की नाफ़रमानी करेगा, वो सरीह गुमराह होगा। (33:36)

अरबी भाषा में अगरचे मर्द व औरत दोनों के लिए वाहिद (एक वचन) या जमा (बहु वचन) की एक ही तरकीब (पुर्लिंग) इस्तेमाल करते हैं लेकिन क़ुरआन दोनों का ज़िक्र अलग अलग पुर्लिंग व स्त्रीलिंग में करता है और कई आयतों में इस तरह से इस्तेमाल हुआ है जिससे हर एक की आज़ाद ज़िम्मेदारी व्यक्त होती है, चाहे मर्द हो या औरत, और अल्लाह के दीन व शरीअत में दोनों लिंगों के बीच समानता का इज़हार होता है ख़ास तौर से उनके इंसानी अधिकारों और ज़िम्मेदारियों के मामले में (9:71-72; 24:12,30-31; 33:35-36,58,73; 47:19; 48:5,25; 57:12; 71:28; 85:10)। यहां तक कि मुशरिकों और मुनाफ़िक़ों के संदर्भ में मर्दों व औरतों का ज़िक्र अलग अलग किया गया है, ताकि अपने ईमान और अमल के बारे में दोनों की अलग अलग ज़िम्मेदारियों का पता चले (967-68; 33:73; 48:6; 57:13)।

उपरोक्त आयत इस बात पर ज़ोर देती है कि मोमिन मर्द और मोमिन औरतें अल्लाह की हिदायत पर चलने के लिए आज़ादी और बराबर से ज़िम्मेदार हैं और अल्लाह की हिदायत से मुंह मोड़ने या नाफ़रमानी के लिए दोनों में से हर एक व्यक्तिगत रूप से और बराबर से जवाबदेह होगा। इस तरह मुस्लिम महिलाओं को अल्लाह का दीन केवल मर्दों के माध्यम से (जैसे बाप, भाई, पति के द्वारा) सम्बोधित नहीं करता है बल्कि अल्लाह के पैग़ाम में उन्हें प्रत्यक्ष रूप से भी सम्बोधित किया गया है, और एक औरत आज़ादीपूर्वक अपने व्यक्तिगत और सामाजिक अधिकार रखती है। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से इस्लाम पर चलने की शपथ औरतों ने अलग से ली (12:60), वो अल्लाह के पैग़म्बर की मजलिस में शरीक हुईं, और आप सल्ल०

से ऐसे मामलों में सवाल और बातचीत की जिनको वो समझना चाहती थीं। उन्होंने इस्लाम और मुसलमानों के बचाव में भी अपनी भूमिका निभाई जैसा कि सुन्नत व सीरत के क़िस्सों से पता चलता है।

❁ ❁ ❁

अध्याय 8

शरीअत (2)

सामाजिक और कारोबीरी मामले

आम सिद्धांत

शरीअत का एक आम सिद्धांत यह है कि अल्लाह ने हर चीज़ इंसानों के लिए पैदा की है और इसलिए हर चीज़ जायज़ है जब तक कि किसी चीज़ के लिए ख़ास तौर से क़ुरआन व सुन्नत में मनाही नहीं आई हो।

هُوَ الَّذِي خَلَقَ لَكُم مَّا فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا ثُمَّ اسْتَوَىٰ إِلَى السَّمَاءِ فَسَوَّاهُنَّ سَبْعَ سَمَاوَاتٍ ۚ وَهُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيمٌ ﴿٢٩﴾

वो ही तो है जिसने तुम्हारे लिए वो सब कुछ जो भी ज़मीन में है पैदा किया, फिर उसने आसमान की तरफ़ तवज्जह की तो सात आसमान बना दिये, और वो हर चीज़ को .ख़ूब जानता है (2:29)

وَسَخَّرَ لَكُم مَّا فِي السَّمَاوَاتِ وَمَا فِي الْأَرْضِ جَمِيعًا مِّنْهُ ۚ إِنَّ فِي ذَٰلِكَ لَآيَاتٍ لِّقَوْمٍ يَتَفَكَّرُونَ ﴿١٣﴾

और उसी ने वो सब जो कुछ आसमानों आर ज़मीन में है अपनी तरफ़ से तुम्हारे काम में लगा रखा है, इसमें निशानियां हैं इन लोगों के लिये जो ग़ौर करते हैं। (45:13)

अल्लाह के क़ानून यानि इस्लामी शरीअत का मक़सद इंसानों की ज़रूरतों को पूरा करना और उनके जीवन को हर सम्भव हद तक आसान बनाना है ''अल्लाह तआला तुम्हारे लिए आसानी चाहते हैं और सख़्ती नहीं चाहते'' (2:158), ''अल्लाह तआला तुम पर किसी तरह की तंगी नहीं करना चाहते बल्कि यह चाहते हैं कि तुम्हें पाक करें और अपनी नेअमतें तुम पर पूरी कर दें ताकि तुम शुक्र् करो'' (5:6)। शरीअत का मक़सद न तो इंसान के विवेक को कुचलना है और न इंसानी गतिविधियों के व्यापक दायरे में एक एक बात की तफ़सील बता देना है। अगर वर्तमान परिस्थितियों के हिसाब से हर बात विस्तृत रूप से तय कर दी जाती

तो आगे के लिए ईमान वाले लोग बदलते हुए हालात में उसके मुताबिक़ पूरी तरह कैसे अमल कर पाते। भविष्य में सामने आने वाली सभी ज़रूरतों और परिस्थितियों के लिए वह्यि के द्वारा अनिवार्य रूप से नियम बना देना अल्लाह की हिकमत और मंशा के खिलाफ़ है क्योंकि वह इंसान को हर चीज़ की जानकारी ख़ुद से नहीं देना चाहते बल्कि इंसानों को ग़ौर व चिंतन की शक्ति से काम लेने योग्य बनाया है जिसके ज़रिए वो नई परिस्थितियों और बदलावों के अनुसार शरीअत के सिद्धांतों की रोशनी में ग़ौर करें और अपना रास्ता निकालें ''और अल्लाह नहीं चाहते कि तुम्हें ग़ैब की बातों की जानकारी दें'' (3:179; और देखें 6:59; 7:188; 27:65; 72:26)। इंसानी अक़ल भी अल्लाह की पैदा की हुई है और अल्लाह के पैग़ाम का मक़सद इंसान की बौद्धिक क्षमता को सीमित कर देना नहीं है।

उपरोक्त आयत में क़ुरान साफ़ तौर से बताता है कि पूरी सृष्टि में हर चीज़ इंसानों के इस्तेमाल और उपभोग के लिए पैदा की गयी है। क़ुदरत में पाई जाने वाली हर चीज़ इंसानी उपभोग के लिए जायज़ है जब तक किसी चीज़ के बारे में क़ुरआन व सुन्नत में ख़ास तौर से कोई मनाही मौजूद न हो, और हर इंसानी अमल या मामला जायज़ है जब तक कि क़ुरआन या सुन्नत में इसकी मनाही या उसके नापसन्द होने का संकेत न हो। किसी के लिए इस सुबूत को जुटाने की ज़रूरत नहीं है कि क़ुदरती चीज़ों का इस्तेमाल या किसी इंसानी अमल की इजाज़त क़ुरआन व सुन्नत या ऐतिहासिक नज़ीरों से साबित है, अल्लाह की पैदा की हुई चीज़ों का जायज़ होना एक आम सिद्धांत है जब तक कि किसी चीज़ के जायज़ न होने के बारे में कोई सुबूत मौजूद न हो, और किसी चीज़ की मनाही के बारे में कोई स्वीकार की जाने के लायक़ सुबूत देना उसी व्यक्ति की ज़िम्मेदारी है जो उसके मना होने का दावा करे या उसको नकारे। इंसानी अक़ल और विवेक का ऐस जायज़ इस्तेमाल जिसे ''इज्तेहाद'' (ग़ौर करके नतीजा निकालना) कहते हैं और जो बदलती हुई परिस्थितियों से अनुकूलता को समझने के लिए किया जाता है वह केवल शरीअत के आम सिद्धांतों की रोशनी में किया जाता है जो कि अद्ल और अहसान (परम न्याय और उपकार) पर आधारित हैं (16:90)। शरीअत में हर उस चीज़ को जायज़ माना गया है जो शरीअत के उद्देश्यों और सिद्धांतों को पूरा करती है, और इंसानों के स्वभाविक तक़ाज़ों और ज़रूरतों को पूरा करने वाली है, और क़ुरआन व सुन्नत में दिए गए अद्ल व अहसान के सिद्धांतों को पूरा करती है, और उनमें से किसी भी सिद्धांत से टकराती नहीं है। बदलते हुए असीमित और अप्रत्याशित हालतों में शरीअत की मंशा को समझने के लिए 'इज्तेहाद' कैसे किया जाता है इसके लिए देखें: अलशहरुस्तानी, अलमलाल वलनिहाल, मुहम्मद सैयद कायलानी के अनुमोदन के साथ 1, पेज 199, बेरूत, 1975 इब्ने ख़लदून, अलमुक़दमा, पेज 445-446, बेरूत 1978।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُحَرِّمُوْا طَيِّبٰتِ مَآ
اَحَلَّ اللّٰهُ لَكُمْ وَ لَا تَعْتَدُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا
يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ۝۸۷ وَ كُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ
حَلٰلًا طَيِّبًا ۪ وَّ اتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِيْٓ اَنْتُمْ بِهٖ
مُؤْمِنُوْنَ ۝۸۸

मोमिनों! तुम उन पाक चीज़ों को हराम ना करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये हलाल कर दी हैं, और हद से आगे ना बढ़ो, के अल्लाह हद से आगे जाने वालों को दोस्त नहीं रखता। और उसी में से खाया करो जो अल्लाह ने तुम को हलाल और पाकीज़ा रिज़्क़ अता किया है, और अल्लाह ही से डरते रहो जिस पर तुम पूरा यक़ीन रखते हो। (5:87-88)

يٰبَنِيْٓ اٰدَمَ خُذُوْا زِيْنَتَكُمْ عِنْدَ كُلِّ
مَسْجِدٍ وَّ كُلُوْا وَ اشْرَبُوْا وَ لَا تُسْرِفُوْا ۚ اِنَّهٗ
لَا يُحِبُّ الْمُسْرِفِيْنَ ۝۳۱ قُلْ مَنْ حَرَّمَ
زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ وَ الطَّيِّبٰتِ
مِنَ الرِّزْقِ ؕ قُلْ هِيَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فِي
الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا خَالِصَةً يَّوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ
كَذٰلِكَ نُفَصِّلُ الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝۳۲

ऐ औलादे आदम! तुम अपना लिबास पहने लिया करो जब भी तुम (नमाज़ के लिए) मस्जिद जाया करो, और ख़ूब खाओ और पियो, और हद से आगे मत निकला, बिला शुबह अल्लाह हद से आगे निकलने वालों को महबूब नहीं रखता। आप फ़रमा दीजिये के अल्लाह का लिबास जो उसने अपने बन्दों के लिए बनाया है और खाने पीने की हलाल और पाक चीज़ों को किस ने हराम किया है, आप ये भी फ़रमा दीजिये के ये चीज़ें मोमिनीन के लिए हैं इस दुनिया की ज़िन्दगी में, ख़ालिस हैं उनके लिए क़यामत के रोज़ हम इसी तरह तमाम आयात समझने वाली के लिए साफ़ साफ़ बयान कर देते हैं। (7:31-32)

قُلْ اَرَءَيْتُمْ مَّآ اَنْزَلَ اللّٰهُ لَكُمْ مِّنْ رِّزْقٍ
فَجَعَلْتُمْ مِّنْهُ حَرَامًا وَّ حَلٰلًا ؕ قُلْ آٰللّٰهُ
اَذِنَ لَكُمْ اَمْ عَلَى اللّٰهِ تَفْتَرُوْنَ ۝۵۹ وَ مَا
ظَنُّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ الْكَذِبَ
يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى
النَّاسِ وَ لٰكِنَّ اَكْثَرَهُمْ لَا يَشْكُرُوْنَ ۝۶۰

आप कह दीजिये के ये तो बतलाओ के अल्लाह ने जो तुम्हारे लिये रिज़्क़ दिया था तो तुमने उसमें से बाज़ को हराम क़रार दिया और बाज़ को हलाल किया, आप उन से पूछिये के क्या अल्लाह ने इसका तुम को हुक्म दिया है या तुम अल्लाह पर इफ़्तरा करते हो। और क्या गुमान है क़यामत के बारे में उन लोगों का जो अल्लाह पर इफ़्तरा करते हैं, बिला शुबह अल्लाह का लोगों पर बड़ा फ़ज़्ल है लेकिन उसमें अक्सर नाक़द्रे हैं। (10:59-60)

فَكُلُوْا مِمَّا رَزَقَكُمُ اللّٰهُ حَلٰلًا طَيِّبًا ۪ وَّ
اشْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ
تَعْبُدُوْنَ ﴿۱۱۴﴾

सो जो चीज़ें अल्लाह ने तुमको हलाल और पाक दी हैं उनको खाओ, और अल्लाह की नेमतों का शुक्र करो, अगर तुम उसकी इबादत करते हो। (16:114)

وَلَا تَقُوْلُوْا لِمَا تَصِفُ اَلْسِنَتُكُمُ الْكَذِبَ
هٰذَا حَلٰلٌ وَّ هٰذَا حَرَامٌ لِّتَفْتَرُوْا عَلَى اللّٰهِ
الْكَذِبَ ؕ اِنَّ الَّذِيْنَ يَفْتَرُوْنَ عَلَى اللّٰهِ
الْكَذِبَ لَا يُفْلِحُوْنَ ﴿۱۱۶﴾ مَتَاعٌ قَلِيْلٌ ۪ وَّ
لَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿۱۱۷﴾

और जिन चीज़ों के बारे में तुम्हारा सिर्फ़ ज़बानी झूटा दावा है उनकी निस्बत ये ना कहा करो के ये हलाल है और ये हराम है के अल्लाह पर बोहतान बांधों, बेशक जो लोग अल्लाह पर झूट बांधते हैं वो फ़लाह ना पायेंगे। ये बन्द रोज़ा ऐश है, और उनके लिये दर्दनाक अज़ाब है। (16:116-117)

इन आयतों में इस आम इस्लामी सिद्धांत पर ज़ोर दिया गया है कि जीवन की अच्छी चीज़ें इंसान के इस्तेमाल के लिए पैदा की गयी हैं और जायज़ हैं सिवाय उनके जिन्हें ख़ास तौर से मना कर दिया गया है। मोमिनों को हलाल व हराम के मामले में मुबालग़ा (अतिश्योक्ति) करने और चीज़ों को हलाल या हराम समझने के व्यक्तिगत प्रवृत्ति से रोका गया है और उन्हें यह ध्यान दिलाया गया है कि वो अपने तौर पर अल्लाह की तरफ़ से किसी चीज़ को हलाल या हराम नहीं ठहरा सकते, हलाल व हराम ठहराने का अधिकार केवल अल्लाह को ही है। किसी जायज़ चीज़ को नाजायज़ मान लेना भी इसी तरह ग़लत है जिस तरह किसी नाजायज़ चीज़ को जायज़ कर लेना। जायज़ होने और मना होने के सम्बंध में इंसान में मुबालग़ा करने की प्रवृत्ति पाई जाती है और यह प्रवृत्ति अतिवाद है जिससे बचना चाहिए और इस तरह के मामलों में अल्लाह के क़ानून यानी शरीअत ही यह तय करते हैं कि क्या सही है और उचित है। अतिवाद से अल्लाह का पैग़ाम व्यापक दायरे में इंसानों को अपनी तरफ़ आकर्षित नहीं कर सकता और तमाम लोगों के लिए व्यवहारिक नहीं हो सकता। इसके अलावा, पैग़म्बर सल्ल० ने इस तरह के अतिवाद को अल्लाह के रास्ते से विचलन यानी "फ़ितना" क़रार दिया है (मआज़ बिन जबल को पैग़म्बर सल्ल० की नसीहत, जब उन्होंने लम्बी नमाज़ पढ़ाई जिसकी वजह से नमाज़ी थक गए और उनमें से कुछ लोगों ने इस बात की शिकायत पैग़म्बर सल्ल० से की, रिवायत बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, नसई, इब्ने माजा, अलदारिमी)।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَسْـَٔلُوْا عَنْ اَشْيَآءَ
اِنْ تُبْدَ لَكُمْ تَسُؤْكُمْ ۚ وَاِنْ تَسْـَٔلُوْا عَنْهَا
حِيْنَ يُنَزَّلُ الْقُرْاٰنُ تُبْدَ لَكُمْ ؕ عَفَا اللّٰهُ

मोमिनों! ऐसी बातें ना पूछा करो के अगर तुम पर वो ज़ाहिर कर दी जायें तो तुम को बुरी मालूम हों, और अगर तुम नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त दरयाफ़्त करोगे तो

عَنۡهَا ؕ وَاللّٰهُ غَفُوۡرٌ حَلِيۡمٌ ﴿۱۰۱﴾ قَدۡ سَاَلَهَا قَوۡمٌ مِّنۡ قَبۡلِكُمۡ ثُمَّ اَصۡبَحُوۡا بِهَا كٰفِرِيۡنَ ﴿۱۰۲﴾

तुम पर ज़ाहिर कर दी जायेंगी, अल्लाह ने गुज़िश्ता सवालात माफ़ कर दिये। और अल्लाह तो बड़ा ही बख़्शने वाला और हिल्म वाला है। ऐसी ही बातें तुम से पहले लोग भी पूछ चुके हैं, फ़िर वो उन बातों से मुन्किर हो गए। (5:101-102)

इंसानों को अपने दैनिक जीवन की गतिविधियों में अपनी अक़्ल को काम में लाने, अपनी नैतिक मर्यादाओं को बरतने और ख़ुद कुछ न कुछ करने का योग्य बनाया गया है, और इसके लिए बहुत अधिक क़ानूनी पाबन्दियों और इजाज़तों की ज़रूरत नहीं है। क़ानून बनाने की ज़रूरत केवल वहां होती है जहां वह अति आवश्यक हो जाए, जैसे कि तब जब व्यक्तिगत उपाय और नैतिक प्रेरणाएं इंसाफ़ को बरतने में और सभी सम्बंधित पक्षों (विभिन्न व्यक्तियों और समाज) के अधिकारों को बनाए रखने में नाकाम हो जाएं। इंसान के आमाल व अफ़आल (कर्म एवं व्यवहार) को जहां तक हो सके रुकावटों से आज़ाद होना चाहिए, ताकि इंसानी ज़हन को काम करने और तरक़्क़ी करने के लिए सोचने और करने का मौक़ा मिला रहे, क्योंकि अक़्ल अल्लाह तआला की अज़ीम नेअमत है और उसकी महान सृजन की एक अति महत्वपूर्म प्रतीक है।

यह एक ऐसा महत्वपूर्ण सिद्धांत है जो समाज को ग़ैर ज़रूरी क़ानून बनाने या ऐसी भारी भरकम ज़िम्मेदारियों से रोकता है जो इंसान के अन्दर ख़ुद को अक़्ली या अख़लाक़ी लिहाज़ से मुकम्मल और पूरी तरह दुरुस्त समझने के भ्रामक रुजहान का नतीजा होती हैं। इस तरह के लम्बे चौड़े क़ानूनों ने दूसरी क़ौमों को गुमराही में मुब्तिला होने या कहनी व करनी में सच्चाई को छोड़ने से नहीं बचाया। उपरोक्त आयत की तरह ही रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की एक हदीस भी है कि मुझ से ऐसी बातों के बारे में सवाल न किया करो जिन्हें मैं बयान नहीं करता। तुम से पहले के लोग इसी लिए हिलाक किए गए कि वो अपने पैग़म्बरों से बहुत अधिक सवाल किया करते थे और फिर पैग़म्बर की हिदायत पर अमल नहीं करते थे। जब मैं तुम्हें किसी बात का हुक्म दूं तो उस पर अपने बस भर अमल करो और जब मैं किसी काम से मना करूं तो उससे से रुक जाओ (दारक़ुतनी)। एक और और हदीस में है कि अल्लाह ने तुम्हारे फराइज़ (कर्तव्य) बता दिए हैं इसलिए उन्हें नज़र अंदाज़ न करो, और कुछ हदें निर्धारित कर दी हैं उन हदों से आगे न निकलो, और कुछ मामले अस्पष्ट छोड़ दिए हैं हालांकि भूल से नहीं, लिहाज़ा उनके बारे में सवाल न करो (मुस्लिम, इब्ने हंबल, अलनसई, इब्ने माजा)।

खानपान के नियम

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ وَ اشْكُرُوْا لِلّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ تَعْبُدُوْنَ ﴿۱۷۲﴾ اِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَ الدَّمَ وَ لَحْمَ الْخِنْزِيْرِ وَ مَاۤ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّ لَا عَادٍ فَلَاۤ اِثْمَ عَلَيْهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۷۳﴾

ऐ मोमिनो! तुम खाओ वो पाकीज़ा चीज़ें जो हमने तुमको दी हैं और तुम अल्लाह का शुक्र अदा करो, अगर तुम अल्लाह की बंदगी और इबादत करते हो। अल्लाह ने तम पर मुर्दा जानवर, .ख़ून, और सुवर का गोश्त हराम किया है और नीज़ जिस चीज़ पर अल्लाह के सिवा दूसरे का नाम पुकारा जाए हराम किया है, अलबत्ता जो नाचार हो जाए, बशर्त ये के वो नाफ़रमान ना हो, और ना हद से आगे बढ़ता हो, तो उस पर कोई गुनाह नहीं है, बिलाशुबहः अल्लाह तो है ही बड़ा माफ़ करने वाला बड़ा ही रहम वाला। (2:172-173)

حُرِّمَتْ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةُ وَ الدَّمُ وَ لَحْمُ الْخِنْزِيْرِ وَ مَاۤ اُهِلَّ لِغَيْرِ اللّٰهِ بِهٖ وَ الْمُنْخَنِقَةُ وَ الْمَوْقُوْذَةُ وَ الْمُتَرَدِّيَةُ وَ النَّطِيْحَةُ وَ مَاۤ اَكَلَ السَّبُعُ اِلَّا مَا ذَكَّيْتُمْ ۟ وَ مَا ذُبِحَ عَلَى النُّصُبِ وَ اَنْ تَسْتَقْسِمُوْا بِالْاَزْلَامِ ؕ ذٰلِكُمْ فِسْقٌ ؕ اَلْيَوْمَ يَىِٕسَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ دِيْنِكُمْ فَلَا تَخْشَوْهُمْ وَ اخْشَوْنِ ؕ اَلْيَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِيْنَكُمْ وَ اَتْمَمْتُ عَلَيْكُمْ نِعْمَتِيْ وَ رَضِيْتُ لَكُمُ الْاِسْلَامَ دِيْنًا ؕ فَمَنِ اضْطُرَّ فِيْ مَخْمَصَةٍ غَيْرَ مُتَجَانِفٍ لِّاِثْمٍ ۙ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۳﴾ يَسْـَٔلُوْنَكَ مَا ذَاۤ اُحِلَّ لَهُمْ ؕ قُلْ اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ ۙ وَ مَا عَلَّمْتُمْ مِّنَ الْجَوَارِحِ مُكَلِّبِيْنَ تُعَلِّمُوْنَهُنَّ

तुम पर हराम किये गए है मुर्दार (1) और .ख़ून (2) और ख़िंज़ीर (3) का गोश्त और वो जानवर जो ग़ैरूल्लाह (4) के नामज़द कर दिया गया और जो गला घोंटने (5) से मर जाए, और जो किसी ज़र्ब (6) से मर जाए और जो ऊंचे (7) से गिर कर मर जाए, और जो किसी टक्कर (8) से मर जाए, और जिसको दरिन्दा (9) खाने लगे, मगर जिसको ज़िबह कर डालो वो जायज़ है, और जो जानवर परसतिशगाह (10) पर ज़िबह किया जाए और ये के तक़सीम करो क़ुरआ (11) के तीरों के ज़रिये से, ये सब गुनाह हैं, आज के दिन तुम्हारे दीन से काफ़िर नाउम्मीद हो गए, सो तुम उनसे मत डरो, और मुझ से डरते रहो, आज के दिन तुम्हारे लिये तुम्हारे दीन को मैंने मुकम्मल कर दिया, और मैंने अपना ईनाम तुम पर पूरा कर दिया, और मैंने तुम्हारे लिये इस्लाम को बतौर दिन के पसंद किया, पस जो शिद्दत की भूक में बेताब हो जाए (वो खाले) बशर्त ये के किसी गुनाह की तरफ़ मायल ना हो तो बेशक फ़िर अल्लाह माफ़ करने वाला

और बड़ी रहमत वाला है। लोग आप से दरयाफ़्त करते हैं के कौन कौन से जानवर उनके लिए हलाल हैं, आप फ़रमा दीजिये के तुम्हारे लिये तमाम हलाल जानवर हलाल हैं, और जिन शिकारी जानवरों को तुम तालीम दो और उनको तुम छोड़ो भी और उनको उस तरीक़े से तालीम दो जो तुमको अल्लाह ने तालीम दिया है, तो ऐसे शिकारी जानवर जिस शिकार को तुम्हारे लिये पकड़े उसको खा लो, और उस पर अल्लाह का नाम भी ले लिया करो, और अल्लाह से डरते रहा करो, बिला शुबह अल्लाह जल्द हिसाब लेने वाला है। आज हलाल चीज़ें तुम्हारे लिये हलाल की गईं, और अहले किताब का ज़बीहा खाना तुम्हारे लिये हलाल है, और तुम्हारा ज़बीहा उनको हलाल है, और मुसलमान पारसा औरतें और अहले किताब की पारसा औरतें, जब तुम उनको उनका मेहर अदा कर दो इस तौर पर के तुम बीवी बनाओ ना तो फ़िर एलानिया तौर पर बदकारी करो और ना ख़ुफ़िया तौर पर आशनाई करो, और जो ईमान के साथ कुफ़्र करेगा तो उसका अमले नेक भी ग़ारत कर दिया जाएगा, और वो आख़िरत में भी ख़सारे में रहेगा। (5:3-5)

مِمَّا عَلَّمَكُمُ اللّٰهُ فَكُلُوْا مِمَّاۤ اَمْسَكْنَ
عَلَيْكُمْ وَ اذْكُرُوا اسْمَ اللّٰهِ عَلَيْهِ وَ اتَّقُوا
اللّٰهَ اِنَّ اللّٰهَ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿٤﴾ اَلْيَوْمَ
اُحِلَّ لَكُمُ الطَّيِّبٰتُ وَ طَعَامُ الَّذِيْنَ اُوْتُوا
الْكِتٰبَ حِلٌّ لَّكُمْ وَ طَعَامُكُمْ حِلٌّ
لَّهُمْ وَ الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الْمُؤْمِنٰتِ وَ
الْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ
قَبْلِكُمْ اِذَاۤ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ
مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسٰفِحِيْنَ وَ لَا مُتَّخِذِيْۤ
اَخْدَانٍ وَ مَنْ يَّكْفُرْ بِالْاِيْمَانِ فَقَدْ
حَبِطَ عَمَلُهٗ وَ هُوَ فِي الْاٰخِرَةِ مِنَ
الْخٰسِرِيْنَ ﴿٥﴾

और ऐसे जानवरों को ना खाया करो, जिन पर अल्लाह का नाम ना लिया जाए, और ये नाफ़रमानी और गुनाह है, और बिला शुबह ये शैतान अपने दोस्तों को तालीम दे रहे हैं ताके तुम से लड़ें, अगर तुम (ख़ुदानाख़्वास्ता) उनकी इताअत करने लगो तो तुम बिलाशुबह मुशरिक हो जाओगे। (6:121)

وَلَا تَاْكُلُوْا مِمَّا لَمْ يُذْكَرِ اسْمُ اللّٰهِ عَلَيْهِ
وَ اِنَّهٗ لَفِسْقٌ وَ اِنَّ الشَّيٰطِيْنَ لَيُوْحُوْنَ
اِلٰۤى اَوْلِيٰٓـئِهِمْ لِيُجَادِلُوْكُمْ وَاِنْ اَطَعْتُمُوْهُمْ
اِنَّكُمْ لَمُشْرِكُوْنَ ﴿١٢١﴾

आप कह दीजिये के जो अहकाम मुझ पर नाज़िल हुए हैं उनमें कोई चीज़ ऐसी नहीं पाता जो खाने वाले के लिए हराम हो बजुज़ इसके के वो मरा हुआ जानवर हो या बहता हुआ ख़ून हो या सूवर का गोश्त हो, के ये सब

قُلْ لَّاۤ اَجِدُ فِيْ مَاۤ اُوْحِيَ اِلَيَّ مُحَرَّمًا عَلٰى
طَاعِمٍ يَّطْعَمُهٗۤ اِلَّاۤ اَنْ يَّكُوْنَ مَيْتَةً اَوْ
دَمًا مَّسْفُوْحًا اَوْ لَحْمَ خِنْزِيْرٍ فَاِنَّهٗ رِجْسٌ

أَوْ فِسْقًا أُهِلَّ لِغَيْرِ اللَّهِ بِهِ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ
غَيْرَ بَاغٍ وَّ لَا عَادٍ فَإِنَّ رَبَّكَ غَفُورٌ
رَّحِيمٌ ﴿١٤٥﴾

नापाक हैं, या नाजायज़ ज़बीहा जिस पर अल्लाह के सिवा किसी दूसरे का नाम लिया गया हो, पस जो मजबूर और बेक़रार हो जाए और वो नाफ़रमानी ना करे, और ना हद से आगे बढ़े, तो तुम्हारा रब बख़्शने वाला और रहम वाला है। (6:145)

كُلُّ الطَّعَامِ كَانَ حِلًّا لِّبَنِيٓ إِسْرَآءِيلَ إِلَّا
مَا حَرَّمَ إِسْرَآءِيلُ عَلَىٰ نَفْسِهِ مِنْ قَبْلِ
أَنْ تُنَزَّلَ التَّوْرٰىةُ ۗ قُلْ فَأْتُوا بِالتَّوْرٰىةِ
فَاتْلُوهَآ إِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِينَ ﴿٩٣﴾

नुज़ूले तौरात से पहले बनी इस्राईल पर खाने की सब चीज़ें हलाल थीं सिवाए उन चीज़ों के जो इस्राईल यानी याक़ूब (अ.स.) ने अपने ऊपर .ख़ुद हराम कर ली थीं। आप फ़रमा दीजिये के फ़िर तौरात लाओ, फिर उसको पढ़ो, अगर तुम सच्चे हो। (3:93)

فَبِظُلْمٍ مِّنَ الَّذِينَ هَادُوا حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ
طَيِّبٰتٍ أُحِلَّتْ لَهُمْ وَ بِصَدِّهِمْ عَنْ
سَبِيلِ اللَّهِ كَثِيرًا ﴿١٦٠﴾ وَّ أَخْذِهِمُ الرِّبٰوا وَقَدْ
نُهُوا عَنْهُ وَ أَكْلِهِمْ أَمْوَالَ النَّاسِ
بِالْبَاطِلِ ۗ وَ أَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِينَ مِنْهُمْ
عَذَابًا أَلِيمًا ﴿١٦١﴾

इन ही बड़े बड़े जुर्मों की वजह से जो पाक चीज़ें हमने यहूदियों पर हलाल कर रखी थीं वो हराम कर दीं और इस वजह से भी के वो बहुत से लोगों को अल्लाह की राह पर आने से रोकते थे। और इस वजह से के वो सूद लेते थे हालांकि इससे उनको मना किया गया था, और इस वजह से के वो लोगों का माल ना हक़ खाते थे, और हमने काफ़िरों के लिए दर्दनाक अज़ाब तैयार कर रखा है। (4:160-161)

وَعَلَى الَّذِينَ هَادُوا حَرَّمْنَا كُلَّ ذِي ظُفُرٍ ۚ
وَ مِنَ الْبَقَرِ وَ الْغَنَمِ حَرَّمْنَا عَلَيْهِمْ
شُحُومَهُمَآ إِلَّا مَا حَمَلَتْ ظُهُورُهُمَآ أَوِ
الْحَوَايَآ أَوْ مَا اخْتَلَطَ بِعَظْمٍ ۗ ذٰلِكَ جَزَيْنٰهُمْ
بِبَغْيِهِمْ ۖ وَ إِنَّا لَصٰدِقُونَ ﴿١٤٦﴾

और हमने यहूदियों पर सब नाख़ूनों वाले जानवर हराम कर दिये थे, और गाय और बकरी की चर्बी हराम कर दी थी, सिवाए उसके जो उनकी पीठ पर लगी हुई हो या ओझड़ी में हो, या हडडी में हो, ये सज़ा हमने उनको उनकी शरारत के सबब दी थी और हम यक़ीनन सच्चे हैं। (6:146)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ ؕ۬ اُحِلَّتْ
لَكُمْ بَهِيْمَةُ الْاَنْعَامِ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ
غَيْرَ مُحِلِّى الصَّيْدِ وَ اَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
يَحْكُمُ مَا يُرِيْدُ ۝١

मोमिनों! तुम अहेदों को पूरा किया करो, तुम्हारे लिये तमाम चौपाए मवेशी हलाल किये गए हैं मगर जिनका ज़िक्र आगे आता है लेकिन शिकार को हालते एहराम में हलाल मत समझना, बिला शुबह अल्लाह जो चाहता है हुक्म कर देता है। (5:1)

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ ؕ قُلْ
فِيْهِمَاۤ اِثْمٌ كَبِيْرٌ وَّ مَنَافِعُ لِلنَّاسِ ۫ وَ
اِثْمُهُمَاۤ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا ؕ وَ يَسْـَٔلُوْنَكَ مَا
ذَا يُنْفِقُوْنَ ؕ۬ قُلِ الْعَفْوَ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ
اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ۝٢١٩

ऐ नबी (स.अ.व.)! ये तुम से शराब और जुए की निस्बत दरयाफ़्त करते हैं, कह दो के इनमें नुक़सान बहुत बड़े हैं, और लोगों के लिए कुछ फ़ायदे भी, लेकिन नुक़सानात उनसे कहीं .ज्यादा हैं और बड़े भी, और दरयाफ़्त करते हैं, के अल्लाह की राह में क्या .ख़र्च करें, कह दो के जो ज़रूरत से .ज्यादा हो वो .ख़र्च करें, इस तरह अल्लाह अपने एहकाम साफ़-साफ़ बयान फ़रमाता है ताके तुम सोचो। (2:219)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقْرَبُوا الصَّلٰوةَ وَ
اَنْتُمْ سُكٰرٰى حَتّٰى تَعْلَمُوْا مَا تَقُوْلُوْنَ وَ لَا
جُنُبًا اِلَّا عَابِرِىْ سَبِيْلٍ حَتّٰى تَغْتَسِلُوْا ؕ
وَ اِنْ كُنْتُمْ مَّرْضٰۤى اَوْ عَلٰى سَفَرٍ اَوْ جَآءَ
اَحَدٌ مِّنْكُمْ مِّنَ الْغَآئِطِ اَوْ لٰمَسْتُمُ
النِّسَآءَ فَلَمْ تَجِدُوْا مَآءً فَتَيَمَّمُوْا صَعِيْدًا
طَيِّبًا فَامْسَحُوْا بِوُجُوْهِكُمْ وَ اَيْدِيْكُمْ ؕ
اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا غَفُوْرًا ۝٤٣

मोमिनों! तुम नमाज़ के क़रीब भी ना जाना जबकि तुम नशे में हो, यहां तक कि अपने मुंह से निकले हुए अल्फ़ाज़ ना समझने लगो, नापाकी की हालत में भी नमाज़ की हालत में भी नमाज़ के पास ना जाओ जब तक ग़ुस्ल ना कर लो, अगर तुम सफ़र में चले जा रहे हो और पानी ना हो (तो तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ लो) और अगर तुम बीमार हो या सफ़र में हो या तुम में से कोई बैतुलखला होकर आया हो, या तुम अपनी औरत से हमबिस्तर हुए हो, और तुम को पानी ना मिल रहा हो, तो पाक मिटटी लो और मुंह और हाथों का मसह कर लो (ये तयम्मुम है) बिलाशुबह अल्लाह तो बड़ा माफ़ करने वाला और बड़ा बख़्शने वाला है। (4:43)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِنَّمَا الْخَمْرُ وَ الْمَيْسِرُ

मोमिनो! बेशक शराब (1), जुआ (2), बुत (3), ये चारों चीज़ें नापाक हैं, शैतानी काम हैं, पस इनसे बचते रहा

करो, ताके तुमको निजात मिले। बस शैतान तो यही चाहता है के तुमको शराब और जुऐ में डालकर तुममें दुश्मनी और कीना डाल दे, और तुमको अल्लाह की याद और नमाज़ से रोक दे, पस तुम इन कामों से अब भी बाज़ आओगे। और अल्लाह की इताअत और रसूल की फ़रमांबर्दारी करते रहो और डरते रहो, और अगर तुम मुंह फेरोगे तो जान लो के हमारे रसूल पर तो सिर्फ़ पैग़ाम का साफ़ साफ़ पहुंचा देना है। मोमिनीन, सालेहीन पर कोई गुनाह नहीं उसमें जो वो पहले खा चुके जबके आईंदा के लिए डर गए, और ईमान ले आए, और नेक काम किये, फ़िर परहेज़ किया, और ईमान लाये, फ़िर परहेज़ किया और नेकियां कीं, और अल्लाह ऐसे नेकों को महबूब रखता है। (5:90-93)

وَ الْاَنْصَابُ وَ الْاَزْلَامُ رِجْسٌ مِّنْ عَمَلِ
الشَّيْطٰنِ فَاجْتَنِبُوْهُ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿۹۰﴾
اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ
الْعَدَاوَةَ وَ الْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ وَ
يَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَ عَنِ الصَّلٰوةِ ۚ
فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ﴿۹۱﴾ وَ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَ
اَطِيْعُوا الرَّسُوْلَ وَ احْذَرُوْا ۚ فَاِنْ تَوَلَّيْتُمْ
فَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَا عَلٰى رَسُوْلِنَا الْبَلٰغُ الْمُبِيْنُ ﴿۹۲﴾
لَيْسَ عَلَى الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ عَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ
جُنَاحٌ فِيْمَا طَعِمُوْٓا اِذَا مَا اتَّقَوْا وَّ اٰمَنُوْا وَ
عَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ ثُمَّ اتَّقَوْا وَّ اٰمَنُوْا ثُمَّ اتَّقَوْا
وَّ اَحْسَنُوْا ۭ وَ اللّٰهُ يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۹۳﴾

खानपान के नियमों को शुद्ध रूप से दीन से सम्बंधित मामला समझना चाहिए क्योंकि ये नियम अल्लाह ने ईमान वालों के लिए दिए हैं, फिर भी यह नियम सिविल ल० के दायरे से बहुत दूर या अलग नहीं हैं, क्योंकि इनका असर बाज़ार पर और मोमिनों के आपसी मामलों पर पड़ता है। कुछ ख़ास चीज़ों को नाजायज़ ठहराने से वो चीज़ें लेनदेन से अलग थलग हो जाती हैं जब तक उनमें कोई मौलिक बदलाव न आए, जैसे शराब (वाइन) का सिरका बन जाना। खाने पीने की वर्जित चीज़ों के मामले में सफ़ाई व सेहत का लिहाज़ रखा गया है जैसे सड़ी हुई चीज़, ख़ून, दम घुट कर या झटके से मरने वाले जानवर, या चोट लगने, गिरने या बीमारी से मर जाने वाले जानवर या वह जानवर जिन्हें जंगली जानवरों ने चीर फाड़ दिया हो मगर यह कि वह अभी ज़िन्दा हो और उसे विधिवत रूप से ज़िब्ह कर लिया जाए। पोर्क यानी सुअर का मास खाने की मनाही में भी सेहत का लिहाज़ है जिसके कारण यहूदी और इस्लमी क़ानूनों में उसकी मनाही है, हालांकि आहार और औषधि के विशेषज्ञों के बीच यह अभी तक भी एक विवादित मुद्दा बना हुआ है। नशा लाने वाली चीज़ें जो किसी भी तरह की हों और किसी भी रूप में हो, केवल शराब ही नहीं, आख़िरकार नुक़सानदायक होती हैं, और उसकी वजह से इंसान नशे में धुत रहने का आदी भी बन जाता है और हिंसा व उत्पात का भी कारण बनती हैं और ये सभी चीज़ें व्यक्ति और समाज दोनों के लिए विनाशकारी बनती हैं। क़ुरआन इस बात पर बार बार ज़ोर देता है कि जो चीज़ें अपने आप में "तैयब" (पाक) यानी अचछी

हैं वो जायज़ हैं और उन्हें खाना पीना चाहिए और क़ुरआन उन चीज़ों को मना करता है जो अपने आप में बुरी और नुक़सानदायक हैं (जैसे 5:4-5(7:157) और सिर्फ़ सज़ा के तौर पर किसी भी चीज़ को मना नहीं किया गया है जैसा कि यहूदियों पर कुछ चीज़ें इसी वजह से हराम कर दी गयी थीं (4:160-161(6:146(और देखें 3:93)।

इसके अलावा अन्य मनोवैज्ञानिक व धारणात्मक पाबन्दियां ये हैं जैसे मोमिनों पर ज़रूरी किया गया है कि जब वह किसी जानवर या पक्षी को ज़िब्ह करें तो उस पर अल्लाह का नाम लें, जिन चीज़ों पर अल्लाह के अलावा किसी और का नाम लिया गाय हो वो न खाएं, या जो जानवर किसी थान पर या मूर्ति पर ज़िब्ह किया जाए (5:3(6:121,145)। मुसलमानों के लिए अहल-ए-किताब का ज़िब्ह किया हुआ जानवर या पक्षी हलाल किया गया है और उनका खाना जायज़ रखा गया है और ख़ुद मुसलमानों के लिए यह जायज़ है कि वो अहल-ए-किताब को अपना खाना खिलाएं या खाने के लिए बुलाएं। मुहम्मद अबदुहू और रशीद रज़ा ने इस मामले में विस्तार से चर्चा की है, फ़िक़्ह के हवाले दिए हैं और रायों को नक़ल किया है जो उनके जायज़ होने को मानते हैं इस बात से हट कर कि किस तरह से उन्हें ज़िब्ह किया गया है या ज़िब्ह के लिए क्या तरीक़ा अपनाया गया है। कुछ फ़क़ीहों के नज़दीक जायज़ होने के इस दायरे को ज़ोरोष्ट्रियन और साबिईन के ज़बीहे (काटे गए जानवर) तक भी विस्तृत किया जा सकता है। फ़िक़्ही रायों में पूरी तरह हराम चीज़ों जैसे सुअर और किसी कारण से वर्जित होने वाली चीज़ों के बीच फ़र्क़ किया गया है जैसे जानवर किस तरह मरा। आयत 5:5 के हिसाब से अहल-ए-किताब के द्वारा पकाया गया गोश्त खाने की मुसलमानों को इजाज़त है, इस बात से अलग कि जानवर कैसे काटा गया। अलबत्ता बुतों और देवी देवताओं के नाम पर मारे गये जानवर का गोश्त खाना मुसलमानों के लिए जायज़ नहीं है (तफ़सीरुल मनार, आयत 5:5 की व्याख्या, जिल्द 1, पेज 6, 177-180, 185-186, 196-219)।

शराब पीने पर मुकम्मल मनाही चाहे उसका पीना वाला नशे की हालत में पहुंचा या नहीं, व्यक्ति, परिवार और समाज को नशाख़ोरी की तबाही से बचाने में कारगर साबित हुई है क्योंकि जब शराब पीने की सैद्धांतिक रूप से इजाज़त हो तो इस हालत को पहुंचने से पूरी तरह बचना नामुमकिन है। केवल पीने और मदहोश हो जाने के बीच कोई लाइन खींच देना व्यक्तिगत और सामाजिक हालतों के मुताबिक अलग अलग मामला है, और इन सब के लिहाज़ से क़ानूनी नियम बनाना बहुत मुश्किल है। कार दुर्घटनाएं, हिंसा, और अन्य बहुत सी हरकतें जो नशे की हालत में इंसान अंजाम दे डालता है, इंसानी जीवन के लिए और सामाजिक सलामती और समाज में सौहार्द व सदभाव बनाए रखने के लिए एक बढ़ता हुआ ख़तरा हैं। अरब समाज में जहां इस्लाम से पहले के युग में शराब सेवन बहुत आम और लोकप्रिय बात थी, शराब पीने पर पाबन्दी लगाने के लिए एक क्रमवार ढंग अपनाया गया। ऐसी आदतों से निपटने के मामले

में इस तरह क्रमवार तरीक़ा अपनाना इस्लाम की सुधार प्रक्रिया में बहुत महत्व रखता है। इस्लाम ने अक़ीदे के मामले में तो कोई समझौता नहीं किया या क्रमवार तरीक़ा नहीं अपनाया लेकिन शराब सेवन के मामले में बिल्कुल अलग ढंग से बर्ताव किया। पहले तो क़ुरआन ने यह समझाया कि शराब सेवन और जुआबाज़ी के नुक़सान और फ़ायदे दोनों हैं लेकिन उनके नुक़सान उनके फ़ायदों से ज़्यादा हैं (2:219)। अगले क़दम के रूप में नशे की हालत में नमाज़ पढ़ने से रोका गया, और अन्त में पूरी तरह से शराब को हराम क़रार दे दिया गया (5:90)।

क़ुरआन में शब्द ''ख़म्र'' इस्तेमाल हुआ है जिसका मतलब हर उस चीज़ से है जो अक़ल और दिमाग़ की स्थिति को प्रभावित करे। चुनांचि शराब की मनाही में हर तरह की नशा लाने वाली चीज़ शामिल है चाहे वह किसी भी रूप में हो। इस बात की पुष्टि रसूल सल्ल० की कुछ हदीसों से भी होती है जैसे यह कि ''हर नशा लाने वाली चीज़ ''ख़म्र'' है और हर ख़म्र हराम है'' (मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, अलतिरमिज़ी, अलनसई और इब्ने माजा)। लिहाज़ा किसी भी तरह की नशा लाने वाली चीज़ जो किसी भी रूप में सामने आए उसके हराम होने के लिए फ़क़ीहों के यहां यह हदीस एक आम सिद्धांत बन गयी है। जब क०फ़ी का इस्तेमाल शुरू हुआ तो फ़क़ीहों के बीच इस पर ग़ौर हुआ कि क्या यह ख़म्र है और इसके लिए उन्होंने क०फ़ी के गुणों और प्रभावों पर चर्चा की और इस नतीजे पर पहुंचे कि यह कोई नशा लाने वाली चीज़ नहीं है।

इस सिलसिले में पैग़म्बर सल्ल० की कुछ और हदीसें भी हैं। एक हदीस में हर नशा लाने वाली चीज़ को हराम क़रार दिया गया है और हर उस चीज़ को जो अवसाद (डिप्रेशन) और तबीयत में कमज़ोरी का कारण बने (इब्ने हंबल और अबु दाऊद)। इसके अलावा रसूल सल्ल० ने हर उस काम की निन्दा की है जिसका सम्बंध नशा लाने वाली चीज़ों से हो, वो चाहे उनका बनाना हो, बेचना हो, ख़रीदना हो, पिलाना व खिलाना हो या ख़ुद पीना और खाना हो (रिवायत अबुदाऊद, अलहाकिम), और खाने की उस टेबिल पर भी बैठने को मना किया है जिस पर शराब भी मौजूद हो (अबुदाऊद, इब्ने माजा और अलहाकिम)। अलबत्ता फ़क़ीहों ने अहल-ए-किताब के लिए शराब पीने और उससे सम्बंधित कामों को अंजाम देने की इजाज़त दी है क्योंकि शराब (वाइन) ईसाइयों के धार्मिक उत्सव में भी इस्तेमाल होती है और यहूदियों के यहां छुट्टी के पवित्र दिनों में भी पी जाती है, इसलिए धार्मिक आज़ादी की दृष्टि से इसकी इजाज़त दी गयी है कि इस्लाम और शरीअत तथा इस्लामी शासकों ने धार्मिक आज़ादी को सुरक्षित रखा है (और देखें आयत 5:90-92 की व्याख्या जो पैनल ला शीर्षक के अन्तर्गत दी गयी है)।

इस्लाम माल कमाने के अनुचित और अनुपयोगी माध्यमों को भी प्रतिबंधित करता है और सच्चाई को बताने के लिए अनुचित तरीक़े अपनाने से भी रोकता है। जुए के द्वारा दौलत

कमाना (5:90) या किसी भी तरह का ऐसा खेल जिसमें संयोग से माल कमाने या माल खोने का सम्भावना हो और उसमें इंसान की कोई मेहनत या हुनर का दख़ल न हो मना है, क्योंकि यह अनुपयोगी और अनुचित तरीक़े से नफ़ा कमाना है। इस तरह के काम आसानी से और बग़ैर मेहनत के माल कमाने और केवल संयोग से माल हाथ आ जाने का लालच पैदा करते हैं और सम्बंधित पक्षों के बीच नफ़ा व नुक़सान में जो संतुलन चाहिए उससे ख़ाली होते हैं। और इस तरह के मामलों में हारने वालों की अपेक्षा जीतने वालों का अनुपात बहुत ही कम होता है। आज के ज़माने में ऐसी तरह तरह की जुएबाज़ी का चलन है जिससे वो लोग निश्चित रूप से अत्यधिक माल कमाते हैं जो उन जुआबाज़ी के मुक़ाबलों का आयोजन करते हैं। इस तरह की जुआबाज़ी की वजह से समाज गम्भीर रचनात्मक काम करने से रुक जाता है और जुआबाज़ी व सट्टे से माल कमाने वाले व्यक्तियों के हाथों लुटता रहता है और लगातार नुक़सान उठाते रहने से दिल टूटे लोगों का समाज बन जाता है।

भविष्यवाणी (भाग्य का हाल बताना) जिसका कोई साइंसी आधार नहीं है, या जो केवल निजी रूप से एक अनुमान लगाने का मामला न हो वह भी मना है। इस तरह की कोशिशें इस्लाम की तालीम के ख़िलाफ़ हैं कि प्रकृति के नियम सबके लिए सामान्य हैं और सब के सब स्थाई रूप से प्राकृतिक नियमों के पाबन्द हैं। और यह कि किसी तरह का दावा करने के लिए ठोस बौद्धिक आधार होना चाहिए जबकि इन मामलों में कोई ठोस बौद्धिक तर्क नहीं होता। प्रकृति का ज्ञान केवल अल्लाह को ही है और हर चीज़ पर अल्लाह का ही नियंत्रण है, ख़ुद अल्लाह के पैग़म्बर भी उन चीज़ों को नहीं जान सकते जो इंसान की अवलोकन शक्ति से परे हों सिवाय इसके कि उन्हें वह्यि के द्वारा किसी बात की जानकारी दी गयी हो (मिसाल के तौर पर 3:179(6:50,59,73(7:188(10:20(11:31,123(27:65(72:26-28)। भविष्यवाणियां करने वाले टोटके और टोने से बताते हैं या यह दावा करते हैं कि उन्हें भविष्य का हाल बताने की और व्यक्ति का भाग्य बनाने और बुरे अंजाम से उसे बचाने की अलौकिक शक्ति प्राप्त है, इसलिए ये सभी बातें इस्लाम के बुनियादी अक़ीदों के विपरीत हैं। इसीलिए इस तरह के सभी प्रयासों को मना किया गया है चाहे उनका सम्बंध पैसा कमाने से हो या न हो।

कर्म की सच्चाई नियत पर आधारित है

और तुम अल्लाह के नाम को अपनी क़समों के लिए निशाना ना बनाया करो के नेक सलूक करना, परहेज़ करना, और लोगों मे सुलह कराना, जैसे कामों के लिए क़सम खाकर छोड़ दो, अल्लाह तो हर बात को .ख़ूब

وَلَا تَجْعَلُوا اللّٰهَ عُرْضَةً لِّاَيْمَانِكُمْ اَنْ
تَبَرُّوْا وَ تَتَّقُوْا وَ تُصْلِحُوْا بَيْنَ النَّاسِ ؕ وَ
اللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿۲۲۴﴾ لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ

بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَ لٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا كَسَبَتْ قُلُوْبُكُمْ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿۲۲۵﴾

सुनता और जानता है। अल्लाह तुम्हारी लगू क़समों पर तुम से कोई मवाख़िज़ा न फ़रमायेगा, लेकिन जो क़सम तुम अपने दिल से क़सदन करोगे तो उस पर तुम से मवाख़िज़ा फ़रमायेगा और अल्लाह बख़्शने वाला और बुर्दबार है। (2:224-225)

لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَ لٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا عَقَّدْتُّمُ الْاَيْمَانَ ۚ فَكَفَّارَتُهٗٓ اِطْعَامُ عَشَرَةِ مَسٰكِيْنَ مِنْ اَوْسَطِ مَا تُطْعِمُوْنَ اَهْلِيْكُمْ اَوْ كِسْوَتُهُمْ اَوْ تَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ ؕ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ ؕ ذٰلِكَ كَفَّارَةُ اَيْمَانِكُمْ اِذَا حَلَفْتُمْ ؕ وَ احْفَظُوْٓا اَيْمَانَكُمْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿۸۹﴾

अल्लाह लगू क़समों पर तुम को निरफ्त में नहीं लेगा, लेकिन तुम्हारी पुख़्ता क़समों पर ज़रूर मवाख़िज़ा करेगा, तो उसका कुफ़्फ़ारा दस मोहताजों को औसत दर्जा का खाना खिलाना है, जो अपने अहलो अयाल को खिलाते हो, या उनको कपड़े देना, या एक ग़ुलाम लौंडी आज़ाद करना, और जो ये ना कर सके वो तीन रोज़े रख ले, ये तुम्हारी क़समों का कुफ़्फ़ारा है, जब तुम क़सम खा लो (और उसे तोड़ डाला) और अपनी क़समों की हिफ़ाज़त किया करो, इसी तरह अल्लाह तुम से अपनी आयात बयान फ़रमाता है, ताके तुम शुक्रगुज़ार बन जाओ। (5:89)

किसी भी काम का महत्व और मूल्य उस काम को करने वाले की नियत से तय होता है। अतःउपरोक्त क़ुरआनी आयतें ये बताती हैं कि अल्लाह उन क़समों को मआफ़ कर देते हैं जो बग़ैर इरादे के तोड़ दी गयी हों, हालांकि क़सम या वचन का उल्लंघन करने पर व्यक्ति को दोषी ठहराया जाता है। पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि ''आमाल का दारोमदार नियतों पर है हर व्यक्ति को वही मिलेगा जिसकी उसने नियत की हो''(बुख़ारी व मुस्लिम)। चूंकि शरीअत में इबादत के अलावा दूसरे इंसानी कामों के लिए औपचारिक रुप ज़रुरी नहीं है इसलिए एक व्यक्ति किसी ऐसी बात के लिए अपनी क़सम तोड़ सकता है जो ज़्यादा बहतर हो और अल्लाह के नज़दीक प्रिय और अपेक्षित हो। इस्लाम कुछ मामलों में क़सम के प्रायिश्चित के रूप में ग़ुलामों को आज़ाद करने की मांग करता है (4:92(5:89(58:3), और आम तौर से वह अहसान के रूप में ऐसा करने की ताकीद करता है (2:177(90:13), शरीअत भी सरकार को सार्वजनिक कोष से ग़ुलामों को आज़ाद कराने की ज़िम्मेदारी देती है, ख़ास तौर से ज़कात के माल से (9:60)। अगर क़सम तोड़ने वाला व्यक्ति ग़रीब है, या सदक़ा नहीं दे सकता है तो उसके लिए यह काफ़ी है कि वह क़फ़ारे के तौर पर रोज़े रखे।

लेकिन इंसानों के लिए इंसानों की नियत का फ़ैसला करना मुश्किल है, ख़ास तौर जब यह बिल्कुल छुपी बात हो और इसका कोई संकेत दिखता न हो। चुनांचि जब किसी व्यक्ति के आमाल (कर्मों) की गवाही दी जा रही हो, ख़ास तौर से अदालत में, तो उसके लिए व्यक्ति की नियत को समझने के साथ साथ ठोस ज़ाहिरी हालात का भी लिहाज़ रखना ज़रूरी है। पैग़म्बर सल्ल० ने साफ़ तौर से फ़रमाया है कि किसी मामले में आप एक इंसान होने के रूप में उसके मुताबिक़ फ़ैसला करते हैं जो आपके सामने लोग बयान करते हैं, उस सच्चाई के मुताबिक़ नहीं जो आप के सामने न हो (हदीस, रिवायत मालिक, बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा)। जो चीज़ इंसान की बूझ और अवलोकन के दायरे से बाहर हो, जिसमें वह बात भी शामिल है जो कोई इंसान छुपा ले और ज़ाहिर न करे, उसका इल्म केवल अल्लाह को है (9:78; 11:5; 40:19; 20:7; 43:80; 58:7; 67:13)। इस दुनिया में किसी मुक़दमे में जज का फ़ैसला ज़ाहिरी और ठोस गवाही व सुबूत पर होता है, ना कि केवल निजी भावना या विचार पर। ख़लीफ़ा अबु बक्र रज़ि ने फ़रमाया कि मैं अपनी निजी जानकारी के हिसाब से कोई फ़ैसला नहीं कर सकता जब तक उसके पक्ष में कोई और ठोस सुबूत और गवाही न हो (मिसाल के लिए देखेः अलशोकानी, नीलुल ओवतार, जिल्द 9, पेज 185-187, 196, बेरूत 1973)। पैग़म्बर साहब के समय मुनाफ़िक़ इस बात से पहचान लिए जाते थे कि ‘‘उन्होंने अपनी क़समों को ढाल बना रखा है और उनके ज़रिए से (लोगों को) अल्लाह के रास्ते रोक रहे हैं कुछ शक नहीं कि जो काम ये करते हैं बुरे हैं’’ (63:2)। क़ुरआन की कई आयतों में मुनाफ़िक़ों की नियत और आमाल को बेनक़ाब किया गया है (3:167-168; 4:1-63, 72-73, 88-89,91,138-146; 9:47-59,61-68,75-90,93-98,101,107-110,124-127; 29:10-11; 33:12-20,60-62,73; 47:16,20-32; 48:11-12,15-16; 57:3-15; 59:11-13; 63:1-8; 66:9)। इसके बावजूद अल्लाह के रसूल सल्ल० की प०लिसी किसी वर्ग के बारे में अपनी भावनाओं के अनुसार मामला न करने की थी, बल्कि उनके ज़ाहिरी बयानों के आधार पर करने की थी और उनका ज़ाहिरी बयान यह था कि वो मुसमलान है। इसके अलावा यह कि हर व्यक्ति उसी बात के लिए जवाबदेह है जो वह कहे और जिसका सुबूत मौजूद हो। अल्लाह के रसूल की सुन्नत इस सिद्धांत पर ज़ोर देती है कि जो व्यक्ति फ़ैसला करने वाला हो उसे ज़ाहिरी साक्ष्यों और ठोस सुबूतों पर निर्भर करना चाहिए जबकि नियत और इरादा बग़ैर शक के मालूम न हो। और किसी इंसानी अमल का फ़ैसला करने और उसे जांचने के लिए यह बुनियादी बात है। आख़िरत में फ़ैसले वाले दिन अल्लाह तआला अमल का फ़ैसला और उसके बदले का निर्धारण अमल करने वाले की नियत के मुताबकि करेंगे क्योंकि वो ही हैं जो इस बात से बाख़बर हैं कि इंसानों के दिल व दिमाग़ में क्या है (देखें 2:7; 9:8; 11:5; 20:7; 25:6; 43:80; 47:26; 6713; 86:9-10)।

व्यक्तियों और समाज के आपसी हितों का संतुलित रवैया

सामाजिक व आर्थिक न्याय

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ
الْمَشْرِقِ وَ الْمَغْرِبِ وَ لٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ
بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ الْمَلٰٓئِكَةِ وَ الْكِتٰبِ وَ
النَّبِيّٖنَ ۚ وَ اٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِى
الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنَ وَ ابْنَ
السَّبِيْلِ ۙ وَ السَّآئِلِيْنَ وَ فِى الرِّقَابِ ۚ وَ
اَقَامَ الصَّلٰوةَ وَ اٰتَى الزَّكٰوةَ ۚ وَ الْمُوْفُوْنَ
بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ وَ الصّٰبِرِيْنَ فِى
الْبَاْسَآءِ وَ الضَّرَّآءِ وَ حِيْنَ الْبَاْسِ ؕ اُولٰٓئِكَ
الَّذِيْنَ صَدَقُوْا ؕ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ﴿۱۷۷﴾

नेकी ये नहीं है के तम सिर्फ़ अपना मुँह मशरिक़ व मग़रिब को कर लो, लेकिन नेकी दरअसल यही है के जो अल्लाह पर पूरा पूरा यक़ीन लायें यौमे आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, किताबों पर, रसूलों पर ईमान लायें, और माल जो उनको बड़ा अज़ीज़ है अपने रिश्तेदारों को, यतीमों को, मोहताजों को, मुसाफ़िरों को, मांगने वालों को और गुलामों को आज़ाद कराने में सर्फ़ करें, नमाज़ बराबर पढ़ते रहें और ज़कात देते रहें, जब अहेद करें तो इसको पूरा भी किया करें, और सख़्ती और तकलीफ़, और लड़ाई में सब्र किया करें, और साबित क़दम रहा करें। यही हैं जो सच्चे हैं, और यही वो हैं जो अल्लाह से डरने वाले हैं। (2:177)

وَ اَنْفِقُوْا فِىْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَ لَا تُلْقُوْا
بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۚ وَ اَحْسِنُوْا ۚ اِنَّ اللّٰهَ
يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۱۹۵﴾

और अल्लाह की राह में ख़र्च किया करो, और अपने आपको अपने हाथों हलाकत में ना डालो, और नेकी किया करो, बिलाशुबह अल्लाह नेकी करने वालों को अपना महबूब रखता है। (2:195)

فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ
رَسُوْلِهٖ ۚ وَ اِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ
اَمْوَالِكُمْ ۚ لَا تَظْلِمُوْنَ وَ لَا تُظْلَمُوْنَ ﴿۲۷۹﴾

फिर अगर तुम इस पर अमल ना करोगे तो सुन लो अल्लाह की और रसूल की तरफ़ से एलाने जंग है अगर तुम तौबा कर लो तो तुम को असल अम्वाल मिल जाएंगे। ना तुम किसी पर ज़ुल्म करोगे और ना तुम पर कोई ज़ुल्म करेगा। (2:279)

لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ ؕ وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ شَیْءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِیْمٌ ﴿۹۲﴾

तुम कभी कभी कोई नेकी हासिल न कर सकोगे जब तक तुम अल्लाह की राह में अपनी अज़ीज़ तरीन चीज़ ना खर्च करो और जो भी तुम ख़र्च करोगे अल्लाह उसको जानता है। (3:92)

وَلَا تُؤْتُوا السُّفَهَآءَ اَمْوَالَكُمُ الَّتِیْ جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ قِیٰمًا وَّ ارْزُقُوْهُمْ فِیْهَا وَ اكْسُوْهُمْ وَ قُوْلُوْا لَهُمْ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ﴿۵﴾

और तुम बेवक़ूफ़ों को अपने वो माल ना दिया करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये मायए ज़िन्दगी बनाया है, और उन मालों में उनको खिलाते रहो, पहनाते रहो, और उनसे अच्छी अच्छी बातें किया करो। (4:5)

وَ لَا تَتَمَنَّوْا مَا فَضَّلَ اللّٰهُ بِهٖ بَعْضَكُمْ عَلٰی بَعْضٍ ؕ لِلرِّجَالِ نَصِیْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبُوْا ؕ وَ لِلنِّسَآءِ نَصِیْبٌ مِّمَّا اكْتَسَبْنَ ؕ وَ سْـَٔلُوا اللّٰهَ مِنْ فَضْلِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِیْمًا ﴿۳۲﴾

और उस चीज़ की हिरस ना किया करो जिसमें अल्लाह ने तुम को एक दूसरे पर फ़ज़ीलत अता की है मर्दों को उन ही के कामों का सवाब मिलेगा, और औरतों को उन ही के कामों का सवाब मिलेगा, और अल्लाह से उसका फ़ज़्लो करम मांगा करो, बिला शुबह अल्लाह ही हर चीज़ का ख़ूब जानने वाला है। (4:32)

وَ اعْبُدُوا اللّٰهَ وَ لَا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَیْـًٔا وَّ بِالْوَالِدَیْنِ اِحْسَانًا وَّ بِذِی الْقُرْبٰی وَ الْیَتٰمٰی وَ الْمَسٰكِیْنِ وَ الْجَارِ ذِی الْقُرْبٰی وَ الْجَارِ الْجُنُبِ وَ الصَّاحِبِ بِالْجَنْۢبِ وَ ابْنِ السَّبِیْلِ ۙ وَ مَا مَلَكَتْ اَیْمَانُكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا یُحِبُّ مَنْ كَانَ مُخْتَالًا فَخُوْرَا ۙ﴿۳۶﴾ الَّذِیْنَ یَبْخَلُوْنَ وَ یَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبُخْلِ وَ یَكْتُمُوْنَ مَاۤ اٰتٰىهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ ؕ وَ اَعْتَدْنَا لِلْكٰفِرِیْنَ عَذَابًا مُّهِیْنًا ۚ﴿۳۷﴾ وَ الَّذِیْنَ یُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ رِئَآءَ النَّاسِ وَ لَا یُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَ لَا بِالْیَوْمِ

और तुम अल्लाह ही की इबादत किया करो, और उसके साथ किसी दूसरे को शरीक ना किया करो, और अपने माँ बाप के साथ, अपने क़रीबी रिश्तेदारों के साथ, यतीमों के साथ, ग़रीबों के साथ, पास वाले पड़ोस के साथ, दूर वाले पड़ोस के साथ, साहेबे मजलिस के साथ, और मुसाफ़िर के साथ, और अपने गुलामों और लौंडियों के साथ अच्छा सलूक किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो उनको महबूब नहीं रखता जो अपने आप को बड़ा समझते हैं और शेखी बघारते हैं। जो बुख़्ल करते हैं और दूसरों को भी बुख़्ल की तालीम देते हैं, और अल्लाह ने उनको अपने फ़ज़्ल से जो अता किया है उसे भी छुपा छुपा के रखते हैं, और ऐसे ही नाशुक्रों के लिए हमने ज़िल्लत की सज़ा तैयार कर रखी है। और जो लोग

الْاٰخِرِ ۭ وَ مَنْ يَّكُنِ الشَّيْطٰنُ لَهٗ قَرِيْنًا
فَسَاۗءَ قَرِيْنًا ۝٣٨ وَ مَا ذَا عَلَيْهِمْ لَوْ اٰمَنُوْا
بِاللّٰهِ وَ الْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَ اَنْفَقُوْا مِمَّا رَزَقَهُمُ
اللّٰهُ ۭ وَ كَانَ اللّٰهُ بِهِمْ عَلِيْمًا ۝٣٩ اِنَّ اللّٰهَ لَا
يَظْلِمُ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ ۚ وَ اِنْ تَكُ حَسَنَةً
يُّضٰعِفْهَا وَ يُؤْتِ مِنْ لَّدُنْهُ اَجْرًا
عَظِيْمًا ۝٤٠

अपना माल लोगों के दिखाने के लिए खर्च करते हैं, और ना अल्लाह पर ईमान लाते हैं और ना ही आख़िरत के दिन पर (तो ये शैतान के साथी हैं) और जिनका साथी शैतान है तो बुरा साथी है। और उनका क्या बिगड़ जाता अगर वो अल्लाह पर ईमान ले आते और यौमे आख़िरत पर, और उसमें से कुछ खर्च भी कर लेते जो अल्लाह ने उनको अता किया है, और अल्लाह उनको .ख़ूब जानता है। बिलाशुबह अल्लाह तो किसी पर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं करता और अगर एक नेकी की है तो अल्लाह उसको दुगना कर देगा, और अपने हां से अज्रे अज़ीम अता करेगा। (4:36-40)

اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تُؤَدُّوا الْاَمٰنٰتِ اِلٰٓى
اَهْلِهَا ۙ وَ اِذَا حَكَمْتُمْ بَيْنَ النَّاسِ اَنْ
تَحْكُمُوْا بِالْعَدْلِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ نِعِمَّا يَعِظُكُمْ
بِهٖ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ سَمِيْعًۢا بَصِيْرًا ۝٥٨

बेशक अल्लाह तुम को हुक्म देता है के हक़दारों को उनका हक़ अदा कर दिया करो, और जब तुम फ़ैसला करो लोगों के दरमियान तो इन्साफ़ से फ़ैसला किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम को बहुत ही अच्छी बात की नसीहत करता है, बेशक अल्लाह तो .ख़ूब सुनने वाला और .ख़ूब देखने वाला है। (4:58)

لَا خَيْرَ فِيْ كَثِيْرٍ مِّنْ نَّجْوٰىھُمْ اِلَّا مَنْ
اَمَرَ بِصَدَقَةٍ اَوْ مَعْرُوْفٍ اَوْ اِصْلَاحٍۢ
بَيْنَ النَّاسِ ۭ وَ مَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ ابْتِغَاۗءَ
مَرْضَاتِ اللّٰهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا
عَظِيْمًا ۝١١٤

आम लोगों की अक्सर सरगोशियों में .ख़ैर नहीं होती, मगर जो .ख़ैरात की, किसी नेक काम की या लोगों में बाहम इस्लाम की तरग़ीब देता है, और जो ये काम करेगा महज़ अल्लाह की रज़ा के लिये सो हम बहुत जल्द उसको उन कामों का बड़ा सिल अता फ़रमायेंगे। (4:114)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ كَثِيْرًا مِّنَ الْاَحْبَارِ
وَ الرُّهْبَانِ لَيَاْكُلُوْنَ اَمْوَالَ النَّاسِ
بِالْبَاطِلِ وَ يَصُدُّوْنَ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۭ وَ

ऐ मोमिनों! यहूद के अक्सर उल्मा और मशाय.ख, लोगों का माल नाजायज़ तौर पर खाते हैं और अल्लाह के रास्ते से रोकते हैं, और जो लोग सोना चांदी जमा कर रहे हैं, और अल्लाह की राह में .ख़र्च नहीं करते तो

الَّذِيْنَ يَكْنِزُوْنَ الذَّهَبَ وَ الْفِضَّةَ وَ لَا يُنْفِقُوْنَهَا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَبَشِّرْهُمْ بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ﴿٣٤﴾ يَّوْمَ يُحْمٰى عَلَيْهَا فِيْ نَارِ جَهَنَّمَ فَتُكْوٰى بِهَا جِبَاهُهُمْ وَ جُنُوْبُهُمْ وَ ظُهُوْرُهُمْ هٰذَا مَا كَنَزْتُمْ لِاَنْفُسِكُمْ فَذُوْقُوْا مَا كُنْتُمْ تَكْنِزُوْنَ ﴿٣٥﴾

उनको एक बड़े दर्दनाक अज़ाब की ख़बर सुना दीजिये। जो उस रोज़ वाक़े होगा के उनको दोज़ख की आग में तपाया जाएगा फ़िर उनकी पेशानियों, उनकी करवटों को और उन की पुश्तों को दाग़ दिया जाएगा, ये वो है के जिसका तुमने अपने वास्ते जमा करके रखा था, सो अब अपने जमा करने का मज़ा चखो। (9:34-35)

وَ اٰتِ ذَا الْقُرْبٰى حَقَّهٗ وَ الْمِسْكِيْنَ وَ ابْنَ السَّبِيْلِ وَ لَا تُبَذِّرْ تَبْذِيْرًا ﴿٢٦﴾ اِنَّ الْمُبَذِّرِيْنَ كَانُوْۤا اِخْوَانَ الشَّيٰطِيْنِ وَ كَانَ الشَّيْطٰنُ لِرَبِّهٖ كَفُوْرًا ﴿٢٧﴾ وَ اِمَّا تُعْرِضَنَّ عَنْهُمُ ابْتِغَآءَ رَحْمَةٍ مِّنْ رَّبِّكَ تَرْجُوْهَا فَقُلْ لَّهُمْ قَوْلًا مَّيْسُوْرًا ﴿٢٨﴾ وَ لَا تَجْعَلْ يَدَكَ مَغْلُوْلَةً اِلٰى عُنُقِكَ وَ لَا تَبْسُطْهَا كُلَّ الْبَسْطِ فَتَقْعُدَ مَلُوْمًا مَّحْسُوْرًا ﴿٢٩﴾ اِنَّ رَبَّكَ يَبْسُطُ الرِّزْقَ لِمَنْ يَّشَآءُ وَ يَقْدِرُ اِنَّهٗ كَانَ بِعِبَادِهٖ خَبِيْرًۢا بَصِيْرًا ﴿٣٠﴾

और रिश्तेदारों, मोहताजों और मुसाफ़िरों को उनका हक़ अदा किया करो, और फ़ुज़ूल खर्ची ना किया करो। बेशक फ़ुज़ूल खर्च करने वाले शैतान के भाई हैं और शैतान अपने रब का बड़ा ना शुक्रा है। और अगर तुमको उनसे पहलू तही करना पड़ जाये जबके तुमको उस रिज़्क़ का इन्तिज़ार है जिसकी अपने परवरदिगार की तरफ़ से उम्मीद है तो उनसे नर्म अल्फ़ाज़ में बात कह दिया करो। और तुम अपने हाथ को ना तो इतना तंग ही करो के कुछ ना दो और ना इतना कुशादा करो के कुल का कुल दे डालो, वर्ना इल्ज़ाम खोर्दा खाली हाथ होकर बैठ रहोगे। बेशक तुम्हारा रब जिसे चाहता है रोज़ी फ़राख़ कर देता है और वही तंग भी कर देता है, वो बेशक अपने बन्दों से बाख़बर है (और) देख रहा है। (17:26-30)

وَ لْيَسْتَعْفِفِ الَّذِيْنَ لَا يَجِدُوْنَ نِكَاحًا حَتّٰى يُغْنِيَهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ وَ الَّذِيْنَ يَبْتَغُوْنَ الْكِتٰبَ مِمَّا مَلَكَتْ اَيْمَانُكُمْ فَكَاتِبُوْهُمْ اِنْ عَلِمْتُمْ فِيْهِمْ خَيْرًا وَّ اٰتُوْهُمْ مِّنْ مَّالِ اللّٰهِ الَّذِيْۤ اٰتٰىكُمْ وَ لَا تُكْرِهُوْا فَتَيٰتِكُمْ عَلَى الْبِغَآءِ اِنْ اَرَدْنَ تَحَصُّنًا لِّتَبْتَغُوْا عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا وَ

और जो ग़ुर्बत के सबब शादी नहीं कर सकते वो पाकदामनी पर क़ायम रहें, यहां तक के अल्लाह उनको अपने फ़ज़्ल से ग़नी कर दे, और जो तुम्हारे ग़ुलाम लौंडी तुम से मकातेबत चाहें, अगर तुम उनमें सलाहियत और नेकी पाओ तो उनसे मुकातेबत कर लो, और ख़ुदा ने जो माल तुम को दिया है उसमें से उनको भी दे दो, और अपनी लौंडियों को अगर वो पाकदामन रहना चाहें, दुनिया के फ़ायदे हासिल करने के लिये उनको बदकारी

مَنۡ یُّکۡرِھۡھُّنَّ فَاِنَّ اللّٰہَ مِنۡۢ بَعۡدِ اِکۡرَاھِھِنَّ غَفُوۡرٌ رَّحِیۡمٌ ۝۳۳

के लिये मजबूर ना करो, और जो उनको मजबूर करेगा, तो उनकी उस मजबूरी के बाद अल्लाह माफ़ करने वाला मेहरबान है। (24:33)

وَالَّذِیۡنَ اِذَاۤ اَنۡفَقُوۡا لَمۡ یُسۡرِفُوۡا وَ لَمۡ یَقۡتُرُوۡا وَ کَانَ بَیۡنَ ذٰلِکَ قَوَامًا ۝۶۷

और वो जब .खर्च करते हैं तो ना फ़िज़ूल .खर्ची करते हैं और ना तंगी करते हैं, और उनक .खर्च एतदाल से होता है। (25:67)

اٰمِنُوۡا بِاللّٰہِ وَ رَسُوۡلِہٖ وَ اَنۡفِقُوۡا مِمَّا جَعَلَکُمۡ مُّسۡتَخۡلَفِیۡنَ فِیۡہِ ؕ فَالَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡا مِنۡکُمۡ وَ اَنۡفَقُوۡا لَہُمۡ اَجۡرٌ کَبِیۡرٌ ۝۷

तुम सब अल्लाह पर और उसके रसूल पर ईमान लाओ, उस माल में से .खर्च किया करो जिस में उसने तुम को दूसरों का .खलीफ़ा बनाया है तो जो तुम में से ईमान लायें और माल .खर्च करें, उनके लिये बड़ा सवाब है। (57:7)

مَاۤ اَفَآءَ اللّٰہُ عَلٰی رَسُوۡلِہٖ مِنۡ اَہۡلِ الۡقُرٰی فَلِلّٰہِ وَ لِلرَّسُوۡلِ وَ لِذِی الۡقُرۡبٰی وَ الۡیَتٰمٰی وَ الۡمَسٰکِیۡنِ وَ ابۡنِ السَّبِیۡلِ ۙ کَیۡ لَا یَکُوۡنَ دُوۡلَۃًۢ بَیۡنَ الۡاَغۡنِیَآءِ مِنۡکُمۡ ؕ وَ مَاۤ اٰتٰىکُمُ الرَّسُوۡلُ فَخُذُوۡہُ ٭ وَ مَا نَہٰىکُمۡ عَنۡہُ فَانۡتَہُوۡا ۚ وَ اتَّقُوا اللّٰہَ ؕ اِنَّ اللّٰہَ شَدِیۡدُ الۡعِقَابِ ۝۷

जो माल अल्लाह ने अपने रसूल को देहातों में दिलवाया है, वो अल्लाह का है और उसके रसूल का, और रसूल के रिश्तेदारों, और यतीमों, हाजतमंदों और मुसाफ़िरों का है, ताके जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में ना फ़िरता रहे, और जो चीज़ रसूल तुम को दें वो ले लो, और जिससे मना करें उससे बाज़ रहो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह स.ख्त अज़ाब देने वाला है। (59:7)

وَ الَّذِیۡنَ تَبَوَّؤُ الدَّارَ وَ الۡاِیۡمَانَ مِنۡ قَبۡلِہِمۡ یُحِبُّوۡنَ مَنۡ ہَاجَرَ اِلَیۡہِمۡ وَ لَا یَجِدُوۡنَ فِیۡ صُدُوۡرِہِمۡ حَاجَۃً مِّمَّاۤ اُوۡتُوۡا وَ یُؤۡثِرُوۡنَ عَلٰۤی اَنۡفُسِہِمۡ وَ لَوۡ کَانَ بِہِمۡ خَصَاصَۃٌ ؕ۟ وَ مَنۡ یُّوۡقَ شُحَّ نَفۡسِہٖ فَاُولٰٓئِکَ

और उन लोगों के लिये भी जो मुजाज्रीन से पहले मदीना में मुक़ीम और ईमान मे मुस्तक़िल रहे, और जो लोग हिज्रत करके उनके पास आते हैं उनसे मोहब्बत करते हैं और जो कुछ उनको मिला उससे अपने दिल में कुछ .ख्वाहिश और .खलिश नहीं पाते और उनको अपनी जानों से मुक़द्दम रखते हैं .ख्वाह उनको फ़ाक़ा हो और जो

هُمُ الْمُفْلِحُونَ ۝٩

शख़्स हिर्से नफ़्स से बचा लिया गया हो तो ऐसे ही लोग मुराद पाने वाले हैं। (59:9)

وَالَّذِينَ فِي أَمْوَالِهِمْ حَقٌّ مَّعْلُومٌ ۝٢٤
لِّلسَّائِلِ وَالْمَحْرُومِ ۝٢٥

और जिन के माल में हिस्सा मुक़र्रर है। (यानी) मांगने वाले का, और ना मांगने वाले का। (70:24-25)

وَيُطْعِمُونَ الطَّعَامَ عَلَىٰ حُبِّهِ مِسْكِينًا وَ
يَتِيمًا وَأَسِيرًا ۝٨ إِنَّمَا نُطْعِمُكُمْ لِوَجْهِ اللَّهِ
لَا نُرِيدُ مِنكُمْ جَزَاءً وَلَا شُكُورًا ۝٩

और उसकी मौहब्बत में फ़क़ीरों, यतीमों और क़ैदियों को खाना खिलाते हैं। हम तुम को खाना ख़ालिस अल्लाह के लिये खिलाते हैं, हम तुम से ना कोई बदला चाहते हैं और ना शुक्रिया। (76:8-9)

كَلَّا إِنَّ الْإِنسَانَ لَيَطْغَىٰ ۝٦ أَن رَّآهُ
اسْتَغْنَىٰ ۝٧ إِنَّ إِلَىٰ رَبِّكَ الرُّجْعَىٰ ۝٨

बेशक इन्सान सरकश हो जाता है। इसलिये के अपने आपको बेनियाज़ ख़्याल करने लगता है। बेशक तेरे रब ही की तरफ़ लौटना है। (96:6-8)

الَّذِي جَمَعَ مَالًا وَعَدَّدَهُ ۝٢ يَحْسَبُ أَنَّ
مَالَهُ أَخْلَدَهُ ۝٣ كَلَّا لَيُنبَذَنَّ فِي
الْحُطَمَةِ ۝٤

जो माल जमा करता और गिन गिन कर रखता है। वो ख़्याल करता है के उसका माल हमेशा उसके पास रहेगा। हरगिज़ नहीं वो ज़रूर ऐसी आग में डाला जायेगा जो रौंद के रख दे। (104:2-4)

أَرَأَيْتَ الَّذِي يُكَذِّبُ بِالدِّينِ ۝١ فَذَٰلِكَ
الَّذِي يَدُعُّ الْيَتِيمَ ۝٢ وَلَا يَحُضُّ عَلَىٰ
طَعَامِ الْمِسْكِينِ ۝٣ فَوَيْلٌ لِّلْمُصَلِّينَ ۝٤
الَّذِينَ هُمْ عَن صَلَاتِهِمْ سَاهُونَ ۝٥
الَّذِينَ هُمْ يُرَاءُونَ ۝٦ وَيَمْنَعُونَ
الْمَاعُونَ ۝٧

क्या तुमने उस शख़्स को नहीं देखा जो रोज़े जज़ा का इन्कार करता है। तो ये वही है जो यतीम को धक्के देता है। और फ़क़ीर को खाना खिलाने की तरग़ीब नहीं देता। तो ऐसे नमाज़ियों के लिये ख़राबी है। जो अपनी न मज़ा की तरफ़ से ग़ाफ़िल रहते हैं। और ऐसे हैं के (लोगों को) दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ते हैं। और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ें मांगने पर भी नहीं देते (यानी आरज़ी तौर पर) (107:1-7)

इस्लाम में निजी सम्पत्ति को मान्यता दी गयी हैं और उसकी हिफ़ाज़त की व्यवस्था दी गयी गयी जो कि जायज़ साधनों से और ईमानदारी के साथ किए गए काम की मेहनत से बनाई गयी हो (2:279(4:32), या विरासत में क़ानूनी तरीक़े से प्राप्त हुई हो। अपनी ज़रूरतों पर ख़र्च करने का अधिकार व्यक्ति को दिया गया है कि वह शरीअत की इजाज़त के दायरे में अपनी मंशा और इच्छा के मुताबिक़ ख़र्च कर सकता है, लेकिन मोमिन को फ़ुज़ूल ख़र्ची और कंजूसी से मना किया गया है (17:26-30(25:67), और दौलत को जमा करके रखने की कड़े शब्दों में निन्दा की गयी है (9:34-35(104:2-4)। अलबत्ता, व्यक्ति और समाज के बीच सम्बंध और सहयोग को इस्लामी क़ानून यानी शरीअत में मद्देनज़र रखा गया है। महत्वपूर्ण बात यह है कि क़ुरआन निजी सम्पत्ति या माल व दौलत के बारे में यह कहता है कि "जिस (माल) में उसने तुम को (अपना) उत्तराधिकारी बनाया है" (57:7), "और अल्लाह ने जो माल तुम्हें बख़्शा है"(24:34)। निजी सम्पत्ति के मामले में व्यक्ति की आज़ादी इस शर्त के साथ है कि उसके अन्दर अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने की और ख़ुद को या दूसरे व्यक्तियों को या सामूहिक रूप से पूरे समाज को नुक़सान पहुंचाने से बचने की योग्यता हो। अतःदिमाग़ी रूप से कमज़ोर कोई व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को नहीं संभाल सकता, और इस लिए उसकी व्यवस्था किसी ईमानदार और योग्य व्यक्ति को करना चाहिए जो उस दिमाग़ी विक्षिप्त की सभी ज़रूरतों को पूरा करे और उसको उसकी दौलत के हिसाब से आराम व सुख का जीवन उपलब्ध कराए (4:5)। कोई यतीम जो शादी की उम्र को पहुंच जाए यानी बालिग़ हो जाए उसको भी दिमाग़ी तौर से अपनी सम्पत्तियों को संभालने का योग्य होना चाहिए इससे पहले कि उसे अपनी सम्पत्ति पर नियंत्रण उसके संरक्षक की तरफ़ से दिया जाए (4:6)। निजी सम्पत्ति हो या सार्वजनिक (सरकारी) उन चीज़ों में शामिल है जिसका नियंत्रण लोगों को दिया जाता है और उन्हें उन लोगों के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों को पूरा करना होता है जो उससे सम्बंधित किसी भी तरह का अधिकार रखते हैं (4:58)। व्यक्ति और समाज के बीच आर्थिक क्षेत्र में आपसी सम्बंध व सहयोग के चलते क़ुरआन व्यक्ति को ज़कात की अदायगी का पाबन्द करता है और उसे इस्लाम की पांच मौलिक इबादतों में रखा गया है। इससे प्राप्त होने वाली रक़म उन्ही लोगों पर ख़र्च करने के लिए ख़ास की गयी है जो वित्तीय सहायता के ज़रूरतमंद होते हैं और अस्थाई या स्थाई रूप से अपना रोज़गार ख़ुद कमाने के योग्य नहीं होते (9:60,103)। क़ुरआन कहता है कि व्यक्ति के माल में हिस्सा निर्धारित है मांगने वाले (ज़रूरतमंद) का और (अपनी ज़रूरतें पूरी करने से) वंचित लोगों का (70:24-25, और देखें 51:19)।

क़ुरआन के अनुसार सरकार को सामाजिक संतुलन बनाने, बनाए रखने या उसकी कोशिश करने पर ख़र्च करना चाहिए:"ताकि जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में न फिरता रहे" (59:7)। सार्वजनिक संसाधनों और सार्वजनिक कोष से ख़र्च के लिए विभिन्न प्रकार के

लोगों की ज़रूरतों को देखना चाहिए, उनकी वर्तमान स्थिति के लिहाज़ से भी और आगामी जीवन में अल्पकालिक या दीर्घकालिक ज़रूरतों के लिहाज़ से भी (59:7-10), और इसका मक़सद उनके जीवन स्तर को उठाना होना चाहिए। सामाजिक सुरक्षा की इस स्कीम में इस्लामी राज्य के सभी व्यक्ति शामिल हैं चाहे वो मुसमलान हों या ग़ैर मुस्लिम (देखेःहीरा के लोगों से ख़ालिद बिन वलीद का समझौता जबकि हीरा के लोग उस समय ज़्यादातर ईमान नहीं लाए थे। इस समझौते में बुज़ुर्ग नागरिकों, बीमार लोगों और किसी भी तरह से ज़रूरतमंद लोगों के लिए सरकार की तरफ़ से सहायता देने का वायदा किया गया था, और हज़रत उमर ने एक बूढ़े ज़रूरतमंद यहूदी को वज़ीफ़ा जारी किया था इस बारे में हज़रत उमर का बयान देखेः(अबु यूसुफ़, अलखरिाज, पेज 155-156,136, क़ाहिरा 1397 हिजरी)। क़ुरआन ने इस बात पर सबसे पहले ध्यान दिलाया कि यु) बन्दियों के मानव अधिकारों की रक्षा की जाए, उनसे दुशमनी और विरोध के बावजूद (76:8-9)।

क़ुरआन में 50 से अधिक जगहों पर मुसमलानों को यह सीख दी गयी है कि जो कुछ अल्लाह ने उन्हें बख़्शा है उसमें से ज़रूरतमंद व्यक्तियों और सामाजिक ज़रूरतों पर ख़र्च करें (देखें सामाजि व आर्थिक न्याय, 2:3,195,261-274; 3:92; 9:34-35,60,103)। यह ख़र्च भौतिक चीज़ों से भी किया जा सकता है, शरीरिक शक्ति व ऊर्जा से भी, बौद्धिक योग्यताओं से भी और इल्म व ज्ञान से भी, या केवल नैतिक समर्थन से भी। हर आदमी को दूसरों पर कुछ न कुछ ख़र्च करना चाहिए, आदमी के बस में जो कुछ भी हो (2:177; 3:92; 76:8)। व्यक्तियों के लिए यह जानना और समझना ज़रूरी है कि स्वार्थीपन और तंगनज़री से समाज तबाह हो जाता है और समाज की तबाही का नुक़सान हर व्यक्ति को पहुंचता है। इसलिए समझदार आदमी को इस धोखे से ख़ुद का बचाना चाहिए कि वह आत्मनिर्भर है और उसे किसी से कुछ लेना देना नहीं है, क्योंकि इस तरह के विचार से अहंकार और अधिकारों के उल्लंघन को रास्ता मिलता है। जो यतीम को धक्के देता है और ज़रूरतमंद का खाना देने की प्रेरणा नहीं देता वह अल्लाह के पैग़ाम को रद करता है और आख़िरत में अल्लाह के सामने इंसान की जवाबदेही का इंकार करता है। जो लोग नमाज़ तो पढ़ते हैं लेकिन ज़रूरतमंद की मदद करने से इंकार करते हैं उनका दिल उनकी नमाज़ से ग़ाफ़िल होते हैं वो केवल दिखावा करते हैं और दूसरों की मदद करने से इंकार करते हैं (107:1-7)। जिस तरह मुसलमानों को जमाअत के साथ (सामूहिक रूप से) नमाज़ पढ़ने की सीख दी गयी है और अपनी सफ़ों (पन्क्तियों) को ठीक रखने का निर्देश दिया गया है उसी तरह उन्हें सामाजिक एकता व सहमति बनाने की और सामाजिक सहायता के द्वारा मिलजुल कर रहने की भी शिक्षा दी गयी है, सदाचार के दूसरे काम जैसे लोगों के साथ सदयवहार और उपकार का रवैया रखने की, लोगों के बीच मेल मिलाप और सन्धि करा देने की और उनके विवादों का निपटारा करने की शिक्षा भी दी गयी है (4:114)।

अगरचे दूसरे ज़रूरतमंदों की मदद खुल कर और लोगों के सामने भी की जा सकती है (ख़ास तौर से ऐसे मौक़ों पर जब दूसरों के प्रेरणा देने की भी ज़रूरत हो) लेकिन मोमिनों को दिखावे और प्रशंसा के लिए दूसरों पर ख़र्च करने से मना किया गया है और ख़र्च करते समय अहसान जताने और लेने वाले का अपमान करने से रोका गया है (2:262-274(4:36-40(76:8-9)।

व्यक्तियों और समाज की ज़रूरतों पर ख़र्च करने की ज़ोरदार क़ुरआनी तालीम मोमिनों के दिल व दिमाग़ पर असर करती है और उन्हें इसके लिए तैयार करती है कि वो स्वेच्छा से बढ़ चढ़ कर ख़र्च करें, जबकि सरकार के हस्तक्षेप और उसकी शक्ति और उपायों को सम्भव हद तक सीमित ही रखा गया है। यहां तक कि अनिवार्य ज़कात के मामले में भी ख़लीफ़ा हज़रत उसमान रज़ि ने सोने व चांदी की ज़कात को भी ख़ुद कमाई करने वालों पर छोड़ दिया कि वो अगर चाहें तो सीधे अपने हाथ से ज़रूतमंद को दे दें क्योंकि इस तरह की आमदनी के लिए बहुत ज़्यादा प्रबंधन तंत्र की ज़रूरत थी और जिहालत की वजह से समाज में झगड़े शुरू हो सकते थे। उन्होंने ज़कात की सरकारी वसूलयाबी को वहीं तक सीमित कर दिया जिसे फ़क़ीहों ने ''ज़ाहिरी इम्लाक'' (नज़र आने वाली सम्पत्तियां) क़रार दिया है जैसे मवेशी और खेती जिसे आसानी से देखा और आंका जा सकता है।

दूसरों पर ख़र्च करने की ऐसी सीख का मतलब किसी भी तरह से यह नहीं है कि व्यक्ति ख़ुद अपनी, अपने घर वालों की ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़े क्योंकि इस्लाम व्यक्तियों और समाज के आपसी सम्बंधों में उचित संतुलन बनाए रखना चाहता है। जब पैग़म्बर साहब के एक सहाबी ने यह इरादा ज़ाहिर किया कि वह अपना सारा माल सदक़ा कर देना चाहते हैं तो पैग़म्बर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया, अपने माल का एक तिहाई हिस्सा सदक़ा कर देना काफ़ी है, या यह भी ज़्यादा है। बहतर यह है कि अपने वारिसों को मालदार छोड़ जाओ बजाए इसके कि ग़रीबी और मुहताजगी की स्थिति में छोड़ जाओ (मालिक, बुख़ारी, मस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी, नसई और इब्ने माजा, रिवायत सअद इब्ने अबी वक़ास)।

अन्य बुनियादी बातेःसभी पक्षों को उचित लाभ और उन सब की सहमति

وَ لَا تَاْكُلُوْۤا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَ تُدْلُوْا بِهَاۤ اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ وَ اَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ۠

और एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो और ना उसको हाकिमों के पास पहुँचाओ के नाजायज़ तौर पर लोगों के माल का कोई हिस्सा खा जाओ, और तुम को इल्म भी हो। (2:188)

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۗ وَلَا تَقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۗ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيْمًا ۝٢٩

मोमिनों! एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो, अलबत्ता आपस की रज़ामंदी से तिजारत का लेनदेन है कोई फ़ायदा हो जाए तो जायज़ है, और आपस में एक दूसरे को हलाक़ ना किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम पर बड़ा ही मेहरबान है। (4:29)

एक दूसरे का माल खा जाना एक कहावत है जिसमें बे-ईमानी और नाजायज़ कमाई के सारे तरीक़े आ जाते हैं जैसे धोखा, ग़बन, डबल ड़ीलिंग, ब्लैक मेलिंग, हेरा फेरी, रिशवत और शोषण के विभिन्न रूप जो एक पक्ष के लिए नाजायज़ तरीक़े से कमाई का ज़रिया बनते हैं और दूसरे के लिए नुक़सान का कारण बनते हैं। जो लोग सरकारी पदों पर होते हैं और उन्हें सार्वजनिक मामलों का अधिकार मिला होता है उनके अन्दर अपने अधिकारों का दुरूपयोग करने की उमंग पैदा हो जाती है और यह वासना कि वह बग़ैर किसी हक़ के दूसरे के माल में से हिस्सा लें, या वो दूसरों को इस तरह के फ़ायदे पहुंचाने में सक्रिय या असक्रिय रूप से शामिल होते हैं और इससे ख़ुद भी फ़ायदा उठाते हैं (2:188)। क़ुरआन जहां लोगों के बीच लेनदेन में अन्याय के ऐसे तरीक़ों को हराम क़रार देता है वहीं यह लेनदेने और कमाई के असीमित रूपों को जायज़ करता है जो आपसी सहमति पर आधारित हों और जिनमें सभी पक्षों के बीच आपसी लेनदेन में उचित तरीक़े अपनाए जाएं।

क़ुरआन की एक और आयत 4:29 एक दूसरे का माल खा जाने की मनाही से आगे बढ़ कर एक दूसरे को हिलाक करने की मनाही करती है। यह हत्या करने के अर्थ में भी हो सकती है और व्यापक अर्थ में इसे एक दूसरे के जीवन को नष्ट कर देने के अर्थ में भी लिया जा सकता है, इस तरह कि आदमी आर्थिक, परिवारिक, सामाजिक या नैतिक रूप से तबाह हो जाए। यह आयत पूरे मुस्लिम समाज को सम्बोधित करती है क्योंकि जीवन की तबाही केवल उस व्यक्ति के जीवन तक ही सीमित नहीं रहती जो उसका प्रत्यक्ष रूप से निशाना हो बल्कि सभी पक्षों की तबाही होती है जो उसमें शामिल हों, वह भी जो इस तबाही का दोषी हो, और पूरा समाज भी। इसी तरह, क़ुरआन दूसरे ज़रूरतमंद व्यक्तियों या सामाजिक कल्याण की मद में बहुत अधिक ख़र्च कर डालने के मामले में भी सचेत करता है क्योंकि इस तरह व्यक्ति ख़ुद अपने हाथों ख़ुद को हिलाक करने वाला हो सकता है (2:195)।

ब्याज

اَلَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ الرِّبٰوا لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا

जो सूद खाते हैं तो वो क़ब्रों से ऐसे उठेंगे जैसे किसी को जिन्न ने लिपट कर दीवाना बना दिया हो ये इसलिए के

كَمَا يَقُوْمُ الَّذِيْ يَتَخَبَّطُهُ الشَّيْطٰنُ مِنَ
الْمَسِّ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْۤا اِنَّمَا الْبَيْعُ
مِثْلُ الرِّبٰوا ۘ وَ اَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَ حَرَّمَ
الرِّبٰوا ؕ فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ
فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ وَ اَمْرُهٗۤ اِلَى اللّٰهِ ؕ
وَ مَنْ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ
فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۝٢٧٥ يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَ يُرْبِي
الصَّدَقٰتِ ؕ وَ اللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ
اَثِيْمٍ ۝٢٧٦ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ عَمِلُوا
الصّٰلِحٰتِ وَ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ
لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَ لَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَ لَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٢٧٧ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَ ذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰوا
اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۝٢٧٨ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا
فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ ۚ وَ اِنْ
تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ لَا
تَظْلِمُوْنَ وَ لَا تُظْلَمُوْنَ ۝٢٧٩ وَ اِنْ كَانَ ذُوْ
عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ؕ وَ اَنْ تَصَدَّقُوْا
خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝٢٨٠ وَ اتَّقُوْا
يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ۗ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ
نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَ هُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ۝٢٨١

वो कहते थे कि सौदा बेचना भी तो वैसा ही है जैसे सूद लेना। हालांकि सौदे को अल्लाह ने हलाल किया है और सूद को हराम, तो जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से नसीहत पहुंची और वो सूद लेने से बाज़ आ गया तो जो पहले हो चुका वो उसी का रहा और उसका मामला अल्लाह के सुपर्द, और जो फिर लेने लगा तो ये लोग दोज़ख़ी हो गए। वो हमेशा ही दोज़ख़ में जलते ही रहेंगे। अल्लाह सूद को बेबर्कत कर देता है। और ख़ैरात की बर्कत को बढ़ा देता है। और अल्लाह किसी नाशुक्रे बदकार को दोस्त नहीं रखता। बिला शुबह जो ईमान लाए और नेक काम करते रहे और नमाज़ पाबंदी के साथ अदा करते रहे और ज़कात देते रहें तो उनके लिए उनका सवाब उनके रब के पास है। और आख़िरत में उन पर ना कोई .ख़ौफ़ होगा और ना कोई ग़म होगा। ऐ मोमिनों! अल्लाह से डरते रहो और जो कुछ सूद का बाक़ी है उसको छोड़ दो अगर तुम वाक़ई अल्लाह पर यक़ीन कामिल रखते हो। फिर अगर तुम इस पर अमल ना करोगे तो सुन लो अल्लाह की और रसूल की तरफ़ से एलाने जंग है अगर तुम तौबा कर लो तो तुम को असल अम्वाल मिल जाऐंगे। ना तुम किसी पर ज़ुल्म करोगे और ना तुम पर कोई ज़ुल्म करेगा। और अगर तंगदस्त हो तो मोहलत देने का हुक्म है आसूदगी के आने तक, और ये बात के माफ़ ही कर दो तो तुम्हारे लिये .ज्यादा बेहतर है, अगर तुम जानते हो (के ये सवाब का काम है)। और उस दिन से डरते रहो जिस दिन तुम सबको अल्लाह ही की तरफ़ लौट कर जाना और उसके सामने पेश होना है फ़िर हर शख़्स को उसके अमल का पूरा पूरा बदला मिलेगा, और उन पर कोई ज़ुलम ना होगा। (2:275-281)

ये आयतें क़र्ज़ के लेनदेन में ब्याज वसूल करने के नाजायज़ होने को बताती हैं। ''रिबा''

का शब्द इससे पहले आयत 30:39 में भी आ चुका है:"और जो रिबा तुम देते हो कि लोगों के माल में बढ़ोतरी हो तो अल्लाह के नज़दीक इसमें बढ़ोतरी नहीं होती और जो तुम ज़कात देते हो और उससे अल्लाह की प्रसन्नता तलब करते हो तो (वह बरकत का ज़रिया है और) ऐसे ही लोग (अपने माल को) दो गुना करने वाले हैं।" यहां क़ुरआनी शब्द "रिबा" में हर वह नाजायज़ बढ़ोतरी शामिल है जो मूल राशि में की जाए जब यह बढ़ोतरी अनुचित हो और व्यक्तियों व समाज के लिए नुक़सानदायक हो। जैसा कि इब्ने कसीर ने आयत 2:275 की व्याख्या में, और कुछ दूसरे फ़क़ीहों ने भी, लिखा है कि रिबा इस्लामी क़ानून के सबसे कठिन विषयों में से एक है, क्योंकि जिस आयत में रिबा को मना किया गया है, और अल्लाह के रसूल सल्ल० ने अपने अन्तिम हज के ख़ुत्बे में जो कुछ फ़रमाया वह रसूलुल्लाह की ज़िन्दगी के अन्तिम दिनों की बात है। इस वजह से सहाबियों को इस मामले में रसूलुल्लाह से और कुछ पूछने का मौक़ा नहीं मिला और ख़ुद हज़रत उमर ने एक बार यह फ़रमाया कि काश रसूलुल्लाह इसको कुछ स्पष्ट फ़रमा देते (रिवायत इब्ने हंबल)। रिबा आम तौर से क़र्ज़ से सम्बंधित है जिसमें पैसे का ज़रूरत मंद या कमज़ोर व्यक्ति किसी मालदार से क़र्ज़ लेता है और इस क़र्ज़ लेनदेन में क़र्ज़ देने वाला तो हमेशा फ़ायदे में रहता है जबकि क़र्ज़ लेने वाला अपनी कोई ज़रूरत पूरी करने के लिए क़र्ज़ ली गयी रक़म इस्तेमाल करता है। और क़र्ज़ लेने वाला अगर ली गयी रक़म से कोई निवेश करता है तो भी उससे जो कुछ उसे हासिल होता है वह उसके मुक़ाबले कम होता है जो उसे क़र्ज़ देने वाले को अदा करना होता है, या क़र्ज़दार पूरी तरह ही नुक़सान में रहता है। इस आयत की व्याख्या में मुहम्मद असद ने लिखा है कि :" हम यह समझते हैं कि यह सवाल कि किस तरह के लेनदेन रिबा की श्रेणी में आते हैं सामाजिक व आर्थिक मोटीवेशन से सम्बंधित है। यहां मोटीवेशन का मतलब क़र्ज़ देना और क़र्ज़ लेना है और इसका सम्बंध आपसी नफ़ा व नुक़सान और लेनदेन से फ़ायदा उठाने पर आधारित स्थिति से है जिसमें क़र्ज़ देने और लेने वाले में आपसी सहमति होती है। इस तरह :" सवाल यह है कि नफ़ा और नुक़सान दोनों में क़र्ज़ देने और लेने वाले पक्ष कैसे शामिल हों" हमारा जवाब निश्चित रूप से बदलती हुई परिस्थितियों के मुताबिक़ अलग अलग होगा"। यह बदलाव पक्षों में भी हो सकते हैं, समाज में भी हो सकते हैं और अर्थ व्यवस्था में भी हो सकते हैं। चूंकि कि रिबा की अवधारणा और अमल की क़ुरआन में जो निन्द की गयी है वह निश्चित है और अपरिवर्तनीय है इसलिए हर आने वाली मुस्लिम पीढ़ी को इस शब्दावली के नए आर्थिक अर्थ तलाश करने और इसको नए आयाम देने की चुनौती का सामना करना पड़ता है।"

मुहम्मद असद ने यह जो स्पष्टीकरण दिया है यह ज़रूरी है, क्योंकि रिबा किसी ठोस चीज़ का नाम नहीं है बल्कि यह दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक मामला होता है जिसे ऐतिहासिक और सामाजिक स्थितियों के दायरे में ही समझा जा सकता है। रिबा की भाषाई

परिभाषा यानी वृ) से मामले पर कोई रोशनी नहीं पड़ सकती, क्योंकि जायज़ तौर से नफ़ा कमाना भी एक वृ) ही है। इज़ाफ़ा या बढ़ोतरी के शब्दों को ख़ास तौर से क़र्ज़ से जोड़ कर देखना भी काफ़ी नहीं है क्योंकि समाज और मामला करने वाले की स्थितियों का ध्यान रखना भी ज़रूरी है, क्योंकि क़र्ज़ लेनदेन में आपसी सहमति, आपसनी मुनाफ़ा, आपसी समान हित, सामाजिक उपयोगिता वग़ैरह भी शामिल है। इस तरह, किसी सामाजिक व आर्थिक प्रक्रिया की परिभाषा बताने के लिए और यह तय करने के लिए कि मामले में क्या नुक़सान और अन्याय निहित है जिसकी वजह से उसे मना किया गया है, एक सामाजिक व आर्थिक परिवेश ज़रूरी है। क्योंकि रिबा के सम्बंध में क़ुरआन में आयतें बहुत कम हैं और इससे पहले कि पैग़म्बर सल्ल० ख़ुद इस मामले की कोई व्याख्या करते या इस सम्बंध में सवालों के जवाब देते, दुनिया से चले गए। रिबा के सम्बंध में आख़री हज में आपने जो कुछ फ़रमाया वह इस्लाम पुर्व युग के अरब में प्रचलित रिबा (रिबाउल जाहिलिया) के बारे में था और इससे उस समय की ऐतिहासिक व सामाजिक परिस्थितियों में लेनदेन के तरीक़ों की निशानदेही होती है।

सामाजिक व कारोबारी लेनदेन में मनाही का कोई कारण (''इल्लत'') होता है जो स्पष्ट रूप से या अस्पष्ट रूप से मालूम होता है। रिबा के मामले में हमें कोई स्पष्ट सबब (इल्लत) मालूम नहीं होती। क़र्ज़ लेनदेन या और किसी तरह के अदल बदल में क्या चीज़ नुकसानदायक और अनुचित है इसे समझने में चूंकि ऐतिहासक और सामाजिक परिस्थितियों की भी भूमिका है इसलिए टाइम एण्ड स्पेस के फ़र्क़ के लिहाज़ से इसका क़ानूनी जवाब अलग अलग हो सकता है। लेनदेने के नए नए तरीक़े हमेशा सामने आ सकते हैं। ऐसा कोई ठोस और बेलचक सतही सा क़ानूनी ख़ाका नहीं बनाया जा सकता जिसमें व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियों को अनदेखा किया गया हो। लेनदेन यानी मामलों के सिलसिले में शरीअत का आम सिद्धांत यह है कि हर तरह का मामला तब तक जायज़ और सही है जब तक उसमें शरीअत के किसी हुक्म का उल्लंघन न हो रहा हो। शरीअत का बुनियादी और महत्वपूर्ण मक़सद ''ज़रर''(नुक़सान) और मुशक़्क़त या कठिनाई से बचाना है (देखें 5:6; 22:78, और देखें 2:185, 233, 286; 6:152; 7:24; 23:62; 65:7)। आधुनिक युग के कुछ फ़क़ीह ऐतिहासिक प्रगति और सामाजिक व आर्थिक फ़र्क़ और बदलावों की अनदेखी करते हुए इन्ट्रेस्ट की शब्दावली को समझने की तरफ़ गए हैं जो कि आधुनिक लेनदेन (जैसे बैंकिंग, इन्श्यूरेंस, मोर्टाज वग़ैरह) में इस्तेमाल होती है, जैसे कि यह ''रिबा'' का एकदम पर्यायवाची हो। उन आधुनिक परिस्थितियों को जिनमें बैंकिंग और इन्श्योरेंस आदि के मामले विक्सित हुए हैं जिससे वित्तीय मामले और वित्त निवेश की प्रक्रिया उत्पादन प्रक्रिया से (चाहे वह कृषि उत्पादन हो या उद्योगिक उत्पादन या कारोबार व अन्य उत्पादक गतिविधियां हों) अलग हो गयी है। इसके अलावा यह कि आधुनिक लेनदेन में टाइम फ़ेक्टर भी ज़रूरी हो गया है, क्योंकि ट्रांस्पोर्टेशन और कम्यूनिकेशन

के क्षेत्र में मूलचूल बदलावों का प्रभाव मनी सर्कुलेशन पर, नक़द रक़म के उपलब्ध होने पर, और नक़द रक़म के बहाव पर और नतीजे के रूप में क़र्ज़ की ज़रूरत पर पड़ा है।

इसी तरह ट्रांज़ेक्शन की .रतार की वजह से जो कि टेलीफ़ोन, मोबाइल फ़ोन, फ़ैक्स या कम्प्यूटर से हो सकता है, रिस्क फ़ैक्टर भी बढ़ गया है। सामयिक ग्लोबल दुनिया में जिसमें हम रह रहे हैं मास प्रोडक्शन और मास मार्कीटिंग (बहुत बड़ी मात्रा में पैदावार और बड़े पैमाने पर ख़रीदारी व बिक्री) की प्रक्रिया चल पड़ी है जिसके लिए अत्यधिक पूंजी की ज़रूरत होती है। किसी आस्ट्रेलयाई कम्पनी का कोई कारोबारी यूनिट मलेशिया या पाकिस्तान में हो सकता है और इसके लिए पूंजी का उपलब्ध होना अमरीका या यूरोप के बैंकों पर निर्भर हो सकता है। इस चीज़ की वजह से वित्तीय मामलों को देखने और वित्तीय सेवाएं उपलब्ध कराने वाली विशेष संस्थाओं की ज़रूरत बढ़ गयी है जो कि दीर्घकालिक या अल्पकालिक योजनाओं और कृषि व पैदावार की प्रक्रिया के और कारोबारी संस्थाओं के रिस्क से भिन्न है। इस तरह की वित्तीय संस्थाएं शेयर होल्डर्स को, डिप०ज़िटर्स को और क़र्ज़ लेने वालों को फ़ायदा पहुचाती हैं, और ये व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं होती हैं। इस तरह क़ानूनी सुरक्षात्मक उपाय एकाधिकार से और तरह तरह की धोखाधड़ी व शोषण से बचाते हैं, सैण्ट्रल (राष्ट्रीय) बैंक को वित्तीय संस्थाओं और गतिविधियों को नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके अलावा धन का आदान प्रदान सोने और चांदी के रूप में नहीं होता है जिसकी वजह से उसकी वेल्यू बनी नहीं रहती। करेंसी की क़ीमत में उतार चढ़ाव और चीज़ों की क़ीमतों में बढ़ोतरी से ख़रीदारी क्षमता पर असर पड़ता रहता है। आज के ज़माने में अर्थ व्यवस्था और वित्त प्रबंधन के क्षेत्र में उन तमाम बदलावों पर गहराई से ग़ौर करने की ज़रूरत है ताकि इन्ट्रेस्ट पर आधारित लेनदेन और इन्ट्रेस्ट की कारकर्दगी को ठीक से समझा जा सके और इस बात को कि क़ुरआन व सुन्नत के बयानों की रोशनी में इसकी क्या हैसियत है और "रिबा" से सम्बंधित ऐतिहासिक व सामाजिक परिस्थितियों से इसका क्या सम्बंध है। इसके अलावा यह कि सम्बंधित पक्षों की विशेष स्थिति और उनके बीच ट्रांज़ेक्शन के स्वरुप का भी अध्यन करना चाहिए। मुहम्मद असद ने ठीक लिखा है कि "हर आने वाली पीढ़ी को (मेरे विचार में हर मुस्लिम समाज को अपनी विशेष स्थिति के अनुसार) रिबा शब्द के नए मतलब और नए आयामों को निर्धारित करने की चुनौती का सामना करना पड़ता है।" आज के ज़माने में विभिन्न प्रकार के ज़रूरी ट्रांज़ेक्शन्स को इस लिहाज़ से समझने के लिए कि यह रिबा की श्रेणी में आते हैं या नहीं बहुत सी फ़िक़्ही कोशिशें की गयी हैं।

मिस्र के मशहूर फ़क़ीह और क़ाहिरा यूनिवर्सिटी में क०लेज अ०फ़ ल० के प्रोफ़ेसर आफ़ शरीअत अब्दुल वह्हाब ख़ल्लाफ़ (मृ० जनवरी 1956) ने अपनी किताब इल्म उसूलल फ़िक़्ह (1942) में हनफ़ी फ़िक़्ह वाले बाद के कुछ फ़क़ीहों का हवाला दिया है जिन्होंने ऐसे लोन लेने

की इजाज़त दी है जो अतरिक्त रक़म के साथ वापस किए जा सकते हैं अगर लेने वाला वास्तव में ज़रूरतमंद हो (पेज 210, 12वां एडिशन, कोयत 1978)। (यहां इस बात को सामने रखना चाहिए कि कोई ऐसी चीज़ जो साफ़ तौर से हराम की गयी हो, उसे भी शदीद ज़रूरत की हालत में ज़रूरत पूरी करने की हद तक इस्तेमाल करने की अल्लाह ने ज़रूरतमंद व्यक्ति को इजाज़त दी है देखें: 2:173; 5:3; 6:119,145; 16:115), और सामूहिक रूप से शदीद ज़रूरत की हालत में समाज को भी अल्लाह ने इसकी इजाज़त दी है (देखें ख़ल्लाफ की इल्म उसूलुल फ़िक़्ह, पेज 208-210; अलज्वाइनी, इमामुल हरमैन अब्दुल मलिक; ग़ैयासुल उमम, फ़व्वाद अब्दुलमुनइम, मुस्तफ़ा हिल्मी, क़ाहिरा, पेज 345)। 19वीं सदी से मुसलमानों को उन बैंकिंग और इन्श्योरेंस मामलों से लेनदेन करना पड़ रहा है जो यूरोपीय संस्थाएं चलाती हैं। मशहूर हनफ़ी फ़क़ीह मुहम्मद इब्ने आबिदीन (मृ० 1252 हिजरी, 1836 ईसवी) ने इन्श्योरेंस के मुद्दे पर विस्तार से चर्चा की है। मराकिश के मुहम्मद इब्नुल हसन अलहाजवी अलसअलबी नो जो मालिकी फ़िम्ह के फ़क़ीह हैं फ़िक़्ह इस्लामी के इतिहास पर एक शानदार किताब "अलफ़िक्रुस्सामी फ़ी तारीख़ुल फ़िक़्ह अलइस्लामी" लिखी है जिसमें उन्होंने इन्श्योरेंस एग्रीमेण्ट को स्वीकार्य माना है और उन तीन फ़क़ीहों की तर्कों को रद किया है जिन्होंने उसे वर्जित माना है (अहमद आशूर, अलफ़िक़्ह अलमुयस्सर, जिल्द 2, पेज 360, 5वां एडिशन, क़ाहिरा)।

मुहम्मद अलबही पूर्व कुलपति अलअज़हर यूनिवर्सिटी, मिस्र ने जिन्होंने दस साल पहले वफ़ात पाई इन्श्योरेंस को जायज़ माना है और इस विवेचना का अनुसरण किया है कि इन्श्योरेंस में दो अलग अलग ऑप्रेशन्स (कार्रवाइयां) होती हैं। पहली कार्रवाई इन्श्योर (आश्वस्त) की जाने वाली पार्टी और इन्श्योर (आश्वस्त) करने वाली पार्टी के बीच होती है, दूसरी कार्रवाई इन्श्योर करने वाली पार्टी की तरफ़ से निवेश की कार्रवाई है और यह पूरी तरह इन्श्योर करने वाले की ज़िम्मेदारी है। इन्श्योरेंस लेने वाले की कोई ज़िम्मेदारी इस मामले में नहीं होती कि इन्श्योर करने वाला पूंजी के निवेश का क्या तरीक़ा अपनाता है जो उसके पास मौजूद है और जिससे वह फ़ायदा उठाता है चाहे इसमें इन्श्योरेंस पैमेण्ट भी शामिल हो जो इन्श्योर की जाने पार्टी से मिलता है (अक़्द अलसमीन)। मुहम्मद अब्दुहू ने पोस्ट ऑफ़िस की तरफ़ से बचत पर दिए जाने वाले इन्ट्रेस्ट को जायज़ माना है और उनके इस विचार का शेख़ुल अज़हर महमूद शलतूत ने समर्थन किया है।

इस्लामी इंसाफ़ में हर उस व्यक्ति के जायज़ अधिकारों की हिफ़ाज़त की गयी जो क़ुरआन में ब्याज के हराम होने का हुक्म आने से पहले ब्याज ख़ोरी में लगा हुआ था। ऐसे व्यक्ति को कहा गया कि वह जो कुछ पहले ले चुका वह ले चुका क्योंकि शरीअत का उसूल यह है कि क़ानून की घोषणा होने के बाद ही क़ानून लागू होता है, उसे पहले बीत चुके समय से लागू करने का कोई औचित्य नहीं है:"जिसके पास अल्लाह की नसीहत पहुंची और वह (ब्याज

लेनेदेन) से बाज़ आ गया तो जो पहले हो चुका वह उसका और (कयामत में) उसका मामला अल्लाह के ज़िम्मे। और जो फिर लेने लगा तो ऐसे लोग जहन्नमी हैं कि हमेशा जहन्नम में (जलते) रहेंगे" (2:275), "जो पहले हो चुका वह अल्लाह ने मआफ़ कर दिया और जो फिर (ऐसा काम) करेगा तो अल्लाह उससे बदला लेंगे और अल्लाह पकड़ रखने वाले और बदला लेने वाले हैं" (5:95 और देखें 4:22,23; 8:38)। शरीअत का मक़सद अन्याय को ख़त्म करना है उस व्यक्ति को तबाह करना नहीं है जिसने अन्याय किया हो। अल्लाह की मंशा तो यह है कि "ज़्यादती करने वाले से लड़ो यहां तक कि वह अल्लाह के हुक्म की तरफ़ पलट आए तो फिर जब वह पलट आए तो दोनों पक्षों में समानता के आधार पर सुलह करा दो और इंसाफ़ से काम लो कि अल्लाह इंसाफ़ करने वालों को पसन्द करते हैं" (49:9)। अगर बीते दिनों में ग़लत काम करने वाले लोग आज भी ग़लत काम करते रहें तो इंसानों की हालत कभी बहतर नहीं बन सकती। महाजन जो क़र्ज़ की अदायगी में होने वाली हर देरी से फ़ायदा उठाता चला जाता है उसे क़ुरआन यह निर्देश देता है कि वह क़र्ज़दार की हालत का लिहाज़ करे, अगर उसे क़र्ज़ की अदायगी में देरी हो रही है तो उसे मोहलत दे:"और अगर क़र्ज़ लेने वाला तंग हाथ हो तो (उसे) वुसअत (सुविधा) मिलने तक मोहलत दो"। क़र्ज़ देने वाले को और यह निर्देश दिया गया कि वह इसाफ़ से आगे बढ़ कर अहसान का मामला करे, अगर क़र्ज़दार क़र्ज़ अदा करने की हालत में नहीं है तो उसे मआफ़ ही कर दे और यह कि "ऐसा करना तो तुम्हारे लिए ज़्यादा अच्छा है अगर तुम समझो" (2:280)। क़र्ज़ के बोझ तले दबे किसी इंसान का क़र्ज़ मआफ़ कर देने से आने वाले जीवन में अल्लाह की तरफ़ से इनाम मिलने के अलावा दुनियावी फ़ायदा यह है कि इससे उसकी ख़रीदारी क्षमता फिर से बहाल होगी जिससे उद्योग करने वाले, विक्रिय करने वाले और पूरे समाज को फ़ायदा होगा। इस्लामी शासन के ख़ज़ाने में ज़कात से आने वाली रक़ाम का भी एक हिस्सा क़र्ज़ के बोझ तले लोगों को क़र्ज़ से निकालने में ख़र्च किया जाता है (9:60)।

आख़री बात यह है कि जो लोग दिक़्क़त और कठिनाइयों से ग्रस्त लोगों का ख़ून निचोड़ते हैं और उनसे माल चूसते रहते हैं उनहें क़ुरआन यह कहता है कि वह इस बात को ध्यान में रखें कि यह जीवन तो आख़िरकार समाप्त हो जाएगा, और इंसान के लिए समझदारी की बात यही है कि वह आने वाले जीवन में अल्लाह के सामने जवाबदेही से डरता रहे, "जब हर व्यक्ति अपने कर्मों का बदला पूरा पूरा पाएगा और किसी का कुछ नुक़सान न होगा" (2:281)।

क़र्ज़ लेनदेने के समय गवाही का बन्दोबस्त

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِذَا تَدَايَنْتُمْ بِدَيْنٍ

ऐ मोमिनों! जब तुम उधार का मामला एक मुक़र्ररा मेआद के लिए करने लगो तो इसको लिख लिया करो

और तुम्हारे दरमियान लिखने वाला इन्साफ़ के साथ लिखे और लिखने वाला लिखने से इन्कार ना करे जिस तरह अल्लाह ने उसको लिखना सिखाया है उसको चाहिये कि लिख दिया करे। और वो शख़्स लिखवा दे जिसके ज़िम्मे वो हक़ वाजिब हो। और अल्लाह से डरता रहे जो उसका परवरदिगार है। और बताने में ज़र्रा बराबर भी कमी ना करे। फिर जिसके ज़िम्मे हक़ वाजिब है वो अगर ख़फ़ीफ़ुलअक़्ल या ज़ईफ़ुलबदन या ख़ुद लिखाने की क़ुदरत नहीं रखता तो उसका कारकून ठीक ठीक लिखा दे। और अपने ही मर्दों में से दो गवाह भी कर लिया करो। और अगर दो मर्द गवाह ना मिलें तो एक मर्द और दो औरतें काफ़ी हैं। ये गवाह वो हों जो तुम पसंद करते हो। ताकि उन दो औरतों में से कोई एक भूल जाए, तो उनमें से एक दूसरी को याद दिला दे। और गवाह भी इन्कार ना किया करें जब वो गवाह बनने के लिए बुलाये जाया करें। और तुम इसके लिखने से उकताया ना करो ख़्वाह छोटा हो या बड़ा हो। अल्लाह के नज़दीक ये लिख लेना इन्साफ़ का ज़्यादा क़ायम रखने वाला है और शहादत का ज़्यादा दुरूस्त रखने वाला है और ज़्यादा सज़ावार है इसका के तुम शुबह में ना पड़ो। मगर ये के कोई सौदा दस्तबदस्त हो। जिसको बाहम लेते देते हो तो फिर तुम पर कोई इल्ज़ाम नहीं अगर तुम उसको न लिखो। और जब तुम ख़रीदो फ़रोख़्त किया करो तो गवाह ज़रूर कर लिया करो। ना किसी लिखने वाले को तकलीफ़ दी जाए, और ना ही किसी गवाह को और अगर तुम ऐसा करोगे तो उसमें तुम को गुनाह होगा। और अल्लाह से डरते रहो। और अल्लाह तुम को यही तालीम देता है। और अल्लाह तो हर चीज़ को ख़ूब जानने वाला है। और अगर तुम सफ़र में हो और कोई कातिब ना मिले तो रहन की चीज़ें क़ब्ज़े में दे दो। अगर एक दूसरे का ऐतबार करता हो तो

اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى فَاكْتُبُوْهُ ؕ وَ لْيَكْتُبْ
بَّيْنَكُمْ كَاتِبٌۢ بِالْعَدْلِ ۪ وَ لَا يَاْبَ
كَاتِبٌ اَنْ يَّكْتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ
فَلْيَكْتُبْ ۚ وَ لْيُمْلِلِ الَّذِىْ عَلَيْهِ الْحَقُّ وَ
لْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ وَ لَا يَبْخَسْ مِنْهُ شَيْـًٔا ؕ
فَاِنْ كَانَ الَّذِىْ عَلَيْهِ الْحَقُّ سَفِيْهًا اَوْ
ضَعِيْفًا اَوْ لَا يَسْتَطِيْعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ
فَلْيُمْلِلْ وَلِيُّهٗ بِالْعَدْلِ ؕ وَ اسْتَشْهِدُوْا
شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْ ۚ فَاِنْ لَّمْ يَكُوْنَا
رَجُلَيْنِ فَرَجُلٌ وَّ امْرَاَتٰنِ مِمَّنْ تَرْضَوْنَ
مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنْ تَضِلَّ اِحْدٰىهُمَا فَتُذَكِّرَ
اِحْدٰىهُمَا الْاُخْرٰى ؕ وَ لَا يَاْبَ الشُّهَدَآءُ
اِذَا مَا دُعُوْا ؕ وَ لَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ
صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا اِلٰٓى اَجَلِهٖ ؕ ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ
عِنْدَ اللّٰهِ وَ اَقْوَمُ لِلشَّهَادَةِ وَ اَدْنٰٓى اَلَّا
تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً
تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ
اَلَّا تَكْتُبُوْهَا ؕ وَ اَشْهِدُوْٓا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۪ وَ
لَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّ لَا شَهِيْدٌ ؕ۬ وَ اِنْ تَفْعَلُوْا
فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ؕ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ وَ
يُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ وَ اللّٰهُ بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِيْمٌ ﴿۲۸۲﴾
وَ اِنْ كُنْتُمْ عَلٰى سَفَرٍ وَّ لَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا
فَرِهٰنٌ مَّقْبُوْضَةٌ ؕ فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ
بَعْضًا فَلْيُؤَدِّ الَّذِى اؤْتُمِنَ اَمَانَتَهٗ وَ
لْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ وَ لَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ وَ
مَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗۤ اٰثِمٌ قَلْبُهٗ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا

تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ﴿٢٨٣﴾ لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَ مَا
فِى الْاَرْضِ ؕ وَ اِنْ تُبْدُوْا مَا فِىْٓ اَنْفُسِكُمْ اَوْ
تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ؕ فَيَغْفِرُ لِمَنْ
يَّشَآءُ وَ يُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ اللّٰهُ عَلٰى
كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٢٨٤﴾

जिसका ऐतबार कर लिया है उसको चाहिये के दूसरे का हक़ पूरा पूरा अदा कर दे और अल्लाह से डरता रहे जो उसका परवरदिगार है। और शहादत को मत छुपया करो जो शहादत को छुपाएगा उसका दिल गुनहगार होगा। और अल्लाह तुम्हारे सारे आमाल को खूब जानता ही है। अल्लाह मालिक है उन सब चीज़ों का जो आसमानों में हैं और जो ज़मीन में हैं और जो बातें तुम्हारे दिलों में हैं चाहे तुम उनको ज़ाहिर करो चाहे पोशीदा रखो। अल्लाह तुम से हिसाब लेगा फिर सज़ा देगा। और अल्लाह तो हर शै पर पूरी क़ुदरत रखता है। (2:282-284)

चूँकि क़ुरआन रिबा (ब्याज) को हराम क़रार देता है और ब्याज आधारित लेनदेन को सख़्ती से मना करता है और उन लोगों को जो ब्याज से आमदनी हासिल करते हैं ''अल्लाह और रसूल से जंग पर उतारु'' बताता है इसलिए वह क़र्ज़ लेनदेन का एक वैकल्पिक तरीक़ा सुझाता है जिसमें ज़िम्मेदारी से मुकरने के ख़तरे को दूर करने के लिए क़ानूनी और नैतिक बन्दोबस्त किए गए हैं। पहला रक्षात्मक बन्दोबस्त यह है कि क़र्ज़ लेने और देने को लिखित में किया जाए और उसकी वापसी की तारीख़ लिखी जाए, और क़र्ज़ लेने और देने वाले के बारे में दूसरी ज़रूरी मालूमात लिखी जाएं (जैसे नाम, पता, क़र्ज़ की वापसी की जगह वग़ैरह)। दूसरा रक्षात्मक बन्दोबस्त यह है कि क़र्ज़ लेनदेन को लिखने का काम प्राथमिकता के लिहाज़ से कोई तीसरा व्यक्ति या पक्ष करेगा ताकि निष्पक्षता और भरोसा बना रहे, ''लिखने वाला तुम (किसी का नुक़सान न करे बल्कि) इंसाफ़ से लिखे और लिखने वाला जैसा उसे अल्लाह ने सिखाया है लिखने से इंकार भी न करे।'' यह बात इस काम को अंजाम देने के लिए किसी सार्वजनिक पद (ऑफ़िस) की स्थापना के लिए भी एक साफ़ इशारा माना जा सकता है ताकि यह केवल एक स्वयंसेवी काम ही न रह जाए। तीसरा बन्दोबस्त यह है कि क़र्ज़ लेने वाला ख़ुद लिखवाएगा कि लिखने वाले को क्या लिखना है, ताकि लिखी हुई तहरीर एक बयान के रूप में भी लिखित में लाई गयी हो। चौथे बन्दोबस्त के रूप में दो गवाहों की गवाही को लाज़िम किया गया है जो इस बात की गवाह हों के लेनदेन उनकी मौजूदगी में सही तरीक़े से हुआ है और इसमें दोनों की आज़ाद रज़ामन्दी शामिल है किसी पर कोई ज़ोरज़बरदस्ती नहीं है। गवाह की यह ज़िम्मेदारी है कि जब ज़रूरत हो तो वह गवाही देने के लिए आए और पूरी सच्चाई को बताए और किसी बात को न छुपाए। इसी के साथ गवाह और लिखने वाले कातिब को पूरी सुरक्षा दी जाए और इस बात को सुनिश्चित किया जाए किसी हक़ बात को न कहने या बदलने

के लिए उन पर कोई दबाव न हो या उन्हें कोई नुक़सान न पहुंचे। यह सभी ज़रूरी बन्दोबस्त क़र्ज़ लेने और देने के मामले में कोई विवाद पैदा होने की सम्भावना को कम से कम करते हैः"यह बात अल्लाह के नज़दी बहुत ही इंसाफ़ वाली है। और गवाही के लिए भी यह बहुत दुरूस्त तरीक़ा है। इससे तुम्हें किसी तरह का शक व शुबा नहीं पड़ेगा।" यह पूरी कार्यशैली पहले पहल एक निरक्षर और अशिक्षित समाज को सिखाई गयी थी और ईमान वालों को इस तरीक़े पर क़र्ज़ लेने व देने की शिक्षा दी गयी थी चाहे क़र्ज़ छोटा हो या बड़ा।

इन सभी क़ानूनी प्रावधानों के साथ साथ सम्बंधित पक्ष और पूरा समाज जो इन नियमों की पाबन्दी करे उसे इन प्रावधानों को अपनाने की सीख यह कह कर दी गयी कि "जो लोग ईमान रखते है" और इस तरह ख़ुद उनके ईमान को उनके कारोबारी मामलों का निगरां बना दिया गया। लिखने वाले को यह निर्देश दिया गया कि वह दस्तावेज़ न्यायपूर्ण तरीक़े से लिखे और जो कुछ उसने सीखा है और कर सकता है उसे करने से कतराए नहीं, यह व्यक्तियों को उनकी सामाजिक ज़िम्मेदारी की साफ़ याद दिहानी है कि अपनी योग्यताओं के अनुसार दूसरों की मदद करें, चाहे वह सरकारी अधिकारी हों, कोई क्लर्क हों, या स्वेच्छा से अपनी सेवाएं देने वाले हों। क़र्ज़दार जिसे दस्तावेज़ का मज़मून लिखवाना होता है उसे चाहिए कि अल्लाह तआला से, जो कि उसके मालिक है, डरे और क़र्ज़ की रक़म में से कुछ कम न लिखवाए।

क़र्ज़ लेनदेन के क़ुरआनी निर्देश को पूरा करना कुछ मामलों में मुश्किल होता है, जिसके लिए वैकल्पिक या पूरक बन्दोबस्त क़ुरआन ने उपलब्ध कराए हैः"और अगर क़र्ज़ लेने वाला बे अक़ल या कमज़ोर हो या मज़मून लिखवाने की योग्यता न रखता हो तो जो उसका संरक्षक हो वह इंसाफ़ के साथ मज़मून लिखवाए"। जहां तक एक मर्द गवाह की कमी पूरी करने के लिए दो महिला गवाहों की मांग है तो इसका कारण क़ुरआन में यह बताया गया है कि "अगर उनमें से एक भूल जाएगी तो दूसरी उसे याद दिला दिला देगी"। उस ज़मान में अरब की औरतें कारोबारी मामलों की और उनके हिसाब किताब तथा उनमें इस्तेमाल होने वाली भाषा की ज़्यादा समझ नहीं रखती थीं और इसलिए क़र्ज़दार के द्वारा लिखवाई जाने वाली शर्तों और नियमों और कातिब के द्वारा लिखी जाने वाली तहरीर को नहीं समझ सकती थीं। जैसा कि फ़क़ीहों ने इस बात को रेखांकित किया है, एक मर्द गवाह की जगह दो महिला गवाहों की ज़रूरत क़र्ज़ लेनदेन के इस मामले तक ही सीमित है (जैसे इब्नुल क़य्यिम, अलतुरूक़ुल हाकिमिया)। कुछ फ़क़ीहों जैसे अलतहावुर, तिबरी, इब्ने हज़म वग़ैरह ने औरत को जज बनने की इजाज़त दी है अगर वह इस पद के लिए अनिवार्य योग्यताओं को पूरा करती हो और इसके लिए निर्धारित नियमों पर पूरा उतरती हो। दूसरी तरफ़ हनफ़ी फ़क़ीहों ने लिखा है कि औरत केवल सिविल मामलों की जज बन सकती है क्योंकि क्रिमिनल मामले औरत के स्वभाव के लिहाज़ से उसके लिए असहनीय हैं। तो एक स्वभाविक सवाल यह है कि अगर कोई औरत

जज बन सकती है तो उसे आधी गवाही के लायक़ कैसे माना जा सकता है। यह एक फ़िक़्ही सिद्धांत है कि कोई क़ानूनी नियम उसकी इल्लत (कारण) होने या न होने की स्थिति में लागू होता या विलम्बित रहता है। भूल हो जाने पर याद दिला देने की इल्लत जो कि क़ुरआन ने बयान की है शिक्षित महिलाओं या उन महिलाओं के मामले में नहीं मौजूद नहीं होती जो कारोबार का तजुरबा रखती हों या वकील हों या अकाउण्टेण्ट वग़ैरह हों। ऐसे तमाम मामलों में औरत क्रेडिट या लोन समझौतों गवाह बनने के लिए मर्द के बराबर है।

कारोबारी मामलों में औपचारिक ख़ानापूर्ति कम से कम होना चाहिए क्यूंकि उन्हें जल्दी जल्दी निपटाने की ज़रूरत होती है और यह पक्षों के बीच भरोसे और विश्वास पर होते हैं, चुनांचि रिक०र्ड और डाक्यूमेन्टेशन का बोझ हल्के से हल्का होना चाहिए:''हां अगर सोदा हाथों हाथ हो जो तुम आपस में लेते देते हो तो अगर (ऐसे मामले की) दस्तावेज़ न लिखो तो तुम पर कुछ गुनाह नहीं।और जब ख़रीद फ़रोख़्त किया करो तो भी गवाह कर लिया करो''। इस तरह क़ुरआनी क़ानून आधुनिक क़ानूनों की तरह गवाहों की ज़रूरत के मामले में सामाजिक और कारोबारी ज़िम्मेदारियों के बीच फ़र्क़ को सामने रखते हैं। सफ़र की परिस्थितियों का भी इसमें ध्यान रखा गया है क्योंकि सफ़र में कातिब और गवाहों का मिलना मुश्किल हो सकता है। ऐसी स्थिति में क़र्ज़दार को चाहिए कि क़र्ज़ देने वाले के पास ज़मानत के रूप में कोई चीज़ रहन रखे। अलबत्ता क़ानून में भरोसे का महत्व है और ख़ास तौर से सफ़र जैसी हालत में, और क़र्ज़ देने वाले ने जो भरोसा और विश्वास किया है उसे पूरा करना क़र्ज़दार की ज़िम्मेदारी है। गवाह का यह हक़ कि वह हर तरह के दबाव से मुक्त हो और हर तरह के ख़तरे से उसे सुरक्षा प्राप्त हो केवल क़र्ज़ के लेनदेन तक ही सीमित नहीं है। यह वास्तव में इंसानी अधिकार और ज़िम्मेदारियां हैं जो व्यक्तियों और समाज को पूरी करना चाहिएं और समाज की तरफ से इसको सुनिश्चत करना सरकार का काम है। यह हर व्यक्ति और वर्ग का अधिकार व ज़िम्मेदारी है कि अपनी राय आज़ादीपूर्वक सार्वजनिक रूप से व्यक्त करे और समाज व सरकार की ज़िम्मेदारी यह है कि वह तमाम लोगों के लिए बग़ैर किसी ज़ाहिरी या नैतिक दबाव के अभिव्यक्ति के अधिकार की रक्षा करे। ऊपर दर्ज की गयी कई आयतों में दो आयतें (2:282; 2:283) सभी इंसानी सम्बंधों के लिए और क़ानूनी प्रक्रिया के लिए एक लीगल और मोरल फ्रेमवर्क उपलब्ध कराती हैं। यह बात उल्लेखनीय है कि ऐसे बहतरीन और सावधानीपूर्ण क़ानूनी नियम पूरे क़ुरआन की ख़ास शैली के साथ पेश किए गए हैं। क़र्ज़ के लेनदेन के इन क़ानूनी और नैतिक शर्तों का ज़िक्र करने के बाद (जो कि सामूहिक रूप सिविल और कमर्शियल ट्रांज़ेक्शन के लिए और व्यापक दायरे में अधिकारों व ज़िम्मेदारियों के मार्ग दिखाते हैं), क़ुरआन मोमिनों को यह याद दिलाता है कि जो लोग अल्लाह और आख़िरत के दिन का डर रखते हैं उनका ईमान उन्हें इन बातों पर अमल के लिए तैयार करता है और इस ईमानी कैफ़ियत का कोई

मुक़ाबला किसी इंसानी प्राधिकार और प्रशासन से नहीं किया जा सकता। ईमान वालों को यह बात हमेशा अपने दिल व दिमाग़ में रखना चाहिए कि तुम अपने दिलों की बात को ज़ाहिर करोगे या छुपाओगे तो अल्लाह तुम से उसका हिसाब लेगा। फिर वह जिसे चाहे मआफ़ करे और जिसे चाहे अज़ाब दे और अल्लाह हर चीज़ पर नियंत्रण रखते हैं (2:284; और देखें 2:33,77; 3:29; 5:99; 11:5; 16:19,23; 33:54; 60:1 67:13 आदि)।

समझौतों को पूरा करना

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ ۬ؕ اُحِلَّتْ لَكُمْ بَهِيْمَةُ الْاَنْعَامِ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ غَيْرَ مُحِلِّى الصَّيْدِ وَ اَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يَحْكُمُ مَا يُرِيْدُ ۝١

मोमिनों! तुम अहेदों को पूरा किया करो, तुम्हारे लिये तमाम चौपाए मवेशी हलाल किये गए हैं मगर जिनका ज़िक्र आगे आता है लेकिन शिकार को हालते एहराम में हलाल मत समझना, बिला शुबह अल्लाह जो चाहता है हुक्म कर देता है। (5:1)

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَ هَاجَرُوْا وَ جٰهَدُوْا بِاَمْوَالِهِمْ وَ اَنْفُسِهِمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَ الَّذِيْنَ اٰوَوْا وَّ نَصَرُوْٓا اُولٰٓئِكَ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ؕ وَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَلَمْ يُهَاجِرُوْا مَا لَكُمْ مِّنْ وَّلَايَتِهِمْ مِّنْ شَيْءٍ حَتّٰى يُهَاجِرُوْا ۚ وَاِنِ اسْتَنْصَرُوْكُمْ فِي الدِّيْنِ فَعَلَيْكُمُ النَّصْرُ اِلَّا عَلٰى قَوْمٍۢ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ ؕ وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝٧٢

बेशक जो लोग ईमान लाये, और अपने घरों को छोड़ा, और अल्लाह की राह में मालो जान से लड़े, और जिन लोगों ने रहने को जगह दी, और मदद की, ये लोग आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं, और जो ईमान तो ले आये, लेकिन हिज्रत नहीं की तो जब तक वो हिजरत ना करें तो तुम्हारा उनसे विरासत का कोई ताल्लुक़ नहीं और अगर वो दीन में तुमसे मदद चाहें तो ज़रूर मदद करो, मगर इस क़ौम के मुक़ाबले में नहीं के तुम में और उनके दरमियान कोई सुलह का मुआहदा हो, और अल्लाह तुम्हारे सब कामों को देखता है। (8:72)

وَ اَذَانٌ مِّنَ اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖٓ اِلَى النَّاسِ يَوْمَ الْحَجِّ الْاَكْبَرِ اَنَّ اللّٰهَ بَرِيْٓءٌ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ ۬ۙ وَ رَسُوْلُهٗ ؕ فَاِنْ تُبْتُمْ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَ اِنْ تَوَلَّيْتُمْ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ

और अल्लाह व रसूल की तरफ़ से बड़े हज की तारीख़ों मे आम लोगों के सामने ये एलान किया जाता है के अल्लाह और उसके रसूल मुशरिक़ीन से दस्तबर्दार हैं, पस अगर तुम कुफ़्र से तौबा कर लो तो वो तुम्हारे लिये बेहतर है, अगर तुमने (इस्लाम से) एराज़ किया तो ये

غَيْرُ مُعْجِزِي اللّٰهِ ۗ وَ بَشِّرِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا
بِعَذَابٍ اَلِيْمٍ ۙ﴿۳﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ عٰهَدْتُّمْ
مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ ثُمَّ لَمْ يَنْقُصُوْكُمْ شَيْـًٔا وَّ
لَمْ يُظَاهِرُوْا عَلَيْكُمْ اَحَدًا فَاَتِمُّوْۤا اِلَيْهِمْ
عَهْدَهُمْ اِلٰى مُدَّتِهِمْ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ
الْمُتَّقِيْنَ ﴿۴﴾

समझ लो के तुम अल्लाह को आजिज़ नहीं कर सकते हो, और काफ़ीन को दर्दनाक अज़ाब की ख़बर दे दो। हां मगर वो मुशरिक़ीन इससे मुसतसना हैं जिनसे तुम ने अहद कर रखा है, फ़िर उन्होंने तुम्हारे साथ ज़रा भी कमी नहीं की, और ना तुम्हारे मुक़ाबले मं किसी की मदद की, सा उनके मुआहेदे को उनकी मुद्द तक पूरा करो बेशक अल्लाह बदअहदी से परहेज़ करने वालों को पसंद फ़रमाता है। (9:3-4)

وَ اِنْ اَحَدٌ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ اسْتَجَارَكَ
فَاَجِرْهُ حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ اَبْلِغْهُ
مَاْمَنَهٗ ۗ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَوْمٌ لَّا يَعْلَمُوْنَ ﴿۶﴾
كَيْفَ يَكُوْنُ لِلْمُشْرِكِيْنَ عَهْدٌ عِنْدَ اللّٰهِ
وَ عِنْدَ رَسُوْلِهٖۤ اِلَّا الَّذِيْنَ عٰهَدْتُّمْ عِنْدَ
الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۚ فَمَا اسْتَقَامُوْا لَكُمْ
فَاسْتَقِيْمُوْا لَهُمْ ۗ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ
الْمُتَّقِيْنَ ﴿۷﴾ كَيْفَ وَ اِنْ يَّظْهَرُوْا عَلَيْكُمْ لَا
يَرْقُبُوْا فِيْكُمْ اِلًّا وَّ لَا ذِمَّةً ۗ
يُرْضُوْنَكُمْ بِاَفْوَاهِهِمْ وَ تَاْبٰى قُلُوْبُهُمْ ۚ
وَ اَكْثَرُهُمْ فٰسِقُوْنَ ۚ﴿۸﴾

और अगर कोई मुशरिक़ आप से पनाह चाहे तो आप उसको पनाह दे दीजिये यहां तक के वो कलामे इलाही सुन ले, फ़िर उसको अमन की जगह पहुंचा दीजिये, ये इसलिये है के वो लोग इल्म नहीं रखते। अल्लाह और उसके रसूल के नज़दीक मुशरिक़ीन का अहद कैसे क़ायम रह सकता है मगर जिन लोगों से तुमने अहद लिया है, मस्जिद हराम के नज़दीक, तो जब तक वो तुम से सीधे रहें तुम उनसे सीधे रहो, बेशक अल्लाह डरने वालों को अज़ीज़ रखता हैं। क्योंकर अहद यिका जाए उनसे जो अगर तुम पर ग़ल्बा पा लें तो ना वो क़राबत का लिहाज़ करते हैं और ना किसी अहद का, मुंह से तो तुम को ख़ुश करते हैं, लेकिन दिल से उन बातों को क़बूल नहीं करते और अक्सर उनमें नाफ़रमान हैं। (9:6-8)

وَ اَوْفُوْا بِعَهْدِ اللّٰهِ اِذَا عٰهَدْتُّمْ وَ لَا
تَنْقُضُوا الْاَيْمَانَ بَعْدَ تَوْكِيْدِهَا وَ قَدْ
جَعَلْتُمُ اللّٰهَ عَلَيْكُمْ كَفِيْلًا ۗ اِنَّ اللّٰهَ
يَعْلَمُ مَا تَفْعَلُوْنَ ﴿۹۱﴾ وَ لَا تَكُوْنُوْا كَالَّتِيْ
نَقَضَتْ غَزْلَهَا مِنْۢ بَعْدِ قُوَّةٍ اَنْكَاثًا ۗ
تَتَّخِذُوْنَ اَيْمَانَكُمْ دَخَلًۢا بَيْنَكُمْ اَنْ

और अल्लाह के अहद को पूरा करो जब तुम उसको अपने ज़िम्मे लो, और क़समों को मत तोड़ा करो उनके मुसतेहकम करने के बाद और तुम अल्लाह को अपना ज़ामिन बना चुके हो, बिला शुबह अल्लाह ख़ूब जानता है जो तुम करते हो। और तुम उस औरत की मानिंद ना बनो जो मेहनत से सूत कातती है, फ़िर उसको तोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालती है, के तुम अपनी क़समों को

تَكُوْنَ اُمَّةٌ هِيَ اَرْبٰى مِنْ اُمَّةٍ ؕ اِنَّمَا
يَبْلُوْكُمُ اللّٰهُ بِهٖ ؕ وَ لَيُبَيِّنَنَّ لَكُمْ يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ مَا كُنْتُمْ فِيْهِ تَخْتَلِفُوْنَ ﴿۹۲﴾ وَ لَوْ
شَآءَ اللّٰهُ لَجَعَلَكُمْ اُمَّةً وَّاحِدَةً وَّ لٰكِنْ
يُّضِلُّ مَنْ يَّشَآءُ وَ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَ
لَتُسْـَٔلُنَّ عَمَّا كُنْتُمْ تَعْمَلُوْنَ ﴿۹۳﴾ وَ لَا
تَتَّخِذُوْۤا اَيْمَانَكُمْ دَخَلًۢا بَيْنَكُمْ فَتَزِلَّ
قَدَمٌۢ بَعْدَ ثُبُوْتِهَا وَ تَذُوْقُوا السُّوْٓءَ بِمَا
صَدَدْتُّمْ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ وَ لَكُمْ عَذَابٌ
عَظِيْمٌ ﴿۹۴﴾ وَ لَا تَشْتَرُوْا بِعَهْدِ اللّٰهِ ثَمَنًا
قَلِيْلًا ؕ اِنَّمَا عِنْدَ اللّٰهِ هُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ
كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿۹۵﴾ مَا عِنْدَكُمْ يَنْفَدُ وَ مَا
عِنْدَ اللّٰهِ بَاقٍ ؕ وَ لَنَجْزِيَنَّ الَّذِيْنَ
صَبَرُوْۤا اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ مَا كَانُوْا
يَعْمَلُوْنَ ﴿۹۶﴾ مَنْ عَمِلَ صَالِحًا مِّنْ ذَكَرٍ اَوْ
اُنْثٰى وَ هُوَ مُؤْمِنٌ فَلَنُحْيِيَنَّهٗ حَيٰوةً
طَيِّبَةً ۚ وَ لَنَجْزِيَنَّهُمْ اَجْرَهُمْ بِاَحْسَنِ
مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۹۷﴾

आपस में फ़साद का ज़रिया बनाने लगो सिर्फ़ इसलिये के एक गिरोह से .ज्यादा ग़ालिब रहे, बात ये है के अल्लाह उससे तुमको आज़माता है, और जिन बातों में तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे उनको इज़हार क़यामत के रोज़ तुम्हारे सामने कर दिया जायेगा। और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सबको एक ही जमात बना देता, लेकिन वही जिसे चाहता है गुमराह करता है और जिसे चाहता है उसको हिदायत करता है, और तुम से ज़रूर पूछा जाएगा जो तुम दुनिया में करते थे। और तुम अपनी क़समों को आपस में फ़साद का ज़रिया ना बनाओ के क़दम जम जाने के बाद लड़खड़ा जायें, फ़िर तुम चखो अज़ाब इस बात पर के तुम ने लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोका था, और तुम्हारे लिये बड़ा अज़ाब है। और ना लो अल्लाह के अहद पर मुआवज़ा थोड़ा, अल्लाह के पास जो कुछ है वो तुम्हारे लिये बहुत बेहतर है, अगर तुम जानते हो। जो तुम्हारे पास है वो .ख़त्म हो जायेगा, और जो अल्लाह के पास है वो बाक़ी है, और जो सब्र करते रहे उनके अच्छे कामों का बदला ज़रूर हम देंगे। जो नेक काम करेगा मर्द (1) हो या औरत (2), बशर्तयेके मोमिन (3), हो तो हम उसको अच्छी ज़िन्दगी देंगे, और उनके अच्छे आमाल का उनको सिला देंगे। (16:91-97)

وَ لَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ
اَحْسَنُ حَتّٰى يَبْلُغَ اَشُدَّهٗ ۪ وَ اَوْفُوْا
بِالْعَهْدِ ۚ اِنَّ الْعَهْدَ كَانَ مَسْـُٔوْلًا ﴿۳۴﴾

और तुम यतीम के माल के क़रीब भी ना जाना, मगर अहसन तरीक़ से यहां तक (के) वो जवान हो, और अहेद को पूरा किया करो, बेशक अहद के बारे में पूछा जाएगा। (17:34)

وَ الَّذِيْنَ هُمْ لِاَمٰنٰتِهِمْ وَ عَهْدِهِمْ رٰعُوْنَ ﴿۸﴾

और जो अपनी अमानतों और इक़रार का लिहाज़ करने वाले हैं। (23:8)

(और देखें 70:32)

अरबी का शब्द ''अक़्द'' जिसका बहुवचन ''उक़ूद'' है और जिसको पूरा करने का आदेश क़ुरआन ने दिया है (5:1) उसमें दो या दो से ज़्यादा पक्षों के बीच होने वाले समझौते और इक़रारनामे या वायदे शामिल हैं और किसी व्यक्ति का ख़ुद अपने आप से कोई प्रतिज्ञा करना या क़सम खाना भी शामिल है। यह एक व्यापक शब्द है और इसमें अल्लाह से किया हुआ वायदा भी शामिल है (2:27,40; 3:76-77; 9:75; 13:20,25 16:95; 33:15), तथा राष्ट्रों और देशों के बीच होने वाले समझौते भी शामिल हैं। इस तरह यह आयत प्राइवेट लि० के विभिन्न मैदानों ख़ास तौर से उसकी सिविल व कमर्शियल ब्रांचों पर भी लागू होते हैं, जैसे कर्मचारी व मालिक के बीच सम्बंधों और संवैधानिक, प्रशासनिक, वित्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय क़ानूनों के विभिन्न मैदान। वो सभी समझौते और सन्धियां जिनसे मुसलमान बन्धे हुए हों क़ुरआन में बयान हुए हैं और उन्हें 'अल्लाह से किए हुए अहद' कहा गया है (6:152; 16:91) क्यूंकि वो अल्लाह के नाम पर या अल्लाह को गवाह बना कर किए जाते हैं और ये उन लोगों की प्रतिज्ञाएं हैं जिन्होंने ख़ुद को अल्लाह की रज़ा और हिदायत के आगे झुका दिया है। उन लोगों को यह निर्देश दिया गया है कि वो अल्लाह से डरते रहें जो उन्हें देख रहे हैं और हर चीज़ की पूरी जानकारी रखते हैं, और जो व्यक्ति को उसके कामों के लिए जवाबदेह बनाते हैं। सभी व्यक्ति अल्लाह की तरफ़ पलाटाए जाएंगे और अल्लाह तआला आख़िरत में उनका फ़ैसला करेंगे। अतःवो सन्धियां और प्रतिज्ञाएं भी जो दुशमनों से की जाएं वो भी पूरी की जाएंगी। इसके अलावा मुसलमानों से कहा गया है कि कोई दुशमन भी अगर सुरक्षा की गुहार करे (आज की शब्दावली में शरण मांगे) तो उसे भी सुरक्षा और शरण दें (9:6), और जब वह जाना चाहे तो मुसलमानों को चाहिए कि अपने ठिकाने तक सुरक्षित तरीक़े से उसके पहुंचने को सुनिश्चित करें, चाहे वह बाद में फिर दुशमनी पर उतर आए।

'अक़्द' शब्द के इसी व्यापक अर्थ से 'ज़िम्मा' या 'अहलुलज़िम्मा (यानी ज़िम्मी) की शब्दावली बनी जो इस्लामी राज्य के ग़ैर मुस्लिम निवासियों या वहां अस्थाई रूप से रहने वाले ग़ैर मुस्लिमों को विशेष सुरक्षा देने के लिए इस्तेमाल होती थी। यह इस्लामी शासन और उसके शासकों की तरफ़ से सुरक्षा और न्याय की एक प्रतिज्ञा जैसी बात थी। इस्लाम की शुरुआती प्रगति के युग में, जब मुस्लिम सेनाएं रणनीति के तहत किसी क्षेत्र से निकलने पर मजबूर हुईं तो उन्होंने ग़ैर मुस्लिम नागरिकों को इसकी ख़बर दी कि वो अब उनकी सुरक्षा और बचाव की ज़िम्मेदारी पूरी करने की स्थिति में नहीं हैं (बिलाज़री, फ़ुतूहुल बुलदान, क़ाहिरा, 1959, पेज 143 (सीरिया के हमस क्षेत्र से सम्बंधित एक रिपोर्ट)। मशहूर मालिकी फ़क़ीह अलकरिफ़ी (मृत्यु 1285) ने लिखा है कि ''कोई भी मुस्लिम व्यक्ति, समूह या शासक जो इस्लामी शासन में रहने वाले किसी भी ग़ैर मुस्लिम के साथ ज़्यादती करे वह वास्तव में ज़िम्मा लेने के वचन

को तोड़ने का दोषी होता है, जो कि हर मुसलमान पर वाजिब है"। अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून के मामले में, मध्य ऐशिया के समरक़न्द शहर के लोगों ने एक बार ख़लीफ़ा उम्र बिन अब्दुल अज़ीज़ (717-720) से शिकायत की कि कमॉण्डर क़ुतैबा बिन मुस्लिम ने वचन का उल्लंघन करते हुए शहर मे हस्तक्षेप किया है और बहुत से मुसलमानों को यहां बसा दिया है। ख़लीफ़ा ने यह मामला क़ाज़ी के सुपुर्द कर दिया जिन्होंने फ़ैसला सुनाया कि मुसलमान शहर से निकल जाएं (बिलाज़री, फ़ुतूलबुलदान, पेज 411)।

यह अल्लाह पर ईमान और ईमान की पाबन्दी का असर है जो किसी क़ानूनी ज़िम्मेदारी के अहसास को कई गुणा बढ़ा देता है। अल्लाह का तक़वा और अल्लाह के सामने जवाबदेही का अहसास इस दुनिया के हर सम्भव भौतिक लाभ को अल्लाह के हुक्म और इंसाफ़ के आगे छोड़ देने को तैयार करता है। इसकी वजह से शक्तिशाली पक्ष चाहे वो व्यक्ति हों या राज्य के शासक हों या पूरा देश हो, अपनी ताक़त से कहीं ज़्यादा ताक़त रखने वाली हस्ती का और एक परम न्याय करने वाले की तरफ़ से मिलने वाले बदले या सज़ा का अहसास रखता है और वह इस दुनिया के किसी अस्थाई फ़ायदे को त्याग देने के लिए तैयार हो जाता है:"बात यह है कि अल्लाह तुम्हें इससे परखते है और जिन बातों में तुम मतभेद करते हो क़ियामत के दिन उसकी हक़ीक़त तुम पर खोल देंगे। अगर अल्लाह चाहते तो तुम (सब) को एक ही जमात बन देते लेकिन वह जिसे चाहते हैं गुमराह करते हैं और जिसे चाहते हैं हिदायत देते हैं और जो अमल तुम करते हो (उस दिन) उनके बारे में तुम से ज़रूर पूछा जाएगा। और अपनी क़समों को आपस में इस बात का ज़रिया न बनाओ कि (लोगों के) क़दम जम चुकने के बाद लड़खड़ा जाएं और इस वजह से कि तुम ने लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोका तुम को सज़ा का मज़ा चखना पड़े और बहुत सख़्त अज़ाब मिले। और अल्लाह से तुम ने जो प्रतिज्ञा की है (उसको मत बेचो और) उसके बदले थोड़ा सी क़ीमत न लो (क्योंकि प्रतिज्ञा को पूरा करने का) जो (बदला) अल्लाह के यहां निश्चित है वह अगर समझो तो तुम्हारे लिए बहतर है। जो कुछ तुम्हारे पास है वह ख़त्म हो जाता है और जो अल्लाह के पास है वह बाक़ी रहता है (कभी ख़त्म नहीं होगा) और जिन लोगों ने सब्र किया हम उनको उनके आमाल का बहुत ही अच्छा बदला देंगे। जो व्यक्ति नेक अमल करेगा, मर्द हो या औरत और वह मोमिन भी होगा तो हम उसको (दुनिया में) पाक (और आराम की) जीवन से ज़िन्दा रखेंगे और (आख़िरत में) उनके आमाल का बहुत ही अच्छा बदला देंगे" (16:92-97)।

धोखा धड़ी की मनाही

وَ لَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِىْ هِىَ

(6) और यतीम के माल के पास भी ना जाया करो मगर इस तरह के बेहतर हो, यहां तक के वो बालिग़ हो जाए

أَحْسَنُ حَتّٰى يَبْلُغَ أَشُدَّهٗ ۚ وَ أَوْفُوا
الْكَيْلَ وَ الْمِيزَانَ بِالْقِسْطِ ۚ لَا نُكَلِّفُ
نَفْسًا إِلَّا وُسْعَهَا ۚ وَ إِذَا قُلْتُمْ فَاعْدِلُوْا وَ
لَوْ كَانَ ذَا قُرْبٰى ۚ وَ بِعَهْدِ اللّٰهِ أَوْفُوْا ۚ
ذٰلِكُمْ وَصّٰكُمْ بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَذَكَّرُوْنَ ﴿١٥٢﴾

(7) और नाप तोल पूरी पूरी करो इन्साफ़ के साथ, हम किसी को उसकी सकत से ज़्यादा तकलीफ़ नहीं देते (8) और जब तुम बात किया करो तो इन्साफ़ रखो गो वो रिश्तेदार ही हो (7) और अल्लाह से जो अहद किया करो उसको पूरा किया करो, ये सब अहकाम ताकीदी हैं, ताके तुम याद रखो। (6:152)

وَ إِلٰى مَدْيَنَ أَخَاهُمْ شُعَيْبًا ۚ قَالَ يٰقَوْمِ
اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ إِلٰهٍ غَيْرُهٗ ۖ وَ لَا
تَنْقُصُوا الْمِكْيَالَ وَ الْمِيزَانَ إِنِّيْٓ أَرٰىكُمْ
بِخَيْرٍ وَّ إِنِّيْٓ أَخَافُ عَلَيْكُمْ عَذَابَ يَوْمٍ
مُّحِيْطٍ ﴿٨٤﴾ وَ يٰقَوْمِ أَوْفُوا الْمِكْيَالَ وَ
الْمِيزَانَ بِالْقِسْطِ وَ لَا تَبْخَسُوا النَّاسَ
أَشْيَآءَهُمْ وَ لَا تَعْثَوْا فِي الْأَرْضِ
مُفْسِدِيْنَ ﴿٨٥﴾ بَقِيَّتُ اللّٰهِ خَيْرٌ لَّكُمْ إِنْ
كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ۚ وَ مَآ أَنَا عَلَيْكُمْ
بِحَفِيْظٍ ﴿٨٦﴾ قَالُوْا يٰشُعَيْبُ أَصَلٰوتُكَ
تَأْمُرُكَ أَنْ نَّتْرُكَ مَا يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَآ أَوْ أَنْ
نَّفْعَلَ فِيْٓ أَمْوَالِنَا مَا نَشٰٓؤُا ۖ إِنَّكَ لَأَنْتَ
الْحَلِيْمُ الرَّشِيْدُ ﴿٨٧﴾ قَالَ يٰقَوْمِ أَرَءَيْتُمْ
إِنْ كُنْتُ عَلٰى بَيِّنَةٍ مِّنْ رَّبِّيْ وَ رَزَقَنِيْ
مِنْهُ رِزْقًا حَسَنًا ۖ وَ مَآ أُرِيْدُ أَنْ أُخَالِفَكُمْ
إِلٰى مَآ أَنْهٰكُمْ عَنْهُ ۖ إِنْ أُرِيْدُ إِلَّا
الْإِصْلَاحَ مَا اسْتَطَعْتُ ۖ وَ مَا تَوْفِيْقِيْٓ إِلَّا
بِاللّٰهِ ۖ عَلَيْهِ تَوَكَّلْتُ وَ إِلَيْهِ أُنِيْبُ ﴿٨٨﴾

ऐ नबी (स.अ.स.)! अल्लाह की राह में लड़ो, तुम अपने सिवा किसी के ज़िम्मेदार नहीं हो, और मोमिनीन को भी तरग़ीब दो, उम्मीद है के अल्लाह क़रीब ही काफ़िरों के ज़ोर-ए-जंग को रोक दे, अल्लाह ज़ोर-ए-जंग में ज़्यादा सख़्त है, और सज़ा में भी। जो अच्छी बात की सिफ़ारिश करेगा उसको भी सवाब में हिस्सा मिलेगा और जो बुरी बात की सिफ़ारिश करेगा उसको उसके अज़ाब में से मिलेगा और अल्लाह तो हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। और जब तुम को दुआ दी जाए तो तुम उससे बेहतर दुआ दो, या उसी को दोहरा दो, बिलाशुबह अल्लाह हर चीज़ का हिसाब लेगा। अल्लाह तो है ही माबूदे बरहक़, उसके सिवा और कोई दूसरा बंदगी के लायक़ नहीं वो क़यामत के दिन ज़रूर तुम सब को जमा करेगा, इसमें ज़रा भी कोई शक नहीं है, और अल्लाह से ज़्यादा सच्चा कौन हो सकता है। तुम मुनाफ़िक़ीन के बारे में किस सबब से दो गिरोह बन गए जबके अल्लाह ने तो उनको उल्टा फ़ेर दिया है, बसबब उनके अमल के, क्या तुम चाहते हो के उनको सीधे रास्ते पर लाओ जिनको अल्लाह ने गुमराह कर दिया है और जिसे अल्लाह गुमराह कर दे तो तुम उसके लिए कोई रास्ता ना पा सकोगे। (4:84-88)

35. और पूरा नापो जब नाप तोल करो और तोल कर दो सही तराज़ू से, ये अच्छा है, और अंजाम भी उसका अच्छा है। और तू उस बात के पीछे ना पड़ा कर जिसको तू जानता ना हो, कान, आंख, और दिल हर शख़्स से इन के बारे में पूछा जायेगा। (17:35-36)

وَ اَوْفُوا الْكَيْلَ اِذَا كِلْتُمْ وَ زِنُوْا بِالْقِسْطَاسِ
الْمُسْتَقِيْمِ ؕ ذٰلِكَ خَيْرٌ وَّ اَحْسَنُ تَاْوِيْلًا ﴿۳۵﴾
وَ لَا تَقْفُ مَا لَيْسَ لَكَ بِهٖ عِلْمٌ ؕ اِنَّ
السَّمْعَ وَ الْبَصَرَ وَ الْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِكَ
كَانَ عَنْهُ مَسْـُٔوْلًا ﴿۳۶﴾

और इन्साफ़ के साथ ठीक तोला करो और तोल में कमी ना किया करो। (55:9)

وَ اَقِيْمُوا الْوَزْنَ بِالْقِسْطِ وَ لَا تُخْسِرُوا
الْمِيْزَانَ ﴿۹﴾

नाप और तोल में कमी करने वालों के लिये ख़राबी है। के जब लोगों से नाप कर लें तो पूरा लें। और जब उनको नाप कर या तोल कर दें तो कम कर दें। क्या ये नहीं जानते के वो दोबारा ज़िन्दा होंगे। (यानी) एक बड़े सख़्त दिन में। जिस दिन सब लोग परवरदिगारे आलम के सामने खड़े होंगे। (83:1-6)

وَيْلٌ لِّلْمُطَفِّفِيْنَ ۙ﴿۱﴾ الَّذِيْنَ اِذَا اكْتَالُوْا عَلَى
النَّاسِ يَسْتَوْفُوْنَ ۖ﴿۲﴾ وَ اِذَا كَالُوْهُمْ اَوْ
وَّزَنُوْهُمْ يُخْسِرُوْنَ ؕ﴿۳﴾ اَلَا يَظُنُّ اُولٰٓئِكَ
اَنَّهُمْ مَّبْعُوْثُوْنَ ۙ﴿۴﴾ لِيَوْمٍ عَظِيْمٍ ۙ﴿۵﴾ يَّوْمَ
يَقُوْمُ النَّاسُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ؕ﴿۶﴾

"पूरा नापो और इंसाफ़ से तौलो" का आदेश केवल नाप तौल और लेनदेन के मामलों से ही सम्बंधित नहीं है बल्कि इसका एक व्यापक अर्थ भी है। किसी लेनदेन में या समझौते में शामिल सभी पक्षों के अधिकार और ज़िम्मेदारियों में संतुलन और न्याय पर ध्यान रखना चाहिए। किसी भी पक्ष की तरफ़ से किसी भी तरह का ग़बन, धोखा या शोषण का अर्थ है लोगों के माल में ख़ुर्द बुर्द करना और उन्हें नुक़सान पहुंचाना और ज़मीन में फ़साद करना। मालदारों और वंचितों के बीच, शासकों और शासितों के बीच, शक्तिशालियों और कमज़ोरों के बीच या बराबर की स्थिति न रखने वाले कोई भी दो पक्षों के बीच मामलो या सम्बंधों में किसी भी तरह का अन्याय असिल में अधिकारों ज़िम्मेदारियों को पूरा नापने और तौलने के समान है। अल्लाह ने पैग़म्बर शुऐब अलैहिस सलाम के ज़माने में भी इंसानों को यही हिदायत दी कि एक दूसरे के साथ न्यायपूर्ण और दुरूस्त मामला किया करें। लेकिन मालदार लोगों ने इस हिदायत को क़ुबूल करने से इंकार कर दिया और अपने माल में जैसा चाहें करें वाले रवैये पर किसी प्रतिबंध को स्वीकार न किया। उन्होंने ऐसे किसी हस्तक्षेप या बन्दिश को अपनी सोच और अपनी अक़ल के विपरीत समझा। इंसानों के लिए अल्लाह के संदेश व सीख में एक दूसरे के साथ न्यायिक मामलों की शिक्षा मौलिक महत्व रखती है और इसका मक़सद चीज़ों को सही

जगह रखना यानी न्याय करना और सामाजिक स्थितियों को हर मुमकिन हद तक दुरूस्त करना है:"मैं तो जहां तक मुझ से हो सके (तुम्हारे मामलों की) को सुधारना चाहता हूं"(11:88), "अल्लाह किसी नस पर उसकी क्षमता से अधिक भार नहीं डालतो" (6:152(और देखें 2:233,286(7:12(2:62)। पूरा पूरा न्याय तो दुनिया में कभी नहीं मिल सकता, लेकिन हमेशा यह नियत और कोशिश रहना चाहिए कि न्याय से काम लिया जाए और सही बर्ताव किया जाए और इस मक़सद को पाने के लिए सभी सम्भव प्रयास किए जाएं और व्यक्ति, समाज व सरकारें अगर यह प्रयास करेंगे तो इंसानों के हालात में बहतरी आएगी और उनके मामलों में सुधार होगा। ख़ुद अपने बारे में या दूसरों के बारे में कोई फ़ैसला करते हुए आदमी को दोस्ती या दुशमनी अर्थात पक्षपात या पूर्वाग्रह की भावना से बचना चाहिए, और ठीक ठीक नापना व तौलना चाहिए और हर मामले में सकारात्मक व नकारात्मक की तुलना करना चाहिए:"इंसाफ़ पर बने रहो और अल्लाह के लिए सच्ची गवाही दो चाहे (इसमें तुम्हारा या तुम्हार मां बाप और रिश्तेदारों का नुक़सान ही हो। अगर कोई अमीर है या फ़क़ीर तो अल्लाह तआला उनके हितैषी हैं, तो तुम अपनी इच्छाओं के पीछ चल कर इंसाफ़ को न छोड़ देना अगर तुम घुमा फिरा कर गवाही दोगे या (गवाही से) बचना चाहोगे तो (जान रखो कि) अल्लाह तुम्हारे सब कामों से बाख़बर है (4:135)। और "लोगों की दुशमनी तुम्हें इस बात पर आमाद न करे कि इंसाफ़ छोड़ दो बल्कि इंसाफ़ किया करो कि यही परहेज़गारी की बात है और अल्लाह से डरते रहो कुछ शक नहीं कि अल्लाह तआला तुम्हारे सब कामों से ख़बरदार हैं" (5:8)।

प्लानिंग, कन्ट्रोल और क्राइसिस मैनेजमेण्ट

قَالَ تَزْرَعُوْنَ سَبْعَ سِنِيْنَ دَاَبًا ۚ فَمَا حَصَدْتُّمْ فَذَرُوْهُ فِىْ سُنْۢبُلِهٖۤ اِلَّا قَلِيْلًا مِّمَّا تَاْكُلُوْنَ ﴿٤٧﴾ ثُمَّ يَاْتِىْ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ سَبْعٌ شِدَادٌ يَّاْكُلْنَ مَا قَدَّمْتُمْ لَهُنَّ اِلَّا قَلِيْلًا مِّمَّا تُحْصِنُوْنَ ﴿٤٨﴾ ثُمَّ يَاْتِىْ مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ عَامٌ فِيْهِ يُغَاثُ النَّاسُ وَ فِيْهِ يَعْصِرُوْنَ ﴿٤٩﴾

उन्होंने कहा के तुम सात बराबर खेती करते रहोगे, तो जो ग़ल्ला काटो तो थोड़े से ग़ल्ले के सिवा जो खाने में आए उसको ख़ोशें में रहने देना। फ़िर उसके बाद सात साल ऐसे सख़्त आयेंगे के जो ग़ल्ला तुम ने जमा कर रखा है वो इसको सब खा जायेंगे सिर्फ़ वो थोड़ा सा रह जाएगा जो तुम एहतियात से रख छोड़ोगे। फ़िर उसके बाद एक साल आएगा के लोगों के लिये ख़ूब मेंह बरसेगा, और उसमें रस भी निचोड़ेंगे। (12:47-49)

وَقَالَ الْمَلِكُ ائْتُوْنِيْ بِهٖٓ اَسْتَخْلِصْهُ لِنَفْسِيْ ۚ فَلَمَّا كَلَّمَهٗ قَالَ اِنَّكَ الْيَوْمَ لَدَيْنَا مَكِيْنٌ اَمِيْنٌ ۝ قَالَ اجْعَلْنِيْ عَلٰى خَزَآئِنِ الْاَرْضِ ۚ اِنِّيْ حَفِيْظٌ عَلِيْمٌ ۝ وَكَذٰلِكَ مَكَّنَّا لِيُوْسُفَ فِي الْاَرْضِ ۚ يَتَبَوَّاُ مِنْهَا حَيْثُ يَشَآءُ ۭ نُصِيْبُ بِرَحْمَتِنَا مَنْ نَّشَآءُ وَلَا نُضِيْعُ اَجْرَ الْمُحْسِنِيْنَ ۝ وَلَاَجْرُ الْاٰخِرَةِ خَيْرٌ لِّلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَكَانُوْا يَتَّقُوْنَ ۝

और बादशाह ने कहा, उसे मेरे पास लाओ, मैं उसे अपना ख़ास मसाहिब बनाऊँगा, फ़िर जब उनसे बात चीत की तो कहा के आज से तुम हमारे हां साहिबे मंज़िलत और साहिबे एतमाद हो। यूसुफ़ ने कहा के मुझे इस मुल्क के ख़ज़ाने पर तैनात कर दीजिये, क्योंके मैं हिफ़ाज़त भी कर सकता हूँ और इस काम को जानता भी हूँ। और इस तरह हमने यूसुफ़ को सर ज़मीन मिस्र में जगह दी के उसमें जहां चाहें रहें, हम अपनी रहमत जिस पर चाहते हैं करते हैं और हम नेक काम करने वालों का अज्र ज़ाय नहीं करते। और आख़िरत का अज्र कहीं ज़्यादा बेहतर है मोमिनीन मुत्तक़ीन के लिये।
(12:54-57)

इन आयतों में एक स्कीम का ज़िक्र है जो हज़रत यूसुफ़ अलैहिस सलाम ने मिस्र के बादशाह को सुझाई थी ताकि आने वाले दिनों में सात साल तक सूखाग्रस्त रहने की सम्भावना को देखते हुए इस स्कीम को अपनाया जाए। इसमें यह चिंता कि सामूहिक हित को व्यक्तिगत हित पर प्राथमिकता दी जाए और राहत के वर्तमान समय में आने वाले कठिन दिनों के लिए योजना बनाई जाए, ये दोनों बातें शरीअत में मौलिक महत्व रखती हैं, जिसका मक़सद व्यक्तियों और समाज के बीच हमेशा संतुलन बनाए रखना है, और वर्तमान व भविष्य के बीच भी संतुलन बनाए रखना है।

इस्लामी क़ानून के अनुसार किसी सामूहिक नुक़सान से बचने के लिए व्यक्तिगत नुक़सान को सहन किया जा सकता है और सामहिक हित के आधार पर कोई क़ानून इस शर्त के साथ बनाया जा सकता है कि वह क़ुरआन व सुन्नत के प्रत्यक्ष निर्देशों और व्याख्याओं के विपरती न हो।

इसके अलावा, यह आयतें यह बताती हैं कि कोई व्यक्ति कोई जनसेवा अंजाम देने की योग्यता रखता हो, ख़ास तौर से कठिन परिस्थितियों में, तो उसे स्वंय को आगे करना चाहिए और अपनी योग्यता व क्षमता लोगों को और ज़िम्मेदारों को बताना चाहिए ताकि अल्लाह की दी हुई नेअमत पर आभार व्यक्त किया जाए और उससे लोगों को फ़ायदा पहुंचाया जाए। क़ुरआन मुसलमानों को यह शिक्षा भी देता है कि वो आने वाले कल के बारे में भी सोचें, ''और हर व्यक्ति यह देखे कि उसने आने वाले कल के लिए क्या आगे भेजा है'' (59:18)। और आने वाली पीढ़ियों के भविष्य को सुरक्षित करने की कोशिश करे ''और (उनके लिए भी) जो इन

(मुहाजिरों) के बाद आए (और) दुआ करते हैं कि ऐ पालनहार हमारे और हमारे भाइयों के जो हम से पहले ईमान लाए हैं गुनाह मआफ़ कर दीजिए और मोमिनों की तरफ़ से हमारे दिल में बैर (व जलन) न पैदा होने दीजिए, ऐ हमारे पालनहार, आप बहुत दया करने वाले महरबान हैं" (59:10)।

धातु का उपयोग और सुनियोजित काम

قَالَ مَا مَكَّنِّي فِيهِ رَبِّي خَيْرٌ فَأَعِينُونِي بِقُوَّةٍ أَجْعَلْ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ رَدْمًا ﴿٩٥﴾ آتُونِي زُبَرَ الْحَدِيدِ ۖ حَتَّىٰ إِذَا سَاوَىٰ بَيْنَ الصَّدَفَيْنِ قَالَ انفُخُوا ۖ حَتَّىٰ إِذَا جَعَلَهُ نَارًا قَالَ آتُونِي أُفْرِغْ عَلَيْهِ قِطْرًا ﴿٩٦﴾ فَمَا اسْطَاعُوا أَن يَظْهَرُوهُ وَمَا اسْتَطَاعُوا لَهُ نَقْبًا ﴿٩٧﴾

ज़ुलक़रनैन ने कहा वो माल जिस में मेरे रब ने मुझे इख़्तियार दिया है वो बहुत है, तो तुम मुझे अपनी क़ुव्वते बाज़ू से मदद दो, मैं तुम्हारे और उनके दरमियान एक मज़बूत दीवार बना दूंगा। तुम लोहे के बड़े बड़े तख़्ते लाओ (काम जारी हो गया) यहां तक के जब दोनों पहाड़ों के दरमियान का हिस्सा बराबर कर दिया तो कहा अब इसको धोकों, यहां तक के उसको आग बना दिया, फ़िर कहा के अब पिघला हुआ तांबा लाओ के इस पर डाल दूं। फ़िर उनमें ये क़ुदरत ना रही के उस पर चढ़ सकें, और ना ये ताक़त रही के उस में नक़ब लगा सकें। (18:95-97)

لَقَدْ أَرْسَلْنَا رُسُلَنَا بِالْبَيِّنَاتِ وَأَنزَلْنَا مَعَهُمُ الْكِتَابَ وَالْمِيزَانَ لِيَقُومَ النَّاسُ بِالْقِسْطِ ۖ وَأَنزَلْنَا الْحَدِيدَ فِيهِ بَأْسٌ شَدِيدٌ وَمَنَافِعُ لِلنَّاسِ وَلِيَعْلَمَ اللَّهُ مَن يَنصُرُهُ وَرُسُلَهُ بِالْغَيْبِ ۚ إِنَّ اللَّهَ قَوِيٌّ عَزِيزٌ ﴿٢٥﴾

हमने रसूलों को खुली निशानियां देकर भेजा, और उनके साथ किताब नाज़िल की, और तराज़ू ताके लोग इन्साफ़ पर क़ायम रहें, और हमने लोहा पैदा किया, उसमें हैबत रखी और लोगों के लिये फ़ायदे भी हैं और इसलिये भी के अल्लाह जांच सके के कौन अल्लाह की और उसके रसूल की बिन देखे मदद करता है, अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला ज़बरदस्त है। (57:25)

इन आयतों में क़ुरआन खनिज संसाधनों की तरफ़ ध्यान दिलाता है और इस बात की तरफ़ कि उन्हें लोगों के फ़ायदे के लिए किस तरह इस्तेमाल किया जाए। पिघला हुआ तांबा लोहे की सिलों पर डाला गया और उसे इतना तपाया गया कि अंगारे की तरह लाल हो गया, इस प्रक्रिया के बाद एक न टूटने वाली दीवार खड़ी कर दी गयी ताकि वो लोग एक दूसरी क़ौम के हमले

से बच जाएं। 18:95-97 आयतें किसी काम के प्रबंधक या निदेशक और कर्मचारियों के बीच अनिवार्य आपसी सहयोग को रेखांकित करती हैं और इस बात को कि कर्मचारी यह महसूस करें कि जिस काम में वो लगे हुए हैं वो उसका हिस्सा हैं और उनकी मेहनत व मुशक़्क़त के बग़ैर वह काम नहीं हो सकता।

दरअस्ल, क़ुरआन की आयतें और सुन्नत की रिवायतें ऐसे साधारण सिद्धांत उपलब्ध कराती हैं जो ऐम्प्लायर और ऐम्प्लाईज़ के बीच सम्बंधों पर लागू किए जा सकते हैं। पैग़म्बर मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की एक हदीस यह इशारा देती है कि जो व्यक्ति किसी के आधीन काम करता हो उसके और निगरां के बीच सम्बंध इंसाफ़ और दया पर आधारित होना चाहिएं, ''तुम्हारे सेवक तुम्हारे भाई (बहन) है, अल्लाह ने तुम्हें उनका जिम्मेदार बनाया दिया है तो जिस किसी के पास उसका कोई भाई (या बहन) उसके आधीन हो उसे चाहिए कि उसक वही खिलाए जो ख़ुद खाता है, और वैसा ही पहनाए जैसा ख़ुद पहनता है, और उससे उसकी क्षमता से ज़्यादा काम न ले, और अगर उससे कोई भारी काम लो तो उसमें उसकी मदद करो'' (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी और इब्नेमाजा)। यह रिवायत बुनियादी तौर से मालिक और दास के संदर्भ में हैं लेकिन इसके शब्द व्यापक और सामान्य हैं और यह किसी काम के निगरां और उसकी निगरानी में काम करने वाले व्यक्तियों के सम्बंधों पर भी लागू होते हैं।

अगर ये निर्देश एक मालिक और ग़ुलाम के बीच सम्बंधों के बारे में हैं तो किसी नियोक्ता और उसके कर्मचारियों के बीच सम्बंध कैसा हो, इसी से इसको समझा जा सकता है। किसी आज़ाद कर्मचारी की वाजिब मज़दूरी के संदर्भ में जैसा कि उपरोक्त रिवायत से और दूसरी हदीसों से पता चलता है, नियोक्ता (ऐम्पलायर) को एक सभ्य और सम्मानित जीवन की ज़रुरत के आधार पर तय करना चाहिए। ''हमने आदम की संतान को प्रतिष्ठा दी है, और उसे ज़मीन व समन्दर में सवारी दी, जीवन की अच्छी चीज़ों से उसे अन्न उपलब्ध कराया. '' (17:70)। उपरोक्त हदीस में यह सीख दी गयी है कि काम करने वाले कर्मचारियों का जीवन स्तर उनके ऐम्प्लायर के जीवन स्तर से बहुत ज़्यादा नीचा न हो, बल्कि अच्छा यह है कि लगभग बराबर ही हो। अल्लाह के रसूल सल्ल० की एक और प्रमाणित हदीस में राज्य के कर्मचारियों के लिए घर, सवारी, घर के कामों के लिए एक सेवक और उसके विवाह तक का .ख़्याल रखा गया है (जैसा कि इब्ने कसीर ने आयत 3:161 की व्याख्या में नक़ल की है)। यही ज़रूरतें प्राइवेट सेक्टर में काम करने वाले व्यक्तियों की भी हैं और उनकी भी ये ज़रूरतें पूरी होना चाहिएं। इसके लिए एक सरकारी पद ''मुहतसिब'' (ऑडिटर) का था जो ग़ुलामों और आज़ाद श्रमिकों के साथ किसी भी ग़लत बर्ताव की शिकायत पर तुरन्त पहुंचता था और इस समस्या को हल करता था, चाहे वो मर्द हों या औरत, बल्कि पशुओं के साथ दुर्व्यवहार की शिकायत भी दूर

करता था।

आयत 57:25 लोहे के महत्व को उजागर करती है, ‘‘और इसमें लोगों के फ़ायदे भी रखे गए हैं’’, ख़ास तौर से राज्य की शक्ति के संदर्भ में उसके महत्वर जैसे न्याय स्थापित करना और अन्याय से लड़ना चाहे वह सीमाओं के अन्दर कहीं किसी की तरफ़ हो रहा हो या किसी बाहरी ताक़त के द्वारा किया जा रहा हो। राज्य के सुरक्षा बलों को हथियारों और अन्य तकनीकी यंत्रों से अच्छी तरह लैस होना चाहिए ताकि वो अल्लाह की हिदायत में दिए गए इंसाफ़ के सिद्धांतो को अमल में लाएं। जैसा कि एक मशहूर कथन है कि ‘‘अल्लाह तआला कभी कभी उन बुराइयों को तलवार (राज्य शक्ति) से रोक देते है जिन्हें लोग उपदेश और निर्देश से नहीं छोड़ते’’। लेकिन इसका मतलब यह नहीं लेना चाहिए कि लोहे और खनिज धातुओं के इस्तेमाल के जो ज़बरदस्त शान्तिपूर्ण उद्देश्य हैं उनकी अनदेखी हो जैसे उद्योगों के विकास और अर्थ व्यवस्था को आगे बढ़ाने में उसकी भूमिका, जैसा कि क़ुरआन कहता है कि ‘‘इसमें (शस्त्रों के लिहाज़ से) ख़तरा भी बहुत है और लोगों के लिए फ़ायदे भी हैं’’।

जूडिशियल मेरिट्स

وَ دَاوٗدَ وَ سُلَيْمٰنَ اِذْ يَحْكُمٰنِ فِى الْحَرْثِ اِذْ نَفَشَتْ فِيْهِ غَنَمُ الْقَوْمِ ۚ وَ كُنَّا لِحُكْمِهِمْ شٰهِدِيْنَ ﴿٧٨﴾ فَفَهَّمْنٰهَا سُلَيْمٰنَ ۚ وَ كُلًّا اٰتَيْنَا حُكْمًا وَّ عِلْمًا ۫ وَّ سَخَّرْنَا مَعَ دَاوٗدَ الْجِبَالَ يُسَبِّحْنَ وَ الطَّيْرَ ؕ وَ كُنَّا فٰعِلِيْنَ ﴿٧٩﴾

और दाऊद (अ.स.) और सुलेमान (अ.स.) को याद कीजिये जब दोनों एक खेती का मामला फ़ैसला करने लगे जिसमें कुछ लोगों की बकरियां रात को चर गई और हम उनके फ़ैसले के वक़्त मौजूद थे। तो हमने सुलेमान को फ़ैसला की समझ दी, और हमने दोनों को हिकमत और इल्म दिया था, और हमने पहाड़ों को दाऊद का मुसख़्ख़िर कर दिया था के उनके साथ तसबीह करते थे, और परिन्दों को भी और हम ही ऐसा करने वाले थे। (21:78-79)

पैग़म्बर हज़रत दाऊद (961 ईपू, शासनकाल 1002-962 ईपू) और हज़रत सुलैमान (शासनकाल 972-922 ईपू) दोनों बाइबिल के बयान के अनुसार बनी इस्राईल के बादशाह थे, क़ुरआन के बयान के अनुसार वो पैग़म्बर भी थे और बादशाह भी थे (उपरोक्त आयत के अलावा देखें 4:163(6:84(38:26,35)। कुछ सहाबी और ताबिईन (सहाबियों के शिष्य) के बयानों के अनुसार उपरोक्य आयतें भेड़ों के एक झुण्ड के संदर्भ में हैं जो एक रात को एक खेत में घुस गया था और फ़सल को नष्ट कर दिया था। जब खेत के मालिक ने हज़रत दाऊद से

इसकी शिकायत की तो उन्होंने आदेश दिया कि खेल के मालिक को बदले के रूप में भेड़ें दे दी जाएं। हज़रत दाऊद के बेटे हज़रत सुलैमान ने इस फ़ैसले को भेड़ों के मालिक के साथ अन्याय वाला मामला सझा, कि वह जब सारी भेड़ें खेत के मालिक को दे देगा तो ख़ुद कंगाल हो जाएगा जब कि खेत के मालिक के पास ज़मीन तो अभी भी मौजूद है। सुलैमान ने अपने पिता से कहा कि इस मामले में उनका फ़ैसला इस फ़ैसले से अलग होगा, वह यह कि खेत के मालिक को भेड़ों से फ़ायदा उठाने का अधिकार अस्थाई रूप से दिया जाए जबकि भेड़ों के मालिक को खेत पर फ़सल उगाने का अधिकार दिया जाए उस समय तक जब तक खेत पहले जैसी हालत में न आ जाए। इस तरह जिस पक्ष का नुक़सान हुआ है उसके नुक़सान की भरपाई भी हो जाएगी और जो पक्ष दोषी है वह भी अपने माल से वंचित नहीं होगा। हज़रत दाऊद ने माना कि यह फ़ैसला ज़्यादा सही है और इसलिए उन्होंने अपने फ़ैसले को बदल दिया (देखें इब्ने कसीर की व्याख्या, जिल्द 3)। इस तरह इन आयतों से यह सीख मिलती है कि हज़रत दाऊद जैसे पैग़म्बर भी कोई फ़ैसला अपने विवेक से करते हैं और इंसान होने के चलते अपने फ़ैसले में ग़लती भी कर सकते हैं या बिल्कुल सही फ़ैसले तक पहुंचने में असफ़ल रह सकते हैं, और इस तरह वह अपने पहले फ़ैसले को एक दूसरे फ़ैसले से बदल सकते हैं जो इंसाफ़ के ज़्यादा करीब हो, जैसा कि हज़रत दाऊद ने अपने बेटे के मशौरे को माना (देखें इन आयतों पर अलक़ुरतुबी की तफ़सीर, जिल्द 2)।

रसूल सल्ल० की एक हदीस के मुताबिक़ जब कोई इज्तेहाद (शरीअत अनुसार किसी मामले का हल खोजने की कोशिश) करने वाला किसी मामले में इज्तेहाद करे और उसमें ग़लती कर जाए तो उसके लिए एक नेकी लिखी जाएगी कि उसने हक़ को समझने व जानने की अपनी पूरी कोशिश की, जबकि उस व्यक्ति को जिसका इज्तेहाद सही हो और वह सही नतीजे पर पहुंचे तो उसके लिए दो नेकियां लिखी जाएंगी एक इज्तेहाद करने पर और एक सही नतीजा निकालने पर (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, नसई, इब्ने माजा)। मैं समझता हूं कि यही सिद्धांत एक नबी पर भी लागू होगा जब वह अपने इज्तेहाद से कोई फ़ैसला करेंगे। मैं नहीं समझता कि जब कोई नबी इज्तेहाद से काम लें और इज्तेहाद में ग़लत नतीजे पर पहचें तो इस ग़लती का सुधार वह्यि से होगा, जैसा कि कुछ आलिमों और फ़क़ीहों ने कहा है, जहां तक इज्तेहाद की इजाज़त है और इज्तेहाद से क्या नतीजा निकाला यह बात शरीअत के सिद्धांतों से टकराती हुई नहीं है, चाहे इस मामले में इज्तेहाद से सही फ़ैसले पर न भी पहुंचे हों। क़ुरआन में यह बात बार बार कही गयी है कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० सहित सभी पैग़म्बर इंसान ही थे, और इस वजह से अपने इंसानी फ़ैसले में ग़लती कर सकते हैं। पैग़म्बरों के ग़लती से पाक होने की हैसियत अल्लाह के पैग़ाम को पहुंचाने के मामले में है और इंसानी मामलों में उनके इंसानी विवेक से इसका सम्बंध नहीं है। पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० ने बद्र की लड़ाई के समय अपनी

फ़ौज के ठहराव के लिए एक जगह का चयन अपने विवेक से किया, और ख़न्दक़ (खाई) की जंग के समय आप ने क़बीला ग़ितफ़ान के सरदारों को मदीने की खजूरों की फ़सल देने का प्रस्ताव दिया ताकि वो अपना घेराव ख़त्म कर देने पर मान जाएं, लेकिन दोनों अवसरों पर आपके कुछ साथियों ने ज़्यादा बहतर मशौरा दिया जिसे आपने मान लिया, और एक बार आप सल्ल० ने साफ़ साफ़ फ़रमाया कि तुम अपने दुनियादारी के मामलों में मुझ से बहतर समझते हो (मुस्लिम, और देखें बद्र व ख़न्दक़ की लड़ाईयों की तफ़सील के लिए सीरत इब्ने हश्शाम, और इब्ने सअद की तबक़ात की जिल्द 2, इब्नुल क़य्यिम की ज़ादुल मआद, जिल्द 3, और इब्ने कसीर की तफ़सीर आयत 3:159)। और जब पैग़म्बर सल्ल० ने सहाबी मआज़ को एक जगह का गवर्नर बना कर भेजते समय उनसे पूछा कि लोगों के मामलों का फ़ैसला किस तरह करोगे, तो हज़रत मआज़ ने अपने जवाब में क़ुरआन व सुन्नत के बाद इज्तेहाद की बात कही जिसे पैग़म्बर सल्ल० ने पसन्द किया और इस तरह इस सिद्धांत की पुष्टि की कि लोगों के मामलों का फ़ैसला करते समय जब क़ुरआन व सुन्नत से सीधे कोई मिसाल न मिले तो इज्तेहाद से काम लिया जाएगा (इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा, दारमी)। रसूल सल्ल० ने एक लड़ाई से वापसी के समय जब सहाबियों की एक टोली को यह निर्देश दिया कि वो अस्र की नमाज़ बनी क़ुरैज़ा की बस्ती में जा कर पढ़ें तो रास्ते में अस्र की नमाज़ का समय कम रह जाने की वजह से सहाबियों के बीच मतभेद हुआ और लोगों के दो मत हो गए और दोनों वर्गों ने अपने अपने इज्तेहाद पर अमल किया। रसूल सल्ल० ने इज्तेहाद में इस मतभेद को मान्यता दे दी (बुख़ारी, मुस्लिम)।

मुस्लिम फ़क़ीहों में इस बात पर सहमति है कि किसी फ़ैसले को उसकी घोषणा किए जाने के बाद भी बदला जा सकता है अगर ज़्याद सही और न्यायपूर्ण फ़ैसला सामने आए। अलबत्ता फ़ैसले में यह बदलाव वही जज करेगा जिसने इस मामले में पहला फ़ैसला दिया हो या फिर उससे ऊपर का कोई अधिकार प्राप्त व्यक्ति जैसे ख़लीफ़ा या कोई उच्च स्तरीय अदालत जो अन्याय की शिकायतों का समाधान करती हो, जिसका अध्यक्ष राजधानी में या तो ख़ुद ख़लीफ़ होता है, या उसका मनोनीत किया कोई वज़ीर, जबकि प्रान्तीय गवर्नर प्रान्तीय अदालतों के निगरां होते हैं। किसी जज का कोई फ़ैसला उसी के स्तर वाले किसी दूसरे जज के द्वारा नहीं बदला जा सकता क्योंकि इससे फ़ैसले की गरिमा प्रभावित होगी जो लोगों और राज्य के फ़ायदे के लिए बनी रहना चाहिए, हालांकि कुछ ख़ास परिस्थितियों में न्याय को बनाए रखने के लिए कुछ अपवादों की इजाज़त भी हो सकती है (देखें अलक़ुरतुबी, उपरोक्त)। फ़ैसले की स्थिरता पर आधुनिक क़ानूनों में भी ध्यान दिया गया है। बहु स्तरीय अदालती व्यवस्था जैसा कि आधुनिक न्यायिक व्यवस्था में अपनाई गयी है, जिसके द्वारा फ़ैसले में बदलाव का अधिकार केवल उच्च स्तरीय अदालत को ही होना चाहिए, शरीअत में भी तब तक मान्य रहेगी जब तक

एक अच्छी न्यायिक व्यवस्था बनी रहेगी।

क़ुरआन में एक और क़िस्सा भी बयान हुआ है जिसमें हज़रत दाऊद ने एक पक्ष की बात सुन कर फ़ैसला सुना दिया जबकि दूसरे पक्ष को सुना ही नहीं (38:21-26), हालांकि दोनों पक्षों को अपनी बात कहने का बराबर से अवसर मिलना चाहिए और यह इंसाफ़ के लिए ज़रूरी है। इमाम मुस्लिम, बुख़ारी, इब्ने हंबल और नसई वग़ैरह ने जो रिवायतें नक़ल की हैं उनके मुताबिक़ हज़रत दाऊद और हज़रत सुलैमान के बीच दो औरतों के बीच एक विवाद का फ़ैसला करने में भी मतभेद हुआ जो एक बच्चे पर अपना हक़ जताती थीं। हज़रत दाऊद एक महिला के तर्क सुन कर सहमत हो गए और यह फ़ैसला किया कि वही बच्चे की मां है, जबकि सुलैमान ने व्यवहारिक सुबूत के आधार पर फ़ैसला करने की कोशिश की, केवल तर्कों पर ही निर्भर नहीं हुए। उन्होंने प्रस्ताव दिया कि बच्चे के दो टुकड़े कर दिए जाएं और दोनों को आधा आधा दे दिया जाए। इसका मतलब निश्चित रूप से बच्चे को मार देना था, इस वजह से बच्ची की असली मां चीख़ पड़ी और बोली कि यह बच्चा उसी को देदो और इसे मारो नहीं। इस तरह हज़रत सुलैमान ने यह जान लिया कि वास्तविक मां कौन सी है और फिर फ़ैसला दिया कि बच्चा अपनी वास्तविक मां के पास रहेगा। इस तरह तथ्यों को जानने के लिए विवेक से काम लेना शरीअत में सुबूत और गवाही के क़ानून के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है जबकि मज़बूत गवाहियां जैसे अपराध स्वीकार करना या किसी पक्षकार द्वारा स्वीकार करना, या ठोस सुबूत उपलब्ध होना, या गवाह मौजूद न होना या फ़ैसले के लिए पर्याप्त गवाही न होना। मुस्लिम फ़क़ीहों ने अपनी चर्चाओं में फ़ैसले के धारणात्मक और व्यवहारिक सिद्धांतों पर और फ़ैसला करने की कला पर काफ़ी विस्तार से रोशनी डाली है (जैसे अलमवारिदीः आदाबुलक़ज़ा, इब्नुल क़य्यिमःअलतुरूक़ुल हाकिमिया, इब्ने फ़रहानःतबसरातुल हुक्काम वग़ैरह)।

अध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक मामलों में आपसी सहयोग और संतुलन

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِذَا نُوْدِيَ لِلصَّلٰوةِ مِنْ
يَّوْمِ الْجُمُعَةِ فَاسْعَوْا اِلٰى ذِكْرِ اللّٰهِ وَ
ذَرُوا الْبَيْعَ ؕ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ
تَعْلَمُوْنَ ۝۹ فَاِذَا قُضِيَتِ الصَّلٰوةُ
فَانْتَشِرُوْا فِي الْاَرْضِ وَ ابْتَغُوْا مِنْ فَضْلِ
اللّٰهِ وَ اذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ

मोमिनों! जब जुमा के दिन नमाज़ के लिये अज़ान दी जाये तो अल्लाह की याद की तरफ़ चल पड़ो और ख़रीदो फ़रोख़्त छोड़ दो, ये तुम्हारे हक़ में बेहतर है, अगर तुम जान जाओ। फ़िर जब नमाज़ हो चुके, तो अपनी अपनी राह लो, और अल्लाह का फ़ज़्ल तलाश करो, और अल्लाह को बहुत बहुत याद करते रहो, ताके निजात पाओ। और जब ये लोग सौदा बिकता देखते हैं या

تُفْلِحُوْنَ ﴿١٠﴾ وَ اِذَا رَاَوْا تِجَارَةً اَوْ لَهْوَا
اِنْفَضُّوْٓا اِلَيْهَا وَ تَرَكُوْكَ قَآئِمًا ؕ قُلْ مَا عِنْدَ
اللّٰهِ خَيْرٌ مِّنَ اللَّهْوِ وَ مِنَ التِّجَارَةِ ؕ وَ اللّٰهُ
خَيْرُ الرّٰزِقِيْنَ ﴿١١﴾

तमाशा देखते हैं तो उधर चले जाते हैं और तुम्हें छोड़ जाते हैं कह दो के जो चीज़ अल्लाह के पास है वो तमाशे और सौदे से कहीं बेहतर है, और अल्लाह बेहतरीन रिज़्क़ देने वाला है। (62:9-11)

اِنَّمَآ اَمْوَالُكُمْ وَ اَوْلَادُكُمْ فِتْنَةٌ ؕ وَ اللّٰهُ
عِنْدَهٗٓ اَجْرٌ عَظِيْمٌ ﴿١٥﴾

तुम्हारा माल और तुम्हारी औलाद तो एक आज़माईश है, और अल्लाह के हां बड़ा अज्र है। (64:15)

क़ुरआन का मक़सद किसी भी तरह से इंसान को इस दुनिया से काट देना नहीं है, क्योंकि अल्लाह ने इंसान को पैदा किया है और उसे इस बात की ज़िम्मेदारी दी है कि वह दुनिया को अल्लाह के दिशा निर्देशों के अनुसार बरते। अल्लाह की इबादत व बन्दगी इस दुनिया में इंसान के जीवन का उद्देश्य है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस दुनिया में दीनदार और नेक लोगों की एक अलग दुनिया बना ली जाए। जो व्यक्ति अपने आप को अल्लाह की बन्दगी में देता है और ख़ुद को अल्लाह की मर्ज़ी का पाबन्द बना लेता है वह ऐसा व्यक्ति है कि जो इस दुनिया में अपना रिज़्क़ (अन्न अथवा जीवन साधन) तलाश करता है और अपने ज़हन में आख़िरत को रखता है, और इस दुनिया को अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बरतता है और इसी के अन्तर्गत दूसरों से बर्ताव करता है:"ऐसे हैं कि दुआ करते हैं कि अल्लाह हमें दुनिया में भी नेअमत दीजिए और आखरित में भी नेअमत दीजिए और जहन्नम के अज़ाब से हमें बचा लेना। यही लोग हैं जिन के लिए उनके कामों का हिस्सा (यानी अच्छा बदला) है और अल्लाह तआला जल्दी ही हिसाब लेने वाले (और जल्द ही बदला देने वाले) हैं" (2:201-202), "वही तो है जिसने तुम्हारे लिए ज़मीन को मुलायम किया तो उसके रस्तों में चलो फिरो और अल्लाह का (दिया हुआ) रिज़्क़ खाओ और (तुम को) उसी के पास (क़बरों से)निकल कर जाना है।" (67:15)

इस तरह एक अल्लाह पर और आख़िरत के जीवन पर ईमान मोमिन को दूसरे लोगों से या दुनिया से अलग थलग नहीं करता। बल्कि वह दुनिया में काम करते हुए दूसरों के साथ सम्बंधों को मज़बूत करता है और मोमिन को आत्मसिद्धि, भौतिकतावाद, अदूरदर्शिता और अंधेपन से बचाता है। अल्लाह पर और अल्लाह के सामने जवाबदेही पर यक़ीन से इंसान को एक व्यापक अन्तःदृष्टि प्राप्त होती है और वह पूर्वकाल, वर्तमान व भविष्य के बारे में स्पष्ट चेतना रखता है। व्यक्तिगत संतुलन और अहंकार या दरिद्रता की दो अतियों से बचना ईमान के द्वारा सम्भव है और जीवन के उतार चढ़ाव में इंसान एक संतुलन पर बना रहता है, जैसे कि रसूल सल्ल० की एक हदीस है:"मोमिन का मामला भी अजीब है:वह जीवन में हर तरह

से कामयाब है, और यह केवल मोमिन को ही प्राप्त है। अगर उसे राहत व ख़ुशी मिलती है तो वह शुक्र करता है और यह उसके लिए अच्छा है, और अगर उसे तकलीफ़ या दुख पहुंचता है तो वह सब्र करता है और यह भी उसके लिए अच्छा है (मुस्लिम, इब्ने हंबल)।

इसके अलावा जीवन को बरतने और उससे आनन्दित होने तथा जीवन की समस्याओं का सामना साहस व ताक़त से करने की भावना इंसान के अन्दर पैदा करके उसे जीवन बिताने के लायक़ बनाने के लिए एक अल्लाह और आख़िरत पर ईमान इंसान की योग्यता व क्षमता के लिए एक गहरी और मज़बूत बुनियाद देता है:"लोगो हमने तुम्हें एक मर्द और एक औरत से पैदा किया है और तुम्हारे समुदाय व क़बीले बना दिए ताकि एक दूसरे को पहचानो" 49:13। अल्लाह की मर्ज़ी और निर्देशों के आगे ख़ुद को समर्पित कर देने का मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि "अपना चेहरा पूरब या पश्चिम की ओर कर लो" बल्कि इसका मतलब यह है कि इंसान नैतिकता, सच्चाई और सदव्यवहार को अपनाने का एक वास्तविक व गम्भीर इरादा करे। यह ईमान इंसान को ज़रूरतमंद लोगों पर खर्च करने के लिए उभारता है "बावजूद इसके कि वह माल से मुहब्बत करता है और उसे बढ़ाते रहना चाहता है", और अपने वचन और वायदों को पूरा करने की प्रेरणा देता है और जीवन के सभी उतार चढ़ाव का सामना दृढ़ इच्छा शक्ति और संतुलित ज़हन के साथ करने की योग्यता पैदा करता है (2:77)। रसूल सल्ल० ने फ़रमाया कि "ईमान वालों में सबसे बहतर वह है जो इस दुनिया के लिए आख़िरत को नहीं भुलाता, न आख़िरत के जीवन के लिए इस दुनिया को त्यागता है, और जो दूसरों पर बोझ बन कर नहीं जीता" (ख़तीब ने इसे अपनी तारीख़ में रिवायत किया है), और यह कि "अल्लाह को सबसे महबूब वह है जो अपने आधीनों के लिए सबसे ज़्यादा फ़ायदा पहुंचाने वाला है" (ज़वाइद अलज़ुहुद में अब्दुल्लाह की रिवायत जो अलजामिउल सग़ीर में सुयूती ने नक़ल की है, और नासिर अलबानी ने इसे हसन कहा है, और इब्ने अबिल दुनिया और तिबरानी ने अलकबीर में इसे शब्दों में मामूली अन्तर के साथ नक़ल किया है)। अल्लाह के रसूल सल्ल० ने उस व्यक्ति के लिए फ़ज़ल व महरबानी की दुआ की है जो अल्लाह का बन्दा ख़रीद व फ़रोख़्त में और अमानतें लोटाने में नर्मी करता है (बुखारी, इब्ने माजा)।

इस परिप्रेक्ष्य में जुमा की नमाज़ के बारे में उपरोक्त आयतें इस दुनिया में सक्रिय रहते हुए आख़िरत को सामने रखने में संतुलन बनाए रखने पर ज़ोर देती हैं। "जब जुमे के दिन नमाज़ के लिए अज़ान दी जाए तो अल्लाह की याद (यानी नमाज़) के लिए जल्दी करो और (ख़रीद व) फ़रोख़्त छोड़ दो अगर समझो तो यह तुम्हारे लिए बहतर है लेकिन जब नमाज़ ख़त्म हो जाए तो ज़मीन में फैल जाओ और अल्लाह का फ़ज़ल (रोज़ी) तलाश करो और अल्लाह को बहुत याद करते हो ताकि तुम्हें कामयाबी मिले" (62:9-11)। नमाज़ बहुत लम्बे समय तक नहीं होती, अलबत्ता यह ईमान को मज़बूत करती है और व्यक्ति व समाज को अच्छे कामों के लिए

तैयार करती है:“और नमाज़ के पाबन्द रहो कुछ शक नहीं कि नमाज़ बे शर्मी और बुरी बातों से रोकती है और अल्लाह का ज़िक्र बड़ा (अच्छा काम) है और जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे जानते हैं” (29:45)।

इस संतुलित शिक्षा और तरीक़े से मोमिन का यह ईमान बनता है कि माल और औलाद इस दुनिया की साज सज्जा हैं, लेकिन इंसान को इस आराम व राहत में इतना मगन नहीं हो जाना चाहिए कि वह अपनी स्वार्थपूर्ति और भौतिक रास विलास (ऐश व आराम) के दायरे में ही क़ैद हो कर रह जाए, जिसकी वजह से यह दुनियावी राहतें इंसान के सद व्यवहार और दूसरों के साथ मिलने जुलने तथा एक दूसरे के काम आने में एक रुकावट बन जाएं (64:14, और देखें 9:24; 23:55; 68:13-14; 74:11-13)। एक मोमिन जब इस दुनिया की राहत व सुख से आनन्दित होता है तो उसे अपनी आख़री मन्ज़िल और लक्ष्य को ज़हन में रखते हुए अपने रवैये में एक संतुलन रखना चाहिए:“माल और बेटे तो दुनिया के जीवन की सजधज हैं और नेक काम व बातें जो बाक़ी रह जाएंगी वो सवाब (पुण्य) के लिहाज़ से तुम्हारे रब के हां बहुत अच्छी और उम्मीद के लिहाज़ से बहुत बहतर हैं” (18:46) “यह सब दुनिया ही के जीवन का सामान हैं और अल्लाह के पास बहुत अच्छा ठिकाना है” (3:14) माल व औलाद एक फ़ितना (चुनौती) हैं, और अल्लाह के पास महान बदला है (64:15)। आख़िरत में मिलने वाले इस महान बदले से भी और दुनिया के भी कुछ इनामों से इंसान महरूम रह सकता है अगर वह इस संतुलन को बनाए न रखे और अपने बाल बच्चों में ही मगन रहे और अपने सुख व भौतिकतावाद के घेरे में ही रह कर अलग थलग हो जाए और असंतुलित जीवन बिताए (8:28; 9:69; 18:34-40; 19:77-88; 26:88-89; 34:35; 57:10; 63:9; 68:14; 74:12-16; 104:2-3)।

❁ ❁ ❁

जुर्माने
निर्धारित और अनिर्धारित
हुदूद, क़िसास, ताज़ीर

आम सिद्धांत

शरीअत के आम सिद्धांत स्वभाविक रूप से क़ानून के हर क्षेत्र में लागू होते हैं जिनमें पैनल लॉ भी शामिल है। यहां यह कहा जा सकता है कि क़ानून के बग़ैर कोई पाबन्दी किसी पर नहीं लगाई जा सकती और क़ानूनी पाबन्दियों को लागू करने से पहले उन्हें लोगों की जानकारी में लाना ज़रूरी है। ये सिद्धांत पैनल लॉ में भी ज़रूरी है यानि यह तय करना कि कोई ख़ास इंसानी प्रक्रिया एक अपराध है और उस अपराध की सज़ा क़ानून में निर्धारित की जाएगी जिसकी घोषणा सार्वजनिक रूप से की जाएगी। वांछित और वर्जित कामों को स्पष्ट करना एक नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी है ताकि आदमी ज़िम्मेदारी से कोताही बरतने और वर्जित कामों को करने से बच सके (5:115)। आम क़ानूनों के बारे में जानकारी और सीख देना और ख़ास तौर से पैनल लॉ से अवगत कराना शरीअत के क़ानून में अनिवार्य है। चुनांचि क़ानून का क्रियान्वन उसे जनता की जानकारी में लाने के बाद ही होना चाहिए और पहले हो चुके मामलों पर क़ानून लागू करना जायज़ नहीं है, ख़ास तौर से पैनल लॉ में, क्योंकि अल्लाह तआला किसी मामले में अपना मार्गदर्शन देने के बाद ही उस मामले में किसी व्यक्ति को नैतिक और क़ानूनी रूप से जवाबदेही का पाबन्द करते हैं (2:275; 4:22-23; 5:29; 8:38)।

इस्लाम एक दीन (जीवन पद्धति) के रूप में शिक्षा और क़ानूनी तरीक़े से सामाजिक सुधार को एक दूसरे के साथ समन्वयित करता है, और शिक्षा को क़ानून के ऊपर रखता है। इस तरह किसी व्यक्ति के अनजान होने, या सामाजिक लिहाज़ से परेशान होने की वजह से उसकी सज़ा कम की जा सकती है या टाली जा सकती है। क़त्ल की सज़ा से पहले जीवन और जान की क़ीमत व मर्यादा के बारे में नैतिक शिक्षा ज़रूरी है और इन कारकों को दूर करने के लिए गम्भीर प्रयास होना चाहिएं जो हिंसा पर उक्साने और लोगों के बीच दुशमनी भड़काने का कारण बनते हैं। इसी तरह ज़िना (व्यभिचार) या दुष्कर्म के दोषी की सज़ा से पहले लोगों को शादी के महत्व के बारे में शिक्षा देना और विवाह करके साथ रहने या विवाह के बग़ैर यौन सम्बंध बनाने के अन्तर को समझाना और यह बताना ज़रूरी है कि विवाह के बग़ैर शरीरिक सम्बंध में एक दूसरे का जीवन साथी बन कर हमेशा साथ साथ रहने और अपनी ज़िम्मेदारियां पूरी करने की भावना

का अभाव होता है, और इसमें शान्ति व संतोष नहीं होता और आपसी मुहब्बत प्रेम व सुख स्थाई रूप से प्राप्त नहीं होता (4:1; 30:21)।

इसके अलावा, शादी करके इंसान घर बसाता है, परिवार बनाता है और बाल बच्चों के साथ एक सुखी जीवन जीता है। इस सुख को प्राप्त करने के लिए परिवारों को व्यक्तियों की शादियां कराने की चिंता होनी चाहिए और इसमें उन्हें सहयोग करना चाहिए और सरकार को इसके लिए भौतिक व नैतिक सहायता देना चाहिए। शरीअत उन लोगों की मदद के लिए सरकार को ज़िम्मेदार बनाती है जो विवाह करने की धार्मिक, निजी और सामाजिक ज़रूरत को पूरा करने की क्षमता नहीं रखते। और मालदार लोगों ने ऐसे युवाओं की शादी में मदद करने और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए औक़ाफ़ की व्यवस्था बनाई है जिन की आमदनी नहीं होती कि वो शादी का ख़र्चा उठा सकें, ठीक उसी तरह जिस तरह साफ़ पानी, शिक्षा, इलाज और दूसरी बहुत सी सामाजि सेवाओं के लिए ट्रस्ट बनाए हैं।

चोरी के लिए सज़ा की व्यवस्था तब की जाए जब लोगों को काम करने के अवसर उपलब्ध कराके, उचित आमदनी की व्यवस्था करके, जनसेवाएं उपलब्ध कराके और अपंगों के लिए सामाजिक सहायता का प्रबंध करके जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति की गयी हो। लोग जब भूखमरी से ग्रस्त हुए तो ख़लीफ़ा उमर ने चोरी के लिए सज़ा करने को स्थगित कर दिया था और उन लोगों को इस सज़ा से बरी रखा जो अपने मालिकों के अनुचित व्यवहार की वजह से भूख स मजबूर हो कर चोरी करते।

इस रोशनी में यह बात आसानी से समझी जा सकती है कि शरीअत सुधारों के लिए सज़ा जारी करने को प्राथमिकता नहीं देती, न सज़ा देने में जल्दबाज़ी करती है। रसूल सल्ल० ने सज़ाओं के लिए जो आदेश जारी किए उन से यह बात ज़ाहिर होती है कि आप आरोपी (अपराधबोध में अपराध का दावा करने वाले व्यक्ति) के बरी हो जाने की इच्छा रखते थे बजाए इसके कि वह अपराधी साबित हो। किसी अपराधी का अपराध इस तरह से साबित किया जाए कि वह निस्संदेह और निश्चित रूप से अपराधी सिद्ध हो और सज़ा का पात्र ठहरे। रसूल सल्ल० की एक हदीस बताती है कि किसी न्याय करने वाले के लिए यह बहतर है कि वह किसी दोषी को बरी करने में ग़लती कर जाए बजाए इसके कि किसी निर्दोष को ग़लती से सज़ा दे बैठे, और न्याय करने वाले को चाहिए कि गम्भीर अपराधों के लिए निर्धारित गम्भीर सज़ाएं यानी "हुदूद" जारी करने से जहां तक हो सके बचे। (रिवायत अबी शीबा, तिरमिज़ी, हाकिम, बेहिक़ी)। दोषी को सज़ा देने के बजाए मआफ़ कर देने की प्रेरणा दी गयी है, यह मआफ़ी करना इंसान की उसके भीतर से सुधार का एक वास्तविक माध्यम बनती है (क़ुरआन 4:16; 5:33-34, 38-39, 6:54; 16:119अ 24:4-5)। दूसरी तरफ़ पीड़ित को यह सीख दी गयी है कि वह मआफ़ कर दिया करे (2:178; 24:22; 64:14)।

कोई अपराधी व्यक्तिगत रूप से ही ज़िम्मेदार होता है, क्योंकि ‘‘कोई बोझ उठाने वाला किसी दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा’’, और किसी को उसके अपने दोष के अलावा किसी अन्य के दोष का ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता (53:38-39; 6:164; 17:15; 35:18; 39:7)। फ़ैसले के दिन अल्लाह तआला हर व्यक्ति का व्यक्तिगत रूप से फ़ैसला करेंगे (6:94; 19:80,95), और अल्लाह का इंसाफ़ ही एक आदर्श इंसाफ़ है। क़ुरआन के अनुसार पैग़म्बर हज़रत यूसुफ़ से जब उनके सौतेले भाइयों ने यह निवेदन किया कि वह अपने सगे भाई के बदले हम में से किसी को रोक लें तो यूसुफ़ अलैहिस सलाम ने ‘‘कहा कि अल्लाह की पनाह मांगता हूं इस बात से कि जिस व्यक्ति के पास हमने अपनी चीज़ पाई है उसको छोड़ कर किसी अन्य को पकड़ें, अगर हम ऐसा करेंगे तो ज़ालिम होंगे’’(12:79)। अगर आरोपी के अन्दर कोई कमी हो, या वह मानसिक रूप से विक्षिप्त हो, या और किसी दबाव की वजह से वह अपराध करने पर मजबूर हुआ हो, तो उसे बरी किया जा सकता है या उसकी सज़ा में कमी की जा सकती है।

हज़रत यूसुफ़ के क़िस्से में स्थितियों के लिहाज़ से छूट देने और अनुकूल व उचित फ़ैसला करने की नज़ीर मिलती है:‘‘उस के क़बीले में एक फ़ैसला करने वाले ने यह फ़ैसला दिया कि अगर उसका कुर्ता आगे से फटा हुआ है तो यह सच्ची और यूसुफ़ झूटा, और अगर कुर्ता पीछे से फटा हो तो यह झूटी और वह सच्चा। जब उसका कुर्ता देखा (तो) पीछे से फटा था (तब उसने ज़ुलेखा से कहा) क यह तुम्हारा ही छल कपट है और कुछ शक नहीं कि तुम औरतों के छलकपट बहुत (भारी) होते हैं।’’(12:26-28)।

शरीअत के अन्य सभी क़ानूनों की तरह पैनल लॉ भी आम सिद्धांत और दिशाएं निर्धारित करता है और कुछ ख़ास बुनियादी मामलों को निर्धारित करता है जबकि तफ़सीली बातों को और विभिन्न ज़मानों की बदली हुई परिस्थितियों के हिसाब से विशेष रूप से तय करने को इंसानी विवेक पर छोड़ देता है। सामने आने वाले अपराधों के लिए परिचित कराए गए पैनल ल० को शरीअत की शब्दावली में ‘‘ताज़ीर’’ कहा जाता है, जो कि अरबी शब्द है जिसका अर्थ है सज़ा देना, संस्कार सिखाना या सुधार करना। ऐसे मामलों में सज़ा का निर्धारण क़ानून बना कर होता है या अदालत के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, और फ़ैसला विभिन्न समाजों और विभिन्न व्यक्तियों के बारे में विभिन्न ज़मानों और विभिन्न स्थानों की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार अलग अलग होता है।

जानबूझ कर हत्या करना या घायल करना

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ
فِي الْقَتْلٰى ؕ اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ
وَالْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى ؕ فَمَنْ عُفِيَ لَهٗ مِنْ اَخِيْهِ
شَيْءٌ فَاتِّبَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَآءٌ اِلَيْهِ
بِاِحْسَانٍ ؕ ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ
وَرَحْمَةٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَلَهٗ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٨﴾ وَلَكُمْ فِي الْقِصَاصِ
حَيٰوةٌ يّٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿١٧٩﴾

ऐ मोमिनो! तुम को मक़्तूल के बारे में हुक्म दिया जाता है क़िसास का (यानी .खून का बदला .खून) ये है के आज़ाद के बदले आज़ाद, गुलाम के बदले गुलाम, औरत के बदले औरत, फिर अगरी मक़्तूल की तरफ़ से क़ातिल के लिए कुछ माफ़ कर दिया जाए तो वारिसे मक़्तूल को पसंदीदा तरीक़ से मुताल्बा करना चाहिये और क़ातिल को .खुश .खुई से अदा करना चाहिए, तुम्हारे रब की तरफ़ से ये त.खफ़ीफ़ सज़ा शाहाना तरहुम है, फिर जो इसके बाद हद से आगे बढ़ेगा उसके लिए आख़िरत में बड़ा दर्दनाक अज़ाब होगा। ऐ फ़हेम रखने वालो! ये क़ानूने क़िसास तुम्हारी जान बचाने के लिए है, उम्मीद है के तुम इस क़ानून की ख़िलाफ़वर्ज़ी से परहेज़ करते रहोगे। (2:178-179)

وَمَنْ يَّقْتُلْ مُؤْمِنًا مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآؤُهٗ
جَهَنَّمُ خٰلِدًا فِيْهَا وَغَضِبَ اللّٰهُ عَلَيْهِ وَ
لَعَنَهٗ وَاَعَدَّ لَهٗ عَذَابًا عَظِيْمًا ﴿٩٣﴾

और जो श.ख्स किसी मुसलमान को क़सदन क़त्ल करेगा तो उसकी सज़ा दोज़ख है, जिसमें वो हमेशा रहेगा, और अल्लाह का ग़ज़ब उस पर जारी रहेगा, और अल्लाह उसको अपनी रहमत से दूर रखेगा, और उसके लिए बड़ी सज़ा का सामान तैयार करेगा। (4:93)

مِنْ اَجْلِ ذٰلِكَ ۚ كَتَبْنَا عَلٰى بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ
اَنَّهٗ مَنْ قَتَلَ نَفْسًا بِغَيْرِ نَفْسٍ اَوْ
فَسَادٍ فِي الْاَرْضِ فَكَاَنَّمَا قَتَلَ النَّاسَ
جَمِيْعًا ؕ وَمَنْ اَحْيَاهَا فَكَاَنَّمَآ اَحْيَا
النَّاسَ جَمِيْعًا ؕ وَلَقَدْ جَآءَتْهُمْ رُسُلُنَا
بِالْبَيِّنٰتِ ۫ ثُمَّ اِنَّ كَثِيْرًا مِّنْهُمْ بَعْدَ ذٰلِكَ
فِي الْاَرْضِ لَمُسْرِفُوْنَ ﴿٣٢﴾

इसी वजह से हमने बनी इस्राईल पर ये लिख दिया के जो श.ख्स किसी को बिला मुआवज़ा दूसरे श.ख्स के या बदून किसी फ़साद के जो ज़मीन में उससे फ़ैला हो क़त्ल कर डाले तो गोया उसने तमाम आदमियों को क़त्ल कर डाला, और जो किसी को बचा लाये तो गोया के उसने तमाम आदमियों को बचा लिया, और बनी इस्राईल के पास हमारे बहुत से रसूल खुली निशानियां लेकर आए, फिर भी बहुत से उनमें से दुनिया में .ज्यादती करने वाले ही रहे। (5:32)

وَكَتَبْنَا عَلَيْهِمْ فِيهَآ أَنَّ النَّفْسَ
بِالنَّفْسِ وَالْعَيْنَ بِالْعَيْنِ وَالْأَنفَ
بِالْأَنفِ وَالْأُذُنَ بِالْأُذُنِ وَالسِّنَّ
بِالسِّنِّ وَالْجُرُوحَ قِصَاصٌ فَمَن تَصَدَّقَ
بِهِۦ فَهُوَ كَفَّارَةٌ لَّهُۥ وَمَن لَّمْ يَحْكُم بِمَآ
أَنزَلَ اللَّهُ فَأُو۟لَٰٓئِكَ هُمُ الظَّٰلِمُونَ ﴿٤٥﴾

और हमने उसमें ये फ़र्ज़ कर दिया था के जान के बदले जान, आंख के बदले आंख, नाक के बदले नाक, कान के बदले कान, दांत के बदले दांत, और ख़ास ज़ख्मों का भी बदला है, फ़िर जो उसको माफ़ कर दे तो वही उसका कफ़्फ़ारा है, और जो अल्लाह के नाज़िल किये हुए अहकाम के मुताबिक़ हुक्म ना करे तो वो ही ज़ालेमीन में शुमार होंगे। (5:45)

وَلَا تَقْتُلُوا۟ النَّفْسَ الَّتِى حَرَّمَ اللَّهُ إِلَّا
بِالْحَقِّ وَمَن قُتِلَ مَظْلُومًا فَقَدْ جَعَلْنَا
لِوَلِيِّهِۦ سُلْطَٰنًا فَلَا يُسْرِف فِّى الْقَتْلِ إِنَّهُۥ
كَانَ مَنصُورًا ﴿٣٣﴾

और तुम उस शख़्स को मत क़त्ल करो जिसको अल्लाह ने हराम कर दिया है, मगर हक़ के साथ, और जो ना हक़ क़त्ल हो तो हमने उसके वारिस को इख़्तियार दिया है, फ़िर वो क़त्ल (के क़सास) में ज़्यादती ना करे, बेशक उसकी मदद की जाएगी। (17:33)

प्राचीन सभ्यताओं और उनके क़ानूनों में (जैसे बेबीलोन, आशूरी, यूनानी, रोमन, जर्मन क़बीले और इस्लाम से पहले के अरब क़बीलों में), और यहूदियों के क़ानूनों में बदला लेना प्रचलित था (एक्सोडस 21:23 एफ़एफ़) यह बदला कभी कभी सामूहिक रूप से लिया जाता था और हत्या करने वाले के पूरे क़बीले को निशाना बनाया जाता था। क़ुरआन के मुताबिक़ हज़रत आदम के एक बेटे को उसके भाई ने क़त्ल किया था (क़ुरआन 5:27-31(बाइबिलःजेनेसिसः4:1-16) जिसके संदर्भ में तौरात में इंसानी जान के क़ीमती होने पर ज़ोर दिया गया था और हत्या करने को एक अपराध घोषित किया गया थाः“इस (हत्या) की वजह से हमने बनी इस्राईल पर यह आदेश उतारा कि जो व्यक्ति किसी को (अकारण) क़त्ल करेगा (यानी) बग़ैर इसके कि जान का बदला लेना हो या देश में उत्पात मचाने की सज़ा देना हो तो उसने मानो तमाम लोगों की हत्या कर दी और जिसने उसकी जान बचाई तो मानो सभी लोगों के जीवन का रक्षक बना” (5:23)। क़ुरआन ने किसी व्यक्ति की जान बूझ कर हत्या का बदला केवल हत्यारे की जान लेने तक सीमित किया, हत्यारे के अलावा किसी की भी जान लेने से मना किया। क़ुरआन की आयत 2:178 सख़्ती से इस बात को मना करती है कि हत्यारे के परिवार या क़बीले के किसी भी व्यक्ति से या क़बीले के सरदार से बदला लिया जाए, जबकि उससे पहले यह होता था कि अगर किसी ग़ुलाम ने किसी का क़त्ल किया तो ग़ुलाम के आक़ा से या उसके क़बीले के किसी आज़ाद आदमी से उसका बदला लिया जाता था, चाहे क़त्ल होने वाला ख़ुद भी एक ग़ुलाम ही रहा हो। इसके अतिरिक्त, कभी ऐसा होता कि पीड़ित (मृतक)

का क़बीला अपने मारे गए आदमी के बदले हत्यारे के क़बीले के ज़्यादा आदमियों को या उसके किसी बड़े आदमी को क़त्ल करता ताकि अपने बर्चस्व और ताक़त को जताए। क़ुरआन ने बदले को इस लिहाज़ से भी सीमित किया और जितने व्यक्ति मारे गए हैं उनके बदले उतने ही व्यक्तियों की जान लेने का अधिकार दिया। उपरोक्त आयत को समझने के लिए जिसमें ग़ुलाम के बदले ग़ुलाम का ही ''क़िसास'' लेने का आदेश दिया गया है और आज़ाद आदमी को उसके बदले क़त्ल न किए जाने का हुक्म है या औरत के बदले औरत का क़िसास रखा गया है और कोई मर्द जो किसी औरत को क़त्ल करे उससे क़िसास न लिया जाने का इशारा है तो इस सम्बंध में बहुत से फ़क़ीहों ने आयत के पहले हिस्से में ज़िक्र किए गए सिद्धांत का तर्क दिया है:''तुम पर मक़तूल (मारे गए व्यक्ति) का बदला क़िसास लेना अनिवार्य किया गया है'', और जैसा कि आयत 5:45 में कहा गया ''और हमने उन लोगों के लिए तौरात में यह हुक्म लिख दिया था कि जान के बदले जान , और जैसा कि रसूल सल्ल० की एक हदीस में भी कहा गया है।

वो ख़ास मामले जिनका इशारा आयत (2:178) में किया गया है केवल इस बात पर ज़ोर देने के लिए हैं कि बदले में ज़्यादती जायज़ नहीं है, अलबत्ता इस आम सिद्धांत को नहीं बदला गया कि तमाम इंसानी जानें बराबर महत्व रखती हैं और बदला केवल हत्यारे से ही लिया जाएगा, चाहे वह कोई भी हो, इसी तरह क़ातिल भी चाहे जो हो (देखें अलक़ुरतुबी की तफ़सीर जिल्द 2), और देखें मुहम्मद अब्दुहू और रशीद रज़ा की तफ़सीर अलमनार जिल्द 2)। मर्द और औरत की जान भी बराबर का महत्व रखती है इस बात को भी बहुत से मुफ़स्सिरों और फ़क़ीहों ने स्पष्ट किया है। इसके अलावा अलक़ुरतुबी ने लिखा है:''इसमें (फ़क़ीहों के बीच) कोई मतभेद नहीं है कि क़त्ल का क़िसास केवल शासकीय अधिकारियों के द्वारा ही लिया जाएगा क्योंकि वही क़िसास दिलाने के पात्र और ज़िम्मेदार हैं और अन्य सज़ाएं लागू करने के भी जो क़ुरआन में बयान की गयी हैं या किसी और तरह से तय की गयी हैं। आयत में सभी ईमान वालों को सम्बोधित किया गया है और चूंकि वो यह काम सब के सब सामूहिक रूप से नहीं कर सकते इसलिए शासकीय अधिकारियों को इसका अधिकार दिया जाता है कि वो मोमिनों की तरफ़ से इस ज़िम्मेदारी को पूरा करें और क़िसास व अन्य सज़ाएं लागू करें (जिल्द 2, पेज 245-246, क़ाहिरा)।

क़ुरआन अहसान यानि उपकार करने के लिए मआफ़ करने की सीख देता है (2:178) और इसे दया और मुरव्वत की बात ठहराता है कि यह ''उसके लिए (गुनाहों की) भरपाई होगी'' (5:45)। मुहम्मद असद ने बिल्कुल सही बात लिखी है कि ''तौरात में मआफ़ करने की यह सीख नहीं है (जैसा कि क़ुरआन की आयत 5:45 में बताया गया है) जिससे यह बात स्पष्ट होती है कि न केवल क़ुरआन बल्कि ईसा मसीह की शिक्षाओं से भी और ख़ास तौर से ''सर्मन

ऑन दि माउणट'' से यह बात मालूम होती है कि उपरोक्त शिक्षा तौरात की वास्तविक शिक्षाओं का हिस्सा रही है'' लेकिन जिसे अनदेखा कर दिया गया है (नोट नम्बर 62, आयत 5:45 की व्याख्या, और देखें मेथीव 5 38-40)। मारे गए व्यक्ति के वारिसों को यह सीख दी गयी है कि हत्यारे की जान बख़्श दें, जैसा कि इस आयत (2:278) से मुफ़स्सिरों और फ़क़ीहों ने नतीजा निकाला है।

अगर मृतक के वारिस मौजूद न हों, या वारिसों का कुछ पता न हो तो सरकार मआफ़ी और मुआवज़े का यह मामला अंजाम देगी। इसी तरह, पूरा समाज हत्यारे को मआफ़ किए जाने की अपील कर सकता है और जां बख़्शी करके अपेक्षाकृत कम दर्जे की सज़ा देने की सलाह दे सकता है और यह काम.रेरेण्डम के द्वारा भी हो सकता है और प्रतिनिधि सदन के द्वारा भी हो सकता है:'' यह तुम्हारे रब की तरफ़ से छूट और रहमत है।'' मानवीय ग़लतियों का ख़ुमियाज़ा मुक़दमा बाज़ी और अदालत के फ़ैसलों से होता है, आज की हमारी जटिल समस्याओं में, इस स्थिति में कि जब कोई व्यक्ति आम हालात में पहली बार जानबूझ कर क़त्ल करने का अपराध ी ठहरे, सज़ाए मौत को टाल देने की जुगत की जा सकती है। दोबारा वही अपराध करने की स्थिति में मृत्यू दण्ड निश्चित रूप से दिया जा सकता है। अलबत्ता क़ुरआन यह बताता है कि असिल बदला तो आख़िरत में ही मिलेगा:''और जो व्यक्ति मुसलमान को जानबूझ कर मार डालेगा तो उसकी सज़ा जहन्नम है जिसमें वह हमेशा (जलता) रहेगा और उस पर अल्लाह का प्रकोप होगा और अल्लाह तआला लानत करेंगे और ऐसे व्यक्ति के लिए अल्लाह ने बड़ी (सख़्त) सज़ा तैयार कर रखी है।'' जब हत्या और हिंसा की वारदातें गम्भीर रूप से बढ़ जाएं और ख़ास तौर से सीरियल किलिंग या सामूहिक हत्याओं का मामला हो तो मृत्यू दण्ड के साथ साथ सामाज सुधार की प्रक्रिया भी अनिवार्य हो जाती है:''कसिास में तुम्हारे लिए ज़िन्दगी है'' (2:179)।

जानबूझ कर घायल करने के मामले में जब शरीर घायल हो जाए या किसी अंग की क्षति हो तो घायल व्यक्ति को यह प्रेरणा दी गयी है कि बदला लेने को छोड़ दे और माली बदला वसूल कर ले। और दोनों ही बातों को मआफ़ कर देना बहुत ही अहसान और शराफ़त की बात है जिसे क़ुरआन में बहुत बड़े दर्जे की नेकी कहा गया है ''यह उस के लिए (पिछले गुनाहों का) प्रायिश्चित हो जाएंगा''(5:45)। यह तौरात में बयान की गयी कड़ी से कड़ी सज़ाओं की तुलना में एक प्रगतिवादी उपाय है (एक्सोडस 21:23 एफ़ एफ़)। यह भी एक महत्वपूर्ण बात होगी कि घाव का बदला लेने का ज़िक्र क़ुरआन में केवल आयत 5:45 में किया गया है और तौरात के क़ानून के संदर्भ में किया गया है। चूंकि मआफ़ करने की प्रेरणा दी गयी है इसलिए यह केवल घायल व्यक्ति तक ही सीमित नहीं होना चाहिए और उसे पूरे समाज तक विस्तारित किया जा सकता है, और यह प्रक्रिया जनमत संग्रह (रेरेण्डम) के द्वारा या प्रतिनिधि सदन के फ़ैसले

से हो सकती है। यह तरीक़ा आज के इस्लामी देशों में अपनाया जा सकता है। आधुनिक सेकुलर क़ानूनों की तरह शरीअत का क़ानून अपने बचाव में किसी की जान लेने के लिए सज़ा नहीं देता, क्योंकि यह हत्या की मनाही में एक अपवाद की स्थिति है:''अलबत्ता यह कि सच्चाई और इंसाफ़ के आधार पर हो'' (17:33)। रसूल सल्ल० की एक हदीस से स्पष्ट होता है कि आदमी को अपनी जान, माल, परिवार की सुरक्षा के लिए उपाय करना चाहिए, और अगर इस कोशिश में कोई इंसान अपनी जान खो देता है तो वह शहीद होगा (इब्ने हंबल, अबुदाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने हय्यान)।

बग़ैर इरादा हत्या

وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ اَنْ يَّقْتُلَ مُؤْمِنًا اِلَّا
خَطَـًٔا ۚ وَمَنْ قَتَلَ مُؤْمِنًا خَطَـًٔا
فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ وَّدِيَةٌ مُّسَلَّمَةٌ
اِلٰٓى اَهْلِهٖٓ اِلَّآ اَنْ يَّصَّدَّقُوْا ۭ فَاِنْ كَانَ
مِنْ قَوْمٍ عَدُوٍّ لَّكُمْ وَهُوَ مُؤْمِنٌ
فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۭ وَاِنْ كَانَ مِنْ
قَوْمٍۢ بَيْنَكُمْ وَبَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ
مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ
مُّؤْمِنَةٍ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ
مُتَتَابِعَيْنِ ۡ تَوْبَةً مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَكَانَ اللّٰهُ
عَلِيْمًا حَكِيْمًا ﴿٩٢﴾

और किसी मोमिन की ये शान नहीं के दूसरे माूमिन को क़त्ल करे, मगर ग़लती से, और जो किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उस पर मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी का आज़ाद करना है, और ख़ून बहा है जो उसके ख़ानदान को दे दे, मगर ये के वो लोग माफ़ कर दें (तो उनको इख़्तियार है) अगर मक़्तूल तुम्हारे दुश्मनों में से है वो ख़ुद मोमिन हो तो सिर्फ़ एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी का आज़ाद करना है, और अगर मक़्तूल ऐसे लोगों में से है जिनमें और तुम में सुलेह का अहद हो तो वारिसाने मक़्तूल को ख़ून बहा देना है, और एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी आज़ाद करना है, और जिसको ये मयस्सर ना हो तो मुतावातिर दो महीने के रोज़े रखे बतौर तौबा के जो मुक़र्रर हुई है अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह ख़ूब जानने वाला और हिकमत वाला है। (4:92)

ये आयतें यह बताती हैं कि किसी मोमिन की हत्या केवल इसी स्थिति में बर्दाश्त की जा सकती है कि उसने ग़लती से ऐसा किया हो और हत्या करने की कोई मंशा उसकी न हो। ऐसी स्थिति में बदला लेने की इजाज़त नहीं है, क्योंकि हत्या करने की मंशा से हत्या नहीं की गयी। इस तरह की हत्या की सज़ा आम हालत में आयत 4:92 के अनुसार एक मोमिन व्यक्ति को ग़ुलामी से आज़ाद करना और हत्यारे के वारिसों को मुआवज़ा देना है, सिवाय इसके कि मृतक

के घर वाले अहसान और नेकी के रूप में मुआवज़ा भी मआफ़ कर दें। अलबत्ता अपवाद की स्थिति यह है कि किसी मोमिन के हाथों ग़ैर इरादा किसी ऐसे मोमिन का क़त्ल हो जाए जिसका क़बीला ईमान वालों से दुश्मनी रखता हो और लड़ाई करता रहता हो। इस तरह की हत्या सुलह के दौरान फ्रण्टलाइन पर या सीमाओं पर संयोग से हो सकती है। कभी ऐसा हो सकता है कि दुश्मन क़बीले से सम्बंध रखने वाला कोई मोमिन व्यक्ति ईमान वालों के देश में दाख़िल हो और संयोग से किसी मोमिन के हाथों मार दिया जाए। ऐसी स्थिति में सज़ा एक मोमिन ग़ुलाम को आज़ाद करना होगी, लेकिन अगर दुश्मन क़बीले को जो कि लड़ाई पर उतारू रहता है उसका मुआवज़ा भी दिया जाए तो यह निरर्थ बात होगी। अगर मृतक किसी ऐसे क़बीले से सम्बंध रखता हो जिससे मोमिनों की जमाअत ने कोई समझौता कर रखा हो, चाहे वह व्यक्ति मुसलमानों के देश में आया हो या स्थाई रूप से रह रहा हो तो सज़ा वही होगी जो आम स्थितियों में है:एक मोमिन ग़ुलाम को आज़ाद करना और मृतक के घर वालों को मुआवज़ा देना। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि जिन लोगों से मुसलमानों का समझौता हो उनके वर्ग के ग़ैर मुस्लिम व्यक्ति का मामला भी उस वर्ग के किसी मोमिन व्यक्ति के बराबर ही है।

उपरोक्त आयत साफ़ तौर से बताती है कि ग़ुलामी में बंधे किसी इंसान को आज़ाद कराना बग़ैर इरादा क़त्ल के तमाम मामलों में एक सज़ा के रूप में निर्धारित किया गया है क्योंकि ग़ुलामी को क्रमवार तरीक़े से समाप्त करना इस्लाम की सुधार योजना का एक हिस्सा था। यह सुधार योजना इंसानी आज़ादी और इंसानी बराबरी के सिद्धांत देती है, ग़ुलामी के कारणों की रोकथाम करती है, ग़ुलामी की हालत में जी रहे व्यक्तियों के अधिकारों की हिफ़ाज़त करती है और जीवन व काम के सभी क्षेत्रों में उनके अधिकारों की रक्षा करती है, और उन्हें अनिवार्य या ऐच्छिक रूप से आज़ाद करने के लिए नियम देती है। मशूह मुफ़स्सिर अलनसफ़ी (मृ 537 हिजरी/1142 ई) ने यह बिन्दु रेखांकित किया है कि किसी इंसान को ग़ुलामी से आज़ाद कराना ही किसी दूसरे इंसान की हत्या की भरपाई का तरीक़ा है, क्योंकि किसी ग़ुलाम इंसान को आज़ाद कराने का मतलब एक इंसान को नया जीवन देने के समान है (तफ़सीर आयत 4:92)। चूंकि ग़लती से भी किसी इंसान का क़त्ल हो जाए तो भी उसका जीवन नहीं लोटाया जा सकता इसलिए किसी दूसरे ऐसे इंसान को जो एक आज़ाद जीवन बिताने से वंचित हो एक वास्तविक जीवन देने को सम्भव बनाया गया। अलनसफ़ी ने ग़ुलामी को मौत के समान ठहराते हुए लिखा है कि ग़ुलाम का सम्बंध ऐसे समाज से है जहां सत्य को छुपाना एक आम बात हो यानि क़ुर छाया हुआ हो, और इस अन्याय की वजह से ऐसा समाज वास्तव में मुर्दा होता है, जैसा कि क़ुरआन ने इशारा किया है (6:122; 8:24)। इस तरह ग़ुलामी मुसलमानों को इस्लाम पूर्व युग से विरासत में मिली, और इस्लाम ने इस बात पर ज़ोर दिया कि ग़ुलामी का चलन इस्लाम के सिद्धांतों के विपरीत है, और उसे समाप्त करने के लिए एक समग्र योजना

अपनाई। दुर्भाग्य से मुसलमानों ने इस योजना को ठीक से नहीं समझा और न अपने शासनकाल में इसे पूरा किया, और उन्होंने दूसरों के सांस्कृतिक और सामाजिक तरीक़ों का अनुसरण किया जो उनसे पहले गुज़र चके थे या उनके ज़माने में ही मौजूद थे।

ताक़त के बल पर गुण्डागर्दी, डकेती, सीरियल किलिंग, लूटमार

اِنَّمَا جَزٰٓؤُا الَّذِيْنَ يُحَارِبُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ
وَ يَسْعَوْنَ فِي الْاَرْضِ فَسَادًا اَنْ يُّقَتَّلُوْٓا اَوْ
يُصَلَّبُوْٓا اَوْ تُقَطَّعَ اَيْدِيْهِمْ وَ اَرْجُلُهُمْ
مِّنْ خِلَافٍ اَوْ يُنْفَوْا مِنَ الْاَرْضِ ؕ ذٰلِكَ
لَهُمْ خِزْيٌ فِي الدُّنْيَا وَ لَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ
عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿۳۳﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا مِنْ
قَبْلِ اَنْ تَقْدِرُوْا عَلَيْهِمْ ۚ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ
غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۳۴﴾

जो अल्लाह से और उसके रसूल से लड़ते हैं और मुल्क में फ़साद फ़ैलाते रहते हैं तो उनकी यही सज़ा है के उनको क़त्ल किया जाए, या सूली दी जाए या उनके हाथ पाऊँ मुखालिफ़ जानिब से काट दिये जायें, या ज़मीन पर से निकाल दिये जायें, ये उनके लिए दुनिया में सख़्त रूसवाई है, और उनके लिये आख़िरत में अज़ाबे अज़ीम है। मगर जो गिरफ़्तार होने से पहले तौबा कर लें तो जान लो के बिलाशुबह अल्लाह बख़्शने वाला है, और बड़ा रहने करने वाला है। (5:33-34)

इन आयतों में जो कड़ी सज़ाएं बयान की गयी हैं उन्हें पढ़ते हुए कुछ मौलिक सच्चाइयों को ज़हन में रखना चाहिए। पैग़म्बर सल्ल० के ज़माने में अरब की जो सामाजिक व ऐतिहासिक परिस्थितियां थीं हम उन्हें याद करें, और ख़ास तौर से उन विशेष अवसरों व मामलों को जिनके संदर्भ में ये आयतें उतरीं। जहां अरब के कुछ शहरों या क़स्बों जैसे मक्का, मदीना (यसरिब) और ताइफ़ वग़ैरह में कुछ क़बीले आबाद थे वहीं रेगिस्तान में भटकते रहने वाले कुछ घुमतूं क़बीले भी मौजूद थे जो आने जाने वाले क़ाफ़िलों पर हमला करते थे और उनके माल व सामान को लूट कर अपना जीवन बिताते थे। उनमें से कुछ लोग मदीना में पैग़म्बर सल्ल० के पास आए और आप को बताया कि वो भी आप पर ईमान ले आए हैं और मुसलमान हो गए हैं। पैग़म्बर सल्ल० ने उन्हें ठहराया और उनके खाने पीने की व्यवस्था की, और दवा इलाज का प्रबंध किया क्योंकि वो वातावरण के बदलाव की वजह से बीमार पड़ गए थे, और उन्हें कुछ ऊंटनियां दीं ताकि उनका दूध पी लिया करें। जब वो स्वस्थ हो गए तो उन्होंने ऊंटनियों के रखवालों को मार डाला और ऊंटनियां अपने साथ भगा कर ले गए (रिवायत बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा)। ऐसे उजड वर्गों को जो क़ानून व्यवस्था से आज़ाद थे नियंत्रण में लाना ज़रूरी था ताकि वो क़ानून एवं व्यवस्था के पाबन्द बनें और शान्ति व्यवस्था स्थिर हो। अतःअराजकता से ग्रस्त ऐसे वर्गों के लिए ये सज़ाएं तय की गयीं जो अपनी

संख्या, हथ्यारों, अपने ठिकानों को लूटमार, रक्तापात और उत्पात मचाने के लिए इस्तेमाल करते थे। यह आदेश सशस्त्र बाग़ी समूहों पर भी लागू होता है जो मारो और भागो की रणनीति से काम करते हैं।

इन आयतों में जो सज़ाएं बयान हुई हैं उनमें क़त्ल कर देने, फांसी पर चढ़ा देने, हाथ और पांव काट डालने, किसी और क्षेत्र में भेज दिए जाने या कुछ व्याख्याओं के मुताबिक़ जेल में डाल देने तक की सज़ाएं शामिल हैं। विधायिका या न्यायपालिका के अधिकारी इन वैकल्पिक तरीक़ों में कोई भी उचित तरीक़ स्थिति की ज़रूरत या अनुकूलता के हिसाब से अपना सकते हैं। फ़क़ीहों ने यह शर्त लगाई है कि इन दंगाई समूहों पर हमला करने से पहले उन्हें चेतावनी देना ज़रूरी है। यह बात ज़हन में रखना चाहिए कि कोई भी अपराध किसी निश्चित घटना से साबित होना चाहिए जिसमें कोई सन्देह या शक न हो, और अपराधी या अपराधियों की गिरतारी और हिरासत व पूछताछ के दौरान उनसे बर्ताव में और अदालती प्रक्रिया के अनुसार उन पर मुक़दमा चलाने जैसे सभी ज़रूरी प्रावधान जो इंसाफ़ का तक़ाजा हैं, पूरे होना चाहिएं। जब आज़ादाना और न्यायपूर्ण तरीक़े से मुक़दमे का फ़ैसला होने के बाद सज़ा तय की जाए तो इस सज़ा को इंसानी तरीक़े से अमल में लाया जाए, जैसा कि पैग़म्बर सल्ल० ने फ़रमायाः ''अल्लाह ने तुम्हारे लिए हर काम में अहसन तरीक़ा (अच्छा ढंग) अपनाना अनिवार्य किया है, जब तुम ज़िब्ह (पशु कटान) करो तो ज़िब्ह भी अहसन (बेहतर) तरीक़े से करो।'' (मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा)

टार्चर करना मना है, और कोई सज़ा देते समय कम से कम तकलीफ़ हो यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है। अभियुक्त की प्रतिष्ठा और स्थिति का लिहाज़ करना भी ज़रूरी है, और कथित अपराधिक कृत्य की पूरी स्थिति को भी समझना चाहिए (देखें अलक़ुरतुबी की तफ़सीर, जिल्द 6, आयत 5:33,34; मुहम्मद अब्दुहू व रशीद रज़ा की तफ़सीर अलमनार, जिल्द 6, आयत 5:33,34)। अलबत्ता, ये आयतें अपनी शैली और परिप्रेक्ष्य के लिहाज़ से युद्ध जैसी स्थिति से सम्बंधित मालूम होती हैं ना कि किसी अपराधिक घटना से सम्बंधित जो पैनल लॉ में डिफ़ाइन और सेन्कशन किए गए हैं, यह अलग बात है कि मुफ़स्सिरों और फ़क़ीहों ने इसे दूसरे अंदाज़ से समझा है। अगर इसे युद्ध जैसी स्थिति से सम्बंधित माना जाए तो क़त्ल करना, हाथ पांव काटना, और निकाल बाहर करना आदि को फ़ौजी हमले या युद्ध के घटनात्मक नतीजों के रूप में लिया जा सकता है।

बहरहाल, यह आयतें एक क़ानूनी सिद्धांत देती हैं जो शरीअत के नैतिक उद्देश्यों पर ज़ोर देता है जो कि मात्र क़ानूनी पहलुओं से आगे की बात है। जिन लोगों के बारे में अल्लाह और रसूल के ख़िलाफ़ जंग छेड़ने और ज़मीन में उत्पात मचाने की बात कही गयी है उन्हें भी मआफ़ किया जा सकता है अगर वो वास्वत में तौबा करें और उनका ज़ुल्म को छोड़ देना साबित हो,

इससे पहले कि वो मग़लूब हो जाएं। मशहूर फ़क़ीह इब्नुलक़य्यिम इसे एक आम क़ानूनी सिद्धांत मानते हैं और इसे किसी ख़ास अपराध तक सीमित नहीं मानते (इल्मुल मुवक़्क़िईन, जिल्द 2, पेज 48-49, क़ाहिरा)। पैग़म्बर साहब की एक हदीस से यह बात पुरी तरह स्पष्ट होती है कि अगर कोई उचित कारण मौजूद हो तो सज़ा को छोड़ा जा सकता है। किसी दोषी को बरी कर देने में ग़लती हो जाना इस बात से बहतर है कि किसी निर्दोष को ग़लती से सज़ा दे दी जाए (रिवायत इब्ने अबी शेबा, तिरमिज़ी, हाकिम, बेहिक़ी, सुयूती ने इसे प्रमाणित (सही) माना है)।

وَ اَنْفِقُوْا فِیْ سَبِیْلِ اللّٰهِ وَ لَا تُلْقُوْا بِاَیْدِیْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۛۚ وَ اَحْسِنُوْا ۛۚ اِنَّ اللّٰهَ یُحِبُّ الْمُحْسِنِیْنَ ۝۱۹۵

और अल्लाह की राह में ख़र्च किया करो, और अपने आपको अपने हाथों हलाकत में ना डालो, और नेकी किया करो, बिलाशुबह अल्लाह नेकी करने वालों को अपना महबूब रखता है। (2:195)

یٰۤاَیُّهَا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا لَا تَاْكُلُوْۤا اَمْوَالَكُمْ بَیْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ اِلَّاۤ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِّنْكُمْ ۫ وَ لَا تَقْتُلُوْۤا اَنْفُسَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ بِكُمْ رَحِیْمًا ۝۲۹

मोमिनों! एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो, अलबत्ता आपस की रज़ामंदी से तिजारत का लेनदेन है कोई फ़ायदा हो जाए तो जायज़ है, और आपस में एक दूसरे को हलाक़ ना किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम पर बड़ा ही मेहरबान है। (4:29)

इन आयतों में बहुवचन का उपयोग हुआ है और इस तरह पूरे समाज को सम्बोधित किया गया है। इसलिए इन आयतों को पूरे समाज के लिए एक चेतावनी के रूप में देखा जा सकता है जो समाज स्वयं अपने हाथों नष्ट करने और स्वयं का विनाश करने के विरुध दी गयी है, और अपने हाथों स्वयं अपनी हत्या इस वजह से होती है कि समाज के व्यक्ति स्वार्थीपन और आत्मसिा) में मगन हो जाते हैं और एक दूसरे के प्रति या पूरे समाज के कल्याण के प्रति अपनी कोई ज़िम्मेदारी महसूस नहीं करते। फिर भी इन आयतों को, और विशेष रूप से आख़री आयत को व्यक्तिगत आत्महत्या की मनाही के अर्थ में भी लिया जा सकता है। एक अल्लाह पर ईमान रखने वाले व्यक्ति का यह अक़ीदा होता है कि अल्लाह ने ही जीवन दिया है और यह अक़ीदा मोमिन से यह मांग करताहै कि जीवन के उतार चढ़ाव का सामना साहस व उत्साह से करे। एक अल्लाह और आख़िरत पर ईमान मोमिन को राहत व सुख की स्थिति में अल्लाह की शुक्रगुज़ारी पर उभारता है और प्रतिकूल परिस्थितियों में सब्र (धैर्य) पर बने रहने की भावना देता है, जैसा कि पैग़म्बर सल्ल० की एक हदीस भी है जो इमाम मुस्लिम, इमान इब्ने हंबल ने

नक़ल की है। रसूल सल्ल० ने किसी भी तरह से आत्म हत्या करने को कड़ाई से मना किया है और ख़ुद को छुरा मार लेने या ज़हर खा लेने की बात को एक मिसाल के रूप में बयान किया है (रिवायत बुख़ारी व मुस्लिम)।

आत्म हत्या करना अल्लाह पर ईमान के विपरीत होने के अलावा सामाजिक कल्याण के भी विपरीत है। हर व्यक्ति समाज से जुड़ा होता है और समाज से उसका गहरा सम्बंध होता है, क्योंकि वह समाज में ही परवान चढ़ता है और समाज के संसाधनों से लाभान्वित होता है। बच्चों के पालन में घर वाले दूसरे व्यक्तियों, दूसरे परिवारों से और पूरे समाज से तरह तरह की सहायता पाते हैं और राज्य व्यवस्था उसकी निगरानी करती है। व्यक्ति शिक्षा और रोज़गार प्राप्त करने में दूसरों से मदद लेता है या आपसी हित के मामले करता है। अतःकिसी व्यक्ति का अपने जीवन पर पूरा अधिकार जताना तथ्यात्मक नहीं है। यह समाज का अधिकार और ज़िम्मेदारी है कि व्यक्ति के जीवन की रक्षा करे और उसके स्वास्थ्य व सलामती का माध्यम बने।

आत्म हत्या की प्रवृत्ति एक मानसिक असंतुलन और अस्वस्थ मस्तिष्क का प्रतीक है और इस तरह व्यक्तियों के इंसानी अधिकार और उनकी सामाजिक सुरक्षा में समाज की असफ़लता को ज़ाहिर करता है। व्यक्ति को हमेशा यह ज़हन में रखना चाहिए कि जो कोई भी आत्म हत्या करता है उसकी ज़िम्मेदारी उसकी अपनी मानसिक स्थिति पर निर्भर होती है, और किसी भी तरह का दबाव या कमज़ोरी जिसमें वह व्यक्ति ग्रस्त है उसको समझना ज़रूरी है। अल्लाह ही बहतर जानते हैं कि व्यक्ति के दिल व दिमाग़ की गहराई में क्या है, और वही हैं जो इस पीड़ा की स्थिति को समझ सकते हैं और यह फ़ैसला कर सकते है कि उसके साथ क्या मामला करना है।

शिशु हत्या

और इसी तरह बहुत से मुशरिकीन के लिए उनके माबूदों ने अपनी औलाद के क़त्ल करने को मुसतहसिन बना रखा है ताके वो उनको बर्बाद कर दें और उन पर उनके दीन को मुशतबह कर दें, और अगर अल्लाह चाहता तो वो ऐसा ना करते, तो उनको जो ये ग़लत काम कर रहे हैं अपने हाल में ही छोड़ दीजिये। (6:137)

وَ كَذٰلِكَ زَيَّنَ لِكَثِيْرٍ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ قَتْلَ اَوْلَادِهِمْ شُرَكَآؤُهُمْ لِيُرْدُوْهُمْ وَ لِيَلْبِسُوْا عَلَيْهِمْ دِيْنَهُمْ ؕ وَ لَوْ شَآءَ اللّٰهُ مَا فَعَلُوْهُ فَذَرْهُمْ وَمَا يَفْتَرُوْنَ ﴿۱۳۷﴾

वाक़ई वो बड़े नुक़सान में हैं जिन्होंने अपनी औलाद को महेज़ अपनी हिमाक़त से बग़ैर किसी सनद के क़त्ल कर डाला और उस रिज़्क़ को हराम कर लिया जो अल्लाह ने

قَدْ خَسِرَ الَّذِيْنَ قَتَلُوْٓا اَوْلَادَهُمْ سَفَهًۢا بِغَيْرِ عِلْمٍ وَّ حَرَّمُوْا مَا رَزَقَهُمُ اللّٰهُ

افْتِرَآءً عَلَى اللّٰهِ ؕ قَدْ ضَلُّوْا وَ مَا كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ۟

उनको खाने पीने को दिया था, ये हरकत अल्लाह पर तोहमत रखने के लिए की है, बेशक ये लोग गुमराही में पड़ गए और कभी सीधी राह पर आने वाले नहीं हैं। (6:140)

قُلْ تَعَالَوْا اَتْلُ مَا حَرَّمَ رَبُّكُمْ عَلَيْكُمْ اَلَّا تُشْرِكُوْا بِهٖ شَيْـًٔا وَّ بِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا ۚ وَ لَا تَقْتُلُوْۤا اَوْلَادَكُمْ مِّنْ اِمْلَاقٍ ؕ نَحْنُ نَرْزُقُكُمْ وَ اِيَّاهُمْ ۚ وَلَا تَقْرَبُوا الْفَوَاحِشَ مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَ مَا بَطَنَ ۚ وَ لَا تَقْتُلُوا النَّفْسَ الَّتِيْ حَرَّمَ اللّٰهُ اِلَّا بِالْحَقِّ ؕ ذٰلِكُمْ وَصّٰىكُمْ بِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۟

उनसे कहो, आओ अब मैं तुम को बताऊँ के तुम्हारे रब ने जो तुम पर हराम की हैं वो ये हैं (1) अल्लाह के साथ किसी दूसरे को शरीक ना करो (2) मां बाप के साथ एहसान किया करो (3) और औलाद को इफ़्लास के सबब क़त्ल ना किया करो, हम तुमको और उन सबको रिज़्क़ देते हैं (4) और बेहयाई के नज़दीक भी मत जाओ, .ख्वाह वो ज़ाहिर हों और .ख्वाह खुफ़िया (5) और जिसका .खून करना अल्लाह ने हराम कर दिया है उसको क़त्ल ना करो, हां मगर हक़ पर ये तुम को ताकीदी हुक्म है, ताके तुम .खूब समझ लो। (6:151)

وَاِذَا بُشِّرَ اَحَدُهُمْ بِالْاُنْثٰى ظَلَّ وَجْهُهٗ مُسْوَدًّا وَّ هُوَ كَظِيْمٌ ۟ يَتَوَارٰى مِنَ الْقَوْمِ مِنْ سُوْٓءِ مَا بُشِّرَ بِهٖ ؕ اَيُمْسِكُهٗ عَلٰى هُوْنٍ اَمْ يَدُسُّهٗ فِي التُّرَابِ ؕ اَلَا سَآءَ مَا يَحْكُمُوْنَ ۟

और जब उनको लड़की के पैदा होने की .खुश.खबरी दी जाती है तो (रंज के मारे) चेहरा सियाह पड़ जाता है और वो दिल ही दिल में घुटता है। छुपा फ़िरता है लोगों से इस .खबर की आर से, या ज़िल्लत के साथ उसको लिये रखे या ज़मीन में दफ़न कर दे, देखो! जो तजवीज़ ये करते हैं बहुत ही बुरी है। (16:58-59)

وَلَا تَقْتُلُوْۤا اَوْلَادَكُمْ خَشْيَةَ اِمْلَاقٍ ؕ نَحْنُ نَرْزُقُهُمْ وَ اِيَّاكُمْ ؕ اِنَّ قَتْلَهُمْ كَانَ خِطْاً كَبِيْرًا ۟

और तुम अपनी औलाद को ग़ुर्बत के डर से क़त्ल ना किया करो, हम उनको भी रिज़्क़ देते हैं और तुम को भी, बिलाशुबह उनका मार डालना बड़ा स.ख्त गुनाह है। (17:31)

وَاِذَا الْمَوْءٗدَةُ سُئِلَتْ ۟ بِاَيِّ ذَنْۢبٍ قُتِلَتْ ۟

और जब ज़िन्दा दफ़न लड़की से पूछा जायेगा। के वो किस गुनाह में क़त्ल की गई थी। (81:8-9)

इंसानी जीवन चाहे वह मर्द का हो या औरत का, बच्चे का हो या बड़े का उसे अल्लाह ने सुरक्षित किया है और अल्लाह के क़ानून में उसकी सुरक्षा का बन्दोबस्त है। इस्लाम से पहले के अरब में संतान को आर्थिक तंगी के डर से या सामाजिक कुरीतियों के दबाव में क़त्ल कर देने का चलन था हालांकि यह कोई सामान्य व्यवहार नहीं था। ऐसे पितृसत्तातमक समाज में क़बीले या परिवार का मुखिया पुरूष निरंकुश होता था और घर की महिलाओं व बच्चों पर उसके अधिकार को कोई चुनौती नहीं दी जा सकती थी। लड़कों को देवी देवताओं के नाम पर बलि देना वैध था (देखें अलज़मखशरी की तफ़सीर जिल्द 1, आयत 6:137 के संदर्भ में), और लड़कियों को कभीकभी ज़िन्दा गाढ़ दिया जाता था। क़ुरआन ने इस तरह के अत्याचार और निर्शंस कार्रवाइयों की कड़ी निन्दा की और इंसानी जीवन की अस्मिता पर ज़ोर दिया और ख़ास तौर से बच्चों को क़त्ल करने को सख़्ती से रोका (6:151(17:31,33)। दुराचार और व्यभिचार के नतीजे में बच्चों को इस तरह से मार देने की नोबत आती थी क्योंकि नाजायज़ शरीरिक सम्बंधों से पैदा होने वाले बच्चे को औरत या मर्द दोनों मिल कर समाप्त कर देने पर उतारू हो जाते थे। इसके अलावा यह दुष्कर्म पति या पत्नि या नाजायज़ प्रेम प्रसंग में बंधे युगलों में से भी किसी की हत्या का कारण बनता है। इस तरह यह समझा जा सकता है कि व्यभिचार और दुराचार पर रोक लगाने वाली आयत बच्चों की हत्या और हत्या के आम मामलों की मनाही के बीच में आई है (17:31-33)।

उस ज़माने में चूंकि ना त लड़कियों को लड़ाई में भाग लेने लायक़ समझा जाता था और न उनसे कोई आर्थिक फ़ायदा था, जबकि दूसरी तरफ़ वो लड़ाई में दुशमनों के हाथ लग जाती थीं इन सब के चलते लड़कियों के जन्म को खीज की बात समझा जाता था और बेटी पिता के लिए एक डरावना सपना बन जाती थी (16:59), और कुछ लगो अपनी बेटियों से जल्द से जल्द पीछा छुड़ाने की कोशिश करते थे (81:8-9)। अलबत्ता यहां यह ज़िक्र करना ज़रूरी है कि उस समाज में कुछ बुद्धिमान और दयाशील लोग ऐसे भी थे जिनके बारे में कहा जाता है कि वो इस्लामी शिक्षाओं के आने से पहले भी इन कुकर्मों का विरोध करते थे। ऐसे ही लोगों में से एक थे ज़ैद इब्ने अम्र व इब्ने नोफ़ल जो हज़रत उमर बिन ख़त्ताब के चचेरे भाई थे। यह ज़ैद तौहीद की मान्यता रखते थे लेकिन पैग़म्बर सल्ल० की पैग़म्बरी से पहले ही उनकी मृत्यू हो गयी थी (रिवायत बुख़ारी, देखें इब्ने हजर की शरह फ़त्हुल बारी, जिल्द 14, फ़ज़ाइल असहाबुन नबी, हदीस 3828, पेज 301, क़ाहिरा, 1978), और साअ इब्न नजिया अलतमीमी, शायर अलफ़राज़दिक़ के दादा, जो बच्चों को ज़िन्दा गाढ़ देने से बचा लिया करते थे और जिन्होंने पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल० को नबी माना और उनके पैग़ाम को स्वीकार करके मुसलमान बने (ख़ैरुद्दीन अलज़रकली, अलआलम, जिल्द 3, पेज 205, बैरूत 1980)।

यह बहुत शर्म की बात है कि शिशु हत्या या भ्रूण हत्या का यह अत्याचारी चलन आज भी

कुछ अति विक्सित देशों में मौजूद है और कुछ विकास शील देशों में भी है और अब इसके लिए भ्रूण की जांच करने वाली तकनीक भी इस्तेमाल हो रही है और स्केनिंग के द्वारा जान लिया जाता है कि भ्रूण पुरूष का है या स्त्री का। स्त्री भ्रूण होने पर गर्भपात करा दिया जाता है।

चोरी

وَالسَّارِقُ وَ السَّارِقَةُ فَاقْطَعُوْٓا اَيْدِيَهُمَا جَزَآءًۢ بِمَا كَسَبَا نَكَالًا مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَ اللّٰهُ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝ فَمَنْ تَابَ مِنْۢ بَعْدِ ظُلْمِهٖ وَ اَصْلَحَ فَاِنَّ اللّٰهَ يَتُوْبُ عَلَيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝

चोर मर्द और चोर औरत जो चोरी करे सो उसके हाथ काट डालो, ये उनके फ़ेअलों की सज़ा है जो अल्लाह की तरफ़ से इब्रत के लिए है, और अल्लाह ज़बरदस्त ग़ालिब है और बड़ी हिकमतों वाला है। जो गुनाह के बाद तौबा कर ले और अपनी इस्लाह कर ले तो बेशक अल्लाह उसकी तौबा क़बूल करता है, बेशक अल्लाह बख़्शने वाला और रहमत वाला है। (5:38-39)

अलक़ुरतुबी और दूसरे फ़िक़्ही व ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार चोरी करने वाले का हाथ काट डालना अरब में इस्लाम के पहले से ही प्रचलित था (अलक़ुरतुबी की तफ़सीर, आयत 5:38)। इस्लामी क़ानून में सज़ाओं की व्यवस्था अपराध की गम्भीरता का अहसास दिलाने के लिए एक मनोवैज्ञानिक तंत्र के रूप में है, लेकिन इस्लाम ने उन्हें ऐसे समग्र सामाजिक और क़ानूनी ढांचे के अन्दर जो तमाम पहलुओं से न्याय को स्थापित करने वाला हो सही परिप्रेक्ष्य में रखा है। हर व्यक्ति के लिए चाहे वह मर्द हो या औरत, मुसलमान या ग़ैर मुस्लिम जीवन की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने की व्यवस्था है, और इसके लिए उन्हें क़ानून और शासन व प्रशासन की निगरानी में उचित शर्तों के साथ काम करने का मौक़ा दिया जाता है या उन लोगों के लिए जो बे रोज़गार हों या किसी कारण से काम करने में अक्षम हों चाहे यह अक्षमता अस्थाई हो या उम्र ज़्यादा हो जाने अथवा किसी तरह की शरीरिक या मानसिक अपंगता की वजह से स्थाई हो, ज़कात के माल से और सार्जनिक कोष के दूसरे स्रोतों से उनकी ये बुनियादी ज़रूरतें पूरी की जाती हैं। इस तरह की कल्याणकारी व्यवस्था और सामाजिक न्याय के होते हुए किसी दूसरे की या सार्वजनिक सम्पत्ति पर हाथ साफ़ करने को सहन नहीं किया जा सकता, और जो कोई भी ऐसा सोचता है या ऐसा प्रयास करता है उसे सख़्ती के साथ इससे रोकना और सज़ा देना ज़रूरी हो जाता है।

इस परिप्रेक्ष्य में हाथ काटने जैसे कठोर दण्ड के आदेश को समझने की कोशिश करना

चाहिए। क़ानूनी लिहाज़ से अधिकारों और ज़िम्मेदारियों में संतुलन है और ये दोनों बातें एक दूसरे से सम्बंधित हैं। अतःकिसी ज़िम्मेदारी को जिसमें सज़ा देना भी शामिल है सम्बंधित अधिकार या अधिकारों से अलग नहीं किया जा सकता। अगर समाज, जिसका प्रतिनिधित्व सरकार करती है, प्राकृतिक आपदाओं के अवसर पर या अपनी कोताही की वजह से अपनी ज़िम्मेदारियां पूरी करने में असफ़ल रहता है तो वह ऐसी सज़ा देने का अधिकार खो देता है, और अभियुक्त को समाज या सरकार की इस असफ़लता से फ़ायदा उठाने का मौक़ा मिलता है यह साबित करके कि उसने जो चोरी की वह उसकी मजबूरी थी और उसने ज़रूरत से तंग आ कर यह क़दम उठाया। ख़लीफ़ा उमर ने सूखा पड़ने की स्थिति में यह सज़ा जारी नहीं की और न उन्होंने एक ऐसे ग़ुलाम के मामले में इस सज़ा को लागू किया जिसका मालिक उसकी बुनियादी ज़रूरतें पूरी नहीं करता था और ग़ुलाम मजबूर हो कर उसका माल चुरा लेता था (संदर्भःमौता इमाम मालिक)।

इस्लामी न्यायिक व्यवस्था हर आदमी के लिए इंसानी प्रतिष्ठा के प्रावधानों को बनाए रखने के लिए है, चाहे वो मर्द हो या औरत, बच्चा हो या बड़ा (17:70)। बुज़ुर्गों, अपंगों और वित्तीय समस्याओं से ग्रस्त लोगों को (जिनमें उस समय अधिकतर लोग ग़ैर मुस्लिम थे) सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध कराने में इस्लामी शासन की ज़िम्मेदारी को बयान करते हुए फ़क़ीह इमाम अबु यूसुफ़ ने ख़लीफ़ उमर और कमाण्डर ख़ालिद बिन वलीद की मिसालें दी हैं (अलखरिाज, पेज 50-136, 155-156, क़ाहिरा, 1397 हिजरी)। हज़रत उमर ने एक बार एक ज़रूरतमंद यहूदी को देखा और तुरन्त आदेश दिया कि उनकी सहायता बैतुलमाल (सार्वजनिक कोष) से की जाए।

इसके अलावा, हर चोर को सज़ा उसका हाथ काट कर नहीं दी जा सकती। हाथ काटने की सज़ा के लिए चुराई गयी चीज़ का महत्व और मूल्य निर्धारित होना भी ज़रूरी है। इसके अलावा यह कि चुराई गयी चीज़ किसी सुरक्षित जगह संभाल कर रखी गयी हो कि उसका चुरा लेना कोई आसान काम न हो बल्कि एक योजनाब) चोरी हो और ऐसी वारदात हो जो सन्देह से परे बिल्कुल स्पष्ट हो। किसी चीज़ तक आसानी से पहुंच अगर होती हो तो यह बात शासकों को इस बात से रोकती है कि वो उसे चुराने वाले पर हाथ काटने की हद जारी करें। अधिकतर फ़क़ीहों की राय में जेबकाटने या धोखा व ग़बन करने जैसे अपराधों पर हाथ काटने की सज़ा नहीं दी जाएगी। असिल में हाथ काटने की सज़ा जारी करने के लिए चोरी इस तरह की होना ज़रूरी है जिसमें क़ानून व्यवस्था और शान्ति भंग होती हो और व्यक्तियों की सलामती व सुरक्षा की व्यवस्था को नुक़सान पहुंचाया गया हो।

चोरी के मामलों में आम क़ानूनी सिद्धांतों को ध्यान में रखना ज़रूरी है। आरोपी को पूरे क़ाननी अधिकार मिलना चाहिएं और पूछताछ, अपराध स्वीकारने और मक़ुदमे की कार्रवाई के दौरान उसके सभी अधिकारों की रक्षा होना चाहिए। बहुत से फ़क़ीहों ने इस पर ज़ोर दिया है

कि आरोपी के द्वारा अपराध स्वीकार किए जाने की स्थिति में उसे स्वीकृति को दोहराने का मौक़ा देना चाहिए और उसे इस बात का भी वास्तव में मौक़ा मिलना चाहिए कि वह अगर आरोप स्वीकार नहीं करता है तो इस आरोप से खुल कर इंकार कर सके, चाहे शुरू में या बाद में किसी चरण पर (देखें अलशोकानी, नीलुलऔतार, जिल्द 7, पेज 308-9, बैरूत 1973)। कुछ आधुनिक फ़क़ीहों का विचार है कि चोरी की सज़ा को दोबारा या बार बार चोरी करने के मामलों तक सीमित रखना चाहिए। पैग़म्बर सल्ल० की हदीस के अनुसार किसी दोषी को बरी कर देने में फ़ैसले की ग़लती इस बात से बहतर है कि किसी निर्दोष को सज़ा देने का ग़लत फैसला कर दिया जाए (रिवायत इब्ने अबी शीबा, तिरमिज़ी, हाकिम, बेहिक़ी, हदीस सही)। किसी आरोपी को अपराध स्वीकारने पर मजबूर नहीं किया जा सकता और अपराध स्वीकरने के लिए उस पर कोई शरीरिक या नैतिक बल प्रयोग नहीं किया जा सकता जैसा कि पैग़म्बर सल्ल० ने निर्देश दिया है (हदीस रिवायत अबु दाऊद, अलनसई)।

खोजबीन, जांच और पूछताछ करना, मुक़दमा चलाना और सज़ा देना राज्य और उसके शासकों का अधिकार और ज़िम्मेदारी है, और जिस व्यक्ति की चीज़ चुराई गयी है उसे उसकी सज़ा देने का कोई अधिकार नहीं है। यदि चुराई गयी चीज़ मालिक को वापस नहीं की जा सकती तो उसका मुआवज़ा अदालत तय करेगी यदि वह किसी तरह से सम्भव हो। चुराई गयी चीज़ का मालिक या तो चोर को मआफ़ कर सकता है या चुराई गयी चीज़ ख़ुद उस चोर को ही बख़्श सकता है, और ऐसा करने पर क़ानूनी सज़ा रोक दी जाएगी यदि वह जारी हो और अधिकारियों को अभी इस बात की जानकारी न हुई हो कि चोर को मआफ़ कर दिया गया या चीज़ उसे बख़्श दी गयी है (हदीसःरिवायत - मालिक, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, नसई, इब्ने माजा, अलहाकिम), और वह चोर दोबारा ऐसी हरकत करता है तो उसे हल्की सज़ा दी जाएगी (इब्ने रुश्द, बिदायतुल मुजतहिद, जिल्द 2, पेज 360, बैरूत)। इब्नुल क़य्यिम और कुछ दूसरे फ़क़ीहों ने भी चोर पर उस आरोपी को मआफ़ कर देने का सिद्धांत लागू किया है जो पकड़े जाने से पहले सच्ची तौबा कर ले और सच्ची तौबा का सुबूत उपलब्ध हो। यह बात भी यहां उल्लेखनीय है कि जब किसी चोर का हाथ काट दिया जाए तो उसके बाद उसे सार्वजनिक (सरकारी) ख़र्चे पर नक़ली हाथ लगवाने के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता। और यह बात आज की परिस्थितियों में इस सज़ा के सम्बंध में नई परिचर्चा का मौक़ा देती है।

व्यभिचार या बलात्कार और दुराचार

وَلَا تَقْرَبُوا الزِّنٰٓی اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً ؕ وَ سَآءَ سَبِیْلًا ۝۳۲

और तुम ज़िना के क़रीब भी ना जाया करो, क्योंकि वो बेहयाई और बुरी राह है। (17:32)

اَلزَّانِيَةُ وَالزَّانِيْ فَاجْلِدُوْا كُلَّ وَاحِدٍ
مِّنْهُمَا مِائَةَ جَلْدَةٍ ۖ وَّلَا تَاْخُذْكُمْ بِهِمَا
رَاْفَةٌ فِيْ دِيْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ تُؤْمِنُوْنَ
بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۚ وَلْيَشْهَدْ عَذَابَهُمَا
طَآئِفَةٌ مِّنَ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٢﴾ اَلزَّانِيْ لَا
يَنْكِحُ اِلَّا زَانِيَةً اَوْ مُشْرِكَةً ۫ وَّالزَّانِيَةُ لَا
يَنْكِحُهَآ اِلَّا زَانٍ اَوْ مُشْرِكٌ ۚ وَحُرِّمَ ذٰلِكَ
عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٣﴾

ज़िनाकार औरत, ज़िना कार मर्द, तो उनमें से हर एक को सौ (100) कोड़े मारो, और तुम को अल्लाह के हुक्म में उन दोनों पर कोई तरस ना खाना चाहिये, अगर तुम अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखते हो, और उनकी सज़ा के वक़्त मुसलमानों की एक जमात भी मौजूद होनी चाहिये। ज़िनाकार मर्द तो सिर्फ़ ज़िनाकार औरत या मुशरिका औरत ही से निकाह करता है, और ज़िनाकार औरत से भी सिर्फ़ ज़िनाकार मर्द या मुशरिक ही निकाह करता है, और ये मुसलमानों पर हराम कर दिया गया है। (24:2-3)

इस्लाम जहां एक तरफ़ निकाह पर ज़ोर देता है और व्यक्ति, परिवार व समाज को निकाह की व्यवस्था करने और उसे सरल बनाने की ज़िम्मेदारी देता है वही दूसरी तरफ़ निकाह के रिश्ते के बाहर किसी भी तरह के यौन सम्बंधों पर रोक लगाता है और यौन अराजकता की तरफ़ ले जाने वाले हर तरीक़े, काम व बात को वर्जित करता है (17:32)। इसी लिए इस्लाम पहनावे में शालीनता और लज्जा की मांग करता है, शरीर के यौन आकर्षण वाले अंगों की तरफ़ देखने से मना करता है (24:30-31(33:59), और ग़ैर महरम मर्द व औरत (वो जिनके साथ विवाह मना नहीं) के एकान्त में मिलने जुलने पर पाबन्दी लगाता है। अरबी का शब्द 'ज़िना' जो क़ुरआन व सुन्नत में इस्तेमाल हुआ है वह एक मर्द और औरत के बीच बग़ैर निकाही सम्बंधा के किसी भी तरह के यौन सम्बंध के लिए बोला जाता है, चाहे उनमें कोई एक या दोनों विवाहित हों। इस अपराध के सुबूत के लिए चार गवाहों का होना ज़रूरी है जो इसकी गवाही देने की पूरी ज़िम्मेदारी क़ुबूल करते हों और जो कुछ उन्होंने देखा हो वह जस का तस बताएं और चारों के बयान में कोई विरोधाभास न हो। ज़िना के आरोपी की तरफ़ से इस अपराध को स्वीकार करने को पसन्द नहीं किया गया है और इससे बचने की भावना दी गयी है, और यदि वह स्वीकार करता है तो चार अलग अलग समय में इस स्वीकृति को दोहराएगा, जैसा कि कुछ सूत्रों से मालूम होता है, कि इस तरह चार गवाहियों के समान होगा। आरोपी का अपराध स्वीकारना पूरी तरह स्पष्ट होगा कि उसने वास्तव में क्या किया, और उसे यह भी स्वीकारना होगा कि उसने जो कुछ किया उसके बारे में उसे मालूम है कि ऐसा करना मना है। कोई आरोपी अपराध स्वीकारने के बाद सज़ा के लागू होने से पहले स्वीकृति से इंकार भी कर सकता है, या कुछ फ़क़ीहों के नज़दीक सज़ा देते समय भी ऐसा कर सकता है (इब्ने रुश्द, बिदायतुल मुजतहिद, जिल्द 2, पेज 328-329, बैरूत, अलशौकानी, नीलुलऔतार, जिल्द 7, पेज 259-273)।

जज को चाहिए कि वह आरोपी को स्वीकार न करने की प्रेरणा दे और उसे निर्देश दे कि वह दोषी होने से इंकार कर दे, क्योंकि तौबा के ज़रिए अल्लाह से मआफ़ी चाहना सज़ा के द्वारा स्वयं को पाक करने से बहतर है (इब्नुल क़य्यिम, इल्मुलमुवक़्क़िईन, जिल्द 2, पेज 48-49, क़ाहिरा, इब्ने रुश्द, उपरोक्त, जिल्द 2, पेज 329)।

इस तरह, जैसा कि बार बार कहा गया है, आरोपी को पूरी क़ानूनी ज़िम्मेदारी मिलना चाहिए और पूछताछ व मुक़दमे के दौरान उसके सभी अधिकारों की रक्षा होना चाहिए, और यह कि किसी दोषी के बरी होने में ग़लती हो जाना इससे बहतर है कि किसी निर्दोष को अपराधी ठहराने में ग़लती हो जाए। व्यभिचार या दुराचार के मामले में ठोस गवाही जैसे अविवाहित महिला के गर्भवती हो जाने को बलात्कार, मानसिक रूप से विक्षिप्त होने, बेहोश होने जैसी बातों का नतीजा समझ कर टाला जा सकता है (इब्ने रुश्द, उपरोक्त, जिल्द 2, पेज 325-329)। तमाम सज़ाओं की तरह इसकी सज़ा भी शरीअत के मुताबिक़ राज्य के शासक (जज या क़ाज़ी) करेंगे और वही लागू करेंगे। कोड़े मारने की सज़ा बहुत कड़ाई से और पीड़ा दे कर नहीं दी जाएगी, और कोड़े पीठ पर मारे जाएंगे जैसा कि कुछ फ़क़ीहों ने लिखा है, सर पर, चेहरे पर, और शरीर के दूसरे कमज़ोर अंगों पर मारने से बचा जाएगा। कोड़े मारने वाला पूरी शक्ति से कोड़े नहीं मारेगा और अपना हाथ बहुत ऊंचा नहीं करेगा। कुछ फ़क़ीहों ने कोड़े मारने की सज़ा के लिए कुछ शर्तें भी सुझाई हैं (देखें अलक़ुरतुबी की तफ़सीर आयत 24 2, जिल्द 12, पेज 161-163, क़ाहिरा(अलशौकानी, उपरोक्त, जिल्द 7, पेज 280-285)।

व्यभिचार के मामले में गवाही और सज़ा में शरीअत के जो तक़ाज़े हैं उनसे यह बात सामने आती है कि एक क़ानूनी बन्दोबस्त का मक़सद व्यवहारिक रूप से सज़ा की पीड़ा देने से ज़्यादा अपराध की मनोवैज्ञानिक रूप से रोकथाम करना और उसकी गम्भीरता को व्यक्त करना है। पैग़म्बर सल्ल० ने ज़िना के मुक़दमों में जिस तरह से फ़ैसला किया उससे और फ़क़ीहों ने जो तफ़सीलें बनाई हैं उनके हिसाब से यह पूरी तरह स्पष्ट है कि शरीरिक सज़ा की अपेक्षा अल्लाह से तौबा करके अपना मानसिक और आत्मिक सुधार कर लेने और अल्लाह से मआफ़ी मांगने की ज़्यादा सीख दी गयी है। जब पैग़म्बर सल्ल, के पास एक आदमी नमाज़ के बाद हाज़िर हुआ और यह स्वीकार किया कि उससे गुनाह हुआ है जिससे पाक करने के लिए उस पर हद जारी की जाए, तो पैग़म्बर सल्ल० ने उससे कोई विस्तृत जानकारी नहीं ली बल्कि यह मालूम किया कि क्या तुम ने हमारे साथ नमाज़ नहीं पढ़ी, उस आदमी ने जवाब में कहा कि हां मैं ने पढ़ी। इस पर आप सल्ल० ने फ़रमाया कि तुम से जो गुनाह हुआ है उसके लिए अल्लाह ने तुम्हें मआफ़ कर दिया है (बुख़ारी)।

कोड़े मारने की सज़ा के लिए यह अनिवार्यता कि ज़िना (व्यभिचार) के अपराधी को जब कोड़े लगाए जाएं तो कुछ लोग यह नज़ारा देखने के लिए भी मौजूद हों, अपराधिक प्रवृत्ति वाले

व्यक्तियों के ऊपर नैतिक और सामाजिक दबाव बनाने का एक मनोवैज्ञानिक तरीक़ा है और इस तरह से भी अपराध की रोकथाम करने में मदद मिलती है। फिर जब देखने वाले देखते हैं और वहां से हट कर दूसरे लोगों को बताते हैं तो इससे भी अपराधिक प्रवृत्ति रखने वाले लोग हतोत्साहित होते हैं और अपराधों की रोकथाम में मदद मिलती है। अलक़ुरतुबी ने आगे लिखा है कि यह सार्वजनिक प्रदर्शन इसलिए भी ज़रूरी है कि जो ईमान वाले लोग इस सज़ा को देख रहे हों वो अल्लाह से उसकी मआफ़ी के लिए दुआ करें और आख़िरत में उस पर रहम करने की फ़रियाद करें (आयत 24:2 की व्याख्या, जिल्द 12, पेज 167, क़ाहिरा)। चूंकि इसका निध ार्रण नहीं किया गया है कि कितने व्यक्ति नज़ारा करने के लिए मौजूद होना ज़रूरी है इसलिए मुहम्मद असद का यह कहना सही है कि चूंकि की सज़ा का प्रचार होना ज़रूरी है इसलिए इस सज़ा को सार्वजनिक तमाशा बनाना ज़रूरी नहीं है बल्कि मीडिया में इसकी घोषणा कर देना, कुछ रिपोर्टरों का मौजूद होना और कुछ सम्बंधित अधिकारियों का मौक़े पर मौजूद होना पर्याप्त होगा।

यह बात भी सामने रखना चाहिए कि क़ुरआन में ज़िना की सज़ा केवल कोड़े मारना बताई गयी है और निकाह के बग़ैर यौन सम्बंध बनाने के किसी मामले में क़ुरआन में ‘‘संगसार’’ करने (पत्थर मार मार कर हिलाक करने) का ज़िक्र नहीं है हालांकि जिस आयत में ज़िना और उसकी सज़ा का ज़िक्र किया गया है उससे पहले वाली आयत में जहां से सूरत शुरू होती है यह साफ़ घोषणा की गयी है कि:‘‘यह (एक) सूरत है जिसको हमने उतारा है और उस (के आदेशों) को फ़र्ज़ कर दिया और उसमें स्पष्ट मतलब बयान करने वाली आयतें उतारीं ताकि तुम याद रखो’’ (24:1)। यह सूरत मदीना पलायन के पांचवें या छटे साल में उतरी थी। तो ग़ौरतलब सवाल यह है कि हदीस में जो घटनाएं बयान हुई हैं जिनमें रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने ज़िना के दोषियों को संगसार करने की सज़ा दी थी, वो घटनाएं क्या इस सूरत के उतरने से पहले की हैं? क्या इन मामलों में रसूल सल्ल० के फ़ैसले तौरात पर आधारित हैं? अगर ये घटनाएँ ज़िना के लिए कोड़ों की सज़ा का हुक्म आने से पहले हुईं, ख़ास तौर से अगर यह देखा गया हो कि रसूल सल्ल० ने यहूदियों से तौरात में बयान की गयी सज़ा के सम्बंध में कोई बातचीत की थी और कुछ यहूदी आरोपियों पर उसके अनुसार सज़ा लागू की थी (ससंदर्भः बुख़ारी, देखें इब्ने हजर असक़लानी की शरह फ़तहुल बारी, जिल्द 25, पेज 263,318-324, हदीस नम्बर 6841, 6913, अलशौकानी, उरोक्त, जिल्द 7, पेज 256-259)।

बुख़ारी की रिवायत है कि सहाबी अब्दुल्लाह इब्ने अबी औफ़ से पूछा गयाः रसूल सल्ल० ने संगसारी की सज़ा कोड़े मारने वाली सज़ा से सम्बंधित आयत के उतरने से पहले दी था या बाद में ? तो उन्होंने जवाब दिया मैं नहीं जानता। इब्ने हजर असक़लानी ने अपनी व्याख्या में लिखा है कि यहूदी दोषियों के विरुध रसूल सल्ल० ने जो फ़ैसला सुनाया तो यह घटना तब

की है जब रसूल सल्ल० को हिजरत करके मदीना आए कुछ ही समय बीता था और आप तौरात के अनुसार फ़ैसले दिया करते थे, जब तक कि आपको अल्लाह की तरफ़ से किसी मामले में कोई हुक्म नहीं दिया गया। अतःआप सल्ल० ने यहूदी दोषियों को संगसार करने की सज़ा सम्भवतः4:15-16 आयतों के अनुसार यह आदेश निरस्त होने से पहले दी थी। लेकिन इब्ने हजर ने यह भी लिखा है कि रसूल सल्ल० के द्वारा व्यभिचारियों के संगसार किए जाने की हदीसों से यह मालूम होता है कि इस घटना को सहाबी अबु हुरैरा ने अपनी आंखों से देखा था, जो हिजरत के बाद सातवें साल में ईमान लाए थे, और इब्ने अब्बास भी इस घटना के समय मौजूद थे जो अपनी मां के साथ हिजरत के बाद नोवें साल में मदीना आए थे, जबकि कोड़ों की सज़ा से सम्बंधित आयत और वह सूरत जिसमें यह आयत आई है (सूरह नूर) बनी अलमुस्तलक़ से लडाई के बाद और .इक की घटना (पैग़म्बर साहब की पत्नि मां आइशा पर लांछन लगाने की घटना) के बाद पांचवीं या छटी हिजरी में उतरी थी (फ़तहुल बारी, जिल्द 25, पेज 263, 317-318, हदीस नम्बर 6813, 6840)। संगसार करने की सज़ा को हज़रत अबुबक्र, हज़रत उमर और हज़रत अली ने भी बयान किया है।

अलबत्ता, हज़रत अली के विरुध विद्रोह करने वाले ख़ारजी और कुछ मोअतज़ली ज़िना के लिए संगसार करने की सज़ा को स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि यह क़ुरआन में बयान की गयी सज़ा से भिन्न है (अलशौकानी, उपरोक्त, जिल्द 7, पेज 254, अलफ़ख़रुल राज़ी और उनकी तफ़सीर आयत 24:2)। इसके अलावा क़ुरआनी आयत यह भी कहती है कि एक विवाहित ग़ुलाम औरत को ज़िना के मामले में एक विवाहित आज़ाद औरत की सज़ा की तुलना में आधी सज़ा मिलेगी (4:25), और संगसारी की सज़ा को तो आधा किया ही नहीं जा सकता। अलअज़हर यूनिवर्सिटी के पूर्व उपकुलपति महमूद शलतूत ख़ारजियों के नज़रिए के बारे में कहते हैं कि उन्होंने सम्भवतःसंगसारी से सम्बंधित हदीस के बयान को एक स्थाई और निर्धारित 'हद क़ानून' नहीं माना है, बल्कि एक अस्थाई विवेक आधारित क़ानून यानी 'ताज़ीर' (पैनल ल०) की श्रेणी में रखा है (अलइस्लाम, 'अक़ीदा व शरीअत', पेज 283, 12वां एडिशन, क़ाहिरा, 1983, पेज 283)।

आयत 3:24 यह बताती है कि निकाह के बग़ैर शरीरिक सम्बंध केवल ''ख़बीस मर्द'' (दुराचारी पुरुष) और ''ख़बीस औरत'' (दुराचारी महिला) या मुशरिक मर्द और मुशरिक औरत के बीच ही हो सकता है, इस से व्यक्ति के भविष्य में निकाह से सम्बंधित क़ानूनी हुक्म मालूम नहीं होता।

मेरा विचार है, और जैसा कि बहुत से पुराने व नए मुफ़स्सिरों और फ़क़ीहों का भी विचार है, कि इस आयत का मक़सद यह बताना है कि यह काम इतना शर्मनाक है कि इसकी अपेक्षा केवल उसी से की जा सकती है जो अपनी वासना पूरी करने में लगा रहता हो, और उससे जो

अल्लाह के साथ दूसरों को शरीक करता है, लेकिन एक अल्लाह पर ईमान रखने वाले, उससे डरने वाले और उसकी हिदायत को मानने वाले किसी व्यक्ति से ऐसे काम की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसी तरह रसूल सल्ल० की हदीस मोमिनों को सावधान करती है कि ईमान की कमज़ोरी या ईमान न होने से वो इस बुराई में लिप्त हो सकते है:"कोई व्यक्ति अगर ज़िना करता है तो वह उस समय ईमान की हालत में नहीं होता"।

जहां तक उस बच्चे की बात है जो ज़िना के नतीजे में पैदा हो तो उसके बारे में यह है कि वह निर्दोष है और किसी भी दूसरे इंसान की तरह उसके भी इंसानी और क़ानूनी अधिकार हैं। उसकी गवाही क़ुबूल की जाएगी, और वह अपनी योग्यता के अनुसार किसी भी पद के लिए पात्र होगा। मशहूर फ़क़ीह इब्ने हज़्म ने लिखा है कि ऐसा व्यक्ति क़ाज़ी (जज) बन सकता है अगर वह उस पद की योग्यता और शिक्षा रखता हो (इब्ने हज़्म, अलमुहल्ला, जिल्द 9, पेज 525-526, नम्बर 1802, क़ाहिरा)।

लांछन (बोहतान) लगाना

وَ الَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ الْمُحْصَنٰتِ ثُمَّ لَمْ يَاْتُوْا بِاَرْبَعَةِ شُهَدَآءَ فَاجْلِدُوْهُمْ ثَمٰنِيْنَ جَلْدَةً وَّ لَا تَقْبَلُوْا لَهُمْ شَهَادَةً اَبَدًا ۚ وَ اُولٰٓئِكَ هُمُ الْفٰسِقُوْنَ ۙ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا مِنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ وَ اَصْلَحُوْا ۚ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝

और जो लोग पाक दामन औरत पर बदकारी का ऐब लगायें और उस पर चार गवाह ना लायें तो उनको 80 कोड़े मारो, और उनकी शहादत भी मत क़बूल करो, और यही लोग फ़ासिक़ हैं। मगर जो उसके बाद तौबा कर लें और अपनी इस्लाह कर लें तो बिला शुबह अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला और बड़ा रहम करने वाला है। (24:4-5)

चूंकि क़ुरआन व्यभिचार और दुष्कर्म के आरोप को साबित करने के लिए चार गवाहों गवाही को ज़रूरी क़रार देता है जिनके ऊपर गवाही देने की पूरी क़ानूनी ज़िम्मेदारी लागू होगी और जिन्होंने अपराधिक कृत्य को होते देखा हो और उसे जस का तस बयान कर सकते हों और चारों के बयान में कोई विरोधाभास न हो, इसलिए बग़ैर सुबूत और गवाही के केवल आरोप लगाने से इंसान की प्रतिष्ठा को जो नुक़सान पहुंचता है और उसे जो मानसिक, नैतिक और सामाजिक आघात पहुंचता है उससे इंसानों को बचाने की व्यवस्था की गयी है। बग़ैर सुबूत के किसी पर व्यभिचार, ज़िना या बतात्कार का आरोप लगाने से लोगों को रोकने के लिए क़ुरआन लांछन लगाने पर कड़ी सज़ा देने का आदेश देता है। कुछ फ़क़ीहों ने लांछन लगाने को को पूरे समाज के अधिकारों का हनन बताया है, और फ़िक़्ह की शब्दावली में अल्लाह के अधिकार और बन्दों के अधिकार के संदर्भ में देखा है, अगर वह व्यक्ति जिस पर लांछन लगाया

जाए, लांछन लगाने वाले को मआफ़ कर दे तो भी उससे लांछन लगाने वाले के विरुध क़ानूनी कार्रवाई पर प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि इस अपराध से पूरे समाज का नुक़सान होता है:''और जो लोग इस बात को पसन्द करते हैं कि मोमिनों में बे हयाई (यानी लांछन, दुराचार या दुष्कर्म की चर्चा) फैले उनको दुनिया और आखरित में दर्दनाक अज़ाब होगा और अल्लाह जानते हैं और तुम नहीं जानते'' (24:19), ''और तुम उसे एक हल्की बात समझते थे और अल्लाह के नज़दीक वह बड़ी भारी बात थी'' (24:15)। कुछ फ़क़ीहों ने लांछन लगाने से व्यक्ति को पहुंचने वाले नुक़सान को पूरे समाज को पहुंचने वाले सामूहिक नुक़सान से भी ऊपर माना है, और यह नतीजा निकाला है कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध झूटा आरोप लगाया जाता है यह उसी का अधिकार है कि चाहे तो आरोप लगाने वाले को मआफ़ कर दे या उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई करे। इस मामले में फ़क़ीहों का एक तीसरा वर्ग भी है जिसका मानना यह है कि लांछन लगाना व्यक्ति के निजी अधिकार और समाज के सामूहिक अधिकार के बीच की एक स्थिति है, यह वर्ग ऊपर के दोनों मतों को मिला कर देखता है।

झूटा आरोप (''बोहतान'') लगाने वाले को कोड़े मारने की शरीरिक सज़ा के अलावा एक नैतिक और मनोवैज्ञानिक सज़ा भी दी जा सकती है जो उसके लिए और कठोर होगी और वह यह कि उसे हमेशा के लिए गवाही के अयोग्य माना जाएगा और उसकी गवाही कभी किसी मामले में स्वीकार नहीं की जाएगी। अलबत्ता आख़री आयत लांछन लगाने वाले के लिए ख़ुद को ठीक करने का दरवाज़ा खोलती है और वह यह कि वह व्यक्ति अपनी ग़लती मान ले और जिस पर उसने लांछन लगाया है उससे मआफ़ी मांगे, अगर मुमकिन हो। हालांकि कुछ फ़क़ीह तौबा और सुधार के नतीजे को आखरित में अल्लाह की तरफ़ से मआफ़ी के अर्थ तक ही सीमित समझते हैं, लेकिन अधिकतर फ़क़ीहों का विचार है कि आयत 24:5 में जो मआफ़ी दी गयी है वह उससे पहले कही गयी सभी बातों पर लागू होती है (देखें अलकुरतुबी की तफ़सीर आयत 24:5 के सन्दर्भ में, जिल्द 12, पेज 179, क़ाहिरा)। इब्ने हज़्म लिखते हैं कि ज़िना, बोहतान, चोरी या शराब के अपराध में पकड़ा गया व्यक्ति अगर तौबा कर चुका हो और ख़ुद को सुधार चुका हो और इसका सुबूत व प्रमाण मौजूद हो तो वह गवाही देने का पात्र बन जाता है और इस संदर्भ में उसके सभी अधिकार बहाल हो जाते हैं जो उसे पहले से प्राप्त रहे हैं (अलमुहल्ला, जिल्द 9, 526, क़ायदा नम्बर 1803, क़ाहिरा)।

शरीअत के आम नियम जैसे किसी व्यक्ति के विरुध चार्जशीट लगाने के लिए उसकी पूरी क़ानूनी ज़िम्मेदारी साबित करने की अनिवार्यता, और जांच व मुक़दमे की कार्रवाई के दौरान उसके सभी इंसानी और क़ानूनी अधिकारों की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जाएगा, और सज़ा को बहुत ही सभ्य व शालीन ढंग से लागू किया जाएगा। इस बिन्दु के अलावा, यद्यपि उपरोक्त आयतें ज़ाहिर में ऐसे व्यक्ति पर फ़िट होती हैं जो किसी औरत पर बग़ैर ज़रूरी सुबूतों (चार

गवाहों की गवाही) के दुष्कर्म का आरोप लगाए लेकिन फ़क़ीहों ने लिखा है कि लांछन लगाने वाला चाहे मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि जिस पर लांछन लगाया गया हो वह सदाचारी और शरीफ़ व्यक्ति हो जबकि शरीरिक रूप से यौन सम्बंध बनाने की क्षमता रखता हो (या रखती हो) बग़ैर इसके कि वह ख़ास तौर से औरत ही हो (इब्ने रुश्द, बिदायतुल मुजतहिद, जिल्द 2, पेज 330, बैरूत)। उपरोक्त आयतों में बताई गयी लांछन की सज़ा दोषी को देने के बावजूद लांछित किए गए व्यक्ति का यह अधिकार ख़त्म नहीं हो जाता कि वह अपने व्यक्तित्व को पहुंचने वाले नुक़सान की भरपाई करने की मांग करे, अगर लांछन लगाने वाला यह भरपाई की रक़म देने की क्षमता रखता हो।

पति के द्वारा पत्नि पर बिना सुबूत दुष्कर्म का आरोप

وَالَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ اَزْوَاجَهُمْ وَ لَمْ يَكُنْ لَّهُمْ شُهَدَآءُ اِلَّآ اَنْفُسُهُمْ فَشَهَادَةُ اَحَدِهِمْ اَرْبَعُ شَهٰدٰتٍ بِاللّٰهِ ۙ اِنَّهٗ لَمِنَ الصّٰدِقِيْنَ ﴿٦﴾ وَ الْخَامِسَةُ اَنَّ لَعْنَتَ اللّٰهِ عَلَيْهِ اِنْ كَانَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ ﴿٧﴾ وَيَدْرَؤُا عَنْهَا الْعَذَابَ اَنْ تَشْهَدَ اَرْبَعَ شَهٰدٰتٍ بِاللّٰهِ ۙ اِنَّهٗ لَمِنَ الْكٰذِبِيْنَ ﴿٨﴾ وَ الْخَامِسَةَ اَنَّ غَضَبَ اللّٰهِ عَلَيْهَآ اِنْ كَانَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ ﴿٩﴾

और जो लोग अपनी औरतों को बदकारी की तोहमत लगायें और उनके लिये अपने सिवा कोई गवाह ना हो तो उनकी शहादत ये है के चार बार अल्लाह की क़सम खाकर ये कह दे के बेशक मैं सच्चा हूँ। और पांचवीं बार ये कहे के मुझ पर अल्लाह की लानत हो अगर मैं झूटा हूँ। और औरत से सज़ा को ये बात टाल सकती है के वो चार बार क़सम खा कर ये कहे के बेशक ये झूटा है। और पांचवीं बार यूं कहे, के मुझ पर अल्लाह का ग़ज़ब नाज़िल हो, अगर ये सच्चा है। (24:6-9)

यदि कोई व्यक्ति अपनी पत्नि पर ज़िना का आरोप लगाए लेकिन उसके सुबूत में ख़ुद अपने अलावा किसी को गवाह बना कर न ला सके तो यह उसके लिए मानसिक रूप से बहुत ही मुश्किल होगा कि अपने घर को ठीक रख सके, क्योंकि गवाह न होने की वजह से उसकी पत्नि को अपराधी घोषित न किया जा सकेगा, और पति पर लांछन लगाने का आरोप आएगा जो कि उसके लिए बहुत ही ग़लत होगा। इसलिए ऊपर की आयत में यौन सम्बंधों को समाप्त करने के लिए एक ख़ास तरीक़ा बताया गया है इस के बजाए कि अपराधी साबित करने के लिए कोई क़ानूनी तरीक़ा अपनाया जाए। इस तरह व्यभिचार या झूटा आरोप लगाने की किसी सज़ा से बचने का रास्ता दिखाया गया है। अगर कोई पति आरोप लगाए तो उसके लिए चार बार क़सम खा कर यानि अल्लाह को गवाह बना कर यह कहना होगा कि मेरा पति झूट बोल

रहा है, और पांचवीं बार उसे यह कहना होगा कि यदि मेरा पति सच्चा है तो मुझ पर अल्लाह की लानत हो। इस अमल को "लिआन" कहा जाता है यानी लानत करने वाला अमल, और इसके नतीजे में पति व पत्नि दोनों हमेशा के लिए एक दूसरे से अलग हो जाएंगे। अलबत्ता कुछ फ़क़ीहों का कहना है कि इस अलग होने के लिए क़ाज़ी के फ़ैसले की ज़रूरत होगी, और यह बहतर होगा कि यह पूरा मामला अदालत में हो ताकि ख़ुद क़ाज़ी इस अमल को अपने सामने देखें और इसके क़ानूनी तक़ाज़ों को पूरा करना सुनिश्चि किया जा सके। इमाम अबु हनीफ़ा का मानना है कि लिआन करने वाला पति अगर यह कहे कि उसने आरोप लगाने में जल्दबाज़ी की और वह 'बोहतान' (लांछन) लगाने का दोषी है तो उसके बाद वह फिर से निकाह का प्रस्ताव दे सकता है, और औरत स्वभाविक रूप से इस प्रस्ताव को रद भी कर सकती है। अलबत्ता, इमाम अबु हनीफ़ा ने जो कुछ कहा है वह केवल एक कल्पनात्मक बात लगती है क्योंकि यह सोचना भी असम्भव सा है कि एक व्यक्ति यह स्वीकार करने के बाद कि उसने पत्नि पर बोहतान लगाया है, सो कोड़े खाने के लिए आत्मसमर्पण करे ताकि उसका निकाह बना रहे। इस बात की आशंका हमेशा बनी रहेगी कि पत्नि वापस आने पर रज़ामंदी का दिखावा करे जब तक कि पति उसके निर्दोष होने और अपने झूट बोलने का इक़रार न कर ले, और फिर बाद में मना करदे। क़ुरआन की आयत विशेष रूप से पत्नि पर पति की तरफ़ से आरोप लगाने की सम्भावना को पेश करती है, क्योंकि यह आरोप पति की तरफ़ से इस यक़ीन के आधार पर सामने आएगा कि एक बच्चा जिसे पत्नि उसका बच्चा बता रही है वास्तव में उसका बच्चा नहीं है, और इस तरह यह पत्नि की तरफ़ से पति पर ज़िना का आरोप लगाए जाने की अपेक्षा ज़्यादा सम्भावित है। अलबत्ता इसके विपरीत पत्नि की तरफ़ से पति पर ज़िना का आरोप लगाए जाने की स्थिति में जबकि उसके पास कोई गवाह न हो, क्या यही हुक्म लागू होगा? यह इज्तेहाद का विषय है।

नशा करना और जुआ खेलना

وَ الْخَامِسَةَ اَنَّ غَضَبَ اللّٰهِ عَلَيْهَاۤ اِنْ كَانَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ۝ اِنَّمَا يُرِيْدُ الشَّيْطٰنُ اَنْ يُّوْقِعَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةَ وَ الْبَغْضَآءَ فِي الْخَمْرِ وَ الْمَيْسِرِ وَ يَصُدَّكُمْ عَنْ ذِكْرِ اللّٰهِ وَ عَنِ الصَّلٰوةِ ۚ فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ۝ وَ اَطِيْعُوا اللّٰهَ وَ اَطِيْعُوا

मोमिनो! बेशक शराब (1), जुआ (2), बुत (3), ये चारों चीज़ें नापाक हैं, शैतानी काम हैं, पस इनसे बचते रहा करो, ताके तुमको निजात मिले। बस शैतान तो यही चाहता है के तुमको शराब और जुऐ में डालकर तुममें दुश्मनी और कीना डाल दे, और तुमको अल्लाह की याद और नमाज़ से रोक दे, पस तुम इन कामों से अब भी बाज़ आओगे। और अल्लाह की इताअत और रसूल की

फ़रमांबर्दारी करते रहो और डरते रहो, और अगर तुम मुंह फेरोगे तो जान लो के हमारे रसूल पर तो सिर्फ़ पैग़ाम का साफ़ साफ़ पहुंचा देना है। (5:90-92)	الرَّسُوْلَ وَاحْذَرُوْا ۚ فَإِنْ تَوَلَّيْتُمْ فَاعْلَمُوْٓا اَنَّمَا عَلٰى رَسُوْلِنَا الْبَلٰغُ الْمُبِيْنُ ۝٩٢

नशा सेवन और नशीले पदार्थों के इस्तेमाल पर पाबन्दी की प्रक्रिया उस क्रमवार प्रक्रिया का एक नमूना है जो इस्लामी क़ानून बनाने में उस समय अपनाया गया जब एक पुराने ज़माने से चले आ रहे चलन और आदत को बदलना था। चूंकि इस्लाम से पहले के ज़माने में अरबों के यहां शराब पीना और जुआ खेलना आम बात थी इसलिए क़ुरआन ने बात यहां से शुरू की कि ये दोनों काम नुक़सानदायक हैं, हालांकि इसमें कुछ फ़ायदे भी हैं लेकिन उनका नुक़सान उनके फ़ायदे से ज़्यादा है:''कह दो कि उनमें नुक़सान बड़े हैं और लोगों के लिए कुछ फ़ायदे भी हैं मगर उनके नुक़सान फ़ायदों से कहीं ज़्यादा हैं (2:219)। अगले क़दम के तौर पर यह निर्देश दिया गया है कि जब नशे की हालत में हो तो नमाज़ मत पढ़ो जब तक कि मुंह से कहने वाली बात समझने न लगो (4/43)। फ़िर आख़री चरण में यह आयत उतरी जिसमें शराब पर स्पष्ट रूप से पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया गया। पैग़म्बर सल्ल० ने शराब पीने पर सज़ा दी है लेकिन फ़क़ीहों के बीच इस मामले में मतभेद है कि सज़ा केवल शराब पीने पर दी गयी या नशे में धुत हो जाने पर दी गयी। इसके अलावा इस बात पर मतभेद है कि इस मामले में सज़ा निश्चित अपराधों के लिए निर्धारित सज़ाओं यानि ''हुदूद'' में से है या यह विवेक पर आधारित सज़ाओं यानी 'ताज़ीर' (पेनल ल०) में से है (इब्ने हजर असक़लानी, फ़तहुल बारी, जिल्द 25, पेज 201-209, हदीस नम्बर 9776, इब्ने रुश्द, बिदायतुल मुजतहिद, जिल्द 2, पेज 232-233), क़ाहिरा, अलशौकानी, नीलुल अवतार, जिल्द 7, पेज 319-320, बैरूत 1973)। शराब सेवन पर रसूल सल्ल० ने जो सज़ा दी थी वह रिवायतों के अनुसार केवल पीटने की सज़ा थी, कोड़े मारने की नहीं, और न चोटों की निश्चित संख्या का ज़िक्र है, न किसी ख़ास चीज़ से दी गयी बल्कि हाथ से, छड़ी से, कपड़े से या जूते से मारा गया (बुख़ारी, अबुदाऊद)। पैग़म्बर सल्ल० के बाद ख़लीफ़ अबु बक्र ने चालीस कोड़े लगाने की सज़ा दी, और फिर ख़लीफा उमर के ज़माने में हज़रत अली की सलाह पर इसे बढ़ा कर 80 कर दिया गया क्योंकि शराब सेवन बहुत बढ़ गया था।

पैग़म्बर सल्ल० ने इस बात को पसन्द नहीं किया कि दोषी पाए जाने वाले व्यक्ति को बुरा भला कहा जाए क्योंकि इस तरह की बातों से दोषी के अन्दर और ज़िद आ जाती है और वह नेकी के रवैये से और दूर चला जाता है। अपराध का साबित होना ज़रूरी है और सज़ा देने का अधिकार केवल शासकीय अधिकारी को है, और आरोपी के इंसानी व क़ानूनी अधिकार जांच व मुक़दमे के दौरान सुरक्षित रखे जाएंगे। फ़क़ीहों ने लिखा है कि अपराधी घोषित होने वाला

व्यक्ति उस समय तक किसी भी गवाही के लिए अविश्वसनीय माना जाता है जब तक कि यह साबित न हो जाए कि उसने तौबा कर ली है। इसके अलावा, क़ुरआन व सुन्नत के बयानों से और चारों ख़लीफ़ाओं की मिसालों और फ़क़ीहों की बयानों से यह समझा जा सकता है कि नशे में धुत हो जाना या नशीली वस्तुओं के इस्तेमाल करने को इतना गम्भीर और बड़ा अपराध नहीं माना गया है जितना दूसरे उन अपराधों को जिनकी सज़ाएं निर्धारित कर दी गयी हैं यानी हुदूद में आती हैं, ख़ास तौर से शुरू के ज़माने में। हज़रत अली ने साफ़ फ़रमाया था कि अगर शराब सेवन के अपराध में सज़ा देने से अपराधी की मौत हो जाती है तो यह मौत से सम्बंधित अकेली सज़ा होगी जिस पर उन्हें अपराधी से हमदर्दी होगी, और उसके घर वालों को एक संयोगवश हत्या का बदला ("ख़ून बहा") दिया जाएगा (इब्ने हजर असक़लानी, फ़तहुलबारी, जिल्द 25, पेज 200-201, हदीस नम्बर 6778, क़ाहिरा, 1978 अलशौकानी, नीलुलअवतार, जिल्द 7, पेज 320-321, बैरूत 1973)। नशा सेवन की बुराई की समीक्षा बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार की जाएगी, इसी लिए हज़रत उमर के ज़माने में सज़ा बढ़ा दी गयी थी।

उपरोक्त आयत में जिस चीज़ को मना किया गया है यह वह चीज़ है जो आदमी की दिमाग़ी हालत और मानसिक योग्यता को प्रभावित करती है। यानी "ख़म्र"। इसका मतलब उन सभी चीजों पर छाया हुआ है जिनके इस्तेमाल से इंसान नशा ग्रस्त हो जाता है और अपना होश खो देता है। इस तरह वह सारी चीज़ें जो इंसान के ऊपर यही प्रभाव डालती हैं इस मनाही के दायरे में आ जाती हैं जैसे नारकोटिक्स वग़ैरह। लेकिन अगर कोई नशीली चीज़ किसी विशेष रसायनिक क्रिया से गुज़र कर एक अलग तरह की चीज़ बन जाए जिसका प्रभाव वह नहीं होता तो इस रूप में वह जायज़ होती है चाहे उसकी मौलिक वास्तविकता कुछ भी हो जैसे सिरका जो वाइन से बनता है लेकिन सभी फ़क़ीहों ने इसे जायज़ माना है। इसी तरह नशीली चीज़ों की मनाही का मतलब हर हाल में यह नहीं है कि नशा लाने वाली चीज़ नापाक ही होगी, बहुत से फ़क़ीहों ने इसके पाक होने को माना है (देखें अलक़ुरतुबी की तफ़सीर आयत 5 90, जिल्द 6, पेज 288-289, क़ाहिरा)। लेकिन किसी भी नशीली चीज़ का कोई भी मामला करना मुसलमान के ऊपर हराम है (जैसे शराब के बर्तन को इस्तेमाल करना, शराब या कोई भी नशीली चीज़ बनाना, उसे हाथ लगाना, उसे इधर से उधर पहुंचाना, उससे सम्बंधित किसी भी काम में शामिल होना और उसकी आमदनी वसूल करना सब मना है) (देखें अलक़ुरतुबी, उपरोक्त, पेज 289-291)। कुछ फ़क़ीहों के विचार में इस्लामी शासन के अन्दर ग़ैर मुस्लिम व्यक्ति शराब के मामले कर सकता है, ख़ात तौर से तब जब धार्मिक रीतियों में उसका इस्तेमाल रीति के चलते करना हो, जैसे ईसाइयों के धार्मिक सम्मेलन, जिसकी इजाज़त अक़ीदे की आज़ादी के संदर्भ में उन्हें मिली होती है (और देखें आयतें 5:90-92 की व्याख्या 'सिविल लॉ' के शीर्षक में)।

जुआ खेलना और भाग्य का हाल बताना या मुअम्मों से गुप्त का पता लगाना, पांसा फेकना, फ़ाल निकालना आदि भी इन आयतों में मना किया गया है। माल कमाना या किसी मामले में फ़ैसला करना गम्भीरता पूवर्क और ग़ौर व चिंतन से की जाने वाली कोशिशों से ही होना चाहिए ना कि अटकल पच्चू ढंग से। अगर इस तरह की क्रिया से किसी को कभी कोई कामयाबी मिल भी जाती है तो यह बात उस व्यक्ति के लिए भी और समाज के लिए भी कई तरह से गम्भीर बौद्धिक और नैतिक नुक़सान का कारण बन सकती है। ये अटकल पच्चू तरीक़े इस्लाम की तालीम के विपरीत हैं कि किसी भी जायज़ फ़ायदे को प्राप्त करने के लिए अल्लाह की दी हुई ऊर्जा, क्षमता और अक़ल से काम लेना चाहिए, भाग्य के टोटके लड़ाने या आडम्बरों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। आसानी से और बग़ैर मेहनत व प्रयास के नफ़ा कमाने पर नज़र रखना सही सोच के विपरीत है और इससे कायरता, आलसीपन और वहम परस्ती पैदा होती है जिससे इंसान की कार्यक्षमता और सृजनात्मक प्रतिभा ख़त्म होती है और अल्लाह व अल्लाह की हिदायत पर ईमान जाता रहता है।। क़ुरआन ने बताया है कि नशीले पदार्थों का इस्तेमाल और जुआ खेलने से लोगो के बीच दुशमनी पैदा होती है क्योंकि नशे में धुत हो कर इंसान हिंसा और बे अक़ली की बातों पर उतर आता है और जुए में हारने और जीतने के चक्कर में एक दूसरे से लड़ता है। इसके अलावा, इंसान उन चीज़ों का आदी हो जाता है और अपने दूसरे महत्वपूर्ण ज़िम्मेदारियों से अपने ईमान और उसके तक़ाज़ों से और अल्लाह की इबादतों से ग़ाफ़िल हो जाता है। जुए से पैसा कमाना इस लिए जायज़ नहीं माना गया है कि उसमें होने वाली कमाई किसी उपयोगी और उत्पादक काम का नतीजा नहीं होती जैसा कि इस्लाम चाहता है। इस तरह की नैतिक और शरीरिक, व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयां फ़ायदों से ज़्यादा नुक़सान का कारण बनती हैं। अलबत्ता, जुआ बाज़ी के अड्डे लगाने या टोटकों से पैसे कमाने का काम करने वालों के लिए कोई विशेष सज़ा निर्धारित नहीं की गयी है और कोई भी उचित सज़ा तय करना विधायिका या न्याय पालिका के विवेक पर अर्थात पेनल ल० पर छोड़ दि गया है ताकि विभिन्न जगहों और विभिन्न समयों में बदली हुई परिस्थितियों के हिसाब इसकी सज़ाएं तय की जाती रहें।

शोषण, भृष्टाचार, अधिकारों का दुरुपयोग, ग़बन और वित्त सम्बंधी अनियमितताएं

وَلَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَ تُدْلُوْا بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ

और एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो और ना उसको हाकिमों के पास पहुँचाओ के नाजायज़ तौर पर लोगों के माल का कोई हिस्सा खा जाओ, और तुम को

أَمْوَالِ النَّاسِ بِالْإِثْمِ وَأَنْتُمْ تَعْلَمُونَ ۝١٨٨	इल्म भी हो। (2:188)
يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَأْكُلُوا أَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ إِلَّا أَنْ تَكُونَ تِجَارَةً عَنْ تَرَاضٍ مِنْكُمْ ۚ وَلَا تَقْتُلُوا أَنْفُسَكُمْ ۚ إِنَّ اللَّهَ كَانَ بِكُمْ رَحِيمًا ۝٢٩	मोमिनों! एक दूसरे का माल नाहक़ ना खाया करो, अलबत्ता आपस की रज़ामंदी से तिजारत का लेनदेन है कोई फ़ायदा हो जाए तो जायज़ है, और आपस में एक दूसरे को हलाक़ ना किया करो, बिलाशुबह अल्लाह तो तुम पर बड़ा ही मेहरबान है। (4:29)

इन आयतों में माल के लेनदेन और एक्सचेंज के बारे में एक आम सिद्धांत दिया गया है ताकि यह लेनदेन और एक्सचेंज उचित, न्यायपूर्ण, आपसी हितों पर आधारित हो और सभी सम्बंधित पक्षों की रज़ामन्दी इसमें शामिल हो ताकि नाजायज़ शोषण और एक दूसरे का माल हड़पने को रोका जा सके। किसी भी तरह का ग़लत तरीक़ा, आपसी सहमति न होना और (या) शोषण दण्डनीय है, और चूंकि इसमें सिविल व क्रिमिनल दोनों तरह के तत्व शामिल होते हैं इसलिए इन्हें दोनों क़ानूनों के अन्तर्गत बर्ता जा सकता है। इसके अलावा, सरकारी अधिकारी और नागरिक या नागरिकों के समूह इसमें लिप्त होते हैं, अधिकारी अपने अधिकारों का दुरूपयोग करके नागरिकों को मजबूर करते हैं, या ख़ुद नागरिक व्यक्ति या समूह ग़लत बयानी से काम लेते हैं या जालसाज़ी करते हैं, इसलिए इसका सम्बंध पेनल ल० से भी होता है, जो पब्लिक ल० का हिस्सा है। सरकार और जनता के बीच ख़ास सम्बंध, चाहे वह स्थाई रूप से और पाबन्दी वाला ही हो, उसे निजी सम्बंधों की तरह नहीं देखा जा सकता। ये सम्बंध समझौतों या प्राइवेट लॉ से नियंत्रित होते हैं, चाहे सिविल हो, या कमर्शियल या अन्य किसी तरह के। अतःकिसी सार्वजनिक पद पर बैठा कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को कोई नाजायज़ फ़ायदा पहुंचाता है (जैसे सार्वजनिक कोष को निजी हित के लिए ख़र्च करना), या उसे किसी सार्वजनिक ज़िम्मेदारी से मुक्त रखना (मिलिट्री सर्विस से, या टेक्स की अदायगी जैसे मामलों से) तो उस व्यक्ति को उसके बदले सरकारी ख़ज़ाने को या दूसरे लोगों को नुक़सान का बदला देना होगा ताकि इस भृष्टाचार के नुक़सान की भरपाई हो, चाहे उसने इस मामले से वास्तव में कोई फ़ायदा लिया हो या न लिया हो। इसके आगे यह कि इस मामले को समाज के विरुध ा एक अपराध माना जाएगा और इस लिए उसे सज़ा भी दी जाएगी। रसूल सल्ल० की एक एक हदीस में ऐसे व्यक्ति पर लानत की गयी है जो रिश्वत दे और जो रिश्वत ले और जो इस मामले में दलाली का काम करे (इब्ने हंबल)। वोट लेने के लिए पैसा देना और वोट देने के लिए पैसा लेना, राज्य कोष को चूना लगाना, सार्वजनिक सम्पत्ति या सेवाओं की तरफ़ से लापरवाही बरतना, और सार्वजनिक या निजी जगहों पर क़ब्ज़े करना जैसे मामले सिविल पहलू रखते हैं

जिन्हें एक साथ रख कर देखना होगा। अधिकारों का किसी भी तरह से दुरूपयोग, किसी सरकारी अधिकारी, या किसी डाक्टर या अन्य व्यवसायिक का अपने ग्राहक के साथ मामला करने में ग़लत रोल भी इसी नज़र से देखा जाएगा। टेक्स की चोरी या टेक्स से नाजायज़ तौर पर छूट दे देना, खाने पीने की चीज़ों में मिलावट और उनकी मार्कीटिंग, नक़ली करैंसी बनाना और उसे फैला देना, और अन्य बहुत से ग़बन व धोखा धड़ी और नुक़सान पहुंचाने वाले काम सब दण्डनीय अपराध हैं, और उनसे जो भी नुक़सान पहुंचता है चाहे किसी को निजी रूप से पहुंचे या जनहित को सामूहिक रूप से पहुंचे इस नुक़सान का मुआवज़ा लिया जाएगा।

ऐसे अपराधों की सज़ा जिनसे दूसरे व्यक्तियों को या पूरे समाज को माली नुक़सान पहुंचता है क़ुरआन और सुन्नत में निर्देशित नहीं की गयी है जबकि वो साफ़ तौर से और सख़्ती से मना हैं, लेकिन उन्हें कार्यपालिका, विधायिका और न्याय पालिका के विवेक पर छोड़ दिया गया है कि वो देश के क़ानूनों के अन्तर्गत उसका निर्धारण करें। इस तरह की इंसानी कोशिशों से यह तय किया जा सकता है कि वर्तमान परिस्थितियों में क्या सज़ा देना उचित होगा, और इस्लामी क़ानून (शरीअत) का यह असीमित, लचकदार और परिवर्तनशील हिस्सा जो कि इंसानी विवेक के लिए छोड़ दिया गया और शरीअत के उद्देश्यों और उसके सिद्धांतो से बंधा हुआ है, इसे आम तौर से ''इज्तेहाद'' कहा जाता है। यह उन सज़ाओं को तय करने में इस्तेमाल किया जाता है जो क़ुरआन व सुन्नत में तय नहीं हैं और जिन्हें ताज़ीर कहा जाता है। बहुत से फ़क़ीहों के मुताबिक़ ऐसे मामलों में सज़ाएं, क़ुरआन व सुन्नत में विशेष अपराधों के लिए निर्धारित सज़ाओं के हिसाब से होंगी अगर कोई अपराध जिसके लिए नया क़ानून बनाने की ज़रूरत हो उस दर्जे का गम्भीर अपराध हो। इस तरह ताज़ीर विभिन्न अपराधिक मामलों के लिए स्थाई और परिवर्तनशील क़ानूनसाज़ी का स्रोत है, और इसे मामूली अपराधों और मामूली सज़ाओं की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। क़ुरआन यह सीख देता है कि विभिन्न प्रकार के क़ानूनी और नैतिक नियमों के उल्लंघन का मामला एक समान नहीं है:''अगर तुम बड़े बड़े गुनाहों से जिनसे तुमको मना किया जाता है बचोगे तो हम तुम्हारे (छोटे छोटे) गुनाह मआफ़ कर देंगे और तुम्हें सम्मानित घरों में दाखलि करेंगे'' (4:31), ''जो सग़ीरा गुनाहों को छोड़ कर बडे बड़े गुनाहों और बेशर्मी की बातों से बचते हैं बेशक तुम्हारा पालनहार बहुत मआफ़ करने वाला है'' (53:32)।

झूटे बयान और हलफ़नामे

ذٰلِكَ ۚ وَمَنْ يُّعَظِّمْ حُرُمٰتِ اللّٰهِ فَهُوَ خَيْرٌ لَّهٗ عِنْدَ رَبِّهٖ ۭ وَاُحِلَّتْ لَكُمُ الْاَنْعَامُ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ فَاجْتَنِبُوا

ये अल्लाह का हुक्म है, और जो अल्लाह के अहकाम का एहत्राम करेगा तो ये उसके लिये बेहतर है उनके परवरदिगार के नज़दीक, और तुम्हारे लिये मवेशी हलाल कर दिये गए सिवा उनके जो तुम को पढ़ कर सुनाये

जाते हैं, तो बुतों की गंदगी से बचते रहो, और झूटी बात से परहेज़ करो। (22:30)	الرِّجْسَ مِنَ الْاَوْثَانِ وَ اجْتَنِبُوْا قَوْلَ الزُّوْرِ ۝
और वो झूटी गवाही नहीं देते, और जब उनको बेहूदा चीज़ों के पास से गुज़रने का इत्तिफ़ाक़ हो तो बुज़ुर्गाना अंदाज़ से गुज़रते हैं। (25:72)	وَ الَّذِيْنَ لَا يَشْهَدُوْنَ الزُّوْرَ ۙ وَ اِذَا مَرُّوْا بِاللَّغْوِ مَرُّوْا كِرَامًا ۝

इस्लाम की शिक्षाओं में हमेशा सच बोलने और झूट से बचने पर बार बार और कड़ाई से ज़ोर दिया गया है। झूट बोलना अल्लाह पर ईमान न होने और अल्लाह का डर न रखने का प्रतीक है:"ऐ ईमान वालो अल्लाह से डरते रहो और सच्चों के साथ रहो" (9:119), "झूट गढ़ने का काम तो वही लोग करते हैं जो अल्लाह की आयतों पर ईमान नहीं लाते और वही झूटे हैं"(16:105)। रसूल सल्ल० ने सिखाया है कि आदमी को हमेशा सच बोलना चाहिए और झूट से बचना चाहिए, चाहे, यहां तक कि मज़ाक़ की बातों में भी, क्योंकि सच बोलने या झूट बोलने से ऐसी आदत पड़ती है जो इंसान के चरित्र का हिस्सा बन जाती है, और फिर वही उसकी पहचान बन जाती है (संदर्भ:बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, तिरमिज़ी)।

अलबत्ता, हर तरह के झूट पर क़ानून में सज़ा नहीं दी जाती क्योंकि क़ानून केवल गम्भीर मामलों में झूट बोलने से सम्बंधित होता है जिससे सार्वजनिक हित को और न्याय की प्रक्रिया व व्यवस्था को नुक़सान पहुंचता हो। अदालत में कोई झूटा हलफ़नामा दाखलि करना, मिसाल के तौर पर गवाही को छुपाना या गवाही में अपनी तरफ़ से कोई बात मिलाना या बात बदल कर बताना, या अधिकारियों को या आम तौर से दूसरे लोगों को कोई ग़लत जानकारी देना गम्भीर नतीजों का कारण बनता है। झूटे हलफ़नामे के ख़िलाफ़ आयत 22:30 में दी गयी चेतावनी शिर्क के अक़ीदे और अमल के ख़िलाफ़ दी गयी चेतावनी के बाद आई है, जिससे इस गुनाह (अपराध) की गम्भीरता ज़ाहिर होती है, जैसा कि रसूल सल्ल० ने फ़रमाया (इब्ने हंबल, तिरमिज़ी)। रसूल सल्ल० की एक और हदीस में झूटी गवाही को गम्भीर गुनाहों (कबीरा यानि बड़े बड़े गुनाह) में गिना गया है (बुख़ारी, मुस्लिम)। ऐसे अपराधों पर सज़ा विधायिका या न्यायालय के द्वारा तय की जा सकती है, क्योंकि झूट बोलने की कोई निर्धारित सज़ा क़ुरआन और सुन्नत में नहीं बताई गयी है।

मुस्लिम फ़क़ीहों और क़ाज़ियों ने अदालत में विश्वसनीय गवाही के लिए शर्तें तय करने पर बहुत ग़ौर किया है और उन बातों को तय करने में जिनकी वजह से गवाही अविश्वसनीय हो जाती है (देखें 2:282, 5:95,106, 65:2)। पूर्वकाल में इस्लामी अदालतों में स्थानीय जानकारियों

के विशेषज्ञों की एक टीम मौजूद रहती थी जो किसी जगह, व्यक्ति या चलन के बारे में ज़रूरी जानकारियां उपलब्ध कराती थी।

अफ़वाह बाज़ी

وَ اِذَا جَآءَهُمْ اَمْرٌ مِّنَ الْاَمْنِ اَوِ الْخَوْفِ اَذَاعُوْا بِهٖ ۭ وَ لَوْ رَدُّوْهُ اِلَى الرَّسُوْلِ وَ اِلٰٓى اُولِي الْاَمْرِ مِنْهُمْ لَعَلِمَهُ الَّذِيْنَ يَسْتَنْۢبِطُوْنَهٗ مِنْهُمْ ۭ وَ لَوْ لَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَ رَحْمَتُهٗ لَاتَّبَعْتُمُ الشَّيْطٰنَ اِلَّا قَلِيْلًا ۝

और जब उनको किसी बात की .ख़बर मिलती है .ख़्वाह अमन की बात हो या .ख़ौफ़ की बात हो तो वो उसको मशहूर कर देते हैं, और अगर वो रसूल और अपने सरदारों के पास उस .ख़बर को पहुंचाते तो तहक़ीक़ कुनिंदा तो उस .ख़बर की तहक़ीक़ कर ही लिया करते और अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़्ल और रहमत ना होती तो तुम सब के सब शैतान के ताबे हो जाते, मगर थोड़े से ताबे ना होते। (4:83)

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ جَآءَكُمْ فَاسِقٌۢ بِنَبَاٍ فَتَبَيَّنُوْٓا اَنْ تُصِيْبُوْا قَوْمًۢا بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوْا عَلٰى مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِيْنَ ۝

ऐ ईमान वालों! अगर कोई फ़ासिक़ आदमी तुम्हारे पास कोई .ख़बर लेकर आये तो .ख़ूब तहक़ीक़ कर लिया करो, ऐसा ना हो, के किसी क़ौम को नादानी से नुक़सान पहुंचा दो, फ़िर तुम को अपने किये पर शर्मिंदा होना पड़े। (49:6)

जिस तरह लोगों को किसी मामले की सच्चाई जानने का अधिकार है, ख़ास तौर से ऐसे मामले जो उनकी सुरक्षा और सलामती से सम्बंधित हों, वहीं उनकी यह ज़िम्मेदारी भी है कि जब उन्हें किसी ख़ास मामले की ख़बर लगे तो उसे सम्बंधित अधिकारियों तक पहुंचाएं (4:89)। जो लोग जन मामलों के प्रभारी होते हैं और जनता के प्रतिनिधि होते हैं और देश (क्षेत्र या शहर) की व्यवस्था चलाते हैं उनकी भी समानान्तर ज़िम्मेदारी होती है कि लोगों को तथ्यों की जानकारी दें और जानकारी को अपने पास रोक कर रखने से बचें सिवाय किसी ख़ास संवेदन शील मामले के। क़ुरआन शासकों और जनता के बीच सम्बंधों के इस मामले में लोगों का मार्गदर्शन करता है और दोनों प्रतिनिधियों के अधिकारों व ज़िम्मेदारियों का बिना भेदभाव के निर्धारण करता है। वह उन्हें ऐसी उत्तेजना से रोकता है जिसकी वजह से शासकीय अधिकारी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हुए उनसे तथ्यों को छुपाने पर आमादा हों, सच्चाई पर परदा डालें और जनता के अधिकारों की अवहेलना करें, और जिससे लोगों को सरकार की

छवि ख़राब करने का मौक़ा मिले और लोगों की नज़रों में सरकार का भरोसा कम हो और लोगों को सही जानकारियां न होने से फ़ायदा उठाएं और किसी बात के बारे में केवल अफ़वाहें फैलाएं।

अधिकारियों और व्यक्तियों की प्रतिष्ठा व भरोसे को बचाने व सुरक्षित रखने के लिए ज़रूरी है कि कोई भी ख़बर जो सामने आए उसकी पुष्टि कर ली जाए ताकि उसके सही होने का सुबूत मिले। इसका तक़ाज़ा यह है कि ख़बर देने वाले व्यक्ति की जांच की जाए और उसके बारे में राय क़ायम की जाए कि एक सच्चा आदमी है और उसकी सूचना का स्रोत पक्का है। इसके अलावा, ख़ुद ख़बर की विवेचना और समीक्षा भी करना चाहिए और उसके परिवेश को सामने रखा जाए। हदीसों के बारे में पुष्टि का जो आदर्श तरीक़ा इमाम बुख़ारी और दूसरे मुहद्दिसों ने अपनाया वह इस मामले में एक शानदार ज्ञानवर्धक तरीक़े का नमूना है। मशहूर इतिहास कार इब्ने ख़लदून (मृ 1406) ने ऐतिहासिक रिवायतों को जांचने के लिए कई तरीक़े और सिद्धांत सुझाए हैं। फ़क़ीहों ने भी अदालत में गवाहों और उनकी गवाहियों के बारे में फ़ैसला करने के लिए कुछ तरीक़े निकाले थे। अतःअफ़वाह फैलाना एक अपराध है और उस पर सज़ा है जो ताज़ीरी क़ानूनों के अन्तर्गत स्थितियों के हिसाब से तय की जा सकती है।

सही जानकारी देना अधिकारियों की ज़िम्मेदारी है इस पर भी ज़ोर देना ज़रूरी है। सरकारी संस्थाएं और उनके अधिकारी जो आवश्यक सूचनाएं देने से इंकार करें या टाल मटोल से काम लें उन्हें सज़ा मिलना चाहिए। इसी तरह ताज़ीरी क़ानूनों के दायरे में उस व्यक्ति के लिए भी सज़ा निर्धारित की जा सकती है जो अधिकारियों के बारे में झूटी अफ़वाहें फैलाएं। किसी भी व्यक्ति पर ज़िना या हरामकारी (व्यभिचार) का बोहतान (लांछन) लगाने को क़ुरआन ने अपराध ठहराया है और इसकी सज़ा तय की है (24:4)। इसी तरह हर व्यक्ति को ग़लत आरोपों से सुरक्षित रखने के लिए, जो बग़ैर सुबूत और तर्क के लगाए जाएं, क़ानून बनाया जा सकता है। कुछ ख़ास मामलों में नुक़सान की भरपाई के लिए जुर्माना तय करना पर्याप्त होगा, जब कि कुछ मामलों में सज़ा देने की ज़रूरत भी होगी जैसे किसी सार्वजनिक पदाधिकारी को निशाना बनाने के लिए कोई अफ़वाह फैलाई जाए।

बोलने, लिखने और अभिव्यक्ति के दूसरे तरीक़ों से आत्मरक्षा

لَا يُحِبُّ اللّٰهُ الْجَهْرَ بِالسُّوْٓءِ مِنَ الْقَوْلِ
اِلَّا مَنْ ظُلِمَ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ سَمِيْعًا عَلِيْمًا ﴿۱۴۸﴾
اِنْ تُبْدُوْا خَيْرًا اَوْ تُخْفُوْهُ اَوْ تَعْفُوْا عَنْ

अल्लाह ज़बान पर बुरी बात लाने को पसंद नहीं करता सिवाए मज़लूम के, और अल्लाह ख़ूब सुनने और जानने वाला है। अगर नेक काम एलानिया करो या उसको ख़ूफ़िया करो या किसी बुराई को माफ़ कर दो तो

अल्लाह तआला माफ़ करने वाला और बड़ी क़ुदरत वाला है। (4:148-149)

سُوْٓءٍ فَاِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَفُوًّا قَدِيْرًا ﴿١٤٩﴾

जहां एक तरफ़ मोमिन को यह निर्देश दिया गया है कि वह कोई ऐसी बात कहने या फैलाने से बचे जो दूसरों के लिए नुक़सान की वजह बन सकती हो, ख़ास तौर से ऐसी स्थिति में कि उस बात की पुष्टि की भी कोई कोशिश उसने न की हो, वहीं दूसरी तरफ़ किसी व्यक्ति या समाज की तरफ़ से अपनी जायज़ आत्म रक्षा करने को इस बात से अलग रखा गया है। जिस व्यक्ति के साथ कोई अन्याय हुआ हो वह अपनी शिकायत प्रशासन या अदालत से कर सकता है और वहां यह बता सकता है कि उसके साथ कितना और कैसा ज़ुल्म हुआ है, और ज़ुल्म व ज्यादती करने वाले ने उसके साथ यह ज़्यादती किस तरह की, चाहे वह ज़्यादती करने वाला कोई अधिकारी हो या कोई आम आदमी। एक पीड़ित को यह इजाज़त है कि वह अदालत में अपना बचाव करने के लिए दूसरे पक्ष के ख़िलाफ़ अपनी बात कह सकता है। अगर यह ज़ुल्म सामूहिक रूप से पूरे समाज के साथ हुआ हो, तो कोई भी व्यक्ति या वर्ग इस मामले में आगे बढ़ सकता है और उस व्यक्ति या वर्ग की निन्दा कर सकता है जिसने जनहित को आघात पहुंचाया हो। अलबत्ता, निजी मामलों में यानि किसी के निजी अधिकार की अगर अवहेलना की गयी हो तो इस मामले में व्यक्तियों को मआफ़ करने की प्रेरणा भी दी गयी है, क्योंकि ऐसे मामलों में क़ुरआन में मआफ़ कर देने की बार बार सीख दी गयी है (जैसे 2:109, 178,237; 3:124,159; 4:149; 5:13; 13:22; 28:54; 41:34; 42:40; 64:14)।

इस तरह के अपवादों से हट कर, किसी बुराई के बारे में सार्वजनिक रूप से बोलने से रोका जा सकता है और कोई भी उल्लंघन बोहतान (लांछन) लगाने में गिना जा सकता है जिसके लिए जुर्माना या सज़ा का आदेश दिया जा सकता है। बोलने और अभिव्यक्ति की आज़ादी में दूसरों की बुराइयां करना और उन्हें नुक़सान पहुंचाना शामिल नहीं है, या व्यक्तियों या किसी वर्ग के ख़िलाफ़ नफ़रत फैलाने की इजाज़त नहीं है, ख़ास तौर से जब यह एक बुरे मक़सद और मंशा से किया जा रहा हो। चूंकि आज़ादी के साथ बोलने और अभिव्यक्ति के अधिकार को सैद्धांतिक रूप से और एक आम सिद्धांत के रूप में स्वीकार किया गया है, इसलिए अधिकार का दुरूपयोग करने और दूसरों को बदनाम करने व नुक़सान पहुंचाने को जुर्माना वसूल करने या तीज़ारी क़ानूनों के अन्तर्गत सज़ा तय करके रोका जा सकता है और आज के इस्लामी शासन में सज़ा का यह निर्धारण फ़क़ीहों, क़ानून बनाने वाली संस्था और क़ाज़ियों (जजों) के द्वारा ख़ूब ग़ौर करके क्या जाएगा।

विश्व व्यापी सम्बंध

يَٰٓأَيُّهَا ٱلَّذِينَ ءَامَنُوا۟ ٱدْخُلُوا۟ فِى ٱلسِّلْمِ
كَآفَّةً وَلَا تَتَّبِعُوا۟ خُطُوَٰتِ ٱلشَّيْطَٰنِ ۚ إِنَّهُۥ
لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِينٌ ﴿٢٠٨﴾

ऐ मोमिनो! तुम इस्लाम में पूरे-पूरे दाख़िल हो जाओ, और शैतान की पैरवी न करो, वो तो तुम्हारा खुला दुश्मन है। (2:208)

यह उन सभी लोगों के लिए जो एक अल्लाह पर ईमान रखते हैं एक पुकार है इस बात की कि वो अल्लाह का तक़वा (प्रेम व डर) अपना कर, न्याय पर जम कर और हमदर्दी व भाई चारे की भावना से ख़ुद अपने अन्दर शान्ति का संचार करें और दूसरे लोगों के साथ सम्बंधों में भी शान्ति को बढ़ावा दें। नफ़रत और विमुखता से व्यक्ति के अपने अन्दर का सुकून भी ख़त्म होता है और समाज व पूरी दुनिया की शान्ति भी भंग होती है। शान्ति इंसानों के बीच आपसी सम्बंधों का आधार है जो मुसलमानों और अन्य सभी लोगों के बीच बनी रहनी चाहिए, स्थानीय और क्षेत्री स्तर पर भी और विश्व स्तर पर भी, जबकि जंग केवल एक मजबूरी की और अपवाद की स्थिति है जो तब पैदा होती है जब मुसलमानों के अक़ीदे या उनके देश से सम्बंधित उनके इंसानी अधिकार छीने जाते हैं, और ताक़त का इस्तेमाल बिल्कुल अन्तिम दर्जे की बात है जब दूसरे किसी भी तरीक़े से वो अपने अधिकारों की रक्षा न कर सकें। कुछ मुफ़स्सिरों ने यह समझा है कि शब्द शान्ति जिसके लिए इस आयत में सिल्म (या सलाम) का शब्द इस्तेमाल हुआ है उसका मतलब इस्लाम है, क्योंकि दोनों शब्द एक ही मूल से बने हैं। इस्लाम अल्लाह पर ईमान के माध्यम से व्यक्ति के भीतर में और प्रकृति के साथ उसके सम्बंधों में तथा दूसरे इंसानों के साथ सम्बंध में शान्ति पैदा करता है। अल्लाह का एक गुण नाम "अलसलाम" है (59:23) जिसका मतलब शान्ति ही शान्ति है और जन्नत का भी एक नाम दारुस्सलाम (शान्ति गृह) है (6:127; 10:25) और जन्नत के वासी आपस में एक दूसरे को शुभ कामना पेश करने के लिए अल्सलामु अलैकुम ही कहेंगे और सलाम से ही जन्नत में उनका स्वागत किया जाएगा (10:10; 13:24; 16:32; 33:44; 39:73; 50:34; 56:26)।

दुनिया के इस जीवन में मुसलमान एक दूसरे को अस्सलामु अलैकुम (तुम पर सलामती हो) कह कर ही अपनी स्वागत भावना व्यक्त करते हैं। ऊपर की आयत में "अलसिल्म" (शान्ति) का जो शब्द आया है उसे उसके वास्तविक अर्थों और व्यापक मतलब में लेना 'इस्लाम' के विपरीत नहीं है, बस बात यह है कि यह उसका व्यापक मतलब है और इस लिहाज़ से यह केवल इस्लाम दीन तक ही सीमित नहीं है।

يَاَهۡلَ الۡكِتٰبِ قَدۡ جَآءَكُمۡ رَسُوۡلُنَا يُبَيِّنُ لَـكُمۡ كَثِيۡرًا مِّمَّا كُنۡتُمۡ تُخۡفُوۡنَ مِنَ الۡكِتٰبِ وَيَعۡفُوۡا عَنۡ كَثِيۡرٍ ؕ قَدۡ جَآءَكُمۡ مِّنَ اللّٰهِ نُوۡرٌ وَّكِتٰبٌ مُّبِيۡنٌ ۙ‏ ﴿۱۵﴾ يَّهۡدِىۡ بِهِ اللّٰهُ مَنِ اتَّبَعَ رِضۡوَانَهٗ سُبُلَ السَّلٰمِ وَيُخۡرِجُهُمۡ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوۡرِ بِاِذۡنِهٖ وَيَهۡدِيۡهِمۡ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسۡتَقِيۡمٍ‏ ﴿۱۶﴾

ऐ अहले किताब तुम्हारे पास ये हमारे रसूल आए हैं, किताब में से जो बातें तुम छुपाते हो वो उनमें से अक्सर बातें तुम्हारे सामने साफ़ साफ़ बयान कर देते हैं और बहुत सी चीज़ों से दरगुज़र कर देते हैं, तुम्हारे पास अल्लाह की तरफ़ से एक रौशन चीज़ आई है, और एक खुली किताब। इस किताब के ज़रिये अल्लाह उनको जो रज़ा-ए-हक़ के तालिब हों सलामती की राहें बताता है, और उनको अपनी तौफ़ीक़ से अंधेरों से निकाल कर रौशनी की तरफ़ ले आते हैं, और उनको सीधे रास्ते पर क़ायम रखते हैं। (5:15-16)

इन आयतों में इस्लाम के संदेश को शान्ति के रास्तों की तरफ़ अल्लाह के मार्गदर्शन के रूप में बयान किया गया है। अरबी के शब्द सलाम और इस्लाम दोनों का मूल एक ही है, और यह जन्नत का भी नाम है जैसा कि पहले बयान किया गया (16:127(10:25)। शान्ति एक व्यापक अर्थों वाला शब्द है, और इसके कई आयाम हैं जिनसे भीतर का सुकून भी मिलता है और समाज व दुनिया में दूसरों के साथ भी शान्तिपूर्वक सम्बंध स्थापित होते हैं। शान्ति तब तक स्थापित नहीं हो सकती जब तक यह न्याय पर आधारित न हो, जो कि इंसानी जीवन के विभिन्न पहलुओं (भौतिक, मानसिक, बौद्धिक, अध्यात्मिक व नैतिक) को समेटता है, और घर, पड़ोस, समाज व सरकार के साथ व्यक्ति के सम्बंध और व्यवहार में अपना महत्व रखता है। इस तरह की सामूहिक शान्ति जो हर पहलू से न्याय पर आधारित हो निश्चित रूप से लोगों को गहरे अन्धेरों से निकाल लाएगी, जिन अन्धेरों में इंसान सबसे पहले स्वयं अपने आप में टूटता बिखरता रहता है, क्योंकि उसका निजी संतुलन बिगड़ जाता है और उसका झुकाव किसी एक तरफ़ हो जाता है जबकि दूसरे पहलुओं को वह नज़रअंदाज़ करता है, या सभी दिशाओं में बहुत से दुशमनों से मामूल मामूली बातों पर अनावश्यक रूप से लड़ता रहता है। अल्लाह की हिदायत हर व्यक्तिगत पहलू और हर तरह के इंसानी सम्बंधों को ज़रूरी महत्व देती है, बग़ैर कुछ घटाए बढ़ाए, क्योंकि यह मार्गदर्शन न्याय के स्रोत यानि अल्लाह की तरफ़ से आता है और हर त्रुटि से पाक है और किसी के साथ भी कोई अन्याय नहीं करता:''अल्लाह ही तो हैं जिन्हों ने सच्चाई के साथ किताब उतारी और (अद्ल व इंसाफ़ की) तराज़ू, और तुमको क्या मालूम शायद क़ियामत क़रीब ही आ पहुंची हो (42:17), और देखें 57:25)। दूसरों के साथ मुसलमानों के सम्बंधों के लिए हालांकि शान्ति एक आम सैद्धांतिक आधार है लेकिन जो ज़ालिम और अत्याचारी मुसलमानों के इंसानी अधिकार ख़त्म करने और उनके देश की शान्ति

भंग करने के लिए ताक़त का इस्तेमाल करें उनके खिलाफ़ खड़े होना और उनसे लड़ना मुसलमानों के लिए ज़रूरी है (2:190)। इस तरह के जायज़ और ज़रूरी मुक़ाबले के लिए क़ुरआन मुसलमानों को उभारता है और इस मुक़ाबले में कोई कमज़ोरी दिखाने या मुक़ाबले से जी चुराने के विरुध उन्हें चेताता है।

अलबत्ता शान्ति और यु) की अपनी मुशकिलें हैं, और दृढ़ता व साहस से उन पर जमें रहे बग़ैर उनके उद्देश्य प्राप्त नहीं किए जा सकते। चूंकि मुसलमान आख़िरत के जीवन पर ईमान रखते हैं इसलिए क़ुरआन बार बार उनका ध्यान आख़िरत में मिलने वाले स्थाई बदले की तरफ़ दिलाता है, और उन्हें इस जीवन के अस्थाई आनन्दों या सुविधाओं की ही चिंता में लगे रहने से मना करता है। और यह बात क़ुरआन में जगह जगह कही गयी है।

وَ اِنْ جَنَحُوْا لِلسَّلْمِ فَاجْنَحْ لَهَا وَ تَوَكَّلْ عَلَى اللّٰهِ ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِیْعُ الْعَلِیْمُ ۝ وَ اِنْ یُّرِیْدُوْۤا اَنْ یَّخْدَعُوْكَ فَاِنَّ حَسْبَكَ اللّٰهُ ؕ هُوَ الَّذِیْۤ اَیَّدَكَ بِنَصْرِهٖ وَ بِالْمُؤْمِنِیْنَ ۝

और अगर काफ़िरीन सुलह की तरफ़ राग़िब हों तो तुम भी मायल हो जाओ, और अल्लाह पर भरोसा रखो, और इसमें ज़रा भी शक नहीं के अल्लाह सुनने वाला और .खूब जानने वाला है। और अगर ये चाहते हैं आपको ध् ाोका दें तो अल्लाह आपके लिये काफ़ी है, वो वही है जिसने आपको अपनी इम्मदाद से और मोमिनीन से क़ुव्वत बख़्शी। (8:61-62)

शान्ति स्थापित करने के लिए उन दोनों पक्षों के प्रयास ज़रूरी हैं जो विवाद में फंसे हों और किसी तरफ़ से अगर शान्ति की तरफ़ झुकाव का मामूली सा भी इज़हार हो तो दूसरे पक्ष को इस पर सकारात्मक प्रतिक्रिया देना चाहिए। चूंकि मुसलमानों को एक आम सिद्धांत के अनुसार शान्ति के साथ रहने की शिक्षा दी गयी है और यह कि जंग एक अस्थाई और अपवादिक स्थिति है जिसमें उन्हें जब्र और ज़ुल्म का मुक़ाबला करने के लिए जाना पड़ता है वह भी तब कोई कोई दूसरा शान्तिपूर्ण तरीक़ा उपयोगी न हो रहा हो, इसलिए वह विरोधी पक्ष की तरफ़ से शान्ति की तरफ़ किसी भी तरह के झुकाव का स्वागत करते हैं और उसका समर्थन करते हैं। यहां तक कि विरोधी पक्ष का शान्ति का दिखावा चाहे केवल एक धोखा और दिखावा ही हो तब भी मुसलमानों को ठोस ज़ाहिरी सुबूतों के आधार पर अपने आम सिद्धांतो के अनुसार अपना दृष्टिकोण बनाना होता है और वह शान्ति के दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। जब विरोधी पक्ष शान्ति स्थापना की इच्छा को व्यक्त करने के बाद पलट जाए और अपनी गुप्त योजनाओं को पूरा करने में लग जाए तो उसका भारी ख़मियाज़ा पहले पक्ष को उठाना पड़ सकता है, लेकिन नैतिक और क़ानूनी जीत हर हाल में न्याय और शान्ति के सिद्धांतों की ही

होगी। उपरोक्त आयत इस बात पर ज़ोर देती है कि मुसमलानों के नज़दीक इंसानी सम्बंधों की स्थाई बुनियाद शान्ति है और इसे हर उचित तरीक़े से बनाए रखना चाहिए, और शान्ति की स्थापना के लिए कोई जोखिम उठाना हालांकि बहुत भारी हो सकता है लेकिन यह युद्ध की विभीषिका के मुक़ाबले कम नुक़सान दायक है और शान्ति के प्रयास ज़्यादा क़ीमती हैं।

تِلْكَ الدَّارُ الْاٰخِرَةُ نَجْعَلُهَا لِلَّذِيْنَ لَا يُرِيْدُوْنَ عُلُوًّا فِي الْاَرْضِ وَ لَا فَسَادًا ۭ وَ الْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَ ۝۸۳

वो जो आख़िरत का घर है, हमने उसे उन लोगों के लिये तैयार कर रखा है जो मुल्क में ज़ुल्म और फ़साद का इरादा नहीं रखते और (अच्छा) अंजाम तो सिर्फ़ अल्लाह से डरने वालों के लिये है। (28:83)

इस आयत में एक अनिवार्य सिद्धांत पर ज़ोर दिया गया है जो देश के अन्दर जनता के साथ व्यवहार करने में, और दुनिया में दूसरे लोगों के साथ मामला करने में राजनीतिक शक्ति के इस्तेमाल पर बन्दिश लगाता है और इस सिलसिले में यह सीख देता है। जैसा कि इब्ने तीमिया ने लिखा है, ज़मीन पर ख़ुद को ख़ुदा की तरह निरंकुश बनाना मना है चाहे इस ताक़त को प्राप्त करने की नियत कुछ भी हो, क्योंकि ताक़त के ज़ोर पर अपने आप को मनवाना ताक़त के दुरुपयोग और ज़ुल्म व ज़ियादती की तरफ़ ले जाता है, जिससे आन्तरिक राजनीतिक व्यवस्था चलाने में अन्याय और ज़ोर ज़बरदस्ती का रास्ता खुलता है और दूसरों के साथ देश के सम्बंधों में ज़ुल्म व ज्यादती, शोषण और अहंकार व घमण्ड जन्म लेता है। अगर ज़मीन पर अपना बर्चस्व स्थापित करने में यह भावनाएं सक्रिय होती हैं तो निश्चित रूप से यह ताक़त प्राप्त करने वाला ज़मीन में उत्पात मचाएगा और अपने व अपने चाहने वालों को फ़ायदा पहुंचाएगा, जबकि दूसरों को दबाएगा और वंचित करेगा। अल्लाह पर ईमान और आख़िरत का यक़ीन मोमिन को दुनिया के ऐश और स्वार्थीपन से ग्रस्त होने से रोकता है, और इंसाफ़ से काम लेने की अल्लाह की शिक्षाओं को और आख़िरत में अल्लाह के सामने अपने कर्मों की जवाबदेही को नज़रअंदाज़ करने से बचाता है। अल्लाह का तक़वा और नैतिक मर्यादाएं आन्तरिक और विश्व स्तर पर न्याय स्थापित करने के लिए क़ानूनी उपायों के वास्ते गहरी भावनाएं देती हैं।

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنَّا خَلَقْنٰكُمْ مِّنْ ذَكَرٍ وَّ اُنْثٰى وَ جَعَلْنٰكُمْ شُعُوْبًا وَّ قَبَآىِٕلَ لِتَعَارَفُوْا ۭ اِنَّ اَكْرَمَكُمْ عِنْدَ اللّٰهِ اَتْقٰىكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَلِيْمٌ خَبِيْرٌ ۝۱۳

ऐ लोगों! हमने तुम को एक मर्द और एक औरत से पैदा किया है, और तुम्हारी क़ौमें और क़बीले बनाये ताके एक दूसरे को शनाख़्त करो, अल्लाह के नज़दीक तुम में ज़्यादा इज्ज़त वाला वो है जो सबसे ज़्यादा परहेज़गार हो बिला शुबह अल्लाह ख़ूब जानने वाला बा ख़बर है। (49:13)

यह आयत इंसानों के बीच समानता पर ज़ोर देती है और यह बताती है कि लोगों के बीच अन्तर और उनके अलग अल क़बीले व ब्रादियां होना एक दूसरे को पहचानने का साधन है और एक दूसरे के साथ सहयोग करने की भावना को बढ़ाने वाला एक विश्वव्यापी ड०यनामिज़्म है। भौगौलिक और नस्लीय फ़र्क़ व भेद को स्वीकार करना एक दूसरे से भौतिक और सांस्कृतिक अदल बदल को बढ़ावा देने के लिए होना चाहिए और यह वैश्विक सहयोग लोगों के बीच से रुकावटों और अवरोधों को हटाने का काम करेगा और इंसानों के बीच एकता व सहमति और समानता को मज़बूत करेगा। क़ुरआन इंसानों को ''अन्नास'' (इंसान) और ''बनी आदम'' (आदम की संतान) कह कर सम्बोधित करता है और किसी ख़ास नस्ल या जाति की बात नहीं करता है। यह इंसानों को एक चलती फिरती मख़्लूक़ के रूप में केटेग्राइज़ करता है जिसे अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से ख़ुशकी और तरी में सवारी दी (17:70), और हवाओं और वातावरण को इंसान के लिए सेट कर देने को यह अल्लाह का फज़्ल कहता है (45:12-13)। इसके अलावा शरीअत व्यक्तियों और सरकार की मदद से उन लोगों की ज़रूरतें पूरी करने की व्यवस्था करती है जो एक नई ज़मीन पर आकर बसते हों और कुछ समय के लिए अपना रोज़गार स्वयं कमाने की स्थिति में न हों (2:177,215(4:36(8:41(17:26(30:38)। ऐसे विश्वव्यापी इंसानी परिवार में मर्द और औरत बराबर हैं और दोनों के सम्बंधों व सहयोग से इंसानियत बहुत से सिलसिलों में विक्सित होती रहती है।

वायदे वचन को पूरा करना

मोमिनों! तुम अहेदों को पूरा किया करो, तुम्हारे लिये तमाम चौपाए मवेशी हलाल किये गए हैं मगर जिनका ज़िक्र आगे आता है लेकिन शिकार को हालते एहराम में हलाल मत समझना, बिला शुबह अल्लाह जो चाहता है हुक्म कर देता है। मोमिनों! तुम अल्लाह की निशानियों की बे हुर्मती ना किया करो, ना हुर्मत वाले महीने की, ना हरम में क़ुर्बानी होने वाले जानवरों की, और ना उन जानवरों की जिन के गले में पटटे पड़े हुए हों, और उन लोगों की जो बैतुलहराम के क़स्द से जा रहे हों, और अपने रब के फ़ज़्लो रज़ा के तालिब हों, और जब तुम एहराम से बाहर आ जाओ तो शिकार कर लो, और ऐसा ना होना चाहिए के तुम को किसी क़ौम से बुग़्ज़ हो इस

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ ؕ اُحِلَّتْ
لَكُمْ بَهِيْمَةُ الْاَنْعَامِ اِلَّا مَا يُتْلٰى عَلَيْكُمْ
غَيْرَ مُحِلِّى الصَّيْدِ وَ اَنْتُمْ حُرُمٌ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
يَحْكُمُ مَا يُرِيْدُ ۝ يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا
تُحِلُّوْا شَعَآئِرَ اللّٰهِ وَلَا الشَّهْرَ الْحَرَامَ وَلَا
الْهَدْىَ وَلَا الْقَلَآئِدَ وَلَآ آٰمِّيْنَ الْبَيْتَ
الْحَرَامَ يَبْتَغُوْنَ فَضْلًا مِّنْ رَّبِّهِمْ وَ
رِضْوَانًا ؕ وَ اِذَا حَلَلْتُمْ فَاصْطَادُوْا ؕ وَ لَا
يَجْرِمَنَّكُمْ شَنَاٰنُ قَوْمٍ اَنْ صَدُّوْكُمْ عَنِ
الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ اَنْ تَعْتَدُوْا ۘ وَ تَعَاوَنُوْا عَلَى

الْبِرِّ وَ التَّقْوٰى ۪ وَ لَا تَعَاوَنُوْا عَلَى الْاِثْمِ وَ الْعُدْوَانِ ۪ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۝٢

वजह से के उन्होंने तुम को मस्जिदे हराम से रोका था वो तुम्हारे लिए इसका बाअस बने के तुम हद से आगे निकल जाओ, और नेकी और तक़वे में एक दूसरे की मदद किया करो, और गुनाह और .ज्यादती में एक दूसरे की मदद ना किया करो, और गुनाह और .ज्यादती में एक दूसरे की मदद ना किया करो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह बड़ी सख़्त सज़ा देने वाला है। (5:1-2)

इन आयतों में से पहली आयत में ज़ोर देकर यह बात कही गयी है कि किसी से किए हुए वायदे या प्रतिज्ञा को पूरा करना क़ानूनी और नैतिक रूप से ज़रूरी है। यह आदेश व्यक्तियों और किसी भी मुस्लिम क़ानूनी संस्था पर लागू होता है जिसमें इस्लामी राज्य भी शामिल है, चाहे उसने वायदे आन्तरिक रूप से अपनी जनता से किए हों या विदेश स्तर पर दूसरे देशों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं से किए हों, प्राइवेट कम्पनियों से और व्यक्तियों से किए हों। यह फ़रमान अल्लाह तआला से या और किसी से कोई वायदा या वचन देने वाले मुसलमान व्यक्ति या वर्ग या संस्था की नैतिक और क़ानूनी ज़िम्मेदारी के लिए दीनी आधार देती है, क्योंकि वायदे को पूरा करना अब अल्लाह पर मोमिन के ईमान का तक़ाज़ा बन जाता है जो कि जानने वाली और ख़बर रखने वाली हस्ती है और आख़िरत में फ़ैसले के दिन सारे मामलों का फ़ैसला इसी अकेली हस्ती के हाथ में होगा।

दूसरी आयत में मुसलमान व्यक्ति और मुसलमान क़ानूनी संस्थाओं और मुस्लिम सरकारों को यह शिक्षा दी गयी है कि अपने सम्बंधों में न्याय पर अमल करें उन लोगों के साथ भी जो दुशमनी करें और मुसलमानों को 'मस्जिद हराम' में अल्लाह की इबादत से रोकें जो कि उनका क़िबला है और जिसका दर्शन व परिक्रिमा करना उनका धार्मिक कर्तव्य है। क्योंकि न्याय करना मुसलमान का चरित्र है, उनकी एकता व एकजुटता सच्चाई व नेकी के समर्थन के लिए है और वो किसी बुराई या नाइंसाफ़ी की हिमायत इस वजह से नहीं कर सकते कि वह किसी मुसलमान की तरफ़ से की गयी हो। इंसाफ़ के प्रति यह नैतिक और क़ानूनी प्रतिबद्धता व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बंधों पर प्रभाव रखती है। कोई मुस्लिम या इस्लामी शासन अगर किसी मामले में अन्याय करता है तो कोई मुसलमान व्यक्ति या संगठन अपनी उस सरकार का समर्थन केवल इस आधार पर नहीं कर सकता कि यह एक इस्लामी या मुस्लिम शासन है, न किसी इस्लामी राज्य को किसी दूसरे इस्लामी या मुस्लिम राज्य की जो कि अन्याय पर अड़ा हो केवल अपने सहधर्मी होने के आधार पर समर्थन करना चाहिए। अल्लाह पर ईमान का

तक़ाज़ा है कि हर तरह के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक और क़ानूनी मामलों में न्याय का पाबन्द रहने की प्रतिबद्धता पर बल दें, देश के अन्दर भी और देश के बाहर भी। इसके अलावा किसी भी आन्तरिक या बाहरी पक्ष के साथ सहयोग हमेशा अपेक्षित है अगर वह न्याय पर आधारित हो और उसका मक़सद भलाईयों को बढ़ावा देना हो।

وَإِنْ أَحَدٌ مِّنَ الْمُشْرِكِينَ اسْتَجَارَكَ
فَأَجِرْهُ حَتَّىٰ يَسْمَعَ كَلَامَ اللَّهِ ثُمَّ أَبْلِغْهُ
مَأْمَنَهُ ۚ ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمْ قَوْمٌ لَّا يَعْلَمُونَ ﴿٦﴾

अगर हम फ़रिश्ता तजवीज़ करते तो उसको मर्द की सूरत में भेजते, और जो शुबह अब उनको हो रहा है, वही शुबह फ़िर उनको होता। (6:9)

यह आयत राजनीतिक शरण प्राप्त करने के अधिकार को पहली मान्यता होने का पता देती है। मुसमलानों का कोई भी दुशमन मुसलमानों से उनकी ज़मीन पर और उनके शिविर (छावनी या क़िले) में शरण मांग सकता है और मुसलमानों पर यह लाज़िम है कि वो उस शरणार्थी को शरण और सुरक्षा दें और उसको यह मौक़ा दें कि वह मुसमलानों के धर्म को क़रीब से अपने आप समझे और देखे, किसी विरोधी माध्यम से न समझे। ऐसे व्यक्ति को शरण दी जाएगी और उसकी रक्षा की जाएगी और उसे वहां पहुंचाया जाएगा जहां वह ख़ुद को सुरक्षित समझे चाहे वह अपने लोगों और अपने देश में जाना चाहे या मुसलमानों के साथ रहना चाहे। ऐसे व्यक्ति का फ़ैसला जो कुछ भी हो उस पर इस्लाम क़ुबूल करने के लिए कोई दबाव नहीं बनाया जाएगा, मुसलमानों का काम केवल दीन समझाना और पहुंचाना है, लोगों के धर्म को अपने आप बदल देना नहीं है, क्योंकि ईमान व अक़ीदे के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं है (2:256), और हर व्यक्ति को अपना अक़ीदा पूरी आज़ादी के साथ चुनने का अधिकार है। जो लोग अपने देश से दूर राजनीतिक शरण की ऐसी स्थिति में रहते हैं उनकी मदद बैतुल माल (सार्वजनिक ख़ज़ाने) से की जाती है अगर वो उस नई जगह पर अपना रोज़गार आसानी से हासिल नहीं कर पाते (8:41(9:60(59:7)।

إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُ بِالْعَدْلِ وَالْإِحْسَانِ وَ
إِيتَائِ ذِي الْقُرْبَىٰ وَيَنْهَىٰ عَنِ الْفَحْشَاءِ
وَالْمُنكَرِ وَالْبَغْيِ ۚ يَعِظُكُمْ لَعَلَّكُمْ
تَذَكَّرُونَ ﴿٩٠﴾ وَأَوْفُوا بِعَهْدِ اللَّهِ إِذَا
عَاهَدتُّمْ وَلَا تَنقُضُوا الْأَيْمَانَ بَعْدَ
تَوْكِيدِهَا وَقَدْ جَعَلْتُمُ اللَّهَ عَلَيْكُمْ

बिला शुबह अल्लाह तआला इन्साफ़ (1), नेकी (2), अपने क़रीबी रिश्तेदारों को देने का हुक्म देता है, और बेहयाई, बड़े गुनाहों, और सरकशी के काम से रोकता है, अल्लाह तुम को नसीहत करता है, इसलिये के तुम नसीहत क़ुबूल करो। और अल्लाह के अहद को पूरा करो जब तुम उसको अपने ज़िम्मे लो, और क़समों को मत तोड़ा करो उनके मुसतेहकम करने के बाद और तुम अल्लाह को अपना ज़ामिन बना चुके हो, बिला शुबह

كَفِيلًا ۚ إِنَّ اللَّهَ يَعْلَمُ مَا تَفْعَلُونَ ﴿٩١﴾ وَلَا
تَكُونُوا كَالَّتِي نَقَضَتْ غَزْلَهَا مِنْ بَعْدِ قُوَّةٍ
أَنْكَاثًا ۚ تَتَّخِذُونَ أَيْمَانَكُمْ دَخَلًا
بَيْنَكُمْ أَنْ تَكُونَ أُمَّةٌ هِيَ أَرْبَىٰ مِنْ أُمَّةٍ ۚ
إِنَّمَا يَبْلُوكُمُ اللَّهُ بِهِ ۚ وَلَيُبَيِّنَنَّ لَكُمْ
يَوْمَ الْقِيَامَةِ مَا كُنْتُمْ فِيهِ تَخْتَلِفُونَ ﴿٩٢﴾
وَلَوْ شَاءَ اللَّهُ لَجَعَلَكُمْ أُمَّةً وَاحِدَةً وَ
لَٰكِنْ يُضِلُّ مَنْ يَشَاءُ وَيَهْدِي مَنْ
يَشَاءُ ۚ وَلَتُسْأَلُنَّ عَمَّا كُنْتُمْ تَعْمَلُونَ ﴿٩٣﴾
وَلَا تَتَّخِذُوا أَيْمَانَكُمْ دَخَلًا بَيْنَكُمْ
فَتَزِلَّ قَدَمٌ بَعْدَ ثُبُوتِهَا وَتَذُوقُوا
السُّوءَ بِمَا صَدَدْتُمْ عَنْ سَبِيلِ اللَّهِ ۖ وَ
لَكُمْ عَذَابٌ عَظِيمٌ ﴿٩٤﴾ وَلَا تَشْتَرُوا بِعَهْدِ
اللَّهِ ثَمَنًا قَلِيلًا ۚ إِنَّمَا عِنْدَ اللَّهِ هُوَ خَيْرٌ
لَكُمْ إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٩٥﴾

अल्लाह .ख़ूब जानता है जो तुम करते हो। और तुम उस औरत की मानिंद ना बनो जो मेहनत से सूत कातती है, फ़िर उसको तोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डालती है, के तुम अपनी क़समों को आपस में फ़साद का ज़रिया बनाने लगो सिर्फ़ इसलिये के एक गिरोह से .ज़्यादा ग़ालिब रहे, बात ये है के अल्लाह उससे तुमको आज़माता है, और जिन बातों में तुम इख़्तिलाफ़ करते रहे उनको इज़हार क़यामत के रोज़ तुम्हारे सामने कर दिया जायेगा। और अगर अल्लाह चाहता तो तुम सबको एक ही जमात बना देता, लेकिन वही जिसे चाहता है गुमराह करता है और जिसे चाहता है उसको हिदायत करता है, और तुम से ज़रूर पूछा जाएगा जो तुम दुनिया में करते थे। और तुम अपनी क़समों को आपस में फ़साद का ज़रिया ना बनाओ के क़दम जम जाने के बाद लड़खड़ा जायें, फ़िर तुम चखो अज़ाब इस बात पर के तुम ने लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोका था, और तुम्हारे लिये बड़ा अज़ाब है। और ना लो अल्लाह के अहद पर मुआवज़ा थोड़ा, अल्लाह के पास जो कुछ है वो तुम्हारे लिये बहुत बेहतर है, अगर तुम जानते हो। (16:90-95)

इनमें से पहली आयत में इस्लाम के संदेश की बुनियादी शिक्षाओं को समेट दिया गया हैःअल्ला तआला सभी मामलों में इंसाफ़ और अहसान (न्याय व परोपकार) से काम लेने का हुक्म देते हैं चाहे राजनीतिक मामला हो, प्रशासनिक मामला हो, क़ानूनी हो, सामाजिक व आर्थिक हो या विश्व व्यापी और अन्तर्राष्ट्रीय मामले हों, और इन सबसे पहले इन मूल्यों को घर और परिवार में बरतना चाहिए ताकि उससे समाज को और पूरी दुनिया को रोशनी मिले और वहां भी इस आदर्श को अपनया जाए। इसी के साथ अल्लाह तआला ना इंसाफ़ी और ज़ुल्म व ज़्यादती को मना करते हैं और उन तमाम बातों को जो बेशर्मी वाली है और उन तमाम बातों से जो अनुचित और घटिया व बेकार बाते हैं। ये बुनियादी बातें मुसलमानों को अपने आन्तरिक मामलों में भी और दूसरी क़ौमों व देशों के साथ सम्बंधों में भी रास्ता दिखाती हैं। इसके बाद वाली आयतें वचन को पूरा करने पर ज़ोर देती हैं जो मुसमलान आपस में एक दूसरे से करें या किसी दूसरी क़ौम या देश के व्यक्तियों से पूरी क़ौम से या पूरे देश से करें। अल्लाह तआला इस बात पर निगरानी रखते हैं कि एक मोमिन दूसरों के साथ किस तरह का बर्ताव

करता है, और वह अपने वचन और वायदे पर अल्लाह को गवाह बनाते हैं। लोग प्रायःकिसी मौक़े से फ़ायदा उठाने के लिए, और दूसरों पर अपना ज़ोर चलाने के लिए अपने वचन और ज़िम्मेदारियों से मुंह मोड़न पर आमादा हो जाते हैं, लेकिन ऐसे लोगों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में कोई भरोसा नहीं रहता जो कि बहुत मुश्किल से और बहुत ज़माने में लगातार अडिग रहने से बनता है ठीक उस मूर्ख औरत की तरह जो बहुत समय लगा कर और बहुत मेहनत से सूत काते और बाद में उसको टुकड़े टुकड़े कर दे। मुसलमान इस तरह परखे जाते हैं कि वो दूसरों के साथ अपने सम्बंधों में नैतिक मर्यादाओं पर बने रहते हैं, या उनका मक़सद दूसरों की तरह ज़्यादा से जज़्यादा ताक़त प्राप्त करना है। जो लोग अल्लाह के सामने जवाबदेही का यक़ीन रखते हैं उन्हें इस बात से हमेशा सावधान रहना चाहिए कि हर एक की जवाबदेही होगी, और दूसरों से किसी भी तरह के मतभेद की सच्चाई हर एक के सामने आ लाई जाएगी। अल्लाह तआला चाहते तो सारे इंसानों को एक ही जैसा बना देते लेकिन अल्लाह ने इंसानों के बीच फ़र्क़ रखा है ताकि वह हर एक को दूसरों के साथ मामला करने में आज़माएं। इस दुनिया में इंसानों का आपस में सम्बंध रखना इंसान की ख़ास ज़िम्मेदारी है, और आपसी सम्बंध ही दूसरों के साथ बर्ताव में इंसान के अन्दरुनी विकाउ ज़ाहिर करते हैं। मुसलमान अगर अपने इंसानी सम्बंधों में अपने नैतिक मूल्यों को नहीं बरतेंगे, अपने देश में भी और देश के बाहर भी, उनके क़दम शक्ति के नशे में डगमगा जाएंगे, और वो दुनियावी फ़ायदों के लिए अल्लाह से किए हुए अपने वायदे को भूल जाएंगे और उनकी इस कोताही से सारी दुनिया में इस्लाम की छवि ख़राब होगी और दूसरे लोग इस्लाम के संदेश का सम्मान करने से पीछे हट जाएंगे। ऐसे लोग दुनिया में भी नाकाम होंगे और आख़िरत में कड़ी यातना (अज़ाब) में डाले जाएंगे। इस्लाम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों के लिए कितनी गहरी बुनियाद देता है कि ईमान और अख़लाक़ से व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण करता है केवल क़ानून से ही उन्हें नहीं बांधता, जैसा कि ख़ुद इस्लामी शरीअत का मामला भी है।

मुसलमानों की एकता

وَالْمُؤْمِنُوْنَ وَالْمُؤْمِنٰتُ بَعْضُهُمْ اَوْلِيَآءُ بَعْضٍ ۘ يَاْمُرُوْنَ بِالْمَعْرُوْفِ وَ يَنْهَوْنَ عَنِ الْمُنْكَرِ وَ يُقِيْمُوْنَ الصَّلٰوةَ وَ يُؤْتُوْنَ الزَّكٰوةَ وَ يُطِيْعُوْنَ اللّٰهَ وَ رَسُوْلَهٗ ؕ اُولٰٓئِكَ سَيَرْحَمُهُمُ اللّٰهُ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۝٧١

मोमिन मर्द, और मोमिन औरतें, आपस में एक दूसरे के दोस्त हैं, अच्छे काम करने को कहते हैं, और बुरे कामों से मना करते हैं, नमाज़ पाबंदी से पढ़ते हैं, और ज़कात देते हैं, और अल्लाह और रसूल की इताअत करते हैं, उन्हीं पर अल्लाह जल्द रहम करेगा, बिलाशुबह अल्लाह तो ज़बरदस्त और बड़ी हिकमतों वाला है। (9:71)

मोमिनों की आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों में मोमिन मर्द और मोमिन औरतें दोनों शामिल हैं कि दोनों एक दूसरे के ज़िम्मेदार हैं। मुसलमानों की विश्वव्यापी एकता के लिए मुस्लिम मर्दों व औरतों दोनों को मिल जुल कर काम करना चाहिए। इसके अलावा दोनों को ही पूरी दुनिया में न्याय और शान्ति की बात करना चाहिए जिससे सारी इंसानियत फ़ायदा उठाए। मुस्लिम औरतें मुस्लिम मर्दों के साथ खड़े हो कर एक ज़बरदस्त ताक़त बन सकती हैं और अच्छे कामों को बढ़ावा देने, बुरे कामों से रोकने के लिए संघर्ष कर सकती हैं, मुसलमानों के बीच में भी और दुनिया में भी। मुसलमानों की विश्वव्यापी एकता के लिए कोई ख़ास राजनीतिक रूप या ढांचा नहीं है, और ख़िलाफ़त केवल एक ऐतिहासिक अनुभव थी। आपसी सहयोग और मिलजुल कर काम करने के लिए आज की दुनिया में यूनियन आफ़ स्टेट बनाने, कन्फ़ेडरेशन बनाने या कॉमन वेल्थ जैसे मंच बनाने का जो अनुभव किया गया है उससे मुसलमान इस मामले में सीख ले सकते हैं। क़दीम आलिमों और फ़क़ीहों जैसे बग़दादी (मृ० 429 हिजरी/1037 ई) और अलजुवायनी (478 हिजरी/1085 ई) ने भौतिक आवश्यकताओं के लिए एक से अधिक मुस्लिम राजनीतिक बाड़ीज़ के मौजूद होने को मान्यता दी है। दूसरी इंसानी ज़रूरतों के लिए भी इसे स्वीकार किया जा सकता है जैसे नस्ली, सांस्कृतिक, वैचारिक, संगठान्तमक ज़रूरतें मुसमलानों की एकता स्थापित करने का मतलब दुनिया में दूसरों के ख़िलाफ़ खड़ा होना नहीं है, न किसी मामले में किसी मुस्लिम एन्टिटी का समर्थन करना है, बल्कि केवल दुनिया में शान्ति व न्याय का समर्थन करना है। मुसलमानों को आपस में एक दूसरे का सहयोग कल्याण और भलाई के कामों को बढ़ावा देने के लिए करना होता है, बुराई या ज़ुल्म व ज़्यादती में एक दूसरे के साथ खड़े होने के लिए नहीं होता है।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنْ جَآءَكُمْ فَاسِقٌۢ بِنَبَاٍ فَتَبَيَّنُوْٓا اَنْ تُصِيْبُوْا قَوْمًاۢ بِجَهَالَةٍ فَتُصْبِحُوْا عَلٰى مَا فَعَلْتُمْ نٰدِمِيْنَ ۝ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّ فِيْكُمْ رَسُوْلَ اللّٰهِ ؕ لَوْ يُطِيْعُكُمْ فِيْ كَثِيْرٍ مِّنَ الْاَمْرِ لَعَنِتُّمْ وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ حَبَّبَ اِلَيْكُمُ الْاِيْمَانَ وَ زَيَّنَهٗ فِيْ قُلُوْبِكُمْ وَ كَرَّهَ اِلَيْكُمُ الْكُفْرَ وَ الْفُسُوْقَ وَ الْعِصْيَانَ ؕ اُولٰٓئِكَ هُمُ الرّٰشِدُوْنَ ۝ فَضْلًا مِّنَ اللّٰهِ وَ نِعْمَةً ؕ وَ اللّٰهُ عَلِيْمٌ

ऐ ईमान वालों! अगर कोई फ़ासिक़ आदमी तुम्हारे पास कोई ख़बर लेकर आये तो ख़ूब तहक़ीक़ कर लिया करो, ऐसा ना हो, के किसी क़ौम को नादानी से नुक़सान पहुंचा दो, फ़िर तुम को अपने किये पर शर्मिंदा होना पड़े। और जान लो! के तुम में अल्लाह के पैग़म्बर हैं, अगर वो बहुत सी बातों में तुम्हारा कहना मान लिया करें तो तुम मुश्किल में मुबतला हो जाओगे, लेकिन अल्लाह ने तुम्हारे लिये ईमान को अज़ीज़ बना दिया, और तुम्हारे दिलों में उसको ज़ीनत बख़्शी, और कुफ़्र और फ़िस्क़ और नाफ़रमानी को तुम्हारे लिये नापसंदीदा बना दिया, यही लोग हिदायत की राह पर हैं। (यानी) ख़ुदा के फ़ज़्ल और एहसान से, और अल्लाह खूब जानने

वाला और हिकमत वाला है। अगर मोमिनों की दो जमातें आपस में लड़ पड़ें, तो उनमें सुलह करा दो, फ़िर अगर एक जमात दूसरे पर .ज्यादती करे तो .ज्यादती करने वालों से लड़ो, यहां तक के वो अल्लाह के हुक्म की तरफ़ रूजू करें, फ़िर अगर वो रूजू करें तो उन दोनों में इन्साफ़ के साथ सुलह करा दो, और इन्साफ़ से काम करो, बेशक अल्लाह इन्साफ़ करने वालों को पसंद करता हैं। मोमिन सब आपस में भाई भाई हैं, तो अपने दो भाईयों में सुलह करा दिया करो, और अल्लाह से डरते रहो, ताके तुम पर रहम हो। (49:6-10)

حَكِيۡمٌ ۝۸ وَ اِنۡ طَآئِفَتٰنِ مِنَ الۡمُؤۡمِنِيۡنَ
اقۡتَتَلُوۡا فَاَصۡلِحُوۡا بَيۡنَهُمَا ۚ فَاِنۡۢ بَغَتۡ
اِحۡدٰٮهُمَا عَلَى الۡاُخۡرٰى فَقَاتِلُوا الَّتِىۡ
تَبۡغِىۡ حَتّٰى تَفِىۡٓءَ اِلٰٓى اَمۡرِ اللّٰهِ ۚ فَاِنۡ
فَآءَتۡ فَاَصۡلِحُوۡا بَيۡنَهُمَا بِالۡعَدۡلِ وَ
اَقۡسِطُوۡا ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الۡمُقۡسِطِيۡنَ ۝۹
اِنَّمَا الۡمُؤۡمِنُوۡنَ اِخۡوَةٌ فَاَصۡلِحُوۡا بَيۡنَ
اَخَوَيۡكُمۡ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمۡ
تُرۡحَمُوۡنَ ۝۱۰

ये आयतें जिस तरह समाज में व्यक्तियों को अपने आपसी सम्बंधों में नैतिक मूल्यों पर बने रहने की शिक्षा देती हैं उसी तरह यह विभिन्न मुस्लिम एन्टिटीज़ के बीच वैश्विक सम्बंधों में सीख देती हैं और सामूहिक रूप से मुसलमानों व दुनिया के अन्य देशों के बीच सम्बंधों में भी मार्गदर्शन करती हैं, क्योंकि मुसलमान बुराइयों को और दुशमनियों को बढ़ावा देने के लिए आपस में एकता नहीं कर सकते, बल्कि शान्ति स्थापित करने और न्याय के लिए एक दूसरे का साथ देने के लिए एकजुट हो सकते हैं (5:2)। किसी भी सूचना पर कोई त्वरित प्रतिक्रिया से दुनिया में तनाव पैदा होगा और शान्ति भंग होगी, और अगर कोई नुक़सान होता है तो उसकी भरपाई एकबार ही एकदम से नहीं की जासकती, और जल्दबाज़ी करने वाला पक्ष बाद में अपनी जल्दबाज़ी पर शर्मिन्दा होगा। अल्लाह पर ईमान और अल्लाह की पकड़ के डर से नैतिक संवेदनशीलता पैदा होना चाहिए, और बग़ैर पर्याप्त सुबूतों के दूसरों को नुक़सान पहुंचा देना या कोई ग़लत और अन्यायपूर्ण कार्रवाई कर बैठने की इजाज़त तुरन्त नहीं दी जा सकती, और अगर ऐसा होता है तो उसे फैलने नहीं देना चाहिए। किसी इंसान को रसूल या पैग़म्बर बनाकर भेजने का असिल मक़सद अल्लाह के पैग़ाम का व्यवहारिक नमूना लोगों के सामने लाना और दैनिक जीवन के मामलों में सही रास्ते की तरफ़ उनका मार्गदर्शन करना है। इस तरह अल्लाह का तक़वा और नैतिकता पर बने रहने की प्रतिबद्धता विश्व शान्ति और विश्व स्तर पर आपसी सहयोग के लिए ठोस आधार उपलब्ध कराता है।

लेकिन अगर मुसलमानों के दो वर्गों के बीच कभी कोई विवाद पैदा हो जाए तो दूसरे मुसलमानों को निश्चिंत और उदासीन नहीं रहना चाहिए, बल्कि मध्यस्ता के द्वारा मेल कराके या फिर अदालती प्रक्रिया के द्वारा उस विवाद का हल निकालने की कोशिश करना चाहिए। अगर दोनों में कोई पक्ष झगड़े को और बढ़ाता है और ज़्यादती पर उतर आता है, तो अन्य सभी

मुसलमानों को मिल कर उसका मुक़ाबला करना चाहिए और ताक़त का इस्तेमाल करके शान्ति स्थापित करने की कोशिश करना चाहिए ताकि न्याय और न्याय के सिद्धांतों पर ज़ोर दिया जा सके और वह यह कि ज़ुल्म और ज़्यादती को किसी भी तरह बर्दाश्त नहीं किया जाए। दुनिया के मामलों में बेफ़िक्री, बेपरवाही और उदासीनता रखना उतना ही विनाशकारी है जितना आन्तरिक राजनीतिक मामलों में बे नियाज़ी बरतना, इससे ज़्यादती करने वालों और बाहुबलियों का उत्साहवर्धन होता है और वो आन्तरिक व विश्व स्तर पर अन्याय के लिए और ज़्यादा उतारू हो जाते हैं। लेकिन ज़्यादती करने वाला पक्ष जैसे ही हथियार डाल दे और न्याय व शान्ति की तरफ़ झुक जाए तो विवाद के हल के लिए उसके साथ बातचीत शुरू कर देनी चाहिए और उसके प्रति कोई बैर या दुशमनी नहीं बरतना चाहिए, क्योंकि दो ग़लतियां मिलकर कोई अच्छी बात नहीं बन जातीं। अन्याय का रवैया जब तक एक पक्ष से दूसरे पक्ष और दूसरे से तीसरे पक्ष तक स्थानान्तरित होता रहेगा तब तक दुनिया से अन्याय समाप्त नहीं होगा और शान्ति स्थापित नहीं होगी, और दुनिया अशान्ति के हिचकोले खाती रहेगी। ये आयतें विश्व शान्ति और न्याय को बनाए रखने के ऐसे सिद्धांत देती हैं जिनसे न केवल मुसलमानों के बीच बल्कि पूरी दुनिया में न्याय व शान्ति की रक्षा होती है। अलबत्ता इन सिद्धांतों के व्यवहारिक रूप के लिए किसी भी इंसानी अनुभव से फ़ायदा उठाया जा सकता है चाहे वह अनुभव ख़ुद मुसमलानों ने किया हो या ग़ैर मुस्लिमों ने। संयुक्त राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय मुसलमानों को ख़ुद अपनी संस्थाओं से फ़ायदा उठाने और इन संस्थाओं को विक्सित करने में या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं को बढ़ावा देने में अपनी भूमिका निभाने के लिए उनकी मदद कर सकते हैं।

दूसरों के साथ सम्बंध

अजब नहीं के अल्लाह तुम में और उनमें जिनसे तुम दुश्मनी रखते हो, दोस्ती पैदा कर दे, और अल्लाह बड़ी क़ुदरत वाला है, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला रहम वाला है। अल्लाह तुम को उन लोगों से भलाई और इन्साफ़ करने से नहीं रोकता जो तुम से दीन के बारे में जंग नहीं करते और ना तुम को तुम्हारे घरों से निकालते हैं, अल्लाह तो इन्साफ़ करने वालों को दोस्त रखता है। अल्लाह तुम को सिर्फ़ उन लोगों से दोस्ती करने से माना करता है जो तुम से दीन के बारे में लड़ते हैं, और तुम को तुम्हारे घरों से निकालते हैं और तुम्हारे निकालने में

عَسَى اللّٰهُ اَنْ يَّجْعَلَ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَ
الَّذِيْنَ عَادَيْتُمْ مِّنْهُمْ مَّوَدَّةً ؕ وَ اللّٰهُ
قَدِيْرٌ ؕ وَ اللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۞ ٧ لَا يَنْهٰكُمُ
اللّٰهُ عَنِ الَّذِيْنَ لَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ فِى الدِّيْنِ
وَ لَمْ يُخْرِجُوْكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ اَنْ
تَبَرُّوْهُمْ وَ تُقْسِطُوْۤا اِلَيْهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
يُحِبُّ الْمُقْسِطِيْنَ ۞ ٨ اِنَّمَا يَنْهٰكُمُ اللّٰهُ
عَنِ الَّذِيْنَ قٰتَلُوْكُمْ فِى الدِّيْنِ وَ اَخْرَجُوْكُمْ

مِّنْ دِيَارِكُمْ وَ ظٰهَرُوْا عَلٰٓى اِخْرَاجِكُمْ اَنْ تَوَلَّوْهُمْ ۚ وَ مَنْ يَّتَوَلَّهُمْ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ⑨

औरों की मदद करते हैं, और जो ऐसे लोगों से दोस्ती करेंगे तो वही लोग ज़ालिम हैं। (60:7-9)

क़ुरआन सभी क़ौमों, नस्लों और क़बीलों के बीच आपसी सहयोग पर बार बार ज़ोर देता है और मुसमलानों को यह शिक्षा देता है कि उन सभी लोगों से मुरव्वत और इंसाफ़ का बर्ताव करें जिनका धर्म व आस्था मुसलमानों से अलग है, जब तक उनमें से कोई मुसलमानों के ख़िलाफ़ उनके दीन की वजह से जंग न छेड़े, न उन्हें उनके घरों से निकाले। मुसलमानों को अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में अल्लाह के दीन और उसकी नैतिक मर्यादाओं का प्रतिनिधित्व करना चाहिए और उनका यह व्यवहार दुशमनों को दोस्ती की तरफ़ ला सकता है, और कोई भी दुशमनी समय बदलने के साथ दोस्ती में बदल सकती है (और देखें 23:96(41:34)। मुसलमानों को कुछ लोगों से दोस्ताना सम्बंध न रखने की जो सीख दी गयी है वह धार्मिक भेद की वजह से नहीं बल्कि उनके ज़ुल्म व ज़्यादती या ज़ुल्म व ज़्यादती में साथ देने के आधार पर है। ज़ुल्म व ज़्यादती में सहयोगी बनने वाले लोग इस दुनिया में भी अपने दुराचार का नतीजा भुगतेंगे और आख़िरत में भी। (11:113)।

ये आयतें इंसाफ़ के मुताबिक़ वैश्विक आपसी सहयोग के सिद्धांत देती हैं। अलग अलग नस्लों, क़ौमों, धर्मों व संस्कृतियों के बीच निर्माणकारी व सकारात्मक सम्बंध मुसलमानों और उनके दीन को विश्वव्यापी विविधता का हिस्सा बनने का अवसर देते हैं, और यह न केवल मुसलमानों व इस्लाम के लिए फ़ायदेमन्द है बल्कि सारी दुनिया को फ़ायदा पुहंचाने की बात है। मौजूदा दुशमनी का वातावरण मुसलमानों को एक बहतर बदलाव की तरफ़ देखने से और शान्ति, सदभाव और सहयोग को बढ़ावा देने से रोकने का कारण न बने। पैग़म्बर सल्ल० ने अपने जीवन में उन लोगों के साथ सकारात्मक सम्बंध और शान्ति की आशा रखने की मिसाल उपलब्ध कराई है जिन्होंने पैग़म्बर साब के पैग़ाम का विरोध किया, दीन अपनाने वालों को सताया, ख़ुद पैग़म्बर साहब को हिलाक करने का प्रयास किया, और जब ईमान वाले हिजरत करके एक दूसरी जगह पहुंच गए तो वहां उन पर लगातार चढ़ाइयां करते रहे। लेकिन इसके बावजद उन दुशमनों को बददुआ देने से आपने ख़ुद को रोके रखा और फ़रमायाः''मैं दुनिया वालों के लिए दुख देने वाला बना कर नहीं भेजा गया हूं बल्कि दयाशील बना कर भेजा गया हूं। हो सकता ह कि अल्लाह इन लोगों की संतान में से उन लोगों को उठाए जो केवल अल्लाह की इबादत करने वाले हों। ऐ अल्लाह मेरी क़ौम को हिदायत दीजिए, ये जानते नहीं हैं'' (रिवायत मुस्लिम)।

لَا يَتَّخِذِ الْمُؤْمِنُوْنَ الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ۚ وَ مَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَلَيْسَ مِنَ اللّٰهِ فِيْ شَيْءٍ اِلَّآ اَنْ تَتَّقُوْا مِنْهُمْ تُقٰىةً ؕ وَ يُحَذِّرُكُمُ اللّٰهُ نَفْسَهٗ ؕ وَ اِلَى اللّٰهِ الْمَصِيْرُ ﴿۲۸﴾

मुसलमानों को मुसलमानों के सिवा काफ़िरों को दोस्त ना बनाना चाहिये, और जो ऐसा करेगा तो अल्लाह से उसका कोई एहद नहीं मगर ऐसी सूरत में के जब तुम को उनसे किसी क़िस्म का क़वी अंदेशा हो, और अल्लाह तुमको अपनी ज़ात से डराता है और (तुमको) अल्लाह ही की तरफ़ लौट कर जाना है। (3:28)

यह आयत मोमिनों को इस बात से मना करती है कि जिन लोगों ने अहंकार के साथ सत्य को झुटला दिया है उन्हें अपना औलिया (संरक्षक) बनाएं, उन लोगों को छोड़ कर जो उनके दीनी भाई हैं यानि दीन में उनके साथी और सहायक हैं। लेकिन यह आदेश इस आम सिद्धांत के विपरीत नहीं है कि तमाम इंसानों के साथ सम्बंध रखे जाएं और एक दूसरे से फ़ायदा उठाएं और उन लोगों के साथ मुरव्वत व इंसाफ़ का मामला किया जाए जब तक कि वो मुसलमानों के विरुध कोई आक्रामक क़दम न उठाएं या उनके दीन और वतन के सम्बंध में उनके इंसानी अधिकारों पर हाथ न डालें। क़ुरआन के पैग़ाम को सामूहिक रूप में ही समझना होगा, जो सम्बंध रखना मना हैं वो "वली" (संरक्षक या बड़ा) बनाने के सम्बंध है। इसके अलावा यह मनाही उन लोगों के बारे में है जिन्होंने अहंकार के साथ खुल कर सत्य को नकारा जब कि सत्य उनके सामने खुल कर आ गया हो, "और वो लोग जिन्होंने तुम से दीन के बारे में लड़ाई की और तुम को तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकालने में औरों की मदद की" (60:9)। इसके अलावा ऐसे ज़ालिमों के साथ सम्बंध इस लिहाज़ से मना हैं कि मोमिनों को छोड़ कर, जिनको अपना सहायक और संरक्षक बनाना उपयोगी है, यह सम्बंध बनाए जाएं। अगर मुसलमानों के लिए दूसरों के साथ सम्बंधों से ये फ़ायदे निश्चित रूप से मिलते हों और इसके उद्देश्य कुछ और न हों तो ज़रूरत के समय इजाज़त का सिद्धांत यहां लागू हो सकता है "जो चीज़ें अल्लाह ने तुम्हारे लिए हराम कर दी हैं वो एक एक करके बयान कर दी हैं" (बेशक उनको नहीं खाना चाहिए) मगर इस स्थिति में कि उनके (खाने के) लिए मजबूर हो जाओ (6:119), "हां जो मजबूर हो जाए (शर्त यह है कि) अल्लाह की ना फ़रमानी न करे और हद (ज़रूरत) से बाहर न निकल जाए उस पर कुछ गुनाह नहीं" (2:173), "अल्लाह किसी व्यक्ति को उसकी क्षमता से अधिक तकलीफ़ नहीं देते" (2:286)। फिर भी मुसलमानों को यह शिक्षा दी गयी है कि वो आपस में एक दूसरे का सहयोग करें और संयुक्त फ़ायदों के लिए एक दूसरे को सहारा दें (5:2)।

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوا الْكٰفِرِيْنَ اَوْلِيَآءَ مِنْ دُوْنِ الْمُؤْمِنِيْنَ ؕ اَتُرِيْدُوْنَ

मोमिनों! तुम मोमिनीन को छोड़ कर काफ़िरों को दोस्त मत बनाओ, क्या तुम चाहते हो के अल्लाह की खुली

दलील को अपने ऊपर क़ायम कर लो। (4:144) اَنْ تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ عَلَيْكُمْ سُلْطٰنًا مُّبِيْنًا ﴿١٤٤﴾

क़ुरआन में यह जो शब्द ''औलिया'' इस्तेमाल किया गया है इसका अनुवाद आसानी से 'संरक्षक' और 'समर्थक' नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका अर्थ शक्ति प्राप्त करने से है और इसके अर्थ से नज़दीकी मतलब बर्चस्व की स्थिति है। यह सम्बंधों की ऐसी स्थिति है जो केवल दोस्ती या बराबर के किसी व्यक्ति से मदद या सहारा लेने से आगे की है, इसमें मुकम्मल वफ़ादारी और हर समय व हर स्थिति में उसके अनुकूल व्यवहार अपनाने का अर्थ शामिल है। अंग्रेज़ी शब्द पेट्रन (संरक्षक) प्राचीन काल में उस व्यक्ति के लिए बोला जाता था जो अपने किसी ग़ुलाम को आज़ाद कर देता था लेकिन उस पर अपना हक़ बनाए रखता था, और इसी सम्बंध के लिए अरबी में ''वली'' या ''औलिया'' के शब्द इस्तेमाल किए जाते थे। अतःइन आयतों में जिस सम्बंध को मना किया गया है वह सत्य के इंकारियों से राजनीतिक, सेनिक या तकनीकी मदद प्राप्त करने की जुगत पर लागू नहीं होता क्योंकि ख़ुद रसूल सल्ल० ने इस तरह के सामयिक अनुभव किए जब मुसमलानों को इसकी ज़रूरत पड़ी और यह मदद उस समय केवल उनसे ही मिल सकती थी जो दुशमनों की आस्था पर जमे हुए थे। आप सल्ल० ने उन लोगों के साथ गठजोड़ बनाने की पूरी कोशिश की जो आप पर ईमान लाने वालों में से नहीं थे, और आप ने यह मामला मक्का में भी किया और मक्का से पलायन करके मदीना आने पर भी किया। पैग़म्बर सल्ल० की वफ़ात (मृत्यू) से कुछ ही साल पहले हुदैबिया में आप ने मक्का के काफ़िरों के साथ जो सन्धि की थी उससे अरब के क़बीलों को यह मौक़ा मिला कि वो या आपके सहयोगी बनें या आपके दुशमनों का साथ दें। जिन लोगों ने पैग़म्बर सल्ल० का सहयोगी बनना स्वीकार किया उनके लिए आपने इस्लाम अपनाने की शर्त नहीं रखी। मक्का से मदीना हिजरत करते समय आप सल्ल० ने रास्ता दिखाने के लिए एक ऐसे व्यक्ति को साथ लिया जो ईमान नहीं लाया था और दुशमनों की आस्था पर ही था। ताइफ़ में दुशमनों से घिर जाने के मौक़े पर आपने मंजीक़ (तोप) इस्तेमाल करने का तरीक़ा देखा और बाद में उससे फ़ायदा उठाया।

इसके अलावा, सम्बंधों की इस मनाही को क़ुरआनी और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की जानी चाहिए। जिन आयतों में यह मनाही आई है वो आम तौर से मुनाफ़िक़ों की निन्दा में आई हैं, जो दिखावे में तो इस्लाम पर ईमान रखते थे लेकिन बात काफ़िरों की मानते थे (4:137-146)। अतःकाफ़िरों के साथ उनके सम्बंध उनके साथ पूरी वफ़ादारी वाले थे, और आस्था व जीवनशैली के लिहाज़ से भी उनका झुकाव उन्ही की तरफ़ था। आयत 60:9 में उन लोगों पर स्पष्ट किया गया कि जो मुसलमान और मोमिन हैं उन्हें काफ़िरों को अपना वली न बनाना चाहिए:''अल्लाह उन्ही लोगों के साथ तुम को दोस्ती से मना करता है

जिन्होंने तुम से दीन के बारे में लड़ाई की और तुम को तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकालने में औरों का साथ दिया''।

यह सिद्धांत अहल-ए-किताब के बारे में भी लागू होता है। उनके साथ पूरी तरह वफ़ादारी का सम्बंध बनाना, उनका समर्थन करना और उनकी आस्था व जीवनशैली को अपनाना मना है, कुछ ख़ास मामलों में किसी तरह की कोई मदद लेना मना नहीं है ख़ास तौर से उनसे जो तुम्हारे दीन की वजह से तुमसे लड़ते नहीं है, न तुम्हें तुम्हारे घरों से निकालते हैं (60:8)। दीन और अक़ीदे में जो भी मतभेद हो, इस्लाम इंसानी सम्बंध स्थापित करने और अन्तर्राष्ट्रीय आपसी सहयोग और आपसी समझबूझ पर ज़ोर देता है, जब तक कि यह सम्बंध न्याय और आपसी हितों पर आधारित हों, ''जिन लोगों ने तुम से दीन के बारे में लड़ाई नहीं की और न तुम को तुम्हारे घरों से निकाला उनके साथ भलाई करने और न्याय का बर्ताव करने से अल्लाह ने तुम को मना नहीं किया अल्लाह तो इंसाफ़ करने वालों को पसन्द करते हैं'' (60:8)।

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَتَّخِذُوْا عَدُوِّيْ وَ
عَدُوَّكُمْ اَوْلِيَآءَ تُلْقُوْنَ اِلَيْهِمْ بِالْمَوَدَّةِ
وَ قَدْ كَفَرُوْا بِمَا جَآءَكُمْ مِّنَ الْحَقِّ ۚ
يُخْرِجُوْنَ الرَّسُوْلَ وَ اِيَّاكُمْ اَنْ تُؤْمِنُوْا
بِاللّٰهِ رَبِّكُمْ ؕ اِنْ كُنْتُمْ خَرَجْتُمْ جِهَادًا فِيْ
سَبِيْلِيْ وَ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِيْ ۖ تُسِرُّوْنَ
اِلَيْهِمْ بِالْمَوَدَّةِ ۖ وَ اَنَا اَعْلَمُ بِمَآ اَخْفَيْتُمْ
وَ مَآ اَعْلَنْتُمْ ؕ وَ مَنْ يَّفْعَلْهُ مِنْكُمْ فَقَدْ
ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيْلِ ﴿١﴾ اِنْ يَّثْقَفُوْكُمْ
يَكُوْنُوْا لَكُمْ اَعْدَآءً وَّ يَبْسُطُوْٓا اِلَيْكُمْ
اَيْدِيَهُمْ وَ اَلْسِنَتَهُمْ بِالسُّوْٓءِ وَ وَدُّوْا لَوْ
تَكْفُرُوْنَ ﴿٢﴾ لَنْ تَنْفَعَكُمْ اَرْحَامُكُمْ وَ لَآ
اَوْلَادُكُمْ ۚۛ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۚۛ يَفْصِلُ بَيْنَكُمْ ؕ
وَ اللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٣﴾ قَدْ كَانَتْ
لَكُمْ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ فِيْٓ اِبْرٰهِيْمَ وَ الَّذِيْنَ
مَعَهٗ ۚ اِذْ قَالُوْا لِقَوْمِهِمْ اِنَّا بُرَءٰٓؤُا مِنْكُمْ

मोमिनों! मेरे और अपने दुश्मनों को (अपना) दोस्त ना बनाओ, के उनसे दोस्ती का इज़हार करने लगो हालांकि वो तुम्हारे पास जो दीने हक़ आ चुका है उसका इन्कार करते हैं, वो रसूल को और तुम को महज़ इस बिना पर के तुम अपने रब पर ईमान ले आये हो शहर बद्र कर चुके हैं, अगर तुम अपने घरों से मेरे रास्ते में जिहाद के लिये निकले हो, और मेरी .खुशनूदी हासिल करने के लिये तुम चुपके चुपके उनसे दोस्ती की बातें करते हो, हालांके मैं .खूब जानता हूँ जो बातें छुपा कर करते हो या ज़ाहिर करते हो तो जो तुम में से ऐसा करेगा तो वो सीधे रास्ते से भटक गया। अगर ये काफ़िर तुम पर क़ुदरत पा लें तो तुम्हारे दुश्मन हो जायें, और ईज़ा के लिये तुम पर हाथ भी चलायें और ज़बानें भी, और चाहते हैं के तुम (किसी तरह) काफ़िर हो जाओ। क़यामत के दिन ना तुम्हारे रिश्तेदार काम आयेंगे और ना औलाद ही (उस रोज़) वो तुम से फ़ैसला करेगा, और अल्लाह .खूब देखता है जो तुम करते हो। तुम्हारे लिये इब्राहीम (अ.स.) और उनके साथियों में अच्छा नमूना है, जबके उन्होंने अपनी क़ौम से कहा के हम तुम से और उन बुतों

وَ مِمَّا تَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ ؗ كَفَرْنَا بِكُمْ وَ بَدَا بَيْنَنَا وَ بَيْنَكُمُ الْعَدَاوَةُ وَ الْبَغْضَآءُ اَبَدًا حَتّٰى تُؤْمِنُوْا بِاللّٰهِ وَحْدَهٗۤ اِلَّا قَوْلَ اِبْرٰهِيْمَ لِاَبِيْهِ لَاَسْتَغْفِرَنَّ لَكَ وَ مَاۤ اَمْلِكُ لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِنْ شَیْءٍ ؕ رَبَّنَا عَلَيْكَ تَوَكَّلْنَا وَ اِلَيْكَ اَنَبْنَا وَ اِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ۝ رَبَّنَا لَا تَجْعَلْنَا فِتْنَةً لِّلَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَ اغْفِرْ لَنَا رَبَّنَا ۚ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ۝ لَقَدْ كَانَ لَكُمْ فِيْهِمْ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ لِّمَنْ كَانَ يَرْجُوا اللّٰهَ وَ الْيَوْمَ الْاٰخِرَ ؕ وَ مَنْ يَّتَوَلَّ فَاِنَّ اللّٰهَ هُوَ الْغَنِیُّ الْحَمِيْدُ ۝

से जिनकी तुम अल्लाह के सिवा पूजा करते हो बे ताल्लुक़ हैं और हम तुम्हारे माबूदों के कभी क़ायल नहीं हो सकते, और जब तक तुम .खुदाये वाहिद पर ईमान ना लाओ, हममें और तुम में हमेशा खुल्लम खुल्ला अदावत और दुश्मनी रहेगी, अलबत्ता इब्राहीम (अ.स.) ने अपने बाप से ये ज़रूर कहा के में आपके लिये मग़फ़िरत मांगूंगा, और मैं अल्लाह के सामने आपके बारे में कोई इख़्तियार नहीं रखता, ऐ हमारे रब! हम तुझ पर भरोसा रखते हैं और तेरी तरफ़ रूजू होते हैं, और तेरे ही पास लौट कर आना है। ऐ हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ये हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ऐ हमारे रब! तू हमें माफ़ फ़रमा, बिला शुबह तू बड़ा ज़बरदस्त हिकमत वाला है। बेशक तुम्हारे लिये उन लोगों में एक उम्दा नमूना है (यानी) उस शख़्स के लिये जो अल्लाह (के सामने जाने) और यौमे आख़िरत पर अक़ीदा रखता है, और जो रूगर्दानी करेगा तो अल्लाह बेनियाज़ हैं हम्दो सना का सज़ावार है। (60:1-6)

यह एक तरफ़ दुशमनों का सामना करने और दूसरी तरफ़ उसके साथ ही साथ उन से दोस्ती की पैंगे बढ़ाने के विरोधाभासी रवैये पर एक चेतावनी है। यह रवैया मोमिनों की सामूहिक सुरक्षा के लिए ख़तरनाक है और व्यक्तियों के नैतिक आचरण के लिए घातक है और मोमिनों के आपसी भरोसे को ख़त्म करने वाला है। जिन लोगों से मोमिनों को गुप्त संबम्ध न रखने के लिए सावधान किया गया है वो दुशमन थे और उन्होंने न केवल सत्य का झुटलाकर अपनी दुशमनी व्यक्त की थी बल्कि ‘‘अल्लाह के रसूल को और तुम्हें इस वजह से घरों से निकाला कि तुम अल्लाह पर ईमान ले आए हो’’। इसके अलावा भविष्य में किसी भी लड़ाई में ये दुशमन निश्चित रूप से मोमिनों के विरुध खड़े होंगे और उन्हें हर सम्भव नुक़सान पहुंचाने की पूरी कोशिश करेंगे। अगर हाथों से कोई नुक़सान न पहुंचा सकेंगे तो ज़बान से नुक़सान पहुंचाएंगे। दीन व ईमान के दुशमनों से एकजुटता बनाने के बहाने के लिए किसी रिश्तेदारी और सम्बंध को स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि मोमिनों और उनके मक़सद को किसी भी तरह का भौतिक या नैतिक नुक़सान जो इन संबन्धों की वजह से हो सकता हो, वह

रिश्तेदारी के तक़ाज़ों को निभाने से ज़्यादा गम्भीर होगा। न केवल किसी के रिश्तेदारों के लिए, बल्कि उसके बच्चों के लिए भी, और फ़ैसले के दिन कोई रिश्तेदारी काम न आएगी और बच्चा मातापिता के लिए और मातापिता बच्चों के लिए कोई सहायक न बन सकेंगे।

अल्लाह की शिक्षाओं में हर इंसान के साथ चाहे उसका धर्म कुछ भी हो आम तौर से अच्छे सम्बंध रखने की सीख दी गयी है इस हद तक कि इस सम्बंध को बनाए रखने या निभाने में अक़ीदे और ईमान से कोई समझौता न करना पड़े या धर्म व आस्था के लिए यह सम्बंध नुक़सानदायक न बनें। अलबत्ता दुशमनी या दूरी का का मामला कोई स्थाई मामला नहीं है जैसा की अगली आयत (60:7) से स्पष्ट होता है। इसके अलावा यह कि यह दुशमनी और दूरी का मतलब यह नहीं है कि मोमिन लोग दुशमन पक्ष से कोई ज़ोर ज़बरदस्ती करें या दूसरों के साथ मुरव्वत का बर्तान करने से बचें जब तक कि उनकी तरफ़ से मोमिनों के विरुध कोई आक्रामक हरकत नहीं होती, ऐसी स्थिति में मोमिन आत्म रक्षा के लिए मजबूर होंगे। अगली आयतें 60:8-9 इन दोनों स्थितियों पर रोशनी डालती हैं। मुसलमानों को केवल धर्म व आस्था के भेद की वजह से ताक़त का इस्तेमाल करने की हरगिज़ कोई इजाज़त नहीं है अगर इस मतभेद का सम्बंध किसी ज़्यादती या अधिकारों की ऐसी अवहेलना से नहीं है जो अपने दीन पर चलने और अपने वतन में आज़ादीपूर्वक रहने के अधिकार को समाप्त करने के लिए हो।

इन आयतों में हज़रत इब्राहीम को एक मॉडल के रूप में पेश किया गया है जिनसे दूसरों के साथ अपने दृष्टिकोण के अनुसार सम्बंध बनाने के लिए मार्गदर्शन मिलता है। हज़रत इब्राहीम ने अपने मूर्तिपूजक समुदाय के ख़िलाफ़ कोई हिंसात्मक हरकत नहीं की बल्कि इसके विपरीत उन्होंने वास्तव में अपने पिता की तरफ़ से ताक़त के इस्तेमाल और सज़ा की धमकी के जवाब में पिता के लिए ईमान और बख़्शिश की दुआ का वायदा पूरा किया:"उसने कहा कि इब्राहीम क्या तू मेरे पूजनीयों से विचलित हो रहा है अगर तू बाज़ न आएगा तो मैं तुझे संगसार (पत्थरों से मार कर हत्या) कर दुंगा और तू हमेशा के लिए मुझ से दूर हो जा। इब्राहीम ने "सलामुन अलैक" कहा (और कहा कि) मैं आपके लिए अपने रब से बख़्शिश मांगूंगा बेशक रब मुझ पर बहुत महरबान है। और मैं आप लोगों से और जिनको आप अल्लाह को छोड़ कर पुकारते हैं उनसे किनारा करता हूं और अपने रब ही को पुकारूंगा उम्मीद है कि मैं अपने रब को पुकार कर वंचित नहीं रहूंगा"(19:46-48)। हज़रत इब्राहीम ने उन बुतों को तोड़ा जिनकी पूजा उनकी क़ौम के लोग करते थे तो उनका मक़सद उन झूटे ख़ुदाओं को मिटा देना और उनके अस्तित्व को समाप्त कर देना नहीं था, बल्कि एक व्यवहारिक तर्क व सुबूत देना था कि यह मूर्तियां स्वयं अपने आप को नहीं बचा सकतीं तो इनसे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वो अपने पूजने वालों को कोई फ़ायदा या नुक़सान पहुंचा सकती हैं (देखें 21:51-70; 37:83-98)। जब हज़रत इब्राहीम को आग में फैंका जा रहा था तो अल्लाह ने उन्हें

जलने से बचा कर यह दिखाया कि सच्चा ख़ुदा और मारने व बचाने वाला ख़ुदा कौन है और कौन इस बात का हक़दार है कि उसकी इबादत की जाए और बन्दों को किससे मदद और सहारे की उम्मीद करना चाहिए।

قَاتِلُوا الَّذِيْنَ لَا يُؤْمِنُوْنَ بِاللّٰهِ وَ لَا بِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَلَا يُحَرِّمُوْنَ مَا حَرَّمَ اللّٰهُ وَ رَسُوْلُهٗ وَلَا يَدِيْنُوْنَ دِيْنَ الْحَقِّ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ عَنْ يَّدٍ وَّهُمْ صٰغِرُوْنَ ۝۲۹

अहले किताब, जो ना अल्लाह पर ईमान रखते हैं और ना क़यामत पर, और ना उन चीज़ों को हराम समझते हैं जो अल्लाह ने और उसके रसूल ने हराम की हैं और ना सच्चे दीन को क़ुबूल करते हैं, यहां तक लड़ो के वो मातहत होकर और रईय्यत जिज़िया देना मंज़ूर करें। (9:29)

सब से पहले यह बात ज़हन में रखना चाहिए कि मुसलमानों को केवल अपनी और अपने दीन (धर्म) की रक्षा के के लिए जंग करने की अनुमति दी गयी है उन लोगों के ख़िलाफ़ जो उनके विरुध लड़ाई छेड़ें (2:190,193(60:9), उन लोगों के खलिाफ़ नहीं जो शान्ति बनाए हुए हों चाहे उनका अक़ीदा जो कुछ भी हो (60:8)। इसके अलावा, जिन लोगों के ख़िलाफ़ ऊपर की आयत में मुसमलानों से जंग करने को कहा गया है वो वास्तव में अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान नहीं रखते थे, न उस चीज़ को हराम करते थे जिसे अल्लाह ने और अल्लाह के पैग़म्बरों ने हराम किया था, हालांकि वो किताब रखते थे जिसमें इस सम्बंध में उन्हें शिक्षा दी गयी थी और उनसे यह उम्मीद की जाती थी कि वो इस पर ईमान रखने वाले हैं और उसकी हिदायत को अपनाते हैं। मशहूर मुफ़स्सिर फ़ख़रुद्धीन राज़ी के अनुसार यह नकारात्मक गुण होना ऐसे लोगों के विरुध लड़ाई करने के लिए शर्त हैं। जब कि लोगों के किसी भी वर्ग की तरफ़ से लड़ाई छेड़ना अपने आप में ख़ुद इस बात का तार्किक आधार है कि जबाव में उनसे लड़ा जाए चाहे वो मुसलमान ही हों (49:9)। जो ग़ैर मुस्लिम किसी मुस्लिम शासन में रहते हैं उन्हें अपनी सुरक्षा व सलामती के लिए ''जिज़या'' देना होता है जो शासन को स्वीकार करने का एक प्रतीक भी होता है। जिज़या देने वाला एक मज़बूत आदमी होना चाहिए जबकि बुज़ुर्गों, महिलाओं और बच्चों को जिज़या से छूट दी गयी है। उपरोक्त आयत ग़ैर मुस्लिमों के ऐसे मामले को सामने लाती है जो अहले किताब होने का दावा करते हैं जबकि उनकी मान्यताएं और उनका व्यवहार इस शिक्षा के विपरीत है, और जो मुसलमानों के साथ एक ही जगह रहते हैं लेकिन इसके बावजूद उन्होंने मुसलमानों के विरुध लड़ाई छेड़ी। उन लोगों की इस आक्रामकता का मुक़ाबला तब तक करना ज़रूरी है जब तक यह इस्लामी शासन के अधिकार और सत्ता को स्वीकार न करें, और जिस चीज़ को अल्लाह ने हराम किया है उसे हराम न मानें, लेकिन उनके अक़ीदे और मज़हब की आज़ादी बनी रहेगी उनके झगड़ालू रवैये और टकराव के

बावजूद।

इन आयतों को उन लोगों के विरुध लड़ने का एक लाइसेंस नहीं समझा जा सकता जो ऐसा चरित्र रखते हों जिसका ज़िक्र इस आयत में किया गया है और दुनिया में कहीं भी बसते हों, यह केवल अरब द्वीप में और पैग़म्बर साहब के जीवन में लागू हुआ। इसे एक आम सिद्धांत के रुप में लेना कि मुसमलानों को दुनिया के उन सभी लोगों से लड़ने का अधिकार दिया गया है जो इस्लाम स्वीकार न करें या जिज़या दें क़ुरान की शिक्षा और मंशा के मुताबिक़ नहीं है। यह एक ख़ास तरह की परिस्थितियों में एक ख़ास तरह का मामला था जो इतिहास का हिस्सा है, यह क़ुरआन के आधार पर कोई मुस्तक़िल क़ानून नहीं हो सकता।

जहां तक जिज़या देने की बात है तो प्रारम्भिक काल की सभी मुस्लिम दस्तावेज़ें और व्यवहारिक मिसालें साफ़ तौर से बताती हैं कि यह सुरक्षा की ज़मानत के रूप में लिया गया। एक इस्लामी राज्य की सुरक्षा से सम्बंधित सैनिक ज़िम्मेदारी में भाग लेने से ग़ैर मुस्लिम नागरिक मना कर सकते हैं, इसलिए, जैसा कि विश्वसनीय इतिहासकार बिलाज़री (279 हिजरी/892 ई) और तिबरी (मृ० 310 हिजरी/922 ई०) ने लिखा है, जब कभी ग़ैर मुस्लिम नागरिकों ने सैनिक ज़िम्मेदारियों को स्वीकार किया तो उन्हें जिज़या से छूट दे दी गयी। जो लोग लड़ाई में भाग लेने के योग्य न हों उन्हें जिज़या से छूट देने की मिसाल शुरू के चार ख़लीफ़ाओं के शासनकाल में मौजूद है जिससे इस सच्चाई की पुष्टि होती है कि जिज़या दुशमन से लड़ाई की स्थिति में ग़ैर मुस्लिम नागरिकों की सुरक्षा का एक टैक्स था जो उन लोगों से लिया जाता था जो लड़ाई में शामिल नहीं होना चाहते थे। आज के आधुनिक राज्य में, समान नागरिक अधिकारों व ज़िम्मेदारियों की धारणा के अनुसार मिलिट्री सर्विस से इस तरह की छूट या इसकी ज़िम्मेदारी पर रोक लगाना और जनता के किसी ख़ास वर्ग को सम्मान देना चर्चा से परे है। इस्लामी शासन में ग़ैर मुस्लिम नागरिकों के अधिकार और ज़िम्मेदारियां बराबर होती हैं, और उन से यह अपेक्षा की जाती है कि वो देश की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी में दिल व जान से हिस्सा लें, जहां उन्हें पूरे इंसानी अधिकार प्राप्त हैं।

दुनिया की घटनाओं और मामलों से ख़बरदार रहना

غُلِبَتِ الرُّوْمُ ۝ فِيْٓ اَدْنَى الْاَرْضِ وَ هُمْ مِّنْۢ بَعْدِ غَلَبِهِمْ سَيَغْلِبُوْنَ ۝ فِيْ بِضْعِ سِنِيْنَ ۬ؕ لِلّٰهِ الْاَمْرُ مِنْ قَبْلُ وَ مِنْۢ بَعْدُ ؕ وَ يَوْمَئِذٍ يَّفْرَحُ الْمُؤْمِنُوْنَ ۝ بِنَصْرِ

रोम के बाशिंदे मग़लूब हो गए। नज़दीक के मुल्क, और वो मग़लूब होने के बाद अनक़रीब ग़ालिब आ जायेंगे। चन्द ही साल में, पहले भी और पीछे भी ख़ुदा ही का हुक्म है, और उस रोज़ ईमान वाले ख़ुश होंगे। (यानी ख़ुदा की मदद से, वो जिसे चाहता है मदद देता है, और

اللّٰهِ ۭ يَنْصُرُ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَهُوَ الْعَزِيْزُ
الرَّحِيْمُ ۝۵ وَعْدَ اللّٰهِ ۭ لَا يُخْلِفُ اللّٰهُ
وَعْدَهٗ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝۶
يَعْلَمُوْنَ ظَاهِرًا مِّنَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ښ وَهُمْ
عَنِ الْاٰخِرَةِ هُمْ غٰفِلُوْنَ ۝۷

वो ज़बरदस्त रहम वाला है। अल्लाह अपने वादा के ख़िलाफ़ नहीं करता, लेकिन अक्सर लोग जानते नहीं। दुनिया की ज़ाहिरी ज़िन्दगी को जानते हैं, और आख़िरत से ग़ाफ़िल हैं। (30:2-7)

इन आयतों से यह मालूम होता है कि क़ुरआन मुसलमानों के ज़हन में वैश्विक सम्बंधों को विक्सित करने की सोच को बढ़ावा देता है, क्योंकि मुसमलान दुनिया का एक अभिन्न अंग हैं और दुनिया से अलग थलग हो कर नहीं रह सकते, और दुनिया के किसी भी क्षेत्र में कुछ होता है तो उसका प्रभाव उन पर भी पड़ेगा। बाज़ेन्टाइन क़ौम ईसाई थी, लेकिन वो भी मुसलमानों की तरह अल्लाह पर ईमान और अल्लाह के सामने जवाबदेही की आस्था रखते थे इसलिए उन लोगों के मुक़ाबले पर जिनकी आस्था अलग थी दोनों एक दूसरे के साथ हो सकते थे। लेकिन मध्य युग की दो बड़ी शक्तियों यानि सासानी मजूसियों और बाज़नतीनों के बीच लड़ाई के नतीजे में दोनों साम्राज्य कमज़ोर हुए और इस कमज़ोरी से इस्लाम और मुसलमानों को दुनिया में अपना स्थान बनाने में मदद मिली। लेकिन मुसलमान इतने संकीर्ण मानसिकता वाले और स्वार्थी नहीं थे। वो बाज़नतीनों को अहले किताब होने की वजह से अपने से नज़दीकी समुदाय समझते थे और इस वजह से उनकी चाहत थी कि पार्सियों पर बाज़नतीनी विजयी हो जाएं।

इन आयतों में इन दोनों साम्राज्यों के बीच लगातार होने वाली लडाइयों की तरफ़ इशारा है जिनका नतीजा आख़िर में बाज़नतीनों के पक्ष में निकला जब उन्होंने 613 ई में दमिश्क़ पर और फिर अगले साल यरूशलम पर क़ब्ज़ा कर लिया। इन आयतों में यह भविष्यवाणी की गयी है कि बाज़नतीनी (रोमन) लोग जो उस समय चल रही लड़ाई में पराजित हो गए थे, जल्दी ही फिर से विजयी हो जाएंगे। यह भविष्यवाणी पूरी हुई और बाज़नतीनी शासक हिराकलि न 622 से 626 तक ईरानियों से लगातार युद्ध करते हुए आख़िरकार उन्हें हरा दिया और अपने पुराने क्षेत्र फिर से वापस ले लिए और ईरानी पार्सियों पर ज़ोरदार दबाव बना दिया। क़ुरआन ने बाज़नतीनों के पक्ष में मुसलमानों के रुजहान का समर्थन कियाः ‘‘उस दिन मोमिन लोग ख़ुश हो जाएंगे, अल्लाह की मदद से।’’

पूर्वकाल की इन ख़ास घटनाओं से अलग, क़ुरआन का यह पैग़ाम जो मुसलमानों को दुनिया में होने वाली घटनाओं में भाग लेने की सीख देता है हर ज़माने में अपनी प्रासंगिकता रखता है। ये अयतें मोमिनों को यह याद दिलाती हैं कि अल्लाह का वायदा कभी ग़लत नहीं होता वह पूरा हो कर ही रहता है जबकि लोग केवल सामने से नज़र आने वाली चीज़ को देखते और

समझते हैं और किसी अस्थाई कमज़ोरी या शक्ति को स्थाई समझने लगते हैं। इस दुनिया में इंसान के जीवन में उतार चढ़ाव और नए नए मोड़ आते रहते हैं, और आख़िरत में अल्लाह हर इंसान की नियत और कर्मों का फ़ैसला करेंगे और उनके अनुसार हर इंसान को बदला या सज़ा मिलेगी, चाहे इस दुनिया में उन्हें जो भी राहतें या दिक़्क़तें मिली हुई हों। अस्थाई सुख या अस्थाई दुख में इंसान को इतना ग्रस्त नहीं हो जाना चाहिए कि वह आख़िरत को ही भूल जाए।

लड़ाईः दमन और उत्पीडञ्ञन का मुक़ाबला करने और इंसानी अधिकारों की रक्षा के लिए एक अपवादिक आवश्यकता है

إِنَّ اللّٰهَ يُدٰفِعُ عَنِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْاؕ إِنَّ اللّٰهَ
لَا يُحِبُّ كُلَّ خَوَّانٍ كَفُوْرٍ ﴿٣٨﴾ اُذِنَ
لِلَّذِيْنَ يُقٰتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْاؕ وَ إِنَّ
اللّٰهَ عَلٰى نَصْرِهِمْ لَقَدِيْرُ ﴿٣٩﴾ الَّذِيْنَ
اُخْرِجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ بِغَيْرِ حَقٍّ إِلَّآ اَنْ
يَّقُوْلُوْا رَبُّنَا اللّٰهُؕ وَ لَوْ لَا دَفْعُ اللّٰهِ
النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ
صَوَامِعُ وَ بِيَعٌ وَّ صَلَوٰتٌ وَّ مَسٰجِدُ
يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيْرًاؕ وَ
لَيَنْصُرَنَّ اللّٰهُ مَنْ يَّنْصُرُهٗؕ إِنَّ اللّٰهَ
لَقَوِيٌّ عَزِيْزٌ ﴿٤٠﴾ اَلَّذِيْنَ إِنْ مَّكَّنّٰهُمْ فِي
الْاَرْضِ اَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَ اٰتَوُا الزَّكٰوةَ وَ اَمَرُوْا
بِالْمَعْرُوْفِ وَ نَهَوْا عَنِ الْمُنْكَرِؕ وَ لِلّٰهِ
عَاقِبَةُ الْاُمُوْرِ ﴿٤١﴾

बेशक अल्लाह मोमिनों को उनके दुश्मनी से बचाता है, बेशक अल्लाह किसी .ख़्यानत करने वाले नाशुक्रे को पसंद नहीं करता। लड़ने की इजाज़त दी गई उन लोगें को जिन से लड़ाई की जाती है, इसलिये के उन पर ज़ुल्म हुआ है, और बेशक अल्लाह उनकी मदद पर क़ादिर है। जो नाहक़ अपने घरों से निकाल दिये गए हैं, उन्होंने कोई क़सूर नहीं किया, सिवाय इसके के ये कहते हैं के हमारा रब अल्लाह है, अगर अल्लाह उनको एक दूसरे से ना बचाता तो राहिबों के सौमए, ईसाइयों के गिर्जे और यहूदियों के इबादतख़ाने और मुसलमानों की मस्जिदें, जिनमें अल्लाह का नाम कसरत से लिया जाता है गिराई जा चुकी होतीं, और जो अल्लाह की मदद करता है, अल्लाह उसकी ज़रूर मदद करता है, बिला शुबह अल्लाह बड़ी क़ुव्वत वाला और बड़ा ग़ल्बा रखने वाला है। ये वो लोग हैं के अगर हम उनको हुकूमत दें मुल्क में तो वो नमाज़ क़ायम करें और ज़कात अदा करें और नेक काम करने का हुक्म दें और बुरे कामों से मना करें, और सब कामों का अंजाम अल्लाह ही के इख़्तियार में है।

(22:38-41)

इन आयतों से पहली आयत को लड़ाई से सम्बंधित सबसे पहली आयत बताया गया है। इस आयत में साफ़ तौर से कहा गया है कि मुसलमानों को उन लोगों से मुक़ाबला करने की

इजाज़त दी गयी है "जिन्होंने उन्हें घरों से निकाला और उनके अधिकार कुचले केवल इसलिए कि वो कहते हैं कि अल्लाह हमारा रब है।" शब्द "इजाज़त" से साफ़ पता चलता ह कि लड़ाई एक मजबूरी और अपवाद की स्थिति है इस आम सिद्धांत के विपरीत कि मुसमलानों के सम्बंध शान्ति पर आधारित हैं, और इजाज़त केवल आत्म रक्षा के लिए दी गयी है। यह बात दूसरी आयतों में भी कही गयी है जो बाद में उतरीं (जैसे 2:190,193-194(4:75)। ये आयतें यह बताती हैं कि आत्मरक्षा के लिए लड़ाई की यह अपवादिक इजाज़त अल्लाह ने इसलिए दी है कि लोग आक्रामकता और अत्याचार का मुक़ाबला करने के योग्य बनें जोकि इंसानी स्वभाव की वजह से कोई अनहोनी बात नहीं है। अगर आत्मरक्षा की इजाज़त नहीं दी जाती तो ज़ुल्म व ज़्यादती को एक खुली छूट मिल जाती है और ज़ालिमों की आक्रामकता से इबादतगाहें (पूजा स्थल) भी बचे नहीं रहते जो केवल अल्लाह की इबादत और वन्दना के बनाए गए हैं (22:40) ज़मीन पर निश्चित रूप से उत्पात मच जाता (2:251)। अल्लाह उन लोगों से मदद का वायदा करते हैं जो उनके काज़ की मदद करते हैं, और जो ज़ुल्म का प्रतिरोध करते हैं ताकि इंसाफ़ क़ायम हो चाहे वो शुरू में कमज़ोर और दबे हुए ही हों। आखरिकार उन ईमान वालों की ही जीत होगी और फिर उन्हें परखा जाएगा कि वो अपनी ताक़त व सत्ता को कैसे बरतते हैं, जबकि वो आधीनता और मजबूरी की स्थिति में पहले परखे जा चुके हैं। उन्हें यह साबित करना होगा कि वो अपने ईमान पर जमे रहेंगे और ईमान के तक़ाज़ों को व नैतिक मूल्यों को पूरा करेंगे, हर हाल में चाहे मजबूरी व आधीनता की हालत में हों या शासन और सत्ताशक्ति की हालत में हों। मोमिनों की जीत और बर्चस्व का मतलब है न्याय और नैतिकता की स्थापना। "ये वो लोग हैं कि अगर हम उनको देश में सत्ता दें तो नमाज़ पढ़ें और ज़कात दें और नेक काम करने का आदेश करें और बुरे कामों से रोकें और सब कामों का अंत अल्लाह के ही हाथ में है।"

وَقَاتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ الَّذِينَ يُقَاتِلُونَكُمْ وَلَا تَعْتَدُوا ۚ إِنَّ اللَّهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِينَ ﴿١٩٠﴾

और तुम अल्लाह के रास्ते में उनसे लड़ो जो तुम से लड़ते हैं, मगर .ज्यादती ना करना, बिलाशुबह अल्लाह .ज्यादती करने वालों को महबूब नहीं रखता। (2:190)

अल्लाह के रास्ते में लड़ना यानि जिहाद और उसकी मंशा पूरी करना जिसका लक्ष्य है सबके लिए न्याय और शान्ति को सुनिश्चित करना, इंसानों के अधिकारों की रक्षा के लिए है, चाहे यह इंसानी जीवन का अधिकार हो या वतन में रहने का अधिकार हो, या मत, आस्था और अभिव्यक्ति की आज़ादी का अधिकार हो। इस बात को पिछली आयत में देखा जा सकता है "जिन मुसलमानों से (अकारण) लड़ाई की जाती है उनको इजाज़त है (कि वो भी लड़ें) क्योंकि उन पर ज़ुल्म हो रहा है" (22:39), और बाद में आयत 4:90 में भी कहा गया कि "मगर जो

लोग ऐसे लोगों से जा मिले हों जिनमें और तुम में (शान्ति व सहयोग का) समझौता हो या इस हाल में कि उनके दिल तुम्हारे साथ या अपनी क़ौम के साथ लड़ने से रुक गए हों, तुम्हारे पास आ जाएं (तो उनसे बचना ज़रूरी नहीं) और अगर अल्लाह चाहते तो उन को तुम पर बर्चस्व दे देते तो वो तुमसे ज़रूर लड़ते फिर अगर वो तुम से (जंग करने से) बचें और लड़ें नहीं और तुम्हारी तरफ़ सन्धि (का संदेश) भेजें तो अल्लाह ने तुम्हारे लिए उन पर (ज़बरदस्ती करने की) कोई गुंजाइश नहीं रखी।'' इसके भी बाद उतरने वाली एक और आयत भी मुसलमानों को यह याद दिलाती है कि अल्लाह तआला मोमिनों और उनके दुशमनों के बीच भविष्य में अच्छा सम्बंध भी पैदा कर सकते हैं, इसलिए मुसलमानों को उन लोगों के साथ जिन्होंने उनसे उनके दीन की वजह से लड़ाई नहीं की, न उन्हें उनके घरों से निकाला, न्याय और दया पर आधारित अच्छे सम्बंधों को बढ़ावा देने की कोशिश करते रहना चाहिए कि ''अल्लाह इंसाफ़ करने वालों को पसन्द करते हैं'' (60:7-8)। ताक़त का इस्तेमाल उन्ही तक सीमित रहना चाहिए जो लड़ाई और आक्रामकता पर उतारू हों और मुस्तक़िल तौर से ज़ुल्म व ज़्यादती करने में लगे रहें ''और तुम से (लड़ने से) बाज़ न रहें और न तुम्हारी तरफ़ सन्धि (का संदेश) भेजें और न अपने हाथों को रोकें'' (4:91), ''जिन्होंने तुम से धर्म के मामले में लड़ाई की और तुमको तुम्हारे घरों से निकाला और तुम्हारे निकालने में औरों की मदद की'' (60:9)। ऐसे ही मामलों में मुसलमानों को आत्मरक्षा के लिए लड़ने की सीख दी गयी है।

وَ قٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّ يَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ؕ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ﴿۱۹۳﴾ اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ وَ الْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ ؕ فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ ۪ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ وَ اعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۹۴﴾

और उनसे उस वक़्त तक लड़ते रहना के फ़ितना ना रहे और अल्लाह की का दीन क़ायम हो जाए, अगर वो बाज़ आ जायें तो ज़ालिमों के सिवा किसी पर ज़्यादती ना करना। अदब का महीना ऐवज़ है अदब के महीने का, और अदब की चीज़ें अदब की चीज़ों का बदला हैं, पस अगर तुम पर कोई ज़्यादती करे तो तुम भी वैसी ही ज़्यादती करना जैसी उन्होंने तुम पर की थी, और अल्लाह से डरते रहना, और तुम जान लो के अल्लाह महेज़ अल्लाह से डरने वालों के साथ है। (2:193-194)

जिस तरह जीवन की रक्षा के लिए आक्रामकता का मुक़ाबला करने की इजाज़त दी गयी है उसी तरह इंसानों के नैतिक अधिकारों की रक्षा के लिए भी इसकी इजाज़त दी गयी है, ख़ास तौर से अक़ीदे और दीन की आज़ादी, अभिव्यक्ति की आज़ादी और दीन पर अमल करने करने की आज़ादी के लिए क्योंकि ''फ़ितना क़त्ल से ज़्यादा बुरी चीज़ है'' (2:191,217)। इस्लाम मुसमलानों को यह इजाज़त नहीं देता कि अपना दीन या अक़ीदा किसी पर थोपने के लिए

उससे लड़ाई करें, जैसा कि जिहाद के बारे में गुमराह करने के लिए कहा जाता है। बल्कि मुसलमानों को केवल अक़ीदे व दीन की आज़ादी को सुनिश्चित करने के लिए और इंसान व ख़ुदा के बीच मौजूद रुकावटों को हटाने के लिए जिहाद करने को कहा गया है (और देखें 8:39)।

जब तक यह रास्ता पूरी तरह खुला हुआ है और ये अधिकार लोगों को प्राप्त हैं तब तक न मुसलमानों को जंग की ज़रूरत है, न इसकी इजाज़त, चाहे वो लोग जिनको यह आज़ादी मिली हुई है इस्लाम में आना और मुसलमान बनना पसन्द न करें, क्योंकि जंग केवल ज़ुल्म व अन्याय के ख़िलाफ़ है। इस्लाम से पहले अरबों ने यह एक अच्छी व्यवस्था कर रखी थी कि कुछ महीनों को निर्धारित कर लिया था कि जिनमें वो लड़ाई नहीं करते थे और शान्ति बनाए रखते थे। इससे फ़ायदा यह था कि एक दूसरे से लड़ते रहने वाले क़बीले उन महीनों में पवित्र काबा के दर्शन व परिक्रिमा के लिए मक्का जाने का सफ़र बिना किसी ख़तरे के कर सकते थे और वार्षिक जमावड़े के अवसर पर व्यापारिक और सांस्कृतिक गतिविधियां अंजाम दे सकते थे। लेकिन इस्लाम से पहले अरबवासी इन महीनों का जितना सम्मान करते थे, इस्लाम क़ुबूल करके मुसलमान बन जाने वाले लोग उनसे भी ज़्यादा इन पवित्र महीनों के सम्मान की भावना रखते थे। फिर भी उन्हें यह शिक्षा दी गयी कि अगर दुश्मन इन पवित्र महीनों के सम्मान की अनदेखी करते हुए उन पर हमला करें और उनसे जंग करें तो उन्हें भी इजाज़त है कि वो उन से लड़ें लेकिन अल्लाह की तय की हुई सीमाओं के अन्दर रहते हुए, और अपनी तरफ़ से कोई ज़्यादती और आक्रामकता न करें:"आदर का महीना आदर के महीने के बराबर है और आदर की चीज़ें एक दूसरे का बदला हैं। फिर अगर कोई तुम पर ज़्यादती करे तो जैसी ज़्यादती वह तुम पर करे वैसी ही तुम उस पर करो और अल्लाह से डरते रहो" (2:194)। अतःकेवल लड़ने के लिए लड़ना या अपनी सीमाओं के विस्तार के लिए लड़ना या अपना धर्म थोपने के लिए लड़ना इस्लामी सिद्धांतों के विपरीत है, और जब कभी भी आत्मरक्षा के लिए लड़ाई करना ज़रूरी हो जाए तो यह लड़ाई केवल उन्ही लोगों के साथ है जो दूसरी तरफ़ से लड़ रहे हों। लिहाज़ा, आम तबाही वाले और बिना भेद बचाव के सामूहिक हत्याओं व हताहत करने वाले हथियारों का इस्तेमाल और जंग न करने वाले लोगों को नुक़सान पहुंचाना भी इस्लाम के नैतिक और क़ानूनी सिद्धांतों के मुताबिक़ जायज़ नहीं है।

अल्लाह के रास्ते में लड़ना तुम पर फ़र्ज़ कर दिया गया है, वो तुम को गिराँ तो गुज़रेगा, मगर अजब नहीं के एक चीज़ तुम को बुरी लगे, और वो तुम्हारे हक़ में अच्छी हो, और ये भी अजब नहीं के एक चीज़ को तुम मेहबूब रखते हो मगर वो मुज़िर हो, और अल्लाह जानता है तुम	كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰۤى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰۤى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿۲۱۶﴾ ع يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ

الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيْهِ ؕ قُلْ قِتَالٌ فِيْهِ
كَبِيْرٌ ؕ وَ صَدٌّ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَ كُفْرٌۢ بِهٖ
وَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۗ وَ اِخْرَاجُ اَهْلِهٖ مِنْهُ
اَكْبَرُ عِنْدَ اللّٰهِ ۚ وَ الْفِتْنَةُ اَكْبَرُ مِنَ
الْقَتْلِ ؕ وَ لَا يَزَالُوْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ حَتّٰى
يَرُدُّوْكُمْ عَنْ دِيْنِكُمْ اِنِ اسْتَطَاعُوْا ؕ وَ
مَنْ يَّرْتَدِدْ مِنْكُمْ عَنْ دِيْنِهٖ فَيَمُتْ وَ
هُوَ كَافِرٌ فَاُولٰٓئِكَ حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِي
الدُّنْيَا وَ الْاٰخِرَةِ ۚ وَ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ
هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٢١٧﴾

नहीं जानते। ऐ नबी (स.अ.व.)! तुम से लोग दरयाफ़्त तरते हैं के मुक़द्दस महीनों में लड़ना कैसा है, कह दो के उन महीनों में लड़ना बड़ा गुनाह है, और अल्लाह की राह से रोकना, और अल्लाह के साथ कुफ़्र करना, और मस्जिदे हराम से रोकना और अहले मस्जिद हराम को वहाँ से निकलना अल्लाह के नज़दीक ये सब इससे भी .ज़्यादा गुनाह है जो ये कुफ़्फ़ार करते हैं, और फ़ितना अंगेज़ी तो .ख़ूरेज़ी से भी .ज़्यादा बड़ा गुनाह है, और ये लोग तो हमेशा ही तुम से लड़ते रहेंगे, यहाँ तक के वो तुम को तुम्हारे दीन से फेर दें अगर उनमें इतनी सकत हो, और जो तुम में से अपने दीन से फिरा फिर वो मर गया तो वो काफ़िर ही मरा, ऐसे लोगों के आमाल दुनिया और आख़िरत दोनों में बर्बाद हो जायेंगे, और यही लोग दोज़ख़ी हैं और हमेशा उसी में रहेंगे।

(2:216 -217)

ये आयतें साफ़ तौर से बताती हैं कि लड़ाई इंसानी स्वभाव के लिए कोई ख़ुशी और राहत की बात नहीं है, बल्कि यह इंसानों को घृणा और नुक़सान से बचाने के लिए एक अन्तिम चारा है, इसीलिए अल्लाह ने भौतिक या नैतिक नुक़सान से बचाने के लिए आत्मरक्षा में जंग करने की इजाज़त दी है। इसी तरह पवित्र महीनों में जंग करना जब हर कोई शान्ति चाहता हो केवल इसी स्थिति में जायज़ है कि जीवन, घर और धर्म की आज़ादी के सम्मान के विरुध कोई आक्रामक हरकत और ज़ुल्म व ज्यादती को रोकना मक़सद हो। इंसानी जान का सम्मान किसी ख़ास जगह या ख़ास समय के सम्मान से ज़्यादा महत्वपूर्ण है और ज़ुल्म व आक्रामकता का जवाब रक्षात्मक प्रतिक्रिया से देना ज़रूरी है क्योंकि व्यक्तियों और समाज पर लगातार आतंक छाये रहना क्षणिक रूप से होने वाली हत्या से ज़्यादा बड़ी और बुरी बात है। निष्क्रियता और कमज़ोरी दिखाने से ज़ालिमों का मनोबल बढ़ता है। इसीलिए जंग हालांकि अप्रिय और कष्टदायक क्रिया है लेकिन ऐसी स्थिति को बदलने के लिए जो उससे भी ज़्यादा कष्टदायक और अप्रिय हो जंग करना ज़रूरी और जायज़ होता है। फिर भी एक ज़रूरी और जायज़ जंग भी व्यवहारिक रूप से जायज़ तरीक़ों पर ही हो, और जंग का निशाना केवल वही लोग बनें जिन्होंने ज़ुल्म और आक्रामकता का व्यवहार किया हो और लड़ाई में जो लोग शामिल न हों वो हमले की चपेट में न आएं। एक जायज़ संघर्ष, अडिगता और दृढ़ता के द्वारा मोमिन दुशमन

पर जल्दी ही ग़ालिब आ जाएंगे और ज़ालिम हमलावर इस दुनिया में भी पराजित होंगे और आख़िरत में भी नुक़सान उठाने वाले होंगे।

فَلْيُقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ الَّذِيْنَ يَشْرُوْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ ؕ وَمَنْ يُّقَاتِلْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَيُقْتَلْ اَوْ يَغْلِبْ فَسَوْفَ نُؤْتِيْهِ اَجْرًا عَظِيْمًا ۝ وَمَا لَكُمْ لَا تُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَالْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَالنِّسَآءِ وَالْوِلْدَانِ الَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَآ اَخْرِجْنَا مِنْ هٰذِهِ الْقَرْيَةِ الظَّالِمِ اَهْلُهَا ۚ وَاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ وَلِيًّا ۙۚ وَّاجْعَلْ لَّنَا مِنْ لَّدُنْكَ نَصِيْرًا ۝ اَلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا يُقَاتِلُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ الطَّاغُوْتِ فَقَاتِلُوْٓا اَوْلِيَآءَ الشَّيْطٰنِ ۚ اِنَّ كَيْدَ الشَّيْطٰنِ كَانَ ضَعِيْفًا ۝ اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ قِيْلَ لَهُمْ كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ۚ فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ اِذَا فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ يَخْشَوْنَ النَّاسَ كَخَشْيَةِ اللّٰهِ اَوْ اَشَدَّ خَشْيَةً ۚ وَقَالُوْا رَبَّنَا لِمَ كَتَبْتَ عَلَيْنَا الْقِتَالَ ۚ لَوْلَآ اَخَّرْتَنَآ اِلٰٓى اَجَلٍ قَرِيْبٍ ؕ قُلْ مَتَاعُ الدُّنْيَا قَلِيْلٌ ۚ وَالْاٰخِرَةُ خَيْرٌ لِّمَنِ اتَّقٰى ۫ وَلَا تُظْلَمُوْنَ فَتِيْلًا ۝ اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يُدْرِكْكُّمُ الْمَوْتُ وَلَوْ كُنْتُمْ فِيْ بُرُوْجٍ مُّشَيَّدَةٍ ؕ وَاِنْ تُصِبْهُمْ حَسَنَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ مِنْ عِنْدِ

तो हां उसको चाहिये के अल्लाह के रास्ते में उन लोगों से जंग करे, जो आख़िरत के बदले में दुनिया की ज़िन्दगी को .ख़रीद रहे हैं, और जो अल्लाह के रास्ते में जंग करे फिर शहीद हो जाए या ग़ल्बा पाए तो हम उसको बहुत जल्द बहुत बड़ा सिला अता करेंगे। तुमको क्या उज़्र है के तुम अल्लाह की राह में और बेबस कमज़ोर मर्दों, औरतों, और बच्चों की .ख़ातिर नहीं लड़ते जो दुआएं किया करते हैं के ऐ हमारे रब! हमको इस शहर से निकाल दे जिस के बाशिंदे बड़े ज़ालिम हैं, और अपनी तरफ़ से किसी को हमारा हामी बना, और अपनी ही तरफ़ से किसी को हमारे लिये मददगार बना दे। जो मोमिन हैं तो अल्लाह के रास्ते में लड़ते हैं और काफ़िर शैतान की राह में लड़ते हैं, सो तुम शैतान के मददगार से लड़ो (और डरो मत) क्योंके शैतान का दाव कमज़ोर होता है। क्या आप ने उन लोगों को नहीं देखा जिन से कहा गया था के अपने हाथों को रोके रखो, और नमाज़ पाबंदी से पढ़ते रहो, और ज़कात देते रहो, फिर जब उन पर जिहाद फ़र्ज़ कर दिया गया, तो बाज़ उन में से लोगों से ऐसे डरने लगे जैसे अल्लाह से डरते हैं, बल्कि उससे भी .ज्यादा, और कहने लगे के ऐ हमारे रब! तूने हम पर जिहाद क्यों फ़र्ज़ किया, और थोड़ी मोहलत क्यों ना दी, कह दो, के दुनिया का फ़ायदा बहुत थोड़ा है, और बहुत अच्छी चीज़ तो परहेज़गार के लिए आख़िरत ही है, वहां तुम पर एक तागे के बराबर भी ज़ुल्म ना होगा। तुम कहीं रहो, मौत तो आकर ही रहेगी, .ख़्वाह तुम बड़े मज़बूत क़िलों में रहो, और अगर उनको फ़ायदा होता है तो कहते हैं के ये तो अल्लाह की तरफ़ से है, अगर कोई नुक़सान होता है तो कहते हैं ये आप (रसूल) से है, कह

दीजिये के (रंजो राहत) सब अल्लाह ही की तरफ़ से है, उन लोगों को क्या हो गया है इतनी सी बात भी नहीं समझ सकते। तुझे जो फ़ायदा पहुंचता है वो तो अल्लाह ही की तरफ़ से है, और जो मुसीबत तुझे मिलती है वो तुम्हारे अपने आमाल के सबब मिलती है, ऐ नबी! हम ने तुम को तमाम लोगों की तरफ़ अपना रसूल बना कर भेजा है, और अल्लाह गवाह काफ़ी है। जिसने रसूल की इताअत की, उसने अल्लाह ही की इताअत की, और जो रूगर्दानी करे सो हमने तुम को उनका निग्रां करके नहीं भेजा है। और ये लोग कहते हैं के हमारा काम इताअत करना है, फ़िर जब तुम्हारे पास से बाहर जाते हैं तो उनमें से बाज़ लोग रात को तुम्हारी बातों के ख़िलाफ़ मशवरे करते हैं और जो मशवरे ये करते हैं ख़ुदा उनको लिख लेता है तो उनका कुछ ख़्याल ना करो, और ख़ुदा पर भरोसा रखो, और ख़ुदा ही काफ़ी कारसाज़ है।

(4:74-81)

اللّٰهِ ۚ وَ اِنْ تُصِبْهُمْ سَيِّئَةٌ يَّقُوْلُوْا هٰذِهٖ
مِنْ عِنْدِكَ ؕ قُلْ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ ؕ
فَمَالِ هٰٓؤُلَآءِ الْقَوْمِ لَا يَكَادُوْنَ يَفْقَهُوْنَ
حَدِيْثًا ۝٧٨ مَآ اَصَابَكَ مِنْ حَسَنَةٍ فَمِنَ
اللّٰهِ ۫ وَ مَآ اَصَابَكَ مِنْ سَيِّئَةٍ فَمِنْ
نَّفْسِكَ ؕ وَ اَرْسَلْنٰكَ لِلنَّاسِ رَسُوْلًا ؕ وَ
كَفٰى بِاللّٰهِ شَهِيْدًا ۝٧٩ مَنْ يُّطِعِ الرَّسُوْلَ
فَقَدْ اَطَاعَ اللّٰهَ ۚ وَ مَنْ تَوَلّٰى فَمَآ اَرْسَلْنٰكَ
عَلَيْهِمْ حَفِيْظًا ۝٨٠ۭ وَ يَقُوْلُوْنَ طَاعَةٌ ۡ فَاِذَا
بَرَزُوْا مِنْ عِنْدِكَ بَيَّتَ طَآئِفَةٌ مِّنْهُمْ
غَيْرَ الَّذِيْ تَقُوْلُ ؕ وَ اللّٰهُ يَكْتُبُ مَا
يُبَيِّتُوْنَ ۚ فَاَعْرِضْ عَنْهُمْ وَ تَوَكَّلْ عَلَى
اللّٰهِ ؕ وَ كَفٰى بِاللّٰهِ وَكِيْلًا ۝٨١

इनसे पहले जो आयतें नक़ल की गयी थीं यानी आयत 2:190 और 94 वो इस बात को स्पष्ट रूप से बताती हैं कि मुसमलानों को केवल ज्यादती करने वालों के साथ लड़ना चाहिए और उन लोगों से अपना बचाव करना चाहिए जो उनके विरुध अकारण जंग छेड़ें। उपरोक्त आयतें यह बताती हैं कि मुसलमान अपने दीन व अक़ीदे और उसे ज़ाहिर करने के अधिकार की हिफ़ाज़त के लिए ज़ुल्म व ज़्यादती करने वालों से लड़ सकते हैं। अगर हत्याओं और रक्तपात का निशाना बनाए जाने वालों के लिए अपना बचाव करना बरहक़ (न्यायोचित) है ज़ुल्म व दमन से अपना बचाव भी जायज़ है क्योंकि यह वक़्ती तौर पर किसी के मारे जाने से ज़्यादा बदतर हालत है क्योंकि यह इंसानों पर लगातार हमला और आक्रामकता है और इंसानों के अधिकारों को छीनना है (2:91,217)। लिहाज़ा, अत्याचार व दमन के ख़िलाफ़ लड़ना आक्रामकता से अपना बचाव करने की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं है (2:193(8:39), और मजबूर व असहाय मर्द, औरतें और बच्चे अपना बचाव करने का अधिकार रखते हैं और ऐसे मजबूरों की मदद उन लोगों को करना चाहिए जो उनकी सहायता व समर्थन करने की क्षमता रखते हों। इन सहायकों व सर्थकों को जो भी ख़तरा मोल लेना पड़े लेकिन उनका मक़सद और उनकी नैतिक प्रतिष्ठा बुराई की ताक़त पर भारी पड़ेगी और अन्तःउनको ही कामयाबी मिलेगी।

इंसान का स्वभाव तो यह है कि वह शान्ति और सुरक्षा चाहता है, लेकिन कभी कभी समाज के लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि न्याय के लिए संघर्ष करने लग जाए जब देखे कि इंसानी अधिकारों की अवहेलना हो रही है, और इस स्थिति में शान्ति और सुरक्षा को प्राथमिकता देने का मतलब होगा अपमान के जीवन और दमन व उत्पीड़न को स्वीकार कर लेना। क़ुरआन हालांकि सैद्धांतिक रूप से शान्ति पर ज़ोर देता है लेकिन यह कभी अन्याय या ज़ुल्म व दमन को स्वीकार नहीं करता और लोगों को प्रेरणा देता है कि बुज़ुर्ग, कमज़ोर और अन्य ऐसे सभी लोगों का बचाव करें जो ज़ुल्म व दमन का निशाना बन रहे हों। अल्लाह और आख़िरत पर ईमान का तक़ाज़ा यह है कि न्याय के लिए संघर्ष करने वालों की मदद की जाए और इसलिए मोमिनों को हमेशा अपने ईमान के तक़ाज़ों के प्रति संवेदनशील रहना चाहिए और यह समझना चाहिए कि उनका ईमान ज़ुल्म व अन्याय के समय उसका मुक़ाबला करने के बजाए नमाज़ और सदक़े अदा करने को नहीं कहता। अल्लाह के रास्ते में संघर्ष करना यानि जिहाद का मतलब वास्तव में ''इंसानी अधिकरों की हिफ़ाज़त और कमज़ोर व मजबूर लोगों की सहायता व समर्थन'' करना है और इसका मतलब किसी भी तरह दूसरों पर अपना धर्म थोपना नहीं है, क्योंकि क़ुरआन का सिद्धांत यह है कि ''दीन के मामले में कोई ज़बरदस्ती नहीं है'' (2:256)। जिहाद का अनुवाद ''होली वार'' से नहीं किया जा सकता क्योंकि होली वार की अवधारणा जिहाद की धारणा से अलग है, केवल सीमाओं के विस्तार के लिए जंग करना और लोगों को ग़ुलाम बनाना इस्लामी क़ानून (शरीअत) में जायज़ नहीं है।

فَمَا لَكُمْ فِي الْمُنٰفِقِيْنَ فِئَتَيْنِ وَ اللّٰهُ
اَرْكَسَهُمْ بِمَا كَسَبُوْا ؕ اَتُرِيْدُوْنَ اَنْ
تَهْدُوْا مَنْ اَضَلَّ اللّٰهُ ؕ وَ مَنْ يُّضْلِلِ اللّٰهُ
فَلَنْ تَجِدَ لَهٗ سَبِيْلًا ﴿۸۸﴾ وَدُّوْا لَوْ تَكْفُرُوْنَ
كَمَا كَفَرُوْا فَتَكُوْنُوْنَ سَوَآءً فَلَا تَتَّخِذُوْا
مِنْهُمْ اَوْلِيَآءَ حَتّٰى يُهَاجِرُوْا فِيْ سَبِيْلِ
اللّٰهِ ؕ فَاِنْ تَوَلَّوْا فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ
وَجَدْتُّمُوْهُمْ ۪ وَ لَا تَتَّخِذُوْا مِنْهُمْ وَلِيًّا
وَّ لَا نَصِيْرًا ﴿۸۹﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ يَصِلُوْنَ اِلٰى
قَوْمٍۭ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ اَوْ
جَآءُوْكُمْ حَصِرَتْ صُدُوْرُهُمْ اَنْ

तुम मुनाफ़िक़ीन के बारे में किस सबब से दो गिरोह बन गए जबके अल्लाह ने तो उनको उल्टा फ़ेर दिया है, बसबब उनके अमल के, क्या तुम चाहते हो के उनको सीधे रास्ते पर लाओ जिनको अल्लाह ने गुमराह कर दिया है और जिसे अल्लाह गुमराह कर दे तो तुम उसके लिए कोई रास्ता ना पा सकोगे। काफ़िर तो यही चाहते हैं के जिस तरह वो काफ़िर हैं उसी तरह तुम काफ़िर होकर सब बराबर हो जाओ, पस तुम उनमें से किसी को दोस्त मत बनाओ, जब तक वो अल्लाह की राह में वतन ना छोड़ दें और अगर वो एराज़ करें तो उनको पकड़ लो और मार डालो जहां भी उनको पाओ, और उनमें से किसी को अपना रफ़ीक़ ना बनाओ। और ना मददगार बनाओ। मगर जो ऐसे लोगों से जा मिले हों जिनमें और तुम में सुलह का अहद हो, या तुम्हारे पास इस हालत में

يُّقَاتِلُوْكُمْ اَوْ يُقَاتِلُوْا قَوْمَهُمْ ۭ وَ لَوْ شَآءَ
اللّٰهُ لَسَلَّطَهُمْ عَلَيْكُمْ فَلَقٰتَلُوْكُمْ ۚ فَاِنِ
اعْتَزَلُوْكُمْ فَلَمْ يُقَاتِلُوْكُمْ وَ اَلْقَوْا اِلَيْكُمُ
السَّلَمَ ۙ فَمَا جَعَلَ اللّٰهُ لَكُمْ عَلَيْهِمْ
سَبِيْلًا ۝٩٠ سَتَجِدُوْنَ اٰخَرِيْنَ يُرِيْدُوْنَ اَنْ
يَّاْمَنُوْكُمْ وَ يَاْمَنُوْا قَوْمَهُمْ ۭ كُلَّمَا رُدُّوْٓا اِلَى
الْفِتْنَةِ اُرْكِسُوْا فِيْهَا ۚ فَاِنْ لَّمْ يَعْتَزِلُوْكُمْ وَ
يُلْقُوْٓا اِلَيْكُمُ السَّلَمَ وَ يَكُفُّوْٓا اَيْدِيَهُمْ
فَخُذُوْهُمْ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ ۭ وَ
اُولٰٓئِكُمْ جَعَلْنَا لَكُمْ عَلَيْهِمْ سُلْطٰنًا
مُّبِيْنًا ۝٩١ وَمَا كَانَ لِمُؤْمِنٍ اَنْ يَّقْتُلَ
مُؤْمِنًا اِلَّا خَطَـًٔا ۚ وَ مَنْ قَتَلَ مُؤْمِنًا
خَطَـًٔا فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ وَّ دِيَةٌ
مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖٓ اِلَّآ اَنْ يَّصَّدَّقُوْا ۭ فَاِنْ
كَانَ مِنْ قَوْمٍ عَدُوٍّ لَّكُمْ وَ هُوَ مُؤْمِنٌ
فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مُّؤْمِنَةٍ ۭ وَ اِنْ كَانَ مِنْ
قَوْمٍۢ بَيْنَكُمْ وَ بَيْنَهُمْ مِّيْثَاقٌ فَدِيَةٌ
مُّسَلَّمَةٌ اِلٰٓى اَهْلِهٖ وَ تَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ
مُّؤْمِنَةٍ ۚ فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ
مُتَتَابِعَيْنِ ۡ تَوْبَةً مِّنَ اللّٰهِ ۭ وَ كَانَ اللّٰهُ
عَلِيْمًا حَكِيْمًا ۝٩٢ وَ مَنْ يَّقْتُلْ مُؤْمِنًا
مُّتَعَمِّدًا فَجَزَآؤُهٗ جَهَنَّمُ خٰلِدًا فِيْهَا وَ
غَضِبَ اللّٰهُ عَلَيْهِ وَ لَعَنَهٗ وَ اَعَدَّ لَهٗ
عَذَابًا عَظِيْمًا ۝٩٣ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا
ضَرَبْتُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَتَبَيَّنُوْا وَ لَا تَقُوْلُوْا
لِمَنْ اَلْقٰٓى اِلَيْكُمُ السَّلٰمَ لَسْتَ مُؤْمِنًا ۚ

आयें के उनके दिल तुम्हारे साथ या अपनी क़ौम से लड़ने से तंग आ गए हों, और अगर अल्लाह चाहता तो उनको तुम पर ग़ालिब कर देता तो वो तुम से ज़रूर लड़ते, फ़िर अगर वो तुम से जंग करने से किनारा कशी करें और लड़ें नहीं, और तुम्हारी तरफ़ सुलह का पैग़ाम दें तो अल्लाह ने तुम्हारे लिए उन पर ज़बरदस्ती करने की कोई सबील मुक़र्रर नहीं की। तुमको दूसरे लोग ऐसे भी मिल जायेंगे जो ये चाहते हैं के तुमसे भी अमन में रहें और अपनी क़ौम से भी अमन में रहें लेकिन जब वो फ़ितना अंगेज़ी को बुलाये जायें तो उसमें औंधे मुंह गिर पड़ें, अगर ये लोग तुम से किनारा कशी ना करें और तुम्हारी तरफ़ सुलह का पैग़ाम ना दें, और ना अपने हाथों को रोकें तो उनको पकड़ लो, और मार डालो जहां भी पाओ, और हमने उन पर तुमको एक सनदे सही दी है। और किसी मोमिन की ये शान नहीं के दूसरे मामिन को क़त्ल करे, मगर ग़लती से, और जो किसी मोमिन को ग़लती से क़त्ल कर दे तो उस पर मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी का आज़ाद करना है, और .ख़ून बहा है जो उसके .ख़ानदान को दे दे, मगर ये के वो लोग माफ़ कर दें (तो उनको इख़्तियार है) अगर मक़्तूल तुम्हारे दुश्मनों में से है वो .ख़ुद मोमिन हो तो सिर्फ़ एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी का आज़ाद करना है, और अगर मक़्तूल ऐसे लोगों में से है जिनमें और तुम में सुलेह का अहद हो तो वारिसाने मक़्तूल को .ख़ून बहा देना है, और एक मुसलमान ग़ुलाम या लौंडी आज़ाद करना है, और जिसको ये मयस्सर ना हो तो मुतावातिर दो महीने के रोज़े रखे बतौर तौबा के जो मुक़र्रर हुई है अल्लाह की तरफ़ से, और अल्लाह .ख़ूब जानने वाला और हिकमत वाला है। और जो श.ख़्स किसी मुसलमान को क़सदन क़त्ल करेगा तो उसकी सज़ा दोज़ख है, जिसमें वो हमेशा रहेगा, और अल्लाह का ग़ज़ब उस पर जारी रहेगा, और अल्लाह

उसको अपनी रहमत से दूर रखेगा, और उसके लिए बड़ी सज़ा का सामान तैयार करेगा। मोमिनों! जब तुम अल्लाह की राह में सफ़र किया करो तो .ख़ूब छान बीन कर लिया करो और जो तुम को सलाम करे तो तुम ये ना कहा करो के तुम मोमिन नहीं हो, तुम दुनियावी ज़िन्दगी का सामान चाहते हो तो अल्लाह के पास बहुत सी ग़नीमतें हैं, तुम भी तो पहले ऐसे ही थे, फ़िर अल्लाह ने तुम पर एहसान किया, आईंदा तहक़ीक़ कर लिया करो, और अल्लाह तो .ख़ूब जानता है, जो तुम करते हो। वो मुसलमान जो बिला किसी उज़्र के अपने अपने घरों में बैठे रहते हैं उनके बराबर नहीं हैं जो अपने मालों और जानों से अल्लाह की राह में जिहाद करते हैं, अल्लाह ने उन लोगों का दर्जा बहुत बलंद किया है जो अपने मालों और जानों से जिहाद करते हैं बनिस्बत उनको जो घरों में बैठने वाले हैं, और सबसे अल्लाह ने अच्छे घर का वादा कर रखा है, और अल्लाह ने मुजाहिदीन के लिए बनिस्बत घर में बैठे रहने वालों के बहुत बड़ा सिला रखा है। बहुत से दर्जात हैं जो अल्लाह की तरफ़ से मिलेंगे और मग़फ़िरत और रहमत, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला और बड़ी रहमत अता करने वाला है। बिलाशुबह जब फ़रिश्ते उनकी जान क़ब्ज़ करते हैं जो अपने ऊपर ज़ुल्म करते थे, तो फ़रिश्ते उनसे दरयाफ़्त करते हैं के तुम किस काम में थे तो वो कहते हैं के हम सरज़मीन में महज़ मग़लूब और कमज़ोर थे, तो फ़रिश्ते कहते हैं के क्या अल्लाह की सरज़मीन वसीअ ना थी तुम को तर्के वतन करके उसमें चले जाना था, तो उन लोगों का ठिकाना दोज़ख़ है, और वो जाने के लिए बुरी जगह है। मगर जो कमज़ोर मर्द और औरतें और बच्चे इस क़ाबिल नहीं के वो अपनी कोई तदबीर कर सकें और ना रस्ते से वाक़िफ़ हैं। सो उनके लिये उम्मीद है के अल्लाह माफ़ कर दे, और अल्लाह तो है ही बड़ा माफ़ करने वाला और

تَبْتَغُوْنَ عَرَضَ الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۡ فَعِنْدَ
اللّٰهِ مَغَانِمُ كَثِيْرَةٌ ؕ كَذٰلِكَ كُنْتُمْ مِّنْ
قَبْلُ فَمَنَّ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ فَتَبَيَّنُوْا ؕ اِنَّ اللّٰهَ
كَانَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرًا ﴿٩٤﴾ لَا يَسْتَوِي
الْقٰعِدُوْنَ مِنَ الْمُؤْمِنِيْنَ غَيْرُ اُولِي
الضَّرَرِ وَ الْمُجٰهِدُوْنَ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
بِاَمْوَالِهِمْ وَ اَنْفُسِهِمْ ؕ فَضَّلَ اللّٰهُ
الْمُجٰهِدِيْنَ بِاَمْوَالِهِمْ وَ اَنْفُسِهِمْ عَلَى
الْقٰعِدِيْنَ دَرَجَةً ؕ وَ كُلًّا وَّعَدَ اللّٰهُ الْحُسْنٰى
ؕ وَ فَضَّلَ اللّٰهُ الْمُجٰهِدِيْنَ عَلَى الْقٰعِدِيْنَ
اَجْرًا عَظِيْمًا ﴿٩٥﴾ۙ دَرَجٰتٍ مِّنْهُ وَ مَغْفِرَةً وَّ
رَحْمَةً ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿٩٦﴾ اِنَّ
الَّذِيْنَ تَوَفّٰىهُمُ الْمَلٰٓئِكَةُ ظَالِمِيْٓ
اَنْفُسِهِمْ قَالُوْا فِيْمَ كُنْتُمْ ؕ قَالُوْا كُنَّا
مُسْتَضْعَفِيْنَ فِي الْاَرْضِ ؕ قَالُوْٓا اَلَمْ تَكُنْ
اَرْضُ اللّٰهِ وَاسِعَةً فَتُهَاجِرُوْا فِيْهَا ؕ
فَاُولٰٓئِكَ مَاْوٰىهُمْ جَهَنَّمُ ؕ وَ سَآءَتْ
مَصِيْرًا ﴿٩٧﴾ۙ اِلَّا الْمُسْتَضْعَفِيْنَ مِنَ الرِّجَالِ وَ
النِّسَآءِ وَ الْوِلْدَانِ لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ حِيْلَةً وَّ
لَا يَهْتَدُوْنَ سَبِيْلًا ﴿٩٨﴾ۙ فَاُولٰٓئِكَ عَسَى اللّٰهُ
اَنْ يَّعْفُوَ عَنْهُمْ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ عَفُوًّا
غَفُوْرًا ﴿٩٩﴾ وَ مَنْ يُّهَاجِرْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ
يَجِدْ فِي الْاَرْضِ مُرٰغَمًا كَثِيْرًا وَّسَعَةً ؕ وَ
مَنْ يَّخْرُجْ مِنْۢ بَيْتِهٖ مُهَاجِرًا اِلَى اللّٰهِ وَ
رَسُوْلِهٖ ثُمَّ يُدْرِكْهُ الْمَوْتُ فَقَدْ وَقَعَ
اَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا ﴿١٠٠﴾

बड़ा बख़्शने वाला। और जो अल्लाह के रास्ते में हिज्रत करेगा तो वो रूए ज़मीन पर जाने के लिए बहुत जगह और बहुत गुंजाइश पायेगा, और जो अपने घर से इस नीयत से चलेगा के वो अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ हिज्रत करेगा फिर उसको मौत आ जाये तब भी उसका सवाब साबित हो गया, और अल्लाह बड़ा बख़्शने वाला और बड़ा रहम करने वाला है। (4:88-100)

इन आयतों में से पहली चार आयतें मुसलमानों को यह सीख देती हैं कि मुनाफ़िक़ों से किस तरह निपटें जो मोमिन होने का दावा करते हैं जबकि वास्तव में वो मोमिन नहीं हैं, और यह मुनाफ़िक़त (दोग़लापन) मदीना में खुल कर सामने आई और मदीना के पास रहने वाले बद्दुओं (अरब के देहातियों) में ज़ाहिर हुई (9:75,101), जब अल्लाह के रसूल मुहम्मद सल्ल० मक्का से हिजरत करके मदीना आए और वहां के लोगों ने आपको अल्लाह का पैग़म्बर मानने के साथ साथ अपना सरदार और अगुवा मान लिया। "ये लोग कहते हैं कि वो ईमान लाए जबकि झूट बोल रहे हैं"(63:1-5), "और ईमान लाए फिर काफ़िर हो गए फिर ईमान लाए फिर काफ़िर हो गए, फिर कुर में बढ़ते गए"(4:137)। "देखते रहते हैं अगर अल्लाह की तरफ़ से तुम्हें जीत मिले तो कहते हैं कि क्या हम तुम्हारे साथ न थे और अगर काफ़िरों को (जीत) नसीब हो तो (उन से) कहते हैं कि क्या हम तुम पर छाये हुए नहीं थे और तुम को मुसलमानों (के हाथ) से बचाया नहीं, तो अल्लाह तुम में क़ियामत के दिन फ़ैसला करेंगे (1:14), "बीच में पड़े डोल रहे हैं न इनकी तरफ़ (होते हैं) न उन की तरफ़" (4:143)।

यह स्वार्थी अवसरवादी लोग मुसलमानों के लिए और मदीना में बनने वाले पहले इस्लामी राज्य के लिए बहुत ख़तरनाक थे। लेकिन वो अन्दर से विद्रोही थे और क़ुरआन उनकी ग़द्दारी के प्रतीकों को ज़ाहिर करता है(3:167-169; 4:138-142; 8:49; 9:42-67,74 - 88,107-110; 33:12; 47:25-32)। लेकिन इसके बावजूद क़ुरआन मुसमलानों को यह सीख देता है कि वो लोगों की नियत का फ़ैसला न किया करें या उनसे सम्बंध निभाते समय अस्पष्ट, भ्रामक सुबूतों या अनुमानों पर न चलें। निश्चित रूप से उन्हें होशियार रहना चाहिए और ऐसे पाखण्डियों की सहायता पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि ये मुनाफ़िक़ जब तक मुसमलानों के ख़िलाफ़ खुल कर न आएं और शान्ति की ही बात करते रहें उस समय तक मुसलमान भी उनके साथ शान्तिपूर्ण ढंग से पेश आएं, चाहे उनके उद्देश्यों और उनकी भावनाओं से वो दिक़्क़त महसूस करते हों। हिजरत (पलायन) के बाद जो लोग मदीना में नहीं रहते थे उन्हें मदीना में आने की ज़रूरत थी। ये उन लोगों के लिए ख़ास तौर से ज़रूरी था जिन पर मुनाफ़िक़ होने का शक था

ताकि वो अपना ईमान और सच्ची प्रतिबद्धता को साबित करें और दुशमन से सांठगांठ की स्थिति में आसानी से पहचान लिए जाएं। अगर मुसलमानों के ख़िलाफ़ लड़ाई करने या उनको नुक़सान पहुंचाने के ठोस सुबूत उपलब्ध हों तो यह कपटी लोग नुक़सान पहुंचाने वालों में गिने जाएंगे और खुले दुशमनों से ज़्यादा ख़तरनाक (4:145) माने जाएंगे जिनका उन्होंने किसी अवसर पर साथ दिया (4:139), और उनके साथ मिल कर उन्होंने मुसलमानों से लड़ाई की (9:37)।

अगली दो आयतें मुनाफ़िक़ों से लड़ते समय एक सच्चे मोमिन को ग़लती से क़त्ल करने के बारे में हैं। ऐसी ग़लती असम्भव नहीं ख़ास तौर से एक क़बायली समाज में जहां पूरा क़बीला किसी एक ख़ास क्षेत्र में ही बसता था, और क़बीले का सरदार व क़बीले के अधिकतर लोग मुसलमानों के विरोधी हों, जबकि उस क़बीले में कुछ व्यक्ति ईमान वाले हों या लड़ाई से अलग थलग हों। लड़ाई का आम इस्लामी सिद्धांत यह है कि लड़ाई केवल उन्ही लोगों से होगी जो लड़ रहे होंगे और जो लड़ाई में शामिल न हों उसे कोई नुक़सान नहीं पहुंचाया जाएगा (2:190), और यहां मुनाफ़िक़ों के विरुध लड़ाई के मामले में एक ख़ास चेतावनी भी दी गयी है, क्योंकि उनके बीच वास्तविक ईमान वाले भी मौजूद हो सकते हैं। यह ध्यान देने वाली बात है कि क़ुरआन ग़लती से किसी मोमिन के क़त्ल की सज़ा के रूप में क ग़ुलाम आज़ाद करने और मारे गए व्यक्ति के वारिसों को ख़ून का बदला देने का निर्देश देता है। अगर मरने वाला मोमिन ऐसे क़बीले से हो जो मुसलमानों से जंग कर रहा हो तब ख़ून का बदला देना बेमतलब बात होगी, और ऐसे मामले में सज़ा केवल एक ग़ुलाम को आज़ाद करना होगा।

मशहूर मुफ़स्सिर अलनसफ़ी (मृ 537 हिजरी/1142 ई) आयत 4:92 की तफ़सीर में लिखते हैं कि एक ग़ुलाम आज़ाद करने का मतलब असिल में ग़ुलामी के चलते एक तबाह हो चुके इंसानी व्यक्तित्व को नया जीवन देने के बराबर है, और यह एक सम्भव तरीक़ा है किसी निर्दोष इंसान की हत्या की भरपाई करने का, क्योंकि मृतक को तो फिर जीवित करना सम्भव नहीं है। इस बात का समर्थन ग़ुलाम आज़ाद करने के लिए क़ुरआन में इस्तेमाल किए शब्द 'गर्दन छुड़ाना' से भी होता है (2:177(4:92(5:89(9:60(58:3(90:13), और इसका अर्थ यह है कि ग़ुलामी गर्दन में पड़ा हुआ एक कुण्ठल है जो इंसान को उसकी अपनी आज़ाद मर्जी और इच्छा व पसन्द की आज़ादी से वंचित कर देती है। अरबी में, ख़ास तौर से क़ुरआन की शब्दावली में 'गर्दन' को जीवन के रूप मे लिया गया है, और इस लिहाज़ से क़त्ल का मतलब गर्दन काट देना या गला दबा देना है, जैसे दूसरी भाषाओं में इसे गला काटना कहा जाता है। इस तरह गर्दन छुड़ाने से क़ुरआन का अभिप्राय इंसान की जान बचाना, या उसे नया जीवन देना है।

इन मुफ़स्सिर ने ग़ुलामी को अरब के सामाजिक जीवन में क़ुर व शिर्क पर आधारित

जाहिलाना और ग़ैर इंसानी तौर तरीक़ों के अवशेष कहा है। यह चीज़ उन लोगों पर बिल्कुल खुली थी जो क़ुरआन का ज्ञान रखते थे कि ग़ुलामी को एक अस्थाई और अन्तरिम स्थिति के रूप में ही स्वीकार किया गया था जिसे समाप्त करने के लिए लोगों की सामूहिक कोशिश और सहयोग ज़रूरी था और इसी लिए उन्हें आदेश दिया गया था कि गुनाहों के पश्चाताप के रूप में या सदक़ा के रूप में ग़ुलाम आज़ाद करें (2:177(90:13) और शासकों को यह ज़िम्मेदारी दी गयी है कि वो ग़ुलामों को आज़ाद करने के लिए सरकारी कोष से ख़र्च करें (9:60)। इस अन्तरिम काल में, एक हदीस के अनुसार, मुसलमानों को यह हुक्म दिया गया था कि अपने ग़ुलाम को वही खिलाएं जो ख़ुद खाते हैं और वही पहनाएं जो ख़ुद पहनते हैं और उनसे उनकी ताक़त से ज़्यादा काम न लें, और अगर कोई मुशक़्क़त वाला काम उनसे कराएं तो उसमें उनकी मदद भी करें (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबु दाऊद, तिरमिज़ी, इब्ने माजा)। क़ुरआन ने ग़ुलामी के चलन की शुरूआत नहीं की और न उसे अपने सिद्धांत व नियम के रूप में तय किया है, क़ुरआन ने ग़ुलाम और ग़ुलामी का शब्द भी इस्तेमाल नहीं किया, इसके बजाए क़ुरआन में कहा गया कि यु) बन्दियों को फ़िदया (बदला) लेकर या परोपरकार के रूप में रिहा कर दो (47:4)। रसूल सल्ल० ने फ़रमाया अब्द (ग़ुलाम) मत कहा करो बल्कि मेरा लड़का या मेरी लड़की कहा करो (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल और अबुदाऊद)। यह दुर्भाग्य की बात है कि मुसलमान ग़ुलामी को विधिवत रूप से समाप्त करने की ज़िम्मेदारी पूरी नहीं कर सके और ग़ुलामी के पूरी तरह ख़ात्मे की घोषणा करने में पहल करने वाले न बन पाए कि जो अन्याय और अज्ञानता के अवशेषों में से थी।

चूंकि मुनाफ़िक़ों के ख़िलाफ़ लड़ाई में शक की वजह से किसी मोमिन की जानबूझ कर हत्या हो जाना एक गम्भीर बात है, और इसकी सज़ा ग़लती से किसी की हत्या कर देने से भी ज्यादा है, इसलिए मुसलमानों को यह निर्देश दिया गया है कि वो जंग के चलते पूरी तरह सावधान और चौकन्ना रहें और जो कोई भी शान्ति का प्रतीक दिखाए जिसमें सलाम करना भी शामिल है, उसे कोई नुक़सान पुहंचाने से अपने आप को रोकें। जब मुसलमानों को मुनाफ़िक़ों से लड़ाई करते हुए अपना हाथ उस समय रोक लेना है जब मुनाफ़िक़ ख़ुद कोई आक्रामकता न कर रहे हों, और अगर उन्हें दुशमन पक्ष के उन लोगों से ख़िलाफ़ भी हाथ नहीं उठाना है जो लड़ाई में शामिल न हों, तो ज़ाहिर है कि उन्हें उस व्यक्ति से भी अपना हाथ रोक लेना है जो शान्ति चिन्ह दिखाए औ न लड़ने का संकेत दे। मुसलमान डराने और आतंकित करने के लिए या ग़नीमत का माल लूटने के लिए जंग नहीं करते बल्कि ज़ुल्म व उत्पीड़न व दमन का प्रतिरोध करते हैं और अपने इंसानी अधिकारों के लिए लड़तें हैं।

इस तरह न केवल यह कि लड़ाई के कारण बहुत सीमित हैं, बल्कि लड़ाई करने के सिद्धांत व नियम भी कड़े हैं। हालांकि इस्लाम मोमिनों को सीमाओं के विस्तार के लिए और दूसरों पर

इस्लाम को थोपने के लिए जंग करने को नहीं कहता बल्कि 'जिहाद' शब्द से आम तौर से जो मतलब निकाला जाता है उसके विपरीत यह उन लोगों को अपने अधिकार के लिए लड़ने पर उभारता है जो अन्याय का शिकार बनाए जाते हैं। जो लोग अत्याचार और दमन को सहन करते हैं और अपने इंसानी अधिकार कुचले जाने को स्वीकार कर लेते हैं वो ख़ुद अपने आप पर ज़ुल्म करते हैं (4:97)। ऐसे लोगों को अपनी इंसानी प्रतिष्ठा की हिफ़ाज़त के लिए, जिससे अल्लाह ने तमाम इंसानों को सम्मानित किया है (17:70), कड़ा संघर्ष करना चाहिए। किसी भी इंसान के लिए इसका कोई बहाना नहीं है कि अत्याचार व उत्पीड़न और अपमान को स्वीकार करे, सिवाय इसके कि वह उससे निकलने के लिए कुछ करने का कोई रास्ता ही न पाता हो और पूरी तरह मजबूर हो, ऐसे मजबूर और बे सहारा औरतों और बच्चों के लिए भी यह है कि "उम्मीद है कि अल्लाह उन्हें मुआफ़ कर दें" (क़ुरआन), क्योंकि वह हर एक का फ़ैसला उसकी अपनी क्षमता के अनुसार ही करेंगे, और वह हर चीज़ की जानकारी रखते हैं और हर चीज़ पर नियंत्रण रखते हैं और साथ ही दया और बख़्शिश करने वाले हैं। चूंकि अल्लाह ने "आदम की संतान को थल और जल में सवारी दी है" (17:70) इसलिए जिन लोगों को उनके देश में अत्याचार व उत्पीड़न का सामना हो और अपने अधिकारों की रक्षा करने की ताक़त न हो, तो वो कम से कम दूसरी जगह तो जा सकते हैं, और ज़मीन को अल्लाह ने विशाल बनाया है और बहुत से स्थान इंसान की शरण स्थली बन सकते हैं, जहां जीवन के साधान ज़्यादा उपलब्ध हों और इंसानी अधिकार ज़्यादा सुरक्षित हों। क़ुरआन में ज़ुल्म को स्वीकार करने की निन्दी की गयी है जिस तरह ज़ुल्म करने की निन्दा की गयी है। क्योंकि अन्याय की स्थिति को बदलना चाहिए, और ज़ुल्म व दमन करने वालों को चुनौती देना और उनसे टकराना चाहिए। यह है वह जिहाद जिसकी क़ुरआन शिक्षा देता है, वह नहीं जिसका दावा अपनी शासन सीमाओं को बढ़ाने की वासना पूरी करने वाले आक्रमणकारी करें। वो तमाम लोग जो ऐसे असहाय लोगों की सहायत करने की क्षमता रखते हों और उन्हें उनकी मुसीबत से निकलने का रास्ता दिखा सकते हों उन्हें निर्देश दिया गया है कि वो जितनी जल्दी ऐसा कर सकते हों करें (4:75-76), क्योंकि यह बहुत शर्म की बात है कि ऐसे असहाय और बे सहारा लोगों को उनके हाल पर छोड़ दिया जाए और उन्हें अपमान व उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने के लिए सभी साधनों को उपयोग करके पूरी कोशि न की जाए।

وَ قَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّ يَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ ۚ فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ بِمَا يَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ۝ وَ اِنْ تَوَلَّوْا

और तुम उन कुफ़्फ़ारे अरब से इस हद तक लड़ो के फ़सादे अक़ीदा (यानी शिर्क) ना रहे, और ख़ालिस दीन अल्लाह ही का दीन हो जाए, फ़िर अगर ये कुफ़्र को छोड़ दें तो अल्लाह उनके आमाल को ख़ूब देखने वाला है।

فَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَوْلٰىكُمْ ؕ نِعْمَ الْمَوْلٰى وَ نِعْمَ النَّصِيْرُ ﴿۴۰﴾ وَ اعْلَمُوْٓا اَنَّمَا غَنِمْتُمْ مِّنْ شَیْءٍ فَاَنَّ لِلّٰهِ خُمُسَهٗ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِی الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ اِنْ كُنْتُمْ اٰمَنْتُمْ بِاللّٰهِ وَ مَآ اَنْزَلْنَا عَلٰى عَبْدِنَا يَوْمَ الْفُرْقَانِ يَوْمَ الْتَقَى الْجَمْعٰنِ ؕ وَ اللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۴۱﴾

और अगर वो रूगर्दानी करें तो यक़ीन रखो के अल्लाह तुम्हारा रफ़ीक़ है और बहुत ही अच्छा मददगार है। और जान लो के जो चीज़ तुम बतौर ग़नीमत के हासिल करो उसमें पांचवां हिस्सा (1/5) अल्लाह का और उसके रसूल का है और एक हिस्सा आपके अहले क़राबत का, और यतीमों का, और मोहताजों का, और मुसाफ़िरों का हैं अगर तुम अल्लाह पर यक़ीन रखते हो और उस चीज़ पर जो हमने अपने बन्दे (मोहम्मद (अ.स.) पर फ़ैसला के दिन जिस दिन दो जमातें बाहम मुक़ाबिल हुई थीं नाज़िल की, और अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (8:39-41)

مَآ اَفَآءَ اللّٰهُ عَلٰى رَسُوْلِهٖ مِنْ اَهْلِ الْقُرٰى فَلِلّٰهِ وَ لِلرَّسُوْلِ وَ لِذِی الْقُرْبٰى وَ الْيَتٰمٰى وَ الْمَسٰكِيْنِ وَ ابْنِ السَّبِيْلِ ۙ كَیْ لَا يَكُوْنَ دُوْلَةًۢ بَيْنَ الْاَغْنِيَآءِ مِنْكُمْ ؕ وَ مَآ اٰتٰىكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۗ وَ مَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا ۚ وَ اتَّقُوا اللّٰهَ ؕ اِنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ۘ ﴿۷﴾

जो माल अल्लाह ने अपने रसूल को देहातों में दिलवाया है, वो अल्लाह का है और उसके रसूल का, और रसूल के रिश्तेदारों, और यतीमों, हाजतमंदों और मुसाफ़िरों का है, ताके जो लोग तुम में दौलतमंद हैं उन्हीं के हाथों में ना फ़िरता रहे, और जो चीज़ रसूल तुम को दें वो ले लो, और जिससे मना करें उससे बाज़ रहो, और अल्लाह से डरते रहो, बिला शुबह अल्लाह सख़्त अज़ाब देने वाला है। (59-7)

मुसलमान अत्याचार व अन्याय को रोकने के लिए और तमाम लोगों के लिए आस्था व ईमान की आज़ादी को सुनिश्चत करने के लिए जंग करते हैं क्योंकि ईमान व अक़ीदे का मामला हर व्यक्ति के लिए केवल उसके और ख़ुदा के बीच है (देखें आयतें 2:193-194) और उसकी व्याख्या)। लेकिन अपना धर्म किसी पर थोपने के लिए किसी भी तरह से कोई लड़ाई उनके लिए नहीं है। यह बात उपरोक्त आयत 8:39 में पूरी तरह स्पष्ट करके और ज़ोर देकर कह दी गयी है, जो इस बात को सुनिश्चित करती है कि धर्म का पूरा मामला हर एक के लिए उसके और ख़ुदा के बीच का मामला बन जाए। अगर ज़ालिम लोग इंसान और ख़ुदा के बीच रास्ते में रुकावट बनने पर उतारू हों और लोगों को इस पर मजबूर करें कि वो क्या मानें और क्या न मानें तब इंसानों के लिए आस्था की आज़ादी को सुनिश्चित करने के लिए संघर्ष करना

ज़रूरी हो जाता है। लेकिन जैसे ही यह रुकावटें दूर हों और फ़ितना ख़त्म हो जाए मुसलमानों को लड़ाई रोक देना होती है चाहे दूसरे पक्ष की भावी योजना कुछ भी हो, क्योंकि अल्लाह उन पर नज़र रखे हुए हैं कि आगे वो क्या करते हैं।

अगर मुसलमानों को लड़ाई में दुशमनों का कुछ माल हाथ लगे तो क़ुरआन की शिक्षा यह है कि उसका पांचवा भाग सरकार को दिया जाए ताकि वह समाज के ज़रूरतमंद लोगों के लिए उसे ख़र्च करे। इससे यह बात उजागर होती है कि मुसमलान एक मक़सद के लिए लड़ते हैं, और उनकी यह लड़ाई जनता के लिए होती है, मुजाहिद केवल माल-ए-ग़नीमत पाने और अपने हित के लिए नहीं लड़ता। अल्लाह के हिस्से से अभिप्राय है समाज का हिस्सा, किसी व्यक्ति विशेष का हिस्सा नहीं। जो लोग इस पांचवें हिस्से के हक़दार होते हैं वो लड़ाई में शहीद या घायल होने वाले मुजाहिदों के घर वाले, क़रीबी रिश्तेदारों के अलावा आम ग़रीब, दरिद्र और अपने घरों से दूर लोग यानि यात्रि या परदेसी होते हैं। और बाक़ी चारों हिस्से अधिकतर फ़क़ीहों के विचार में मुजाहिदों (सैनिकों) में बांटे जाएंगे, लेकिन अलमवारिदी ने अलअहकामुल सुलतानिया में लिखा है कि इमाम मालिक ने अमीरुल मोमिनीन (राज्य के शासक) को इसका अधिकारी माना है कि वह इन चारों हिस्सों को जनता में किस तरह वितरित करें, और इसके लिए आयत 8:1 का तर्क दिया है जिसमें माल-ए-ग़नीमत को अल्लाह और उसके रसूल का हक़ ठहराया गया है, और रसूल सल्ल० के बाद यह अधिकार आपके ख़लीफ़ाओं को यानी इस्लामी राज्य के शासक को मिलता है।

इस ऐतिहासिक सच्चाई को ज़हन में रखना चाहिए कि रसूल सल्ल० के ज़माने में मुजाहिद लोग किसी व्यवसायिक सेना का हिस्सा नहीं थे, बल्कि वो लोग थे जो आम दिनों में अपने रोज़गार का कोई न कोई साधन रखते थे, और लड़ाई के समय रसूल सल्ल० की पुकार पर दुशमन से लड़ने के लिए चले आते थे। हर व्यक्ति ख़ुद अपने हथियार और घोड़े (या ऊंट) लेकर आता था। इस लिहाज़ से यह पूरी तरह न्यायोचित था कि लड़ाई में जो माल हाथ आए वह उन लड़ने वालों के बीच बांट दिया जाए। जब इस्लामी राज्य की स्थाई फ़ौज विधिवत रूप से बन गयी तो इसके बाद हम ने माल-ए-ग़नीमत को लड़ने वालों में वितरित करने के बारे में नहीं सुना, और क़ुरआन में ऐसा कोई इशारा नहीं मिलता कि यह प्रक्रिया जारी रखी जाए। कुछ सामयिक फ़क़ीह जैसे मुस्तफ़ा अलज़रक़ा का मानना है कि पांच में से चार हिस्से राज्य के शासकों के विवेक के अनुसार सैनिक और सिविल उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किये जाने चाहिएं।

मोमिनों! जब तुम को किसी जमात से मुक़ाबला पड़ जाए तो साबित क़दम रहो और अल्लाह को कसरत से याद करो, ताके तुम फ़लाह पाओ। और अल्लाह और	يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا لَقِيْتُمْ فِئَةً فَاثْبُتُوْا وَ اذْكُرُوا اللّٰهَ كَثِيْرًا لَّعَلَّكُمْ

تُفۡلِحُوۡنَ ۝ وَ اَطِیۡعُوا اللّٰہَ وَ رَسُوۡلَہٗ وَ لَا
تَنَازَعُوۡا فَتَفۡشَلُوۡا وَ تَذۡہَبَ رِیۡحُکُمۡ
وَ اصۡبِرُوۡا ؕ اِنَّ اللّٰہَ مَعَ الصّٰبِرِیۡنَ ۝ وَ لَا
تَکُوۡنُوۡا کَالَّذِیۡنَ خَرَجُوۡا مِنۡ دِیَارِہِمۡ بَطَرًا
وَّ رِئَآءَ النَّاسِ وَ یَصُدُّوۡنَ عَنۡ سَبِیۡلِ
اللّٰہِ ؕ وَ اللّٰہُ بِمَا یَعۡمَلُوۡنَ مُحِیۡطٌ ۝

उसके रसूल की इताअत किया करो और आपस में झगड़े ना किया करो, वरना कम हिम्मत हो जाओगे, और तुम्हारी हवा उखड़ जाएगी और क़ुव्वते बर्दाश्त पैदा किया करो, बेशक अल्लाह सब्र वालों के साथ है। और काफ़्रीन की तरह ना होना जो अपने घरों से इतराते हुए, और लोगों को अपनी शान दिखाते हुए निकले, और लोगों को अल्लाह के रास्ते से रोकते थे, और अल्लाह उनके आमाल को अपने आहाता में लिये हुए है। (8:45-47)

जो लोग अल्लाह के रास्ते में लड़ते और जिहाद करते हैं उनके लिए दृढ़ता से जमे रहना, अल्लाह का डर रखना, अल्लाह व रसूल का कहना मानना, धैर्य रखना, संयम रखना और अहंकार व घमण्ड से बचना वग़ैरह गुण उनके नैतिक हथियार होते हैं, जिनसे वो ज़ुल्म व सितम का मुक़ाबला करते हैं और पीड़ित मर्दों व औरतों और बच्चों की मदद करते हैं (4:75), और इंसानी प्रतिष्ठा की हिफ़ाज़त करते हैं। ऐसे मोमिनों को यह याद दिलाया जा रहा है कि अपने दुश्मनों की तरह की नैतिक असफ़लताओं से बचें, क्योंकि यह नैतिक प्रतिष्ठा ही उनके संघर्ष और क़ुर्बानियों की पहचान है और उनके संघर्ष की प्रासंगिकता है।

وَ اِمَّا تَخَافَنَّ مِنۡ قَوۡمٍ خِیَانَۃً فَانۡۢبِذۡ
اِلَیۡہِمۡ عَلٰی سَوَآءٍ ؕ اِنَّ اللّٰہَ لَا یُحِبُّ
الۡخَآئِنِیۡنَ ۝

और अगर आपको किसी क़ौम से ख़्यानत का अंदेशा हो, तो आप वो एहद उनको वापस कर दीजिये के आप और वो दोनों बराबर हो जायें बेशक अल्लाह ख़्यानत करने वालों को पसंद नहीं करता। (8:58)

वायदों को पूरा करना और सन्धि व समझौते का लिहाज़ करना ज़रूरी है जब तक कि दूसरा पक्ष भी उस पर बना हो। मुसलमानों को हमेशा यह अहसास रहता है कि अल्लाह उन्हें देख रहे हैं और अपने वायदे वचन की जबावदेही के लिए वो अल्लाह के सामने खड़े होंगे। यह अहसास और ईमान व यक़ीन उनके लिए अपने वायदों वचनों को निभाने की एक ज़मानत बन जाता है और यह ज़मानत किसी भी दुनियावी बन्दोबस्त से कहीं ज़्याद प्रभावपूर्ण है। अलबत्ता अगर दूसरा पक्ष समझौते का उल्लंघन करे या करता रहे तो समझौते को अपनी तरफ़ से बनाए रखना बेमतलब बात होगी, और ख़ास तौर से ऐसी स्थिति में जबकि धोखा और साज़िश के ठोस सुबूत मौजूद हों। जब समझौते का उल्लंघन करने वाले काम होने लगें और उसका जवाब देना ज़रूरी हो जाए यह जवाबी कार्रवाई घोषित रूप से होनी चाहिए और बराबर

के दर्जे में होना चाहिए। मुसलमानों को न तो धोखा और फ़रेब से काम लेना चाहिए और न ज्यादती करना चाहिए क्योंकि दो ग़लत बातें मिल कर ठीक नहीं हो जातीं। मुसलमान हमेशा न्याय और नैतिकता पर बने रहें , दुशमनी और धोखे के मुक़ाबले में भी वरना उनका संघर्ष अपने मक़सद से दूर चला जाएगा और अनैतिक तरीक़े अपनाने से असिल मक़सद ख़त्म हो जाएगा।

और काफ़िरों से लड़ने के लिए जहां तक तुम कर सकते हो, फ़ौजी क़ुव्वत, घोड़ों की तैयारी वग़ैरा से सामान दुरूस्त करो के इससे अल्लाह के दुश्मन और अपने दुश्मन को और उनके अलावा जिनको तुम नहीं जानते मगर अल्लाह जानता है, उन सब पर रौब जमाए रखो, और जो कुछ तुम अल्लाह की राह में .ख़र्च करते हो उसका पूरा पूरा सिला तुमको मिलेगा, और तुम पर कोई ज़ुल्म नहीं होगा। और अगर काफ़ीन सुलह की तरफ़ राग़िब हों तो तुम भी मायल हो जाओ, और अल्लाह पर भरोसा रखो, और इसमें ज़रा भी शक नहीं के अल्लाह सुनने वाला और .ख़ूब जानने वाला है। और अगर ये चाहते हैं आपको धोका दें तो अल्लाह आपके लिये काफ़ी है, वो वही है जिसने आपको अपनी इम्मदाद से और मोमिनीन से क़ुव्वत बख़्शी। और उनके दिलों में मोहब्बत व उल्फ़त पैदा की (और इस तरह उनको मुत्तफ़िक़ और मुत्तहिद कर दिया) अगर तुम दुनिया भर की तमाम दौलत खर्च कर देते तो भी तुम उनके दिलों में उल्फ़त पैदा ना कर सकते, मगर अल्लाह ही ने उन सबमें मोहब्बत डाली, बेशक अल्लाह ज़बरदस्त हिकमत वाला है। (8:60-63)

وَ اَعِدُّوْا لَهُمْ مَّا اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ قُوَّةٍ وَّ
مِنْ رِّبَاطِ الْخَيْلِ تُرْهِبُوْنَ بِهٖ عَدُوَّ
اللّٰهِ وَ عَدُوَّكُمْ وَ اٰخَرِيْنَ مِنْ دُوْنِهِمْ ۚ
لَا تَعْلَمُوْنَهُمْ ۚ اَللّٰهُ يَعْلَمُهُمْ ؕ وَ مَا
تُنْفِقُوْا مِنْ شَيْءٍ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ يُوَفَّ
اِلَيْكُمْ وَ اَنْتُمْ لَا تُظْلَمُوْنَ ﴿۶۰﴾ وَ اِنْ
جَنَحُوْا لِلسَّلْمِ فَاجْنَحْ لَهَا وَ تَوَكَّلْ عَلَى
اللّٰهِ ؕ اِنَّهٗ هُوَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿۶۱﴾ وَ اِنْ
يُّرِيْدُوْۤا اَنْ يَّخْدَعُوْكَ فَاِنَّ حَسْبَكَ
اللّٰهُ ؕ هُوَ الَّذِيْۤ اَيَّدَكَ بِنَصْرِهٖ وَ
بِالْمُؤْمِنِيْنَ ﴿۶۲﴾ وَ اَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِهِمْ ؕ لَوْ
اَنْفَقْتَ مَا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا مَّاۤ اَلَّفْتَ
بَيْنَ قُلُوْبِهِمْ وَ لٰكِنَّ اللّٰهَ اَلَّفَ بَيْنَهُمْ ؕ
اِنَّهٗ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿۶۳﴾

शान्तिप्रिय लोगों को कुछ लोग कमज़ोर समझते हैं, ऐसे मामले में उनके शान्तिपूर्ण रवैये का ग़लत मतलब निकाला जाता है और इससे ग़लत फ़ायदा उठाने की कोशिश की जाती है और दूसरे लोगों की तरफ़ से ज़ुल्म व ज़्यादती का सामना कर पड़ सकता है। मुसलमानों पर जो लोग वर्तमान में या भविष्य में हमला करने का सोचें या सोच सकते हों उन्हें इससे बाज़ रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करके शान्ति बनाए रखने की कोशिश होना चाहिए। लेकिन शान्ति

की तरफ़ झुकाव के किसी भी मुद्रा का जवाब भी ऐसा ही होना ज़रूरी है, और मुसलमानों को अल्लाह पर भरोसा करना चाहिए, और अगर उन्हें इस झुकाव का थोड़ा सा भी इशारा मिले, क्योंकि दूसरों के बारे में कोई फ़ैसला सामने आने वाली गवाही या प्रतीक पर ही होगा। किसी छल कपट का शक होने की स्थिति में मुसलमानों को इसका सामना करने के लिए नैतिक, भौतिक और इंसानी संसाधनों से युक्त रहना चाहिए कि जब कभी भी ज़्यादती का कोई क़दम विरोधी पक्ष की तरफ़ से उठाया जाए तो उसका सामना किया जा सके। लिहाज़ा, शान्ति के किसी उचित प्रस्ताव को रद करने की कोई ज़रूरत नहीं है। मुसलमान अल्लाह पर और अल्लाह की मदद व अल्लाह की तरफ़ से मिलने वाले बदले पर ईमान रखते हैं और इसलिए उन्हें अपने इंसानी संसाधनों को उनकी उत्तम नैतिक प्रशिक्षण, साहस और आत्म विश्वास व एकजुटता के साथ तथा सभी सम्भव शक्ति के साथ हमेशा तैयार रहना चाहिए ताकि उन लोगों को आक्रामकता से बाज़ रख सकें जो उनके दुशमन बन सकते हैं।

قَالَتْ إِنَّ الْمُلُوكَ إِذَا دَخَلُوا قَرْيَةً أَفْسَدُوهَا وَجَعَلُوا أَعِزَّةَ أَهْلِهَا أَذِلَّةً ۖ وَكَذَٰلِكَ يَفْعَلُونَ ﴿٣٤﴾

मलिका ने कहा, बादशाह जब किसी शहर में दाख़िल होते हैं तो उसको तबाह कर देते हैं, और उनके बाशिंदों में जो मौअज्ज़ि लोग होते हैं उनको ज़लील कर दिया करते हैं, और ये भी ऐसा ही करेंगे। (27:34)

जब पैग़म्बर सुलैमान (पैग़म्बर दाऊद के बेटे), जिन्हें अल्लाह ने पैग़म्बर और बादशाह दोनों बनाया, को सबा की रानी और उसकी प्रजा के बारे में मालूम हुआ जो कि अल्लाह को छोड़ कर सूरज की पूजा करते थे, तो उन्होंने रानी को अल्लाह रहमान व रहीम के नाम से एक पत्र भेजा और महारानी व उसके लोगों को दावत दी कि एक अल्लाह की इबादत करें और अल्लाह की हिदायत पर चलने वाले बन जाएं। उस चतुर महारानी ने जब यह मामला अपने दरबारियों के सामने रखा और उनसे सलाह ली तो उन्होंने महारानी को भरोसा दिलाया कि उनके पास सुलैमान का मुक़ाबलका करने की पूरी शक्ति है लेकिन महारानी जो भी फ़ैसला करें वो उसी को मानेंगे। समझदार महारानी ने अपने लोगों को ध्यान दिलाया कि ताक़त से मुक़ाबला करने में पराजित होने की भी सम्भावना है और ऐसी स्थिति में ताक़त जाती रहेगी, और विजयी शासक जब बस्तियों में दाखलि होते हैं तो बस्तियों को बर्बाद कर देते हैं और बस्ती वालों को अपमानित करते हैं। महारानी का जो बयान क़ुरआन ने साफ़ साफ़ नक़ल किया है वह साम्राज्वादी नीतियों की निन्दा को ज़ाहिर करता है कि सीमाओं को विस्तार देने की उत्तेजना हमेशा भौतिक और नैतिक विनाशकारी से जुड़ी होती है, और यह क़ुरआन के इस सिद्धांत के अनुसार है कि अपने बचाव के लिए सीमित और जायज़ हद तक की ताक़त का इस्तेमाल करना चाहिए (2:190,193-194(4:75(22:39-40)। यहां एक बात यह भी ग़ौरतलब है कि

क़ुरआन ने महारानी सबा को एक बुद्धिमान और कुशल शासक के रूप में पेश किया है और एक देश पर महिला के शासन पर ढकी या छुपी कोई भी आलोचना नहीं की है।

فَاِذَا لَقِيْتُمُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَضَرْبَ الرِّقَابِ ؕ حَتّٰۤى اِذَاۤ اَثْخَنْتُمُوْهُمْ فَشُدُّوا الْوَثَاقَ ۙ فَاِمَّا مَنًّۢا بَعْدُ وَ اِمَّا فِدَآءً حَتّٰى تَضَعَ الْحَرْبُ اَوْزَارَهَا ۛۚ ذٰلِكَ ؕ وَ لَوْ يَشَآءُ اللّٰهُ لَانْتَصَرَ مِنْهُمْ وَ لٰكِنْ لِّيَبْلُوَاۡ بَعْضَكُمْ بِبَعْضٍ ؕ وَ الَّذِيْنَ قُتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ فَلَنْ يُّضِلَّ اَعْمَالَهُمْ ﴿۴﴾ سَيَهْدِيْهِمْ وَ يُصْلِحُ بَالَهُمْ ۚ﴿۵﴾ وَ يُدْخِلُهُمُ الْجَنَّةَ عَرَّفَهَا لَهُمْ ﴿۶﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اِنْ تَنْصُرُوا اللّٰهَ يَنْصُرْكُمْ وَ يُثَبِّتْ اَقْدَامَكُمْ ﴿۷﴾

जब तुम काफ़िरों से भिड़ जाओ तो उनकी गर्दनें उड़ा दो, यहां तक जब तुम .ख़ूब .ख़ूरेंज़ी कर चुको तो (क़ैदियों को) मज़बूत से मज़बूत बांध लो, फ़िर बाद में या तो एहसान कर के छोड़ दो या फ़िदया लेकर, जब तक के लड़ने वाले अपने हथियार ना रख दें, ये हुक्म (याद रखो) और अगर अल्लाह चाहता तो दूसरी तरह बदला ले लेता, लेकिन उसने चाहा के एक को दूसरे से (लड़ाकर) तुमको आज़माये और जो लोग .ख़ुदा की राह में मारे गए तो अल्लाह उनके आमाल को हरगिज़ ज़ाय नहीं करेगा। अल्लाह उनको मतलूब तक पहुंचा देगा, और उनकी हालत दुरूस्त कर देगा। और उनको बहिश्त में दाख़िल करेगा जिससे उनको रूशनास करायेगा। ऐ मोमिनों! अगर तुम अल्लाह की मदद करोगे तो अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा, और तुम को साबित क़दम रखेगा।

(47:4-7)

पैग़म्बर मुहम्मद सल्ल और मुसलमानों की पहली जमाअत को अपने ज़माने में जिन परिस्थितियों का सामना था उनमें दुशमन ताक़त को पूरी तरह तोड़ देने के लिए एक निर्णायक लड़ाई ज़रूरी होती थी, क्योंकि लड़ने वाले लोगो आसानी से हथियार नहीं डालते थे और दूसरी तरफ़ यह भी आसान नहीं था कि लड़ने वालों को क़ैद करके रखा जाए और उनके रहने सहने का प्रबंध किया जाए क्योंकि क़ुरआन ने क़ैदियों के साथ सद्व्यवहार का आदेश दिया है (76:8)। इसलिए मुसलमानों से कहा गया कि लड़ने वालों को क़ैदी बना कर रखने का बोझ उठाने से पहले निर्णायक विजय पूरी करें इसे (और 8:7,57,67) को इस रोशनी में समझा जा सकता है। लेकिन उपरोक्त आयतों में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि शरीअत यु) बन्दियों को रिहा करने का तक़ाज़ा करती है, चाहे मुसलमान अहसान के तौर पर ख़ुद अपने आप ही उन्हें रिहा कर दें या दुशमन पक्ष के साथ मामला करके और फ़िदया (बदला) लेकर उन्हें छोड़ दें ताकि क़ैदियों को स्वभाविक आज़ादी प्राप्त हो। जैसा कि पहले बयान किया जा चुका है, इस्लाम ने ग़ुलामी का चलन कभी शुरू नहीं किया न ग़ुलामी को कोई क़ानूनी हैसियत दी, बल्कि उसने तत्कालिक परिस्थितियों में अस्थाई रूप से इसे माना, जबकि अपने आम सिद्धांतों

के अन्तर्गत इस्लाम ने ग़ुलामी के ख़ात्मे के रास्ते खोले और क़ुरआन व सुन्नत में ग़ुलामों को रिहा करने पर बार बार ज़ोर दिया गया। लोगों के पास जो ग़ुलाम मौजूद थे उन्हें रिहा करने के लिए हर तरीक़े से उभारा गया, और बैतुलमाल से ग़ुलामों को रिहा करने पर माल ख़र्च किया गया (2:177(9:60)। इस अस्थाई और अन्तरिम काल में जो ग़ुलाम बाक़ी थे उनके मालिकों को उनके साथ बराबरी का बर्ताव करने की शिक्षा दी गयी और कहा गया कि जो ख़ुद खाएं वह उन्हें खिलाएं और जो ख़ुद पहनें वह उन्हें पहनाएं और ज़्यादा मेहनत के कामों में उनकी मदद किया करें, तो उस समय ग़ुलामों के मुस्लिम आक़ाओं ने यही किया, वो उनको अपने खाने में शरीक करते थे और उनकी ज़रूरतें पूरी करते थे और मुशक़्क़त के कामों में उनका साथ देते थे (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद)। यहां तक कि मालिक (आक़ा) को इससे मना किया गया कि वह अपना ग़ुलाम कह कर पुकारे बल्कि मेरा लड़का या मेरी लड़की कह कर बात किया करे (बुख़ारी, मुस्लिम, इब्ने हंबल, अबुदाऊद)। इस तरह ग़ुलाम रखना एक बोझ बन जाता है बजाए किसी शोभा और फ़ायदे के, क्योंकि इस तरह इससे मालिकों को कोई आर्थिक फ़ायदा नहीं होगा और आखरिकार ग़ुलामी का ख़ात्मा ही हो जाएगा।

यह दुर्भाग्य की बात है कि इन इस्लामी आदेशों व नियमों को और मार्गदर्शन की अनदेखी की गयी, और कुछ मुसलमान जिन्हें ग़ुलामों के व्यापार में बहतु फ़ायदा दिखा, इस धंधे में लिप्त भी हुए और दूसरे देशों से ग़ुलामों को इम्पोर्ट करने के कारोबार में लगे जो कि शरीअत का खुला उल्लंघन है क्योंकि शरीअत किसी भी तरह से इसकी इजाज़त नहीं देती बल्कि इस पर रोक लगाती है, शरीअत तो जंग में भी उन लोगों को ग़ुलाम बनाने की इजाज़त नहीं देती जो जंग में शामिल न हों। आक्रामक प्रवृत्तियों और बादशाही साम्राज्यों के विस्तार का दुनियावी रुजहान और ऐश व अय्याशी के तौर तरीक़े शरीअत से विमुख हो जाने का नतीजा थे। इसी तरह बादशाही और साम्राजवादी राज्य और ग़ुलामी का ग़ैर इंसानी व असभ्य चलन आधुनिक युग तक चला आया। नई दुनिया यानि अमेरिका की खोज हुई जिसे साम्राज ने ताक़त के द्वारा अपना उपनिवेश बनाया और वहां के आदि वासियों को बेरहमी से वहां से निकाल दिया गया। फिर अफ्रीक़ा से लोगों को पकड़ कर लाया गया और उन्हें ग़ुलाम बना कर रखा गया ताकि उनके ख़ून और पसीने से इस नई दुनिया की अर्थ व्यवस्था को विक्सति करें। फिर जब भांग की जगह ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों की खोज हुई तो गुलामी एक लाभहीन कारोबार रह गया, इसलिए आख़िरकार इसका ख़ात्मा हुआ। दुर्भाग्य से मुस्लिम शासकों और फ़क़ीहों ने अल्लाह के दीन की मंशा को समझने के बजाए और ग़ुलामी को जल्द से जल्द क्रमवार तरीक़े से पूरी तरह ख़त्म करने का काम करने के बजाए स्थिति को ज्यूं का त्यूं बनाए रखा, फिर यह समय आया कि आधुनिक पश्चिमी जगत ने जब इसका क़ानूनी तरीक़े से ख़ात्मा कर दिया तो उन्होंने भी इसका अनुसरण किया।

وَ يَقُوْلُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَوْ لَا نُزِّلَتْ سُوْرَةٌ ۚ
فَاِذَاۤ اُنْزِلَتْ سُوْرَةٌ مُّحْكَمَةٌ وَّ ذُكِرَ فِيْهَا
الْقِتَالُ ۙ رَاَيْتَ الَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ
يَّنْظُرُوْنَ اِلَيْكَ نَظَرَ الْمَغْشِيِّ عَلَيْهِ مِنَ
الْمَوْتِ ؕ فَاَوْلٰى لَهُمْ ﴿٢٠﴾ طَاعَةٌ وَّ قَوْلٌ
مَّعْرُوْفٌ ۫ فَاِذَا عَزَمَ الْاَمْرُ ۫ فَلَوْ صَدَقُوا
اللّٰهَ لَكَانَ خَيْرًا لَّهُمْ ﴿٢١﴾ فَهَلْ عَسَيْتُمْ اِنْ
تَوَلَّيْتُمْ اَنْ تُفْسِدُوْا فِي الْاَرْضِ وَ تُقَطِّعُوْۤا
اَرْحَامَكُمْ ﴿٢٢﴾

और मोमिन लोग कहते हैं के जिहाद की कोई सूरत क्यों नाज़िल नहीं हुई, लेकिन जब कोई साफ़ साफ़ सूरत नाज़िल होती है और उसमें जिहाद का ज़िक्र हो तो तुम देखोगे के जिनके दिलों में निफ़ाक़ की बीमारी है वो आपकी तरफ़ इस तरह देखेंगे जिस तरह किसी पर मौत की बेहोशी तारी हो रही है तो उनके लिये ख़राबी ही .ख़राबी है। फ़रमांबर्दारी, और पसंदीदा बात (ये दोनों बातें बड़ी) अच्छी हैं, फ़िर जिहाद की बात पुख़्ता हो जो तो ये लोग अगर अल्लाह से सच्चे रहते तो उनके लिये बेहतर होता। मुनाफ़िक़ों! तुम से तो कोई चीज़ बईद नहीं है, अगर तुम को हाकिम बना दिया जाये तो मुल्क में .ख़राबी फ़ैला दो और अपने रिश्तों को भी तोड़ डालो। (47:20-22)

कुछ इतिहासकारों, ख़ास तौर से पश्चिमी इतिहासकारों के विचार के विपरीत, पहले युग में अधिकतर मुसलमान भौतिक या अध्यात्मिक उद्देश्य से लड़ने पर उतारू नहीं रहते थे। क़ुरआन बताता है कि जब जंग अपनी रक्षा के लिए ज़रूरी हो गयी तो बहुत से मुसलमानों को इस तरफ़ उत्सुकता नहीं थी और क़ुरआन ने इन लोगों को अच्छी नियत के साथ जंग के इस ज़रूरी तक़ाज़े को पूरा करने के लिए उक्साया और तर्कों से उन्हें तैयार किया, जबकि कुछ आयतों में बुरी नियत वालों को बे नक़ाब किया गया (जैसे पहली मिसाल के लिए 2:193,216-217(3:138-143,154-158(4:47-80,95-99(8:5-8,15-16,45-46,65-66(9:38-41,12-121(दूसरी मिसाल के लिए 3:167-168(4:81(8:49(9:42-45,81-89,93-96(47:20-31(48:11-17)। उपरोक्त आयतें लड़ाई से बचने की इस स्थिति पर बात करती हैं और यह बताती हैं कि इसके नतीजे में ज़मीन फ़साद से भर जाएगी और इस्लाम की अध्यात्मिकए नैतिक और संगठनात्मक शिक्षाओं से और पैग़म्बर सल्ल० व उनके द्वारा नियुक्त गए लोगों के नैतृत्व में जो अनुशासनात्मक व्यवस्था और एकता बनी है उस पर इस अदूरदर्शिता का प्रभाव यह पड़ेगा कि ख़ुद एक ही समुदाय के अन्दर भी वर्गों के बीच लड़ाइयां छिड़ जाएंगी और अव्यवस्था व्याप्त हो जाएगी।

اِذْ جَعَلَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فِيْ قُلُوْبِهِمُ
الْحَمِيَّةَ حَمِيَّةَ الْجَاهِلِيَّةِ فَاَنْزَلَ اللّٰهُ

जब उन काफ़िरों ने अपने दिलों में ज़िद की, और ज़िद भी जाहिलियत की, तो अल्लाह ने अपनी तरफ़ से अपने रसूल और मोमिनीन पर तसकीन नाज़िल फ़रमाई और

سَكِيْنَتَهٗ عَلٰى رَسُوْلِهٖ وَ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ وَ اَلْزَمَهُمْ كَلِمَةَ التَّقْوٰى وَ كَانُوْٓا اَحَقَّ بِهَا وَ اَهْلَهَا ؕ وَ كَانَ اللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمًا ﴿۲۶﴾

मोमिनों को तक़वे की बात पर जमाये रखा, और वो उसके .ज़्यादा हक़दार और अहल थे, और अल्लाह हर चीज़ का जानने वाला है। (48:26)

यहां अल्लाह का तक़वा रखने वाले एक मोमिन की प्रतिबद्धता और संतुलित व्यवहार की तुलना ऐसे व्यक्ति के व्यवहार से की गयी है जो आत्मसि) और स्वार्थीपन में लिप्त होता है और अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं या क़बीले अथवा वर्ग के तौर तरीक़ों का अनुसरण करता है। नैतिकत आचरण और व्यवहार में यह अन्तर उन दोनों के ईमान व अक़ीदे के फ़र्क़ का नतीजा है। अल्लाह पर ईमान रखने वाला इंसान अल्लाह के हुक्म और इंसाफ़ की पाबन्दी करता है और अल्लाह का हुक्म व इंसाफ़ हर एक के सम्बंध में किसी भी तरह के भेदभाव और पक्षपात से ऊपर है, जबकि उस व्यक्ति का रवैया जो अपनी इच्छाओं और अपने लोगों की भावनाओं का अनुसरण करता है वह जिसे पसन्द करता है उसका समर्थन करता है और जिससे बैर रखता है उसका विरोध करता है। ऐसा व्यक्ति मूड़ी होता है और समर्थन या विरोध में किसी भी हद तक जा सकता है, वह कभी बहुत ज़्यादा ख़ुश हो सकता है, कभी बहुत ज़्यादा ग़ुस्से और ग़ज़ब में हो सकता है, कभी बहुत उत्साह में हो सकता है और कभी बहुत निराश और हताश हो सकता है, कभी मुहब्बत से शराबोर हो सकता है, कभी नफ़रत में भरा हो सकता है। वह किसी मामले में गम्भीरता से ग़ौर करने के बजाए एक ही समय में एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। (इस तरह की तुलना की मिसालों के लिए देखें 3:153; 4:153; 5:2,8; दूसरी तरफ़ 3:154; 5:49,50,77; 18:28; 23:71; 28:50; 47:14,16)।

اِلَّا الَّذِيْنَ عٰهَدْتُّمْ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ ثُمَّ لَمْ يَنْقُصُوْكُمْ شَيْئًا وَّ لَمْ يُظَاهِرُوْا عَلَيْكُمْ اَحَدًا فَاَتِمُّوْٓا اِلَيْهِمْ عَهْدَهُمْ اِلٰى مُدَّتِهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الْمُتَّقِيْنَ ﴿۴﴾

हाँ मगर वो मुशरिक़ीन इससे मुसतसना हैं जिनसे तुमने अहद कर रखा है, फ़िर उन्होंने तुम्हारे साथ ज़रा भी कमी नहीं की, और ना तुम्हारे मुक़ाबले मं किसी की मदद की, सा उनके मुआहेदे को उनकी मुद्द तक पूरा करो बेशक अल्लाह बदअहदी से परहेज़ करने वालों को पसंद फ़रमाता है। (9:4)

मुसलमान जब दुशमनी का सामना करने पर मजबूर हों या धोखा देने वाले पक्ष के साथ समझौता ख़त्म करें तो उनका शान्तिपूर्ण व्यवहार और नैतिक मूल्य उन्हें इस बात से रोकते हैं कि वो इस मामले में भी सब को एक ही नज़र से देखें और हर एक को दुशमनी का जवाब दें। दुशमनी और लड़ाई का दायरा कम से कम होना चाहिए और अलग अलग मामलों को

अलग अलग तरीक़े से देखें और बरतें। अरब के बहुदेववादी क़बीलों से सन्धि का समझौता हालांकि इस वजह से समाप्त किया गया कि ‘‘किसी मोमिन के हक़ में न तो रिश्तेदारा का पास करते हैं न वायदे वचन का और हद से निकले जाते हैं’’ (9:10), लेकिन जिन लोगों ने अपना वचन नहीं तोड़ा और मुसलमानों के ख़िलाफ़ उनके दुशमनों का साथ नहीं दिया उनसे यह समझौता समाप्त नहीं किया गया कि उनके साथ अपने वायदे को पूरा करें। हुदैबिया की सन्धि ा पर अमल करने के लिए मुसलमान तभी तक पाबन्द थे जब तक दूसरा पक्ष भी उसकी पाबन्दी करे, अतःअल्लाह की तरफ़ से हिदायत दी गयी कि ‘‘जिन लोगों के साथ तुम ने आदर वाली मस्जिद (काबा) के नज़दीक शपथ ली है अगर वह (अपनी शपथ पर) बनें रहें तो तुम भी अपनी कहे पर क़ायम रहो’’ (9:7)। मुसलमानों को यह शिक्षा दी गयी है कि वो दुशमनी का दायरा सीमित रखने के लिए अपनी तरफ़ से पूरी कोशिश करें और लड़ाई की मुसीबत के दायरे को फैलाएं नहीं।

قُلْ اِنْ كَانَ اٰبَآؤُكُمْ وَ اَبْنَآؤُكُمْ وَ
اِخْوَانُكُمْ وَ اَزْوَاجُكُمْ وَ عَشِيْرَتُكُمْ وَ
اَمْوَالُ ۨاقْتَرَفْتُمُوْهَا وَ تِجَارَةٌ تَخْشَوْنَ
كَسَادَهَا وَ مَسٰكِنُ تَرْضَوْنَهَآ اَحَبَّ
اِلَيْكُمْ مِّنَ اللّٰهِ وَ رَسُوْلِهٖ وَ جِهَادٍ فِيْ
سَبِيْلِهٖ فَتَرَبَّصُوْا حَتّٰى يَاْتِيَ اللّٰهُ بِاَمْرِهٖ ؕ وَ
اللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الْفٰسِقِيْنَ ۟

आप फ़रमा दीजिये, अगर तुम्हारे बाप और तुम्हारे बेटे, और तुम्हारे भाई और तुम्हारी बीवियां, और तुम्हारा कुन्बा, और वो माल जो तुमने कमााया है, और वो तिजारत जिसमें निकासी ना होने का तुम को अंदेशा हो, और वो घर जिसको तुम पसंद करते हो, तुम को अल्लाह से और उसके रसूल से और उसकी राह में जिहाद करने से .ज्यादा प्यारे हैं तो तुम मुंतज़िर रहो, यहां तक के अल्लाह अपना हुक्म (सज़ाए तर्के हिज्रत) का भेज दें, और हुक्म ना मानने वालों को अल्लाह उनके मक़सूद तक नहीं पहुंचाता। (9:24)

इस्लाम हालांकि परिवार और आस पड़ोस से बहतर और मजबूत रिशते बनाए रखने की शिक्षा देता है और जायज़ साधनों से माल कमाने का हुक्म देता है लेकिन यह नहीं चाहता कि आदमी रिशतेदारी और दुनिया के धन दौलत के चक्कर में फंस कर रह जाए, और इन रिशतेदारियों और माल व साधनों के लिए अल्लाह के दीन और न्याय के लिए खड़े होने से और सच्चाई के लिए संघर्ष करने से बाज़ रहे। एक मोमिन को अल्लाह, रसूल और अल्लाह के दीन के तक़ाज़ों के लिए अपने परिवार से भी विभेद के लिए तैयार रहना चाहिए और अगर न्याय स्थापित करने व अन्याय के प्रतिरोध के लिए ज़रूरी हो तो अपने मातापिता, भाई बहनों, बाल बच्चों और अपनी खेतियों व कारोबार की चाहत से अपने आप को आज़ाद करे। यह उन लोगों पर ज़रूरी है जो विश्व शान्ति, न्याय और नैतिकता की स्थापना के लिए प्रतिब) हों ताकि दुनिया में इंसान शान्ति के साथ जी सकें।

अध्याय 9

दुआ

इंसान और ख़ुदा के बीच सम्बंध का सबसे नज़दीकी और सक्रिय माध्यम दुआ है। जब इंसान दुआ करता है तो वह अपनी कमज़ोरी और अक्षमता व मजबूरी को स्वीकार करता है और अपने ज़रूरतमंद होने को मान कर अपने जनक व स्वामी की सहायता पर निर्भर होता है और उसको सर्वशक्तिमान जान कर उससे दया व कृपा की दुआ करता है। जब इंसान अल्लाह की नेअमतों और पुरस्कारों पर अल्लाह का शुक्र अदा करता है तो उसका मन अल्लाह की "हम्द" (प्रशंसा) से भर जाता है और यह भावना उसकी ज़बान पर वन्दना और भक्ति के शब्द जारी करती है। इस तरह एक सच्ची दुआ असिल में अल्लाह पर सच्चे ईमान की एक अभिव्यक्ति है और बन्दे की अपने रब से नज़दीकी का अहसास दिलाती है:"और (ऐ पैग़म्बर सल्ल०) जब तुम से मेरे बन्दे मेरे बारे में पूंछें तो (कह दो कि) मैं तो (तुम्हारे) पास ही हूं। जब कोई पुकारने वाला मुझे पुकारता है तो मैं उसकी दुआ क़ुबूल करता हूं" (2:186), "और हम ही ने इंसान को पैदा किया है और जो विचार उसके मन में आते हैं हम उनको जानते हैं और उसकी गर्दन की रग से उसके ज़्यादा क़रीब हैं" (50:16)।

इंसान की अपने रब से नज़दीकी का यह अहसास और उसकी दया व कृपा की ज़रूरत की यह स्थिति ही है जिसकी वजह से पैग़म्बर सल्ल० ने फ़रमाया कि "दुआ इबादत है" या "इबादत का मूल है" (रिवायत:बुख़ारी, अलअदब, अबुदाऊद, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा, इब्ने हय्यान, इब्ने अबी शीबा, इब्ने हंबल, अलहाकिम (मुस्तदरक)द्ध। इमाम बुख़ारी ने एक और रिवायत भी बयान की है जिस में कहा गया है कि जब बन्दा अल्लाह से मग़फ़िरत (मआफ़ी या बख़्शिश) मांगता है तो अल्लाह तआला उसकी दुआ का जवाब देते हैं और फ़रिश्तों से कहते हैं "क्या मेरा बन्दा वास्तव में जानता है कि उसका कोई रब है जो उसकी ख़ताओं को मआफ़ करता है और तौबा क़ुबूल करता है, मैं ने उसे मआफ़ कर दिया" (मुस्लिम और इब्ने हंबल ने भी इस हदीस को नक़ल किया है)। अल्लाह पर ईमान और अल्लाह से नज़दीकी व अल्लाह के रहम व करम की यह चेतना इंसान के पूरे जीवन पर प्रभाव डालती है, और यह ईमान व चेतना दुआ का एक अनिवार्य तत्व है, और किसी भौतिक आवश्यकता के पूरा होने की दुआ चाहे ज़ाहिर में पूरी न भी हो तो भी इंसान का यह ईमान व चेतना उसे अपने रब की रहमत से उम्मीद बनाए रखती है। पैग़म्बर सल्ल० की एक हदीस इब्ने हंबल और तिरमिज़ी ने नक़ल की है कि जब बन्दा सच्चे मन से कोई दुआ करता है जिसमें उसने किसी के लिए कोई बूरी बात न मांगी हो तो वह दुआ अल्लाह ज़रूर सुनते हैं और तीन में से किसी

एक तरीक़े से उसे ज़रूर पूरा करते हैः या तो वह दुआ तुरन्त क़ुबूल हो जाती है और बन्दे ने जो कुछ मांगा होता है वह उसे मिल जाता है, या उससे बहतर कोई चीज़ उसे इस दुनिया में मिल जाती है, या आख़िरत में उसके लिए अच्छा बदला लिख लिया जाता है।

इन बिन्दुओं के अलावा, दुआ की ख़ासियत यह है कि कोई चीज़ इंसान को अच्छी और भली लगती है जिसके लिए वह अपने रब से दुआ करता है, और कोई चीज़ उसे बुरी और ख़तरनाक या नुक़सानदायक लगती है जिनसे बचने के लिए वह अल्लाह से दुआ करता है। क़ुरआन में बहुत सी दुआएं बयान हुई हैं और रसूल सल्ल० ने भी बहुत सी दुआएं सिखाई हैं जिनमें ऐसे नैतिक गुण बयान किए गए हैं जो इंसान को अपने अन्दर पैदा करना चाहिएं और उनके लिए दुआ करना चाहिए और बहुत सी गम्भीर ग़लत बातें और बुराइयों का इशारा है जिनसे इंसान को बचना चाहिए और उनसे बचने के लिए अल्लाह से दुआ करना चाहिए। चुनांचि, क़ुरआन और सुन्नत (रसूल सल्ल० की बात) की यह दुआएं नैतिक गुणों की सीख देने वाली हैं जो सुबह शाम या रात दिन और समय समय पर इन दुआओं के माध्यम से इंसान के दिल व दिमाग़ में विक्सित होते जाते हैं। ये दुआएं हमें सिखाती हैं कि अल्लाह क्यों हम से यह कहते हैं कि वह हम से क़रीब हैं और हमारी दुआएँ सुनते और उनका जवाब देते हैं। वह हम से कहते हैं कि हम उनकी हिदायत (मार्गदर्शन) पर चलें जिस तरह वह हमारी दुआएं सुनते हैं और उन्हें पूरा करते हैः "(कह दो कि) मैं तो (तुम्हारे) पास हूं। जब कोई पुकारने वाला मुझे पुकारता है तो मैं उसकी दुआ क़ुबूल करता हूं" (2:186)। लेकिन यह एक विरोधाभासी बात होगी कि एक दुआ करने वाला अल्लाह से तो मदद की और सुख मिलने की दुआ करे या दुखों और कष्टों से मुक्ति की फ़रियाद करे, लेकिन ख़ुद इसके लिए कोशिश न करे और उन मक़सदों को हासिल करने के लिए ख़ुद अपना अमल उनके मुताबिक़ न बनाएः "अल्लाह उस (नेअमत या देन) को जो किसी क़ौम को (मिली हुई) है नहीं बदलते जब तक कि वो अपनी हालत को न बदले" (13:11)। अगर कोई बन्दा अल्लाह से ग़रीबी दूर होने की, क़र्ज़ से मुक्ति की, बीमारी से शिफ़ा की, दमन से आज़ादी की, मन की निराशा से निकलने की दुआ करे और अपनी शरीरिक, दिमाग़ी और रूहानी सेहत को ठीक करने की कोशिश करे जैसा कि रसूल सल्ल० ने सीख दी है (बुख़ारी, मुस्लिम, तिरमिज़ी, नसई, इब्ने माजा, अलहाकिम) तो उसकी यह सारी कोशिशें उसके मक़सद की प्राप्ति के लिए ज़रूरी हैं। हज़रत उमर का कथन है कि आदमी को अपनी रोज़ी कमाने के लिए काम किए बग़ैर बेकार बैठ कर अल्लाह से यह दुआ नहीं करना चाहिए कि अल्लाह उसे रोज़ी दें क्योंकि वह यह अच्छी तरह जानता है कि आसमान से सोना या चांदी नहीं बरसती (अलशहरुल मशअरुल हराम में रफ़ीक़ुल अज़्म ने यह कथन नक़ल किया है, दूसरा ऐडिशन, क़ाहिरा, 1973, संदर्भ अलअक़दुल फ़रीद, इब्ने अब्दुर्रब)।

क़ुरआन की इन धारणाओं को मुकम्मल करते हुए मैं ने निम्नलिखित क़ुरआनी दुआएँ चुनी हैं यह बताने के लिए कि मुसमलानों को अल्लाह से हिदायत के लिए और जीवन के समस्त मामलों में मदद के लिए किस तरह दुआ करना सिखाया गया है। इंसान का शरीरिक और अध यात्मिक व्यक्तित्व, परिवार से उसका सम्बंध, सामाजिक और वैश्विक न्याय, शान्ति व आपसी सहयोग और अच्छे कामों में प्रतिस्पर्धा वग़ैरह। इन दुआओं में कुछ दुआएं वो हैं जो पैग़म्बरों, फ़रिश्तों और सच्चें मोमिनों ने कुछ अवसरों पर की हैं, और कुछ दुआएं वो हैं जो क़ुरआन ने कुछ ख़ास स्थितियों को दर्शाने के लिए पेश की हैं। यह समग्र, संक्षिप्त और विशेष दुआएँ हैं और ऐसी हैं कि आसानी से याद की जा सकती हैं और दोहराई जा सकती हैं। इन क़ुरआनी व मसनून (सुन्नत) दुआओं को पढ़ते हुए उन नैतिक मूल्यों व मर्यादाओं पर ध्यान रखना चाहिए जो इन दुआओं में सिखाई गई हैं और जो एक मुसलमान के दिल व दिमाग़ में बस जाना चाहिएं ताकि उनकी रोशनी में वह अपना पूरा जीवन बिताए और दूसरे इंसानों के साथ अपने सम्बंध को निभाए। अल्लाह तआला तमाम इंसानों पर अपना करम फ़रमाएं और सब को अपनी हिदायत से नवाज़ें, आमीन।

وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِي الدُّنْيَا
حَسَنَةً وَّ فِي الْاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّ قِنَا
عَذَابَ النَّارِ ۝٢٠١

और बाज़ इस तरह दुआ करते हैं के ऐ हमारे रब! तू हमें अपनी नेमत से इस दुनिया में भी नवाज़ दे और आख़िरत में भी अपनी मेहरबानी से अता फ़रमा और दोज़ख के अज़ाब से भी निजात दे। (2:201)

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ؕ لَهَا مَا
كَسَبَتْ وَ عَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ؕ رَبَّنَا لَا
تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا
تَحْمِلْ عَلَيْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى
الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا
طَاقَةَ لَنَا بِهٖ ۚ وَاعْفُ عَنَّا ۗ وَاغْفِرْ
لَنَا ۗ وَارْحَمْنَا ۗ اَنْتَ مَوْلٰىنَا فَانْصُرْنَا عَلَى
الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝٢٨٦

अल्लाह किसी को तकलीफ़ नहीं देता मगर जितना उसकी ताक़त में है। उसको सवाब भी उसी का मिलेगा जो इरादा से किया। और उस पर अज़ाब भी उसी का होगा जो इरादा से किया। ऐ हमारे रब! हम पर दारोगीर ना फ़रमा, अगर हम भूल जायें। या चूक जायें, ऐ हमारे रब! और हम पर कोई सख़्त हुक्म न भेज, जैसे हम से पहले लोगों पर आप ने भेजा था। ऐ हमारे रब! और हम पर ऐसा बार (दुनिया या आख़िरत में) ना डाल, जो हम बर्दाश्त ना कर सकें। हम से दरगुज़र फ़रमा, और हम को बख़्श दे। हम पर रहम फ़रमा, आप हमारे कारसाज़ हैं और हमें काफ़िरों पर ग़ल्बा और नुसरत अता फ़रमा। (2:286)

رَبَّنَا لَا تُزِغْ قُلُوْبَنَا بَعْدَ اِذْ هَدَيْتَنَا وَهَبْ
لَنَا مِنْ لَّدُنْكَ رَحْمَةً ۚ اِنَّكَ اَنْتَ
الْوَهَّابُ ۝٨ رَبَّنَآ اِنَّكَ جَامِعُ النَّاسِ
لِيَوْمٍ لَّا رَيْبَ فِيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُخْلِفُ
الْمِيْعَادَ ۝٩

ऐ हमारे रब! तू हमारे दिलों में कजी पैदा ना फ़रमाना हमें अपनी हिदायत बख़्शने के बाद बल्के अपने ख़ास फ़ज़लो रहमत से नवाज़ दे, क्योंकि तू तो बड़ा अता फ़रमाने वाला है। ऐ हमारे रब! तू तो उस रोज़ जिसके आने में कोई शको शुबह नहीं है सब लोगों को अपने हुज़ूर में जमा कर लेगा बेशक अल्लाह अपने वादे के ख़िलाफ़ नहीं करता। (3:8-9)

وَمَا كَانَ قَوْلَهُمْ اِلَّآ اَنْ قَالُوْا رَبَّنَا اغْفِرْ
لَنَا ذُنُوْبَنَا وَاِسْرَافَنَا فِيْٓ اَمْرِنَا وَثَبِّتْ
اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ۝١٤٧

और उनकी ज़बान से भी तो इसके सिवा और कुछ न निकला के उन्होंने कहा, ऐ हमारे रब! आप हमारे गुनाहों को और हमारे कामों में अपनी हद से निकल जाने को बख़्श दीजिये, और हम को साबित क़दम रखिये, और हमको काफ़िरों पर ग़ालिब कीजिये। (3:147)

الَّذِيْنَ يَذْكُرُوْنَ اللّٰهَ قِيٰمًا وَّقُعُوْدًا وَّعَلٰى
جُنُوْبِهِمْ وَيَتَفَكَّرُوْنَ فِيْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَ
الْاَرْضِ ۚ رَبَّنَا مَا خَلَقْتَ هٰذَا بَاطِلًا ۚ
سُبْحٰنَكَ فَقِنَا عَذَابَ النَّارِ ۝١٩١ رَبَّنَآ اِنَّكَ
مَنْ تُدْخِلِ النَّارَ فَقَدْ اَخْزَيْتَهٗ ۭ وَمَا
لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ۝١٩٢ رَبَّنَآ اِنَّنَا سَمِعْنَا
مُنَادِيًا يُّنَادِيْ لِلْاِيْمَانِ اَنْ اٰمِنُوْا بِرَبِّكُمْ
فَاٰمَنَّا ۖ رَبَّنَا فَاغْفِرْ لَنَا ذُنُوْبَنَا وَكَفِّرْ عَنَّا
سَيِّاٰتِنَا وَتَوَفَّنَا مَعَ الْاَبْرَارِ ۝١٩٣ رَبَّنَا وَاٰتِنَا
مَا وَعَدْتَّنَا عَلٰى رُسُلِكَ وَلَا تُخْزِنَا يَوْمَ
الْقِيٰمَةِ ۭ اِنَّكَ لَا تُخْلِفُ الْمِيْعَادَ ۝١٩٤

बिला शुबह आसमानों और ज़मीन के बनाने में और रात और दिन के अदल बदल जाने में अक़्ल वालों के लिए निशानियां हैं। जो खड़े, बैठे, और लेटे हर हाल में अल्लाह को याद करते हैं और आसमानों और ज़मीन के बनाने में फ़िक्र करते हैं और कहते हैं के ऐ हमारे रब! तूने ये सब बेकार या बेफ़ायदा नहीं बनाया, तू पाक है, हमें दोज़ख के अज़ाब से बचा। ऐ हमारे रब! बेशक आप जिसको दोज़ख में दाख़िल करें बिला शुबह आपने इसको रूसवा ही कर दिया और वाक़ई ऐसे ज़ालिमों का कोई हामी व नासिर नहीं होता। ऐ हमारे रब! बेशक हमने एक पुकारने वाले को सुना के वो एलान कर रहा है के तुम अपने रब पर ईमान लाओ सो हम ईमान लाये, ऐ हमारे रब! तू हमारे गुनाहों को भी माफ़ फ़रमा दे, और बुराईयों को भी हम से दूर कर दे और हमको मौत नेक लोगों के साथ दीजिये। ऐ हमारे रब! और वो चीज़ भी ईनायत फ़रमा दे जो तूने हमसे अपने रसूल की

मार्फ़त वादा किया था और हमको क़यामत के रोज़ रूसवा ना करना, बेशक आप वादा ख़िलाफ़ी नहीं करते। (3:190-194)

हम तो अल्लाह पर झूटी तोहमत लगाने वाले हो जायें, अगर हम तुम्हारे मज़हब में आ जायें बाद इसके के अल्लाह ने हमको उससे निजात बख़्शी हो, ये मुमकिन ही नहीं है हमारे लिये के हम फ़िर तुम्हारे मज़हब में लौट जायें मगर ये के अल्लाह चाहे जो हमारा मालिक है, तो दूसरी बात है, हमारे रब का इल्म हर चीज़ को मुहीत है, हम अल्लाह पर भरोसा रखते हैं, ऐ हमारे रब! हम में और हमारी क़ौम में इन्साफ़ के साथ फ़ैसला कर दे, और तू सबसे बेहतर फ़ैसला करने वाला है। (7:89)

قَدِ افْتَرَيْنَا عَلَى اللّٰهِ كَذِبًا اِنْ عُدْنَا فِيْ
مِلَّتِكُمْ بَعْدَ اِذْ نَجّٰىنَا اللّٰهُ مِنْهَا ؕ وَ مَا
يَكُوْنُ لَنَآ اَنْ نَّعُوْدَ فِيْهَآ اِلَّآ اَنْ يَّشَآءَ
اللّٰهُ رَبُّنَا ؕ وَسِعَ رَبُّنَا كُلَّ شَيْءٍ عِلْمًا ؕ عَلَى
اللّٰهِ تَوَكَّلْنَا ؕ رَبَّنَا افْتَحْ بَيْنَنَا وَ بَيْنَ قَوْمِنَا
بِالْحَقِّ وَ اَنْتَ خَيْرُ الْفٰتِحِيْنَ ﴿۸۹﴾

ऐ हमारे रब! तू तो सब जानता है जो बात हम दिल में रखें वो भी, और जो ज़ाहिर कर दें, वो भी, और अल्लाह से कोई चीज़ मख़्फ़ी नहीं है, ना ज़मीन में और ना आसमान में। अल्लाह का बड़ा शुक्र है के उसने मुझे बड़ी उम्र में इसमाईल और इसहाक़ अता किये, बिला शुबह मेरा रब मेरी दुआ का सुनने वाला है। ऐ मेरे रब! तू मुझे नमाज़ का क़ायम करने वाला बना, और मेरी औलाद में भी बाज़ को, ऐ हमारे रब! और मेरी दुआ क़बूल फ़रमा। ऐ हमारे रब! हिसाब के दिन मुझ को और मेरे मां बाप को और कुल मोमिनों को बख़्श दे। (14:38-41)

رَبَّنَآ اِنَّكَ تَعْلَمُ مَا نُخْفِيْ وَ مَا نُعْلِنُ ؕ وَ مَا
يَخْفٰى عَلَى اللّٰهِ مِنْ شَيْءٍ فِي الْاَرْضِ وَ لَا فِي
السَّمَآءِ ﴿۳۸﴾ اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ الَّذِيْ وَهَبَ لِيْ عَلَى
الْكِبَرِ اِسْمٰعِيْلَ وَ اِسْحٰقَ ؕ اِنَّ رَبِّيْ لَسَمِيْعُ
الدُّعَآءِ ﴿۳۹﴾ رَبِّ اجْعَلْنِيْ مُقِيْمَ الصَّلٰوةِ وَ
مِنْ ذُرِّيَّتِيْ ۖۗ رَبَّنَا وَ تَقَبَّلْ دُعَآءِ ﴿۴۰﴾ رَبَّنَا
اغْفِرْ لِيْ وَ لِوَالِدَيَّ وَ لِلْمُؤْمِنِيْنَ يَوْمَ
يَقُوْمُ الْحِسَابُ ﴿۴۱﴾

जब उन जवानों ने ग़ार में पनाह ली तो कहने लगे ऐ हमारे रब! तू हमको अपने पास से रहमत अता फ़रमा, और हमारे लिये काम में दुरूस्ती के सामान मोहईय्या कर। (18:10)

اِذْ اَوَى الْفِتْيَةُ اِلَى الْكَهْفِ فَقَالُوْا رَبَّنَآ
اٰتِنَا مِنْ لَّدُنْكَ رَحْمَةً وَّ هَيِّئْ لَنَا مِنْ
اَمْرِنَا رَشَدًا ﴿۱۰﴾

और वो जो अपने रब से दुआ मांगते हैं, ऐ हमारे रब! तू हमको हमारी बीवियों और हमारी औलाद की तरफ़ से आंख की ठंडक इनायत फ़रमा, और हमको परहेज़गारों का इमाम बना। (25:74)

وَالَّذِيْنَ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ
اَزْوَاجِنَا وَ ذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ وَّ اجْعَلْنَا
لِلْمُتَّقِيْنَ اِمَامًا ﴿۷۴﴾

इब्राहीम ने कहा, क्या तुम ने उनको देखा भी है जिनको तुम पूजते हो। तुम भी और तुम्हारे अगले बाप दादा भी। ये सब मेरे दुश्मन हैं, मगर हां रब्बुलआलमीन मेरा दोस्त है। जिसने मुझे पैदा किया है, और वही मुझे रास्ता दिखाता है। और वो ही मुझे खिलाता और पिलाता है। और जब मैं बीमार पड़ता हूँ तो वही मुझे शिफ़ा अता करता है। वही मुझे मारेगा, वही मुझे ज़िन्दा करेगा। और उससे मैं उम्मीद करता हूँ के वही क़यामत के दिन मेरी ख़ताओं को माफ़ करेगा। ऐ मेरे रब! तू मुझे हिकमत अता फ़रमा, और मुझे नेक लोगों में शामिल फ़रमा। और आने वाले लोगों में मेरा ज़िक्र जारी रख। और मुझे जन्नते नईम के मुस्तहक़ीन में से बना। और मेरे बाप को बख़्शिश अता फ़रमा, क्योंके वो गुमराहों में था। और जिस दिन लोग उठा खड़े किये जायेंगे मुझे रूसवा ना करना। जिस रोज़ ना माल काम आएगा, और ना बेटे। मगर जो शख़्स अल्लाह के पास पाक दिल लेकर आया हो (वो बच जायेगा)। (26:75-89)

قَالَ اَفَرَءَيْتُمْ مَّا كُنْتُمْ تَعْبُدُوْنَ ﴿۷۵﴾
اَنْتُمْ وَ اٰبَآؤُكُمُ الْاَقْدَمُوْنَ ﴿۷۶﴾ فَاِنَّهُمْ
عَدُوٌّ لِّيْۤ اِلَّا رَبَّ الْعٰلَمِيْنَ ﴿۷۷﴾ الَّذِيْ خَلَقَنِيْ
فَهُوَ يَهْدِيْنِ ﴿۷۸﴾ وَ الَّذِيْ هُوَ يُطْعِمُنِيْ وَ
يَسْقِيْنِ ﴿۷۹﴾ وَ اِذَا مَرِضْتُ فَهُوَ يَشْفِيْنِ ﴿۸۰﴾ وَ
الَّذِيْ يُمِيْتُنِيْ ثُمَّ يُحْيِيْنِ ﴿۸۱﴾ وَ الَّذِيْۤ
اَطْمَعُ اَنْ يَّغْفِرَ لِيْ خَطِيْٓـَٔتِيْ يَوْمَ
الدِّيْنِ ﴿۸۲﴾ رَبِّ هَبْ لِيْ حُكْمًا وَّ اَلْحِقْنِيْ
بِالصّٰلِحِيْنَ ﴿۸۳﴾ وَ اجْعَلْ لِّيْ لِسَانَ صِدْقٍ
فِي الْاٰخِرِيْنَ ﴿۸۴﴾ وَ اجْعَلْنِيْ مِنْ وَّرَثَةِ جَنَّةِ
النَّعِيْمِ ﴿۸۵﴾ وَ اغْفِرْ لِاَبِيْۤ اِنَّهٗ كَانَ مِنَ
الضَّآلِّيْنَ ﴿۸۶﴾ وَ لَا تُخْزِنِيْ يَوْمَ يُبْعَثُوْنَ ﴿۸۷﴾
يَوْمَ لَا يَنْفَعُ مَالٌ وَّ لَا بَنُوْنَ ﴿۸۸﴾ اِلَّا مَنْ
اَتَى اللّٰهَ بِقَلْبٍ سَلِيْمٍ ﴿۸۹﴾

जो फ़रिश्ते अर्श को उठाये हुए हैं और जो उसके गिर्दा गिर्द हैं अपने रब की हम्दो सना के साथ उसकी पाकी बयान करते हैं और उस पर ईमान रखते हैं, और मोमिनों के लिये मग़फ़िरत की दुआ किया करते हैं के ऐ हमारे रब! तेरी रहमत और इल्म हर चीज़ का अहाता किये हुए है, तो उन लोगों को बख़्श दे जो तौबा करते हैं, और तेरे रास्ते पर चलते हैं, और उनकी दोज़ख के

اَلَّذِيْنَ يَحْمِلُوْنَ الْعَرْشَ وَ مَنْ حَوْلَهٗ
يُسَبِّحُوْنَ بِحَمْدِ رَبِّهِمْ وَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ وَ
يَسْتَغْفِرُوْنَ لِلَّذِيْنَ اٰمَنُوْا رَبَّنَا وَسِعْتَ
كُلَّ شَيْءٍ رَّحْمَةً وَّ عِلْمًا فَاغْفِرْ لِلَّذِيْنَ
تَابُوْا وَ اتَّبَعُوْا سَبِيْلَكَ وَ قِهِمْ عَذَابَ
الْجَحِيْمِ ﴿۷﴾ رَبَّنَا وَ اَدْخِلْهُمْ جَنّٰتِ عَدْنِ

الَّتِیْ وَعَدْتَّهُمْ وَ مَنْ صَلَحَ مِنْ اٰبَآىِٕهِمْ وَ
اَزْوَاجِهِمْ وَ ذُرِّیّٰتِهِمْ ؕ اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِیْزُ
الْحَكِیْمُ ۙ۝۸

अज़ाब से बचा ले। ऐ हमारे रब! उनको हमेशा रहने के लिये बहिश्त में दाख़िल फ़रमा जिनका वादा आपने उनसे किया है, और उनके मां बाप और बीवियों को और औलाद को भी दाख़िल फ़रमा जो सालेह हों, बेशक तू ग़ालिब हिकमत वाला है। (40:7-8)

وَ الَّذِیْنَ جَآءُوْ مِنْۢ بَعْدِهِمْ یَقُوْلُوْنَ رَبَّنَا
اغْفِرْ لَنَا وَ لِاِخْوَانِنَا الَّذِیْنَ سَبَقُوْنَا
بِالْاِیْمَانِ وَ لَا تَجْعَلْ فِیْ قُلُوْبِنَا غِلًّا
لِّلَّذِیْنَ اٰمَنُوْا رَبَّنَاۤ اِنَّكَ رَءُوْفٌ رَّحِیْمٌ ۝۱۰

और उनके लिये भी जो इन मुहाज्रीन के बादआए, और दुआ करते हैं के ऐ हमारे परवरदिगार हमको माफ़ फ़रमा, और हमारे भाईयों को जो हमसे पहले ईमान लाये हैं और मोमिनीन की तरफ़ से हमारे दिलों में कीना ना पैदा होने दे ऐ हमारे परवरदिगार! तू तो बड़ा शफ़्क़त करने वाला रहम वाला है। (59:10)

قَدْ كَانَتْ لَكُمْ اُسْوَةٌ حَسَنَةٌ فِیْۤ اِبْرٰهِیْمَ
وَ الَّذِیْنَ مَعَهٗ ۚ اِذْ قَالُوْا لِقَوْمِهِمْ اِنَّا
بُرَءٰٓؤُا مِنْكُمْ وَ مِمَّا تَعْبُدُوْنَ مِنْ دُوْنِ
اللّٰهِ ۫ كَفَرْنَا بِكُمْ وَ بَدَا بَیْنَنَا وَ بَیْنَكُمُ
الْعَدَاوَةُ وَ الْبَغْضَآءُ اَبَدًا حَتّٰى تُؤْمِنُوْا
بِاللّٰهِ وَحْدَهٗۤ اِلَّا قَوْلَ اِبْرٰهِیْمَ لِاَبِیْهِ
لَاَسْتَغْفِرَنَّ لَكَ وَ مَاۤ اَمْلِكُ لَكَ مِنَ اللّٰهِ
مِنْ شَیْءٍ ؕ رَبَّنَا عَلَیْكَ تَوَكَّلْنَا وَ اِلَیْكَ
اَنَبْنَا وَ اِلَیْكَ الْمَصِیْرُ ۝۴ رَبَّنَا لَا تَجْعَلْنَا
فِتْنَةً لِّلَّذِیْنَ كَفَرُوْا وَ اغْفِرْ لَنَا رَبَّنَا ۚ
اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِیْزُ الْحَكِیْمُ ۝۵

तुम्हारे लिये इब्राहीम (अ.स.) और उनके साथियों में अच्छा नमूना है, जबके उन्होंने अपनी क़ौम से कहा के हम तुम से और उन बुतों से जिनकी तुम अल्लाह के सिवा पूजा करते हो बे ताल्लुक़ हैं और हम तुम्हारे माबूदों के कभी क़ायल नहीं हो सकते, और जब तक तुम ख़ुदाये वाहिद पर ईमान ना लाओ, हममें और तुम में हमेशा खुल्लम खुल्ला अदावत और दुश्मनी रहेगी, अलबत्ता इब्राहीम (अ.स.) ने अपने बाप से ये ज़रूर कहा के में आपके लिये मग़फ़िरत मांगूंगा, और मैं अल्लाह के सामने आपके बारे में कोई इख़्तियार नहीं रखता, ऐ हमारे रब! हम तुझ पर भरोसा रखते हैं और तेरी तरफ़ रूजू होते हैं, और तेरे ही पास लौट कर आना है। ऐ हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ये हमारे रब! तू हमको काफ़िरों के हाथ से अज़ाब ना दिलाना, और ऐ हमारे रब! तू हमें माफ़ फ़रमा, बिला शुबह तू बड़ा ज़बरदस्त हिकमत वाला है। (60:4-5)

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا تُوْبُوْۤا اِلَى اللّٰهِ تَوْبَةً
نَّصُوْحًا ؕ عَسٰى رَبُّكُمْ اَنْ يُّكَفِّرَ عَنْكُمْ
سَيِّاٰتِكُمْ وَ يُدْخِلَكُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِىْ مِنْ
تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ يَوْمَ لَا يُخْزِى اللّٰهُ النَّبِىَّ
وَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ ۚ نُوْرُهُمْ يَسْعٰى بَيْنَ
اَيْدِيْهِمْ وَ بِاَيْمَانِهِمْ يَقُوْلُوْنَ رَبَّنَاۤ
اَتْمِمْ لَنَا نُوْرَنَا وَ اغْفِرْ لَنَا ۚ اِنَّكَ عَلٰى
كُلِّ شَىْءٍ قَدِيْرٌ ۝٨

मोमिनों! अल्लाह के आगे साफ़ दिल से तौबा किया करो, उम्मीद है के तुम्हारा रब तुम्हारे गुनाह तुमसे दूर कर देगा और तुमको बाग़हाय बहिश्त में दाख़िल करेगा जिनके नीचे नहरें बह रही हैं, उस रोज़ अल्लाह रसूल को और उनके साथ मोमिनों को रूसवा नहीं करेगा, उनका नूर उनके आगे और दाहिनी तरफ़ दौड़ता होगा और यूं दुआ करते होंगे के ऐ रब हमारे तू हमारे लिये नूर पूरा कर दे, और हमें माफ़ कर दे, बिला शुबह तू हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। (66:8)

❁ ❁ ❁